

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
आर्त्तवपरीक्षा ।		तथा	”
शुद्धआर्त्तवके लक्षण	”	तथा	”
आर्त्तवके यथार्थ अमृत्तिके दोष	८७३	यामलका प्रमाण	”
मलपरीक्षा ।		स्पर्शपरीक्षा ।	
वातपित्तादिसे मलके चिह्न	८७३	वातादिसे स्पर्शके लक्षण	८८२
पित्तवात और कफ पित्तजन्य मलके		त्वचाका स्पर्श	”
चिह्न ...	८७४	थर्मामिटर लगानेकी विधि	८८३
त्रिदोषजन्य मलके चिह्न	”	प्लैक्सिमिटर यंत्र	८८५
जीर्ण मलके लक्षण	”	स्टिथसकोप यंत्र	”
क्षीण दोष और जलोदरवालेके		अवस्थापरीक्षा	”
मलके लक्षण	”	जातिपरीक्षा	८८६
क्षयादिमें मलके लक्षण	”	कालज्ञानम् ।	
वातादिदोषजन्यमलके चिह्न ...	”	कालको मुख्यत्व	८८७
आमादि रोगके कारण मलके लक्षण	८७५	सृष्टि संहार और पालनमें कालका मुख्यत्व	”
वातादि मूत्रके लक्षणांतर	”	कथन	”
असाध्य आदिसे मलके चिह्न	”	छः महानि पूर्व मृत्युजाना जाय है यह	”
मुखपरीक्षा ।		कथन	”
वातादिसे मुखका स्वाद	८७६	उत्पन्न संहार और सुप्तावस्थामें कालको	”
डाकरी मतानुसार मुखपरीक्षा	”	मुख्यत्व कथन	”
जिह्वापरीक्षा ।		देव नागादिकोंका कालसे नाश	”
वातादिदोषसे जिह्वाके लक्षण	८७७	ब्रह्मदेवका मरणत्वसे कालको मुख्यत्व	”
डाकरीमतसे परीक्षा	८७८	मनुष्यको मरणत्वकथन	८८८
शब्दपरीक्षा ।		वर्षाशीतादिकालके रूप	”
वातादि दोषसे स्वरके लक्षण	८७९	पृष्ठ बीज और स्त्रीको प्रसूतित्व	”
नेत्रपरीक्षा ।		कथन	”
वातजन्यनेत्र	८८०	कालमें कर्मको मुख्यत्व	”
पित्तकफजन्यनेत्र	”	कालामिकी चतुर्विधवांछा	”
दंद्दज और सन्निपातजन्य	”	षट्चक्रादिकों कथन	”
डाकरीमतानुसार शब्दपरीक्षा	”	तत्रादौषट्चक्राण्यन्त	”
डाकरीमतसे नेत्रपरीक्षा	”	मतांतर	”
अमाध्य लक्षण	८८१	पोडशाधार	”
तथा	”	त्रिलक्ष्य	”
		स्तम्भादिकथन	”



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
प्राण पवनकी संख्या कथन	”	नेत्रोंकी विकृति	”
आत्मा अंतरात्मा और परमात्मा	”	बालोंकी विकृति	८९८
प्राण पवनको निकलनेके पश्चात्	”	देहके अवयव क्रियाकी विपरीतता	”
देहको शून्यत्वकथन	”	गिरकर न उठनेकी विकृति	”
स्वरोदयकामत	”	उत्तान शयनादिकी विकृति	”
सूर्य और चंद्रमार्गसे उदयास्तकाफल	”	श्वासकी विकृति	”
पक्षमें होनहार मृत्युका ज्ञान	८९१	निद्रा जागरण और बोलनेकी विकृति	”
शीघ्र मृत्यु होनेका ज्ञान	”	होंठोंका चाटना आदि	८९९
चंद्रसूर्यके गमनका क्रम	”	रोमकूपोंसे रुधिर निकलना	”
पंचभूतात्मक दीपकी रक्षा	”	बाताघोलाका फल	”
आयुहीनके लक्षण	”	अतिसारादि उपद्रव	”
अरुंधत्यादिकी सजा	”	स्वेदादि उपद्रव	”
जलमें सूर्य चंद्रके प्रतिबिंबदर्शनद्वारा रोगी-	”	मुखकी विकृति	९००
के मरणका ज्ञान	८९२	तथा	”
मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व	”	देहभारीपना आदि विकृति	”
अरिष्टको निश्चय मारकत्व कथन	”	गंधद्वारा विकृतिकथन	”
अरिष्टके बाननेमें मूर्खको दुर्घटत्व	८९३	यूकादिकी विकृति	”
		धुधाकी विकृति	”
		प्रवाहिकादि उपद्रव	९०१
		अरिष्ट होने और उसको मारणमें	”
		कारणत्व	”
		मरण समय क्रियाओंके निष्फलत्व	”
		होनेमें कारण	”
		स्वभावविप्रतिपत्ति ।	
		देहमें स्वभावसिद्ध पदार्थोंकी विकृति	”
		तथा	”
		तथा	९०२
		तथा	”
		तथा	”
		तथा	९०३
		ग्रहोंकी दृष्टी	९०४
		चिकित्साके विपरीत होनेकाफल	”
		पुष्पित मनुष्य	९०५
		रसजन्य विकृति	”

पंचेंद्रियार्थविप्रतिपत्ति ।

शरीरकी विप्रतिपत्ति	”
कर्णेंद्रीकी विकृति	”
स्वचाकी विकृति	८९४
जिह्वाइन्द्रीकी विकृति	८९५
नासिका इन्द्रीकी विकृति	”
तथा	”
तथा	”

छायाविप्रतिपत्ति ।

छायाकी विपरीतता कथन	”
प्रभाकी विपरीतता.	८९७
ओष्ठोंकी विकृति	”
दांतोंकी विकृति	”
जिह्वाकी विकृति	”
नासिकाकी विकृति	”

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
रसज्ञानमें शंका समाधान	९०६	शृङ्ग द्वारा परीक्षा	१
मुखमें तीन टगली न जानेका फल "	"	तिलक (क्लोम) की विद्युति	"
चंद्रादिककी छाया आदि न		आंतोकी परीक्षा	"
दीखनेका फल	"		
स्नानमें प्रथम छाती आदि सूखनेका			
फल	९०७	बालकोंकेरोगकीपरीक्षा ।	
कानोंकी विपरीततादि	"	बालकोंके रोग ज्ञानको दुर्घटत्व	९१६
भोजनादिककी विपरीतता	"	बालकोंको दूधके पात्र कथन	"
पहुंचे न देखने आदिका फल	"	बालकोंको यत्नमें असावधानी करने-	
रोमांच और नख टखरनेका फल	"	बालोंके वैद्यको पार्ष्णीयत्व कथन	९१७
अरिष्टोंको मृत्युसूचकत्व कथन	९०८	घायसे प्रणद्धारा बालकोंके रोगकी	
मूर्ख प्राणीको अरिष्टोंका अशाह्यत्व	"	परीक्षा	"
अरिष्टा परिपाक	"	परीक्षा करनेमें आज्ञा और परीक्षाविधि "	
वेद्यको अरिष्टज्ञानकी मुरपता	"	संनिपातादि परीक्षा....	९१८
अरिष्टकी शान्ति	९०९		
		वस्त्रपरीक्षा ।	
छायापुरुष ।		वातादिकी वस्त्रद्वारा परीक्षा	"
छाया पुरुष द्वारा बाल ज्ञान कथन	"	दीर्घ रोग और मरणासत्रके वस्त्रकी	
एकांतमें छायासाधन	"	परीक्षा	९१९
मंत्रकथन	"		
कालपुरुषका स्वरूपदर्शन	"	देशपरीक्षा ।	
दोषर्षमें त्रिकालज्ञत्व	९१०	अनुपदेशालक्षण....	"
निरंतर अभ्यासका फल	"	अनुपदेशके भेद	९२०
कालपुरुषके कृष्ण वर्ण रीखनेका फल	"	जांगल देशके लक्षण	"
पीत नीलादि वर्णका फल	"	तथा	"
अंग हीन कालपुरुषके दीखलेला फल	"	साधारण देशके लक्षण	९२१
शक्तिभेद (पेसा)	९११	तथा	"
स्वरूपपरीक्षा	"	साधारणदेशके भेद	"
जठरस्थ रोगोंकी परीक्षा	९१२	देशोचित त्रिषणमें दुर्देशरोग	
यष्ट आनाशयादिकी विद्युति	"	धमप्राप्तिरूपकथन	९२२
अभिघात द्वारा उद्घर्षी परीक्षा	"	स्वदेशगम्य औषधरोगे मुष्पता....	"
तथा	९१३	स्वदेशसंज्ञित दोषोंको अन्य देशमें	
तथा	९१४	सुपित होनेमें निर्बलत्वकथन....	"
यष्ट विद्युधिके लक्षण	"		
शिक्षा द्वारा परीक्षा	९१५	मानपरिभाषा ।	
		मानवून	"

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
त्रसरेणुसंज्ञा	अनुक्त कालादिकोंकी योजना	”
परमाणुके लक्षण	विशेष कथन	९३४
वक्ष्यादिकोंके परिमाण	औषधके हीन वीर्य होनेमें प्रमाण	”
मासेकापरिमाण	उक्तानुक्त द्रव्यका त्याग और ग्रहण	”
ज्ञान और कोलका परिमाण	देशभेदकरके औषधोंके भेद	९३५
कर्षका परिमाण	औषधी लानेका प्रकार	”
अर्धपल तथा पलका परिमाण	ऋतुविशेष करके रोगविशेषोपर	”
प्रसृतिसे आदिलेमानिका पर्यतका	”	औषध लेनेका काल	”
परिमाण	औषध विशेषका अंग ग्रहण	९३६
प्रस्थ और आढकका परिमाण....	९२५	पक पदाथोंका फिर पक करनेमें दोष	९३७
द्रौणसेलेकर द्रौणी पर्यतका परिमाण	”	द्रव्योंकी परीक्षा	”
खारीका प्रमाण	वाराहीकंद संचर और सैधव इनकी परीक्षा”	”
भारका और तुलाका परिमाण....	९२६	सुवर्णमाक्षिक तथा रौप्यमाक्षिककी परीक्षा”	”
मुखबोधार्थ उक्तमानका संग्रह	”	शिलाजीतकी परीक्षा	”
परिभाषाके मतभेदकी ऐक्यता....	”	कपूरइलायची और चंदनकी परीक्षा	९३८
पतलीगीली और शुष्क औषध इनके	”	रक्तचंदनकी परीक्षा	”
योगका मान	देवदार और सरलकी परीक्षा	”
दूध आदिपतली वस्तुनापनेकी युक्ति	”	दारुहलदी और जायफलकी परीक्षा	”
कलिंग, मागध और गौड़देशके मासे-	”	दासकी परीक्षा	”
की संज्ञा	खांड और शहदकी परीक्षा	९३९
सुश्रुत और चरक तथा गौड़देशका मान”	”	स्वभावसे हितकारक द्रव्य	”
औषधतोलनेमें मागध परिभाषाके	”	शिम्बीधान्यमें उत्तम	”
वजनका उदाहरण	उत्तम फल	”
प्रथम औषधके नामानुसार योगकी	”	पत्रफल और कंद इनशाकोंमें उत्तम	”
संज्ञा कथन	मृग पक्षी और मछली इनमें उत्तम	९४०
अत्यंत और थोड़ी औषध देनेको निष्फलत्व”	”	हरिणोंके भेद	”
वया	जल दूध घृत तेल इक्षु विकार इनमें उत्तम	”
भक्षणरूप मात्राका अनियम	स्वभावसे अहितकारी द्रव्य	”
औषध सेवनका प्रमाण कलिंग परिभाषाकर	”	सयोगविरुद्ध	”
के कथन	औषध ग्रहणमें संकेत	९४१
कलिंग परिभाषाका वजन	अतः समाजर्जन और बहिः समाजर्जनमें	”
कृष्णात्रेयका वजन	ग्राह्य	९४२
औषधोंका युक्तायुक्त विचार	९३२	औषधभक्षणमें काल....	”
गौली औषध ग्रहणीय	औषधभक्षणमें पांच काल	”
साधारण औषधकी योजना	”	प्रथमकाल	”

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
द्वितीयकाल ९४३	मधुररसकी द्रव्य (मधुरवर्ग)....	९५९
तृतीय काल ११	अम्लवर्ग ११
चतुर्थ काल ९४४	लवण वर्ग ११
पंचम काल ११	कटुक वर्ग ९६०
औषधकी प्रतिनिधि ११	तिक्तवर्ग ११
अप्रधानकी प्रतिनिधिलेना प्रधानकी ११	कषाय वर्ग ११
नहींलेना ११	रसोंके संयोगसे भेद वर्णन ९६१
रस विशेषविज्ञानीयाध्यायः ।		पचद्धारारसोंके भेद वर्णन ११
आकाशादिमें शब्दादिककी योजना कहकर ९५१	एक रसके भेदका उदाहरण ९६२
आप्परसकी उत्कृष्टता कथन ९५२	दो रसके भेद ११
आप्परसकेछः भेद ११	तीन रसकेभेद ९६३
छः रस ११	चार रसके भेद.... ११
छः रसोंके त्रैसठ भेद ११	पांच रसके भेद.... ११
प्रत्येक रसका वर्णन ११	छः रसका भेद.... ११
मधुरादि रसोंको वातादि दोषनाशकत्व ११	भोजनोत्तर बलवान् रसके अनुयायी अन्य १६४
रसोंको स्वयोनिवर्द्धनत्व और परयोनि १६३	रसोंको कथन १६४
नाशकत्वकथन १६३	मधुरादिकोंके अन्य विशेषगुण तहांमधुर ११
रसोंको अमितोर्मापत्व ११	रसकेगुण ११
रौक्ष गुणसे वायुके कर्म ११	अम्लरसके विशेषगुण.... ११
उष्ण गुणसे पित्तके कर्म ९५४	लवण रसके विशेष गुण ११
माधुर्य गुणसे कफके कर्म ११	तीक्ष्णरसके गुण ११
रसोंके लक्षण ११	पीपल आदि तीक्ष्ण द्रव्योंको घृष्यत्व	९६५
मधुर रसके लक्षण ९५५	संयोगीगुण ११
अम्लरस ११	पृथिव्यादि भूतोंके गुण.... ११
लवणरस ११	लघुगुरु आदि पदार्थोंके गुण ११
कटुरस ११	सुश्रुतोक्त विज्ञाति गुणाः ११
तिक्तरस ११	गुरु गुण ९६६
कषायरस ११	लघु गुण ११
मधुररसके गुणागुण ९५६	स्निग्धगुण ११
अम्लरसके गुणागुण ११	रुक्षगुण ११
लवणरसके गुणागुण ९५७	तीक्ष्णगुण ११
कटुक रसके गुणागुण ११	इत्क्ष्ण गुण ११
तिक्तरसके गुणागुण ९५८	स्मिर और मर गुण ११
कषायरसके गुणागुण ११	पिच्छिल गुण ९६७
		विशद् गुण ११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
शीतगुण	योगवाहो द्रव्य ९७४
उष्णगुण	वीर्य
स्थूलगुण	उष्ण शीत वीर्योंके गुण....
सूक्ष्मगुण	अन्यत्र
द्रवगुण....	विपाक ९७५
शुष्कगुण	विपाकके गुण
आशुकारीद्रव्य....	प्रभाव
मंदगुण	१६८
मृदु और कर्कशगुण	औषधोंके प्रभावमें अचिंत्यत्व कथन ९७६
दीपन औषधकेगुण	औषधको हेतुद्वारा परीक्षाका निषेध
पाचनादि औषध	रसवीर्य विपाकको अन्योन्यनाशकत्व
सशमन औषध		
अनुलोमन औषध	पंचकपायाः ।	
संसन औषध	स्वरस
भेदन औषध	दूसराप्रकार ९७७
रैचन औषध	तीसराप्रकार
घमन औषध	स्वरसकी मात्राका प्रमाण
संशोधन औषध	कल्कविधि
छेदन औषध	कल्कमें मधुघृत डालनेका क्रम ९७८
लेखन औषध	फायमें (काढे) की विधि
घ्राही औषध	फायमें जलका प्रमाण
स्तंभन औषधि	फायकी मात्रा
रसायन औषधि	फायमें तैलका परिमाण ९७९
मधुनशक्ति वर्द्धक औषध	फायमें मिश्री शहदडालनेका प्रमाण
धातुवर्द्धक औषधि	हिमविधि
वीर्यात्पादक तथावीर्यप्रवर्तक औषधि	मंय....
वानोकरण औषधका निषेध	तंडुलोदक
सूक्ष्म औषध	फांटविधि ९८०
व्यवायी औषध	यत्रागुकी विधि
विकार्या औषध	विलेपि लक्षण
मदकारीपदार्थ	पानादिकल्पना ९८१
प्राणहारक द्रव्य....	पानादिमें शहद गुडडालनेकी विधि
प्रमार्था औषध	गुषकी विधि
अभिष्यंदा पदार्थ	पेया लक्षण
पिशाही पदार्थ	पुटपाककी विधि ९८२
		पुटपाककी वृत्ति
		पाठांतर....

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
चानल धोनेकी क्रिया	९८३	जलमें द्रव्यका वजन	११
अवलेहकल्पना	"	अनुक्तप्रमाणमें युक्ति	"
चूर्णविधि	"	स्नेहपाकमें दूधडालनेका नियम	"
चूर्णमें गुडादि डालनेका नियम	९८४	वृन्दका प्रमाण	"
अनुपानकेवल औषधका देहमें फैलना	"	स्नेहमें पाचसे अधिक द्रव्योंमें परिमाणकी युक्ति	९९५
भावनाविधि	"	जलद्वारास्नेहपाकमें कल्कका परिमाण	"
उष्णोदकविधि	९८५	दूधदही रसजारणमें कल्कका परिमाण	"
वटक (गोली)	"	केवल कायद्वारा स्नेहसाधनमें परिमाण	"
वटक कल्पनामें मतभेद और सिता	"	कल्कद्रव्य पुष्प होवे तो उसका प्रमाण	"
आदि मिलानेका उपक्रम....	"	कल्कादिकोंका स्नेहमें डालनेका क्रम	"
चूर्णका पाकनिषेध	९८६	गंधद्रव्याणि	"
अथानुवाटिकाविधि	"	स्नेहपाकपरिज्ञान	"
रसचूर्ण	"	त्रिविधपाक	९९७
धन्वंतरीकाभाग	९८७	नस्यादि कर्मोंमें मूत्र मध्यओरस्त्रपाककी- आज्ञा एक दिनमें स्नेहसाधनका निषेध	"
रुद्रभाग	"	स्नेह सेवन विधि	"
धन्वंतरी और रुद्रभागसे अधिक	"	स्नेहपानिका क्रम	९९८
लेनेमें वैषको विश्वासघातकत्व कथन	"	स्नेहको साम्यीयत्व	"
स्नेहपाककी साधारण विधि	९८९	स्नेहपानमें युक्ति	"
तिलतेलमूर्च्छा	"	अविधि स्नेह सेवनके दोष	"
मूर्च्छाद्रव्य	"	स्नेह योग्य यनूप्य	९९९
कुटतैल मूर्च्छा	९९०	स्नेहक्रिया अयोग्य	"
एरंडतैल मूर्च्छा	"	(घृतयोग्य)	"
घृतमूर्च्छा	"	(तैलयोग्य)	"
वातहरतेलोंकी विशेषमूर्च्छाविधि	९९१	वसा और मज्जाके अधिशारी....	१०००
स्नेहपाकमें कालका नियम	"	वसाका प्रयोग	"
चतुर्विधस्नेह	९९२	शुतुपरत्व घृततैलादिसेवन	"
द्विविधस्नेह	"	शीतकालमेंभी तैलका प्रयोग	"
स्नेहके भेद	"	स्नेहपानकी मात्रा	"
स्नेहपाकविधि	"	प्रकारांतर	१००१
कल्कद्वारा साधित घृत तैलकी मात्राका प्रमाण	९९३	अल्पादिक मात्राओंके गुण	"
स्नेह साधनमें काय और जलादिका प्रमाण	"	दोषोंमें अनुपानविशेष	"
अन्यथा	"	घृतयोग्य	१००२
तुला प्रमाण द्रव्यमें जलका और तुलाका प्रमाण	९९४	तैलयोग्य	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक
चर्बीयोग्य "	स्वेदकर्मवर्जित मनुष्य	"
मज्जा (हड्डीका तेल) "	अल्प पर्मानि काठने योग्यस्थल ...	१०१०
स्नेहपानकाल १००३	अत्यंत पसीने निकालनेके दोष	"
स्नेहकीस्थलविशेषमे योजना "	उक्तचार प्रकारके स्वेदोमे तापसंज्ञक	
स्नेहके पृथक् अनुपान "	स्वेदके लक्षण	"
भातके सग स्नेह देने योग्य "	उष्णसंज्ञक स्वेदके लक्षण	१०११
यवागूको सद्यः स्नेहकारित्व "	उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण	१०१२
धारोष्ण दुग्धसे तत्कालधातु उत्पन्न होना १००४	दूसराप्रकार तथा महाशाल्वण प्रयोग "	
मिथ्योपचारसे जिसको स्नेह न पचे		द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण	१०१३
उसका यत्न "	स्वेदकी समाप्ति	१०१४
दूसरायत्न "	पसीने निकालनेके अनंतर उपचार	"
स्नेह न करके पित्तकोपहो वृषालगे उसका उपाय "	वमन ।	
वर्जित स्नेही मनुष्य १००५	वमनमे ऋतुप्रधान	१०१५
उत्तम स्नेहके लक्षण "	वमन योग्य मनुष्य	"
अधिक स्नेह पानके उपद्रव १००६	वमनके अयोग्य मनुष्य	"
रूक्षको स्निग्ध करना और स्निग्धको रूक्षकरनेका प्रकार "	वमनअयोग्य	"
स्नेहसेवनका फल "	रद्द करनेमें विहित पदार्थ . . .	"
स्नेहसेवनके नियम "	वमनमे हितकारी पदार्थ	१०१७
मृदु कूर कोष्ठवालेको स्नेह सेवनका समय १००७	वमनमे कोठेका प्रमाण	"
स्नेहोपापत्तीका यत्न "	वमनमे बाढा पीनेका प्रमाण	"
स्वेदविधि ।		वमन विषयमे कल्कादिरोका प्रमाण	"
स्वेदको चतुर्विधत्व "	वमनके उत्तम मध्यम कनिष्ठवेग	"
दोषोको तारतम्यतासे स्वेदविधि	"	घन विरेचन आदिमें प्रस्थका प्रमाण	१०१८
रोगविशेषमें स्वेदविधि १००८	कफ पित्त और वातशरक औषधी	"
पसीन काठने योग्य मनुष्य "	वातादि दोषोके निकालनेको पृथक् २ औषधी	"
भगदरादि रोगियोंको प्रथम स्वेदनीयत्व	"	वमन करते समय बाह्योपचार	१०१९
पश्चात् स्वेदनीय मनुष्य "	दुष्ट वमन होनेके उपद्रव	"
स्वेद कर्म योग्य देशकाल १००९	अतिवमन होनेके उपद्रव	"
पसीने काठनेपर जिसमार्ग दोष दूर होतेहैं	"	अति वमनका यत्न	"
स्वेदनमे विधि "	उल्टी करते २ जीभ भीतर चलीगई हो उसका यत्न	१०२०
		उल्टी करते २ जीभ बाहर निकल आई हो उसका यत्न	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
वमनसे नेत्रोंमें विकार होनेका यत्न	११	दस्त होने पर रहनेके नियम	११
वमन करते २ ओड़ी स्तम्भित होगई हो		दस्तोंमें निकलनेवाली वस्तु	१०३१
उसका उपचार	११	दुष्ट विरेचनके अवगुण	११
वमन करते २ रङ्गमें रुधिर आनेलगे उसका		जिससे उत्तम दस्तनहुरहों उसका यत्न	११
उपचार	११	अत्यंत दस्तहोनेके उपद्रव	११
अत्यंत वमनके होनेसे प्यासलगे		अत्यंत दस्तोंका उपाय	१०३२
उसकायत्न	११	दस्त बंद होनेका उपाय	११
उत्तम वमन होनेके लक्षण	१०२१	तथा	११
उत्तम वमन होनेके पश्चात् पथ्य	११	उत्तम जुलाब होनेके लक्षण	१०३३
उत्तम वमनका फल	११	उत्तम जुलाब होनेका फल	११
वमनकर्ममें निषिद्ध पदार्थ	१०२२	जुलाबमें अपथ्य	११
		जुलाबमें पथ्य	११
अथ रेचनाधिकार ।		नाराचरसः	१०३४
स्निग्ध स्विन्नको रचन देना	११	द्वितीय नाराचरसः	११
दस्तोंका दूसरा प्रकार	१०२४	इच्छामेदी रसः	११
पिना वमनके दस्तकराने योग्य	११	द्वितीय इच्छामेदीरस	१०३५
दस्तकराने योग्य रोग	१०२५		
दोष दूर करनेमें विरेचनको उत्कृष्टता	११	वस्तिप्रकरणम् ।	
दस्तकराने योग्य मनुष्य	११	वस्तीके दोषेद	११
दस्त देना निषेध	१०२६	प्रकारांतर	११
मृदु, मध्य, और कुरकोष्ठ	११	प्रथम अनुवासन वस्ती	१०३६
मृदुमध्यमादिकोष्ठोंमें मृदु मध्यमादिक		अनुवासनवस्तीयोग्य प्राणी	११
औषध	१०२७	अनुवासनअयोग्यपुरुष	११
दस्तोंकाईनांतमादि मात्रा	११	वस्तीका सुखस्थापन विषयमें सुपर्णादि-	
दस्तोंमें काटे आदिका मात्राका प्रमाण	११	कौली नली	११
दस्तोंमें कल्पादिशोंका प्रमाण	१०२८	रोगीकी अवस्थानुसारनलीकाप्रमाण	१०३७
यात पित्तरूपमें औषधी	११	नलीके छिद्रका प्रमाण	११
अन्य औषध करके दस्तोंका विषय	११	वस्ती किसके आंडोंकी बनावे	११
क्रतु भेद करके दस्तकी विधि	११	प्रणवस्तीका प्रमाण	१०३८
शरदकालमें विरेचन	१०२९	वस्तीके गुण	११
देवतक्रतुमें विरेचन	११	वस्तीका सेवन काल	११
शिक्तिक्रतु और वसंत क्रतुमें विरेचन	११	वस्तीमें हीन और अतिमात्राका निषेध	११
धीम्य क्रतुमें विरेचन	११	उत्तमादि मात्रा वचन	१०३९
सुमये दस्त होनेके लिये अभयादिनोदक	११	स्नेहमें संपवआदिना मात्रा	११
दस्तोंको सदाय करनेवाले पदार्थ	१०३०	अनुवासन वस्तीदेना समय	११

विषय.	पृष्ठांक.
बस्ती देनेका प्रकार १०४०
पिचकारी लगानेमें काल १०४०
मात्राका प्रमाण १०४१
वाडूमात्राका प्रमाण १०४१
पिचकारी लगानेके पश्चात् क्रिया	१०४१
उत्तम बस्ती होनेके गुण १०४२
स्नेहका विकार दूर होनेमें उपाय १०४२
वातादि दोषोंमें पिचकारी मारनेका क्रम १०४२
बस्तीके गुण १०४३
अनुवासनबस्ती और निरूहणबस्ती ये किसको देनी इसका प्रकार १०४३
तत्काल स्नेह बाहर निकले उसका उपाय १०४३
स्नेहबाहर न निकले उसके उपद्रव स्नेहबस्ती जिसको उपद्रव करेनहीं उसका विधान १०४४
अहोरात्रिमेंभी स्नेह बाहर न आवे तो उसका उपाय १०४४
अनुवासन तेल तहांगुडूच्यादि तेल १०४५
शठथादितैलम् १०४५
वचादितैलम् १०४५
चित्रकादितैलम् १०४६
भूतिकादितैलम् १०४६
जीवन्त्यादितैलम् १०४७
मधुकादितैलम् १०४८
मृणालादितैलम् १०४८
त्रिफलाघतैलम् १०४९
पाठाघं तैलम् १०४९
विडंगाघं तैलम् १०५०
अनुवासनबस्तिमें विपरीत होनेसे रोग होतेहैं उनको कहतेहैं १०५०
बस्तिबर्धमें पथ्य १०५०

विषय.	पृष्ठांक.
निरूहबस्तीकी विधि ।	
निरूहबस्तीको अनेकविधत्ववर्णन १०५१
निरूहबस्तीके दूसरे नाम १०५१
निरूहबस्तीमें काटेआदिका प्रमाण १०५१
निरूहबस्ती अयोग्य १०५१
निरूहबस्ती योग्य पुरुष १०५१
निरूह बस्ती देनेका प्रकार १०५२
निरूहको बाहर लानेवाली औषध १०५२
निरूहबस्ती उत्तम होनेके लक्षण १०५२
जिसको उत्तम नहुई हो उसके लक्षण १०५२
निरूहबस्ती और स्नेहबस्ती उत्तम देनेका फल १०५३
निरूहबस्तिदेनेमें समयका प्रमाण १०५३
सुकुमारादि मनुष्योंके निरूहबस्तिकी योजना १०५३
आदिमध्य और अंत इनमें बस्तीकी योजना १०५४
उत्कृशण बस्ती १०५४
दोषहरबस्ती १०५४
शोधनबस्ती १०५४
दोषशमनबस्ती १०५५
लेखनबस्ती १०५५
बृंहणबस्ती १०५५
पिच्छलबस्ती १०५५
निरूहणमात्राकी विधि १०५६
मध्यतैलबस्ती १०५६
दीपनबस्ती १०५६
युक्तरथ बस्ती १०५७
सिद्धबस्ती १०५७
बस्तीमेंसेन्य पदार्थ १०५७

उत्तरबस्तीकी विधि ।

उत्तर बस्तीको स्फुटपति और उसका प्रमाण

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वयोनुमानकरके मात्राका प्रमाण	१०५८	पक्षयातादि रोगोंपर नस्य	१०६६
उत्तरवस्तीकी योजना कैसे कराये	"	प्रतिमर्शनस्यकी दो बिंदुरूपमात्रा	"
स्त्रियोंकेवस्ती देनेका प्रमाण	"	बिंदुसंज्ञक मात्रा	"
बालकोंके वस्तिदेनेके विषयमें प्रमाण	१०५९	प्रतिमर्श नस्यका समय....	१०६७
स्त्री और बालकोंके वस्तिदेनेमें स्नेहकी मात्रा	"	प्रतिमर्श द्वारावृत्त हुएके लक्षण	"
शोधन द्रव्यकरके वस्तीका विधान	"	प्रतिमर्शके योग्य	"
उत्तम उत्तरवस्ति होनेके लक्षण	१०६०	कुसमयपरसपेदेवाल होनेपरनस्य	१०६८
गुदामें फलवर्तीकी योजना	"	नस्यकी विधि	"
नस्यविधि ।		नस्यके ग्रहणमें आज्ञा....	"
नस्यके नाम और भेद	"	नस्यसंधारणका प्रकार....	१०६९
तथा भेद	"	नस्यकर्ममें वाञ्छितवस्तु	"
नस्यका काल	१०६१	नस्यमें शुद्धादिभेद	"
नस्यका निषेध	"	उत्तमशुद्धीके लक्षण	१०७०
नस्यकर्ममें योग्य अधोग्य मनुष्य	"	हीनशुद्धीके लक्षण	"
रेचक नस्यका विधान	१०६२	अतिशुद्धीके लक्षण	"
रेचन नस्य प्रकार	"	हीनशुद्ध्यादिमें चिकित्सा	"
नस्य कर्ममें औषधीका प्रमाण....	"	अतिस्निग्धके लक्षण	"
रेचन नस्यके दूसरे दो भेद	"	नस्यमें पथ्य	१०७१
अवपीडन और प्रथमनके लक्षण	"	पंचामोंकी संख्या	"
रेचन और स्नेहन नस्यके योग्य	१०६३	धूमपान ।	
अवपीडन नस्य योग्य	"	धूमपानकेछः भेद	"
प्रथमन नस्यके योग्य	"	शामनादि धूमोंके पर्याय शब्द	"
रेचन संज्ञक नस्य	"	धूममेवनेके अपोग्य	"
रेचन नस्यकी दूसरी विधि	१०६४	धूमपानके उपद्रवोंका यत्न	१०७२
रेचन नस्यका तीसरा प्रकार	"	धूमपानका काल और उसके गुण	"
प्रथमन संज्ञक नस्य	"	धूमोपयोग होनेपर गुण	१०७३
घृहण नस्यकी वक्षणा	"	धूममें नलीका विधान....	"
मर्श संज्ञक नस्य तथा रितरेचन संज्ञक नस्य इनके आपिषय होनेसे ओ	"	धूमपानार्थ ईषिणा विधान	१०७४
रोग होतेदे उनका उपाय	१०६५	गौनकी औषधका पला गौनमें धूममें देवे	"
ओ घृहण नस्यमें योग्यदे	"	बालप्रदादि दूर करनेकी धूना	१०७५
		धूम पीनेका पथ्य	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
धूमपानके गुण	१०७६	सेकके लक्षण	१०८२
गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि	"	सेकके भेद	"
स्नेहादि गंडूषोंकी दोष भेदकरके योजना	"	सेककी मात्रा	"
गंडूष और कवल इनमें भेद	"	सेक कर्मका काल	"
गंडूष और कवलकी औषधका प्रमाण १०७७	"	वाताभिष्यंदादिरोगपर सेक	"
किस अवस्थामें गंडूष करे और कैसे करे	"	तथा दूसराकम	"
प्रमाणान्तर	"	पित्त रक्त और अभिघातपर सेक १०८३	"
वातरोगमें चिकनाईके छुरले	"	रक्षाभिष्यंद	"
पित्तरोगमें श्मन संज्ञक गंडूष	"	तथा दूसरा	"
घणादि रोगोंपर मधु गंडूष १०७८	"	नेत्रशूलमें सेक	"
गंडूष धारणके गुण	"		
कवल धारणके गुण	"		

आश्वोतनके लक्षण ।

प्रतिसारणम् (भंजन) ।

प्रतिसारणकी संज्ञा और गुण	"
गंडूष कवल और प्रतिसारणकी विधि १०७९	"
विषादिमें गंडूष	"
दंतचालनमें गंडूष	"
मुखशोधपर गंडूष	"
कफपर गंडूष	"
कफ तथा रक्तपित्तपर गंडूष	"
मुखपाकपर गंडूष १०८०	"
गंडूषकी औषधोंसेही प्रतिसारण करण "	"
कवलका प्रकार	"
प्रतिसारणका भेद ..	"
प्रतिसारणनूर्ण	"
गंडूषादियोंके हीनयोग होनेके लक्षण १०८१	"
शुद्ध गंडूषके लक्षण	"

आश्वोतनकी विधि १०८४
लेखनादिक आश्वोतनमें कितनी बूँदडाले "
वातादिकमें आश्वोतन.... "
आश्वोतनकी मात्राकाक्रम १०८५
वाताभिष्यंदपर आश्वोतन "
वायुजन्य वा रक्तपित्तजन्य अभिष्यंदपर आश्वोतन "
सर्व अभिष्यंदोंपर आश्वोतन "
रक्तपित्तजन्यअभिष्यंदोंपरआश्वोतन १०८६
पिडिकाके लक्षण
वातपित्तकफपरपिंडी
नैत्राभिष्यंदमें शिरोविरेचन
उपायोंतर
वाताभिष्यंदका यत्न १०८७
वात तथा पित्ताभिष्यंदका यत्न.... "
पित्ताभिष्यंदपर दूसरी पिंडी ,.... "
श्लेष्माभिष्यंदपर पिंडी.... "
कफपित्ताभिष्यंदपर पिंडी "
रक्ताभिष्यंदपर पिंडी "
श्मन सुजली आदिपर पिंडी १०८८
बिडालकके लक्षण "

नेत्ररोगचिकित्साविधि: ।

नेत्र अच्छेहोनेके उपचार	"
------------------------------	---

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सर्व नेत्ररोगोंमें लेप ११	विरेचन अंजनमें चूर्णका प्रमाण....	११
तथा दूसरा लेप ११	सलाई बनानेकी युक्ति	१०९७
तथा तीसरा लेप १०८९	लेखनादिमें शलाईका प्रमाण	११
चतुर्थ लेप ११	अंजनमें समयका निश्चय	११
अर्भरोगपर लेप ११	कन्दोदयवर्ती	११
अंजननामिकापर प्रतिसारण ११	फूलाछर इत्यादिकरोगोंमें लेखनीवर्ती १०९८	१०९८
नेत्ररोगमें तर्पण ११	दूसरी विधि	११
हीनाधिक तर्पणमें उपचार १०९०	लेखनीदंतवर्ती	११
तर्पणका निषेध ११	तन्द्रानाशक लेखनवर्ती	१०९९
तर्पणकाविधान ११	रोपणी कुशामिता वर्ती....	११
तर्पणकी मात्रा १०९१	नकांध्यनाशिनी वर्ती	११
तर्पणसे स्नेहके अधिक योगद्वारा कफाधिक्य	नेत्रसावनाशक वर्ती	११
होनेका उपाय ११	रसक्रिया	११००
तर्पणकी मर्यादा ११	फूला दूर होनेको रसक्रिया	११
तर्पण करके दृष्टके लक्षण.... १०९२	अतिनिद्रा दूरहोनेको लेखनी रसक्रिया	११
तर्पण अत्यंत होनेके लक्षण ११	तन्द्रानाशिनी रसक्रिया....	११
हीनतर्पणके लक्षण ११	संनिपातमें लेखनी रसक्रिया	११०१
तर्पणसे हीनाधिक्य स्निग्धका यत्न	तिमिरादिरोगोंमें रोपणी रसक्रिया	११
		पुनर्नवाके अनुपात	११
		नेत्रसावमें रोपणीरसक्रिया	११
		दूसराप्रकार	११०२
		नेत्रप्रसादन	११
		शिरोत्पातरोगमें अंजन	११
		अंधापन दूर होनेको रसक्रिया....	११
		अंजन योग	११
		रतौंधादूरहोनेको लेखन कर्णांजन	११०३
		कंठकाचादिपर लेखन चूर्णांजन	११
		सर्व नेत्रके रोगमें अंजन	११
		सर्व नेत्ररोगपरसौवीर अंजन	११०४
		शीक्षेकीसलाई बनानेका क्रम	११
		प्रत्यंजन करेका विधान	११
		सदोषनेत्रमें निषेध	११०५
		प्रत्यंजन चूर्ण	११
		सर्वविषनाशक अंजन	११

पुटपाक ।

पुटपाककी विधि ११
पुटपाक संबंधी रस नेत्रमें डालनेकी विधि १०९३
नेहनादिनेत्रसे पुटपाककी योजना
स्नेहपुटपाक १०९४
लेखनपुटपाक १०९४
रोपणपुटपाक ११
दोष पकहोनेसे अंजनका साधारण विधान १०९५
अंजनके भेद ११
अंजनके पुटकादि तीन भेद ११
अंजनके अयोग्य १०९६
अंजनमें बत्तीका प्रमाण ११
अंजनमें रसका प्रमाण ११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
नेत्ररोगनाशनसुगमोपाय "	सर्वकाल ग्रहण १११६
तथा उपायांतर ११०६	छः रसयुक्त पृष्ठीके अनुसार वृक्ष वर्णन	"
अथ संधानविधिः ।		अप्रकट रस पृष्ठीके गुणसं जाना जायहै	"
संधानके भेदकथन "	भूमिद्रव्यका कारण कहतेहै "
आसयारिष्टके लक्षण "	नवीन वा पुरानी कैसी द्रव्य लेनी	१११७
आरिष्ट ११०७	विडंगदि प्राचीन लेनेकी आज्ञा	"
सामान्यसे आरिष्टविधिः "	औषध रखनेका उपाय "
द्विविधसाधु "	द्रव्य संग्रहणीयाध्यायः ।	
मुरादिलक्षण "	अध्यायका विहार्थ १११८
मुराप्रसन्नदिग्मर्षाके भेद ११०८	विदारी गंधादि गण १११९
वारुणी "	आरग्वधादिगण ११२०
शुक्त "	वरुणादि गण "
गुहशुक्त ११०९	धीरतर्ब्यादि गण ११२१
भूर्दीकाशुक्त "	सालसारादि गण "
तुषांडु और सोर्वार "	रोभादि गण "
ग्रन्थांतरसे "	अर्कादि गण "
आरनाल १११०	सुरसादि गण ११२३
कांजिक "	मुष्ककादि गण "
सांडाकी "	पिप्पल्यादि गण ११२४
धान्याम्ल "	रलादि गण "
कांजिक साधन "	यचाहरिद्रादि गण ११२५
भूमिप्रविभागाविज्ञानीयाध्यायः		श्यामादि गण "
सामान्य भूमिप्रविभागा वर्णन ११११	वृहत्यादि गण ११२६
स्वगुणभूयिष्ठ पृष्ठीके गुण १११२	पटोलादि गण "
गुरुगुण भूयिष्ठ पृष्ठी १११३	काकोल्यादि गण "
अमिगुण भूयिष्ठ पृष्ठी "	उपकादि गण "
पवन गुणभूयिष्ठ पृष्ठी "	सारियादि गण ११२७
आकाशगुण भूयिष्ठ पृष्ठी "	अजनादि गण "
औषध ग्रहणमें मतभेद १११४	परुषनादि गण "
विरचनादि द्रव्यकिस पृष्ठीकी लेनी	"	मिषगु और अंबुष्टादि गण ११२८
नवीन और मार्चान औषध	न्यघोधादि गण "
लेनेकी आज्ञा १११५	गुहृष्यादि गण ११०९
औषध जाननेका उपाय "	उत्पन्नादि गण "
		मुस्तादि गण "

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
त्रिफलादि गण ११३०	द्रव्यविशेषविज्ञानीयाध्यायः।	
त्रिकटु गण ११	पृथ्व्यादिषु द्रव्योंकी उत्पत्ति ११
आमलक्यादि गण ११	उत्कर्ष उपाधि भेदको दिसाना ११
त्र्यम्बादि गण ११	बल द्रव्यकी उत्कर्ष उपाधि ११४१
लाक्षादि गण ११३१	तेजस द्रव्यके गुण और स्वभाव ११
लघुपंचमूल गण ११	वायवीय द्रव्यके गुण स्वभाव ११४२
वृद्धपंचमूल गण ११	आकाशीय द्रव्यके गुणस्वभाव ११
दशमूल ११३२	सब औषधोंको पांचभेदिकत्व ११
बर्हीपंचक तथा कंटक पंचक ११	औषधोंका काल कर्म वीर्यादि ११४३
टणपंचक ११	औषधज्ञानमें अनुमानकी योजना ११
पांचोंके गुण एक श्लोकमें ११	संशमनादि औषधोंको आकाशादि गुण-	
संक्षेपत्वदिखाना ११३३	भूमिष्ठ ११४४
इनगणोंका क्याकरे इस वास्ते कहतेहैं ११	भूआदि गुण भूमिष्ठसे वातादि दोषों-	
औषध रक्षणकी विधि ११	का शमन ११४५
इस द्रव्य गणकी कैसे योजना करे सो ११	आकाशादि गुण भूमिष्ठसे वातादि	
कहतेहैं ११	दोषोंकी वृद्धी ११
संशोधन संशमननीयाध्यायः।		ज्ञातोष्णादि गुणोंको अधि संवधादि	
धमन द्रव्यगण ११३४	कथन ११
विरेचन द्रव्य ११३५	लघुगुरु विषाकादि ११
धमन विरेचन कर्ता द्रव्यगण ११	द्रव्योंके वीस गुण इस प्राणीकी	
शिरोविरेचन ११३६	देहमें कथन ११४६
वातसंशमनोवर्गः ११३७	हिताहितीयाध्याय और भाषा	
पित्तसंशमनो वर्ग ११	यज्ञ पुरुषीयाध्यायः।	
कफसंशमन वर्ग ११३८	प्रथम औरोंका मत ११४७
संशमन और संशोधन द्रव्योंकी मात्रा ११	अपना मत कथन ११
व्याधिमें बल्लधिक्य औषधके अवगुण ११	प्रथम एकांत हित ११४८
संशोधनके दोष ११३९	एकांत अहित ११४९
औषधकी हीनमात्रा देनेमें दोष ११	एकांत हिताहित ११५०
सिद्धि हेतु उपाधियोंकोदिखाना ११	रक्त शाली आदि धान्यवर्ग ११५१
दुर्बलको तीक्ष्ण धमन विरेचन देना निषेध ११	मांसवर्ग ११५२
अवस्था विशेष कर्क व्याधि दुर्बलको भी ११	फलके धान्य और श्राकवर्ग ११५३
शोधन करे ११	घृतनिम्बकादि हितकारी ११५४
मध्यमली तथा मध्य अधिबालेकोकिंतनी ११	संयोग विरुद्ध ११५६
मात्रादे यह कहतेहैं ११	फचिद्विरुद्धकार्मी प्रयोग दिखानेहैं ११५७
शोधनको व्याधिनाशकरव ११४०		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
हिताहितत्वका खंडन ११५८	कारिणी चिकित्सा ११
पूर्वोक्त अर्थको स्पष्ट करके दिखाना	११५९	देवी मानवी और राक्षसी चिकित्सा	११
उक्त विधानसे अन्य द्रव्योंमें हिताहितत्व	११	तथा ११
अन्य संयोग विरुद्धोंको कथन	११	चिकित्सामें कौन २ वस्तु जानना यह	११
कर्मविरुद्ध ११६०	प्रश्न और इसका प्रत्युत्तर	११७०
मानविरुद्ध ११६१	चिकित्साके अंग ११
शोदोरस रसवीर्य और विपाकसे	११६२	चिकित्साके पादचतुष्टय ११
विरुद्ध ११६२	पाठांतर ११७१
अतिस्निग्धादिपदार्थोंका सेवन-	११६३	वैद्यविना पादत्रयको निष्फलत्व	११
निषेध ११६३	पादत्रय विनामी वैद्यको मुख्यत्व	११
पूर्वोक्तको स्पष्ट करतेहैं ११	पादचतुष्टयोंमें वैद्यको प्राधान्यता	११
विरुद्ध पदार्थ भक्षणके अवगुण	११	प्रथम वैद्यके लक्षण.... ११७२
विकार कर्त्ता पदार्थ ११६४	वैद्य शब्दकी व्युत्पत्ति ११
विरुद्ध भोजन अनित रोगोंकी चिकित्सा	११	वैद्यके नाम ११७३
विरुद्ध भोजन करनेपरभी किसीको रोग	११	वैद्यके लक्षण ११
नहींहो यह कहतेहैं ११	वैद्यके गुण चतुष्टय.... ११
पूर्वकी पवनके गुण ११६५	त्रिविधवैद्य ११७४
दक्षिणकी पवनके गुण ११६६	दशवैद्यके लक्षण ११
पश्चिमकी पवनके गुण ११	सिद्धसाधित वैद्यके लक्षण ११
उत्तरकी पवनके गुण ११	सद्वैद्यके लक्षण ११७५
* इति हिताहितायाध्याय *			
मिश्रखंडकी समाप्ति ।			
<hr/>			
चिकित्साखंडप्रारम्भः ।			
चिकित्सा विषयमें प्रश्नोत्तर ११६७	प्राणोंके दशम्यान ११
चिकित्सा ११	द्विविध वैद्यवर्णनम्.... ११७६
सुश्रुतका प्रमाण ११	प्राणाभिसर वैद्यके लक्षण ११
प्रधान्तरका प्रमाण.... ११	लक्षणान्तर ११
क्रियाके लक्षण ११६८	तथा ११७७
चिकित्सा और उसका प्रयोजन	११	तथा ११
चिकित्साके नाम ११	तथा ११
ध्यानान्तरसे चिकित्साके नाम ११६९	तथा ११७८
चिकित्साके भेदमें प्रश्नोत्तर ११	माणनाशक वैद्य अर्थात् रोगाभिसर	११८०
निदान रोग विपरीत और तर्क-	११	वैद्यके लक्षण ११८०
		मर्ख वैद्यके लक्षण.... ११८१
		वैद्यके पालनीय नियम ११८२
		तथा ११
		तथा ११८३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
तथा ११८४	वैद्यपूजनीय "
तथा "	आयुर्वेदको धर्मार्थपरता ११९४
प्रसंगवस कल्पियुगिया वैद्योंका		वैद्यको दयावान् होना "
सिद्धांत ११८५	वैद्यको लोभ त्यागकी, आज्ञा "
बहुश्रुत वैद्यकी प्रशंसा ११८७	वृत्त्यर्थ चिकित्सा करनेका	
निदान, औषधी और साध्यासाध्यजाता		निषेध "
वैद्यकी कर्मकी सिद्धि	"	एकभी रोगी अच्छेकरनेका	
शास्त्र और क्रियाज्ञाता वैद्यकी प्रशंसा	"	फल "
चतुर्विध ज्ञानवान् वैद्यको राजात्व	"	ज्ञानादि विशेषधन ११९५
पद्मगुणयुक्त वैद्यकी प्रशंसा	११८८	शास्त्र और बुद्धिद्वारा चिकित्सा	
वैद्यशब्दमार्गीका कारण "	करनेकी आज्ञा "
गुरुमुख पठित वैद्यको वैद्यत्व	"	चिकित्सा पादत्रयका अधिपति	
पूज्यवैद्यके लक्षण "	होनेके कारण वैद्यको कुशल हो	
जीवदान श्रेष्ठत्व कथन ११८९	नेकी आवश्यकता "
परोपकारत्व कथन "	वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति "
वैद्यको दानित्व कथन "	देवताओं करके वैद्यपूजनीयत्व	
तथा "	कथन ११९६
चिकित्साकरनेका पुण्य "	चिकित्सा सिद्धी योग्य वैद्य "
तथा ११९०	शास्त्र पठित वैद्यको चिकित्साका	
ग्रंथान्तरका प्रमाण "	अधिकार "
प्रमाणांतर "	अन्न, जल और चिकित्सादानका फल	"
सर्वत्र वैद्य वृत्तीका कथन "	राजाको वैद्यादि चतुष्टयोंका नित्य	
तथा ११९१	दर्शन ११९७
रोगके अंतमें वैद्यपूजन "	ज्योतीषी वैद्य और ब्राह्मणसे "
रोगके अंतमें वैद्यपूजनमें कथन	"	द्वेष करनेका फल "
चिकित्साका फल "	विनाशास्त्र मायश्चितादि कथनमें	
तथा "	ब्रह्महत्याके पापकी प्राप्ति	"
वैद्यकी शिक्षा ११९२	गुणयुक्त पादचतुष्टयोंकी प्रशंसा	११९८
तथा "	शास्त्र और बुद्धिद्वारा कर्म करने	
मार्गीको वैद्यशब्दकी प्राप्ति "	की आज्ञा "
वैद्यमात्रको द्विजत्व "	उत्तम वैद्यके लक्षण "
वैद्यके प्रति रोगीका वर्त्ताव ११९३	निदानरहित वैद्यको कर्मकी
कह करनदेनेमें अधोमैल "	प्रसिद्धि ११९९
वैद्यके धर्म "	विनापठित वैद्यकी निंदा "
रोगीकी पुत्रके समान रक्षाकरना	"	मूर्ख वैद्यका उपहास "
रोगीको पिताके समान	"	वैद्याभिमानकी मूर्ख वैद्यकी निंदा	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
निदान विना जाने चिकित्सा कर नेमें वैद्यको दंडनीयत्व कथन	१२००	औषधके चारगुण	१
केवल शास्त्रज्ञाता और औषधज्ञान रहित वैद्यकी निंदा	"	पसंगवश औषधके त्रिविधभेद चरकसे १२०८	
शास्त्रपठित और क्रिया रहित वैद्यको भीरुत्व कथन	"	देव व्यापाश्रय	१
विनापठित वैद्यको राजासे दंडनी- यत्व कथन	"	युक्ति व्यापाश्रय	१
कर्त्तव्यमें मूर्खवैद्यकी निंदा	१२०१	सत्त्वावलय	१
मूर्ख वैद्यके दोष	"	शरीराश्रित त्रिविध औषधी	१
तथा	"	अंत. परिमार्जन	१२०९
चिकित्सा अन्यथा करनेमें वैद्यको अधर्मित्व	"	बहिः परिमार्जन	१
वैद्यको स्वयं तर्क करनेको आज्ञा निषिद्ध वैद्य	१२०२	शास्त्र प्रणिधान	१
वैद्यको पाक कारित्वमे प्रमाण....	"	त्रिविध औषधी	१
अन्य जातिकेकरे पाक. भोजनमें प्रायश्चित्त १		जंगमाग्निभेदसे त्रिविध औषध	१२१०
वैद्यशास्त्र और व्योतिषको प्राधान्यता १२०३		नंगमद्रव्य	१
चोरी कपट और बलपूर्वक विद्या ग्रहणमें दोष	"	भौमद्रव्य	१
मरणपर्यंत चिकित्सा करनेकी आज्ञा १		उद्भिज औषध	१
तथा	१२०४	औद्भिद् गण	१२११
रोगीके लक्षण	"	औद्भिद् औषधोकी गणना	१२११
चिकित्साके योग्य रोगी	"	औषध ज्ञानको दुर्ज्ञेयत्व	१
तथा	"	औषधोके रूप और योग ज्ञाता वैद्यकी प्रशंसा	१२१२
रोगीके गुणचतुष्टय	१२०५	तथा वैद्यको उत्तमत्व कथन	१
उत्तम रोगी	"	ज्ञाताज्ञात औषधोके गुणागुण	१
मूर्खरोगी	"	अज्ञात और दुष्प्रयोगित औषधकी निंदा १	
रोगकी उपेक्षा करनेमें आयुकी हानि १२०६		युक्त और अयुक्त औषधोके गुणागुण १	
विनापीडाके शास्त्र और वैद्यमें अविश्वास १		दुक्तिपूर्वक औषधको मुख्यत्व	१२१३
त्याज्यरोग	"	मूर्ख वैद्यके हाथकी औषध न लेना १	
भेषज्य लक्षण	१२०७	अज्ञानी वैद्यसे भाषण करनेमें पाप कथन १	
उत्तम औषध	"	शरणागत रोगीसे द्रव्यादि लेनेका निषेध १	
		मूर्ख वैद्यसे यत्न करना निषेध....	१२१४
		वैद्यको वैद्यके गुण सीखनेकी आवश्यकता १	
		उत्तम औषध और वैद्य	१
		उत्तम प्रयोग और उत्तम वैद्यकी प्रशंसा १	
		परिचारकके गुण	१२१५
		परिचारकके लक्षण....	१
		आयुविचार	१
		आयुका प्रमाण	१२१६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
द्रव्यम् १२१७	प्रत्यक्ष १२२७
व्याधैर्लक्षणं "	कर्णइन्द्री "
व्याधिसमुद्देशीयाध्यायः ।		नेत्रइन्द्री "
द्विविध व्याधि "	जिह्वा इन्द्री "
त्रिविध व्याधि १२१८	नासिका इन्द्री १२२८
सप्तविधव्याधि "	स्पर्शेन्द्री "
आदिबल प्रवृत्तव्याधि १२१९	अनुमान जान ७
जन्मबल प्रवृत्तव्याधि "	रोग ज्ञानानंतर चिकित्सा १२२९
दोषबल प्रवृत्तव्याधि "	सबरोगोंके नाम न जाननेमें अलजत्व १२३०
संघातबल प्रवृत्तव्याधि १२२०	अनुक्त दोषोंमें लक्षणद्वारा चिकित्सा "
कालबलप्रवृत्तव्याधि "	असाध्यरोगीकी चिकित्सा कर-
दैवबल प्रवृत्तव्याधि "	नेका निषेध "
स्वभावबल प्रवृत्त १२२१	उत्पन्न होतेही चिकित्सा
व्याधियोंमें वातादि दोषोंको मुख्यत्व १२२१	करनेका हेतु "
तीन दोषोंमें व्याधियोंके अनेकविधत्व १२२२	औषधकी आवश्यकता १२३१
दोषद्रव्यसंज्ञालक्षणकरके होती है "	औषधके फलमें तुच्छता करनेका
रसजन्य विकार १२२३	निषेध "
रुधिरजन्य विकार "	बिना औषधीके रोगी रहनेमें दृष्टांत "
मांसजन्य विकार "	बिना चिकित्साके अकाल मृत्युमें पवन
मेघदोषज विकार १२२४	दापककादृष्टांत १२३२
अस्थिदोषज विकार "	तथा "
मज्जादोषज विकार "	वैद्यपुरोहितको राजाका रक्षण कर-
शुक्रजन्य विकार "	नेकी आज्ञा "
मलायतन विकार "	रोगज्ञानमें अम्यासको मुख्यत्व
इन्द्रियायतन दोष १२२५	दुष्टापचारजादि त्रिविध व्याधि "
चिकित्सा विधिका उपदेश "	दोषकर्मजादि त्रिविध व्याधि १२३३
वैद्यकाकर्तव्य "	द्रव्य देशादि निश्चयानंतर चिकित्सा
रोग और औषधपरीक्षणानंतर चिकित्सा	करनेकी आज्ञा "
करनेकी आज्ञा १२२६	अन्यथा दृष्टगत व्याधिमें वैद्यको सावधान
त्रिविधरोग विज्ञानीयाध्यायः ।		होनेकी आज्ञा "
त्रिविध रोग जानका उपाय "	मूढवैद्यको पप्यमें स्थलन "
आप्तलक्षण "	गुरुव्याधिमें अल्पगुण और
प्रत्यक्षके लक्षण "	अल्प औषधकी निष्फलत्व १२३४
अनुमान "	अल्परोगमें उत्कट औषध
		देना निषेध "
		यथा योग्य औषधी देनेका

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
उत्तम फल	रोग संख्याहेमाद्री....
त्रिविध परीक्षा	रोगनाम	१२६५
चतुर्विध व्याधि	रोगीके नाम
रोगीके भेद	१२३७	रोगीके लक्षण
त्रिविध व्याधि	आम व्याधिके लक्षण	१२४६
त्रिविधव्याधीकी चिकित्सा	उसका यत्न
पुनः त्रिविध व्याधि	१२३६	दोषत्रयका यत्न
याप्यके लक्षण	औषधके नाम
याप्यव्याधिको चिरस्थायित्व	औषधके दो भेद
साध्यव्याधीकी उपेक्षा	अभेषज द्विविध	१२४७
करनेका फल	अभेषजके लक्षण
याप्यत्व	ज्वराधिकार प्रथम कहनेमें कारण	..
साध्य व्याधिके चिकित्सा	पूर्वजन्मोपाजित पाकको व्याधि-	..
न करनेमें मृत्यु	१२३७	रूपत्ववर्धन....	..
सप्तविध व्याधि	प्रहोके प्रतिकूल होनेमें औषधको	..
उपद्रवके लक्षण	निष्फलत्व
अरिष्टके लक्षण	१२३८		
मृत्युको अवार्पत्व	ज्योतिःशास्त्रका अभिप्राय ।	
मृत्यु संज्ञा और कालसंज्ञा	ज्वर होनेका योग	१२४८
शीतउष्ण क्रियाद्वारा क्रिया	तथा
कालका पालन	१२३९	ज्योतिष कल्पतरुसे ग्रहोंकी संज्ञा	..
युक्त कर्मकी कौशल्य वर्णन	ज्वरदायक योग	१२४९
संकर क्रियाका निषेध	पेशाचिक ज्वरका योग
अच्छे होनेपरभी फय्य करनेकी	खेटज्वरका योग
आज्ञा	१२४०	ज्वरद्वारा मृत्युका योग
कर्मदोषज और दोषज व्याधि	औषधजन्यज्वर योग	१२५०
रोगी और रोगीकी परीक्षा करनेकाक्रम	..	भीतिज्वरयोग
रोगपरीक्षा करनेका क्रम	शापज्वर योग
औषध और मणिमंत्रादिका	यमघंटयोग
आयुष्यवान् परचलते है यह कथन	१२४१	सुप्तयोग
आरोग्य लक्षण	असाध्य नक्षत्र	१२५१
मार्गमें रोगप्रस्तुत ब्राह्मण यैकि	साध्यनक्षत्र
त्यागमें वैद्यकी ब्रह्महत्या	कष्टसाध्य नक्षत्र
का पाप	१२४२	कष्टावली	१२५२
		प्रत्येक चरणका फल ।	
ज्वरभकरणम् ।		अभिनी	१२५४
रोग रणनामें प्रदोषर	१२४३	भरणी	१२५५

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक
कृतिका ११	उसका शमन ११
रोहिणी ११	ज्वरवालेके दैविक उपचार ११
मृगशीर ११	तथा १२६२
आर्द्रा ११	गणेशरादि देवोका पूजन ११
पुनर्वसु ११	उष्णज्वरका कर्म विपाक ११
पुष्य १२५६	और उसकी शांति ११
अश्लेषा ११	सर्वज्वरपर कुम्भदान ११
मघा ११	कुम्भदानका मंत्र १२६३
पूर्वा फाल्गुनी ११	अन्यप्रमाण ११
उत्तरा फाल्गुनी ११	ज्वरोत्पत्ति १२६४
हस्त ११	तथा १२६५
चित्रा ११	अनेक प्राणियोंमें ज्वरके १२६६
स्वाती ११	नामभेद १२६६
विशाखा ११	ज्वरके आठ भेद १२६७
अनुराधा ११	बीभत्सज्वरकाम्बरूप ११
ज्येष्ठा १२५७	त्रिशिराज्वर १२६८
मूल ११	कापिलज्वर ११
पूर्वाषाढ ११	भस्मविक्षेपक ज्वरका स्वरूप १२६९
उत्तराषाढ ११	त्रिपदाज्वरका स्वरूप ११
श्रवण ११	पिङ्गाय ज्वरका स्वरूप ११
धनिष्ठा ११	महोदर ज्वरका स्वरूप ११
शतभिषा ११	ज्वलद्विषहज्वरका स्वरूप ११
पूर्वाभाद्रपद ११	सुश्रुतकाममाण १२७०
उत्तराभाद्रपद ११	घ्राहण ज्वरके लक्षण ११
रेवती ११	क्षत्रीज्वरके लक्षण ११
नक्षत्रहवनकी विधि तदुपनिषा	१२५८	वैश्य ज्वरके लक्षण १२७१
मघ ११	शूद्रज्वरके लक्षण ११
पूल ११	ज्वरके नाम ११

ज्वररोगकाकर्मविपाक ।

कर्मजन्माधिके लक्षण १२५९
जन्मांतरके पापकोव्याधिकरूप १२६०
पद और उसकी शांतिका यत्न १२६०
सर्वज्वरे कर्मविपाक १२६०
शांति १२६०
गार्ग्यका प्रमाण १२६०
शीतज्वरका कर्मविपाक १२६१

निदानपंचकम् ।

मगलाचरण १२७२
ग्रथकी उत्तमता १२७३
रोग जाननेके पांच उपाय ११
निदानके पर्यायवाचक शब्द ११
पूर्वरूप १२७४
रूप १२७६
उपशय ११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
उपशय प्रदर्शक चक्र १२७७	स्नेहन और संशोधनअयोग्योंको लंघनकी	
अनुपशयके लक्षण १२७८	आज्ञा १
संप्राप्तिके लक्षण १२७९	ज्वरके पूर्वरूपमें लंघनकी आज्ञा....	१२८९
संप्राप्तिके भेद १२७९	लंघनकी अवधी १
संख्यारूप संप्राप्तिके लक्षण १	वमनकराने योग्य रोगी १
विकल्परूप संप्राप्तिके लक्षण १	अवस्थाविशेषमें वमन कराना १
प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण १	उक्त अवस्थाके विनावमन करना निषेध ^१ १
मलरूप संप्राप्तिके लक्षण १	ज्वरमें प्रथमकर्तव्य कर्म	१२९०
कालरूप संप्राप्तिके लक्षण १२८०	चरकका प्रमाण १
निदान पंचकका उपसंहार १	ज्वरमें पित्त विरुद्धाचरण निषेध.... १
संनिकृष्ट निदान १		
रोगका रोगनिदानकथन १२८१	जल ।	
रोगोंको हेत्वर्ष कारीपना १	जलके गुण १
रोग रोगका हेत्वर्थकारी होना और न १	उष्णजलके गुण १२९१
होना १	श्लेष्मविशेषमें जलकायके नियम....	१२९२
इस निदानग्रंथ पठनेको आज्ञा	१२८२	रात्रिमें सेवित उष्ण जलके गुण १
		उष्णोदकका प्रयोग १
ज्वरनिदानम् ।		उष्ण जल पीनापीना १
ज्वरकी प्राधान्यतामें चरकका प्रमाण १	शृतशीत जलके गुण	१२९३
ज्वरकी उत्पत्ति १	उष्णजलकी विधि.... १
ज्वरकी संप्राप्ति १	अधिकजलपीनेके दोष १
ज्वरके लक्षण १०८४	शर्बत १
ज्वरका पूर्वरूप १	वर्षा और शृतशीत जलके गुण	१२९४
ज्वरके विशिष्ट पूर्वरूप १२८५	दिनमें ओंटे जलको रात्रिमें और रात्रिमें	
		ओंटे जलको दिनमें पीनानिषेध १
ज्वरचिकित्सा ।		जलशोधनविधि १
वेद्यको साधारण क्रियाकी आज्ञा १	तरुण ज्वरमें काटा देनानिषेध १
ज्वरकी सामान्यचिकित्सा	१२८६	इसमें दृष्टांत १२९५
ज्वरके आदि, मध्य और अंतमें कर्तव्य १	कषायकी संज्ञा १
लंघन १	नवीन ज्वरमें काटे देनेके अवगुण १
लंघनकरानेमें प्रमाण १२८७	अर्जागादिमें औषध पीनेसे आमकी वृद्धि १
बलनाशक लंघनका निषेध १	तरुण ज्वरमें परिषेकादिका निषेध १
लंघनके गुण १	तरुण ज्वरमें परिषेकादि सेवनसे	
उत्तम लंघनके लक्षण १	उपद्रव १२९६
अतिलंघनके दोष १	परिषेकादि मत्पेकके दूषण हारीतसे १
लंघनके अयोग्य रोगी १२८८	ज्वरकी तरुणादि अवस्था १
लंघन सहन करनेमें कारण १		

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ज्वरके अष्टमदिन पचनमें हेतु....	॥	कणादि काढा	॥
ज्वरपाककी अवधी	॥	काकोल्यादि काढा	॥
तथा	१२९७	अमृतादि काढा	१३०५
औषध देनेका काल	॥	श्रंप्यादि काढा	॥
तथा औषध देनेका समय	॥	शालिपण्यादि काढा....	॥
वृद्ध वाग्भटका प्रमाण	॥	गुडूच्यादि पाचन	॥
यवागुआदि देनेका समय	१२९८	किरातादि काढा	॥
औषध देनेका काल	॥	पिप्पल्यादि काढा	१३०६
काठे देनेका समय	॥	उशीरादि काढा	॥
दिनांतमें अल्प और लव भोजन करानेकी आज्ञा	॥	मरीच्यादि काढा	॥
तरुण ज्वरमें रात्रिके भोजनादिका निषेध	॥	त्रिफलादि चूर्ण	॥
विदेहका प्रमाण	॥	पिप्पल्यादि चूर्ण	१३०७
अन्नदेनेका काल	१२९९	द्राक्षादि चूर्ण	॥
औषधादिके अजीर्णमें अन्नके अग्राह्यत्व ॥	॥	शताधरीस्वरस	॥
जीर्ण औषधके लक्षण	॥	कल्पतरु रसः	॥
औषध ग्रहणका मुहूर्त	॥	भैरव रसः	१३०८
औषध ग्रहणमें मंत्र	१३००	श्रीतभेजीररसः	॥
औषध ग्रहणकी विधि	॥	मातुलुंगादि गुटिका	१३०९
गंडूष वर्जन	॥	द्राक्षादि प्रतिसारण....	॥
काय, कल्क, स्वरस, अंजन, चूर्ण, सुरमा, गुड, लेह, घृत, तेलआदि पदार्थोंकी शक्तिवीर्य नष्टकालवर्णन	१३०१	हरीतक्यादि गुटिका	१३१०
वातज्वरके लक्षण	॥	स्वेद काढनेमें प्रमाण	॥
वातज्वरपर शुण्वादि पाचन	॥	स्पर्धप्रष्टवालका स्वेदयोग	॥
गुडूच्यादि पाचन	१३०२	निद्रानाश निदान	॥
शुण्वादि काढा	॥	विजयचूर्ण योग	१३११
श्रौपण्यादि पाचन	॥	सगुडादि चूर्ण	॥
गुडूच्यादि काढा	॥	निद्रा लानेकी औषध	॥
दध्मूलादि काढा	१३०३	पित्तज्वर ।	
त्रिफलादि काढा	॥	पित्तज्वरके लक्षण	॥
भुनिवादि काढा	॥	लिन्नादि पाचन	१३१२
दुरालभादि काढा	॥	दुस्पर्शादि काढा	॥
शुठ्यादि काढा	१३०४	द्राक्षादि काढा	॥
धन्मूलादि काढा	॥	पित्तज्वरके प्रतीकार....	॥
		तिकादि काढा	१३१३
		पर्पटादि काढा	॥
		द्राक्षादि काढा	॥
		पटोलादि काढा	॥

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
गुहूच्यादि काठा	१३१४	अमृतादिहिम	१३
श्रीविरादि काठा	१३	कफज्वरकेलक्षण	१३२६
भूनिवादि काठा	१३	कलिंगादिचूर्ण	१३
कटूफलादि काठा	१३	शुंग्यादि अवलेह	१३
पंचभद्रादि काठा	१३	सिन्धुकवल	१३२४
कलिंगादि काठा	१३१५	मुद्गयूष	१३
शर्करादि काठा	१३	त्रिफलादिचूर्ण	१३
धुद्रादि काठा	१३	अजादि योग	१३
ह्योभादि काठा	१३	चन्दनादि काठा	१३
पर्पटादि काठा	१३	शतघोत घृत	१३२५
विद्यादि काठा	१३१६	पलाशादि लेप	१३
गुहूच्यादि काठा	१३	नीरदादि पाचन	१३
किरातादि काठा	१३	पिप्पल्यादि पाचन	१३
चन्दनादि काठा	१३	शौद्रादि काठा	१३
पर्पटादि काठा	१३	पिप्पल्यादि चूर्ण	१३२६
उदुम्बरादिहिम	१३१७	कटूफलादिलेह	१३
द्राक्षादि काठा	१३	कटूफलादिचूर्ण	१३
दुरालभादि काठा	१३	निर्मळ्यादि काठा	१३
द्राक्षादि काठा	१३१८	यवान्यादि काठा	१३२७
छिन्नादि काठा	१३	वासादि काठा	१३
द्राक्षादि काठा	१३	निंबादि काठा	१३
ससितादि काठा	१३१९	मरीच्यादि काठा	१३
धुद्रादि काठा	१३	निदिग्धिकादि काठा	१३
श्रीविरादि काठा	१३	भांग्यादि काठा	१३२८
तिक्तादि काठा	१३	मातुलुंगादि काठा	१३
पप्यादि काठा	१३	त्रिफलादि काठा	१३
आम्रादि फाण्ट	१३२०	पिप्पल्यादिगण	१३
गुहूच्यादि काठा	१३	पचकोल	१३
पटोलादि काठा	१३	पटोलादि काठा	१३२९
केसरमातुलुंगादि योग	१३	बीजपूरादि काठा	१३
दूसराप्रकार	१३२१	भूनिवादि काठा	१३
रसपपेटी	१३	कटुव्यादि काठा	१३
उत्तानसप्तयोग	१३२२	त्रिकंठकादि काठा	१३३०
औदुम्बरादि योग	१३	कुष्टादि काठा	१३
धर्म	१३	त्रिफलादि काठा	१३
द्राक्षादिकल्क	१३		
मुद्गयूष	१३		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सप्तच्छदादि काठा ११	यूष ११
आमलक्यादि काठा.... ११	पंचकोल ११
तिक्तादि काठा १३३१	निवादि कषाय १३३८
मुस्तादि काठा ११	किरातादि कषाय ११
चपलादि काठा ११	बृहत्पिप्पल्यादि काठा ११
पिचुमदादि काठा ११	सिहिकादि कषाय १३३९
वासादि काठा ११	कटफलादि कषाय ११
कंटकार्यादि काठा.... १३३२	दशमूली काठा ११
कणादि काठा ११	पिप्पल्यादि काठा १३४०
मुस्तादि काठा ११	दावादि काठा ११
वातपित्तज्वर ।		पटोलादि काठा ११
वात पित्त ज्वरलक्षण ११	धुद्रादि कषाय ११
नीलोत्पलादि हिम ११	आरग्वधादि कषाय १३४१
निदिग्धिकादि काठा १३३३	मुस्तादि काठा ११
विश्वादि काठा ११	भूनिवादि काठा ११
नीलोत्पलादि काठा ११	चतुर्भेद्रादि काठा ११
आरग्वधादि काठा ११	स्वेदशोषक चूर्ण ११
द्राक्षादि काठा १३३४	मरिचाधुद्रूलन १३४२
पंचमूलादि काठा ११	भूनिवाधुद्रूलन ११
मुद्रादि यूप ११	सतशेखर रसः ११
मुद्रादि योग ११	कफपित्तज्वर ।	
मधुकादि कषाय ११	कफपित्त ज्वरलक्षण ११
पचभद्र कषाय १३३५	कफपित्तज्वर प्रक्रिया १३४३
दुरालभादि कषाय ११	कटकार्यादि काठा ११
भूनिवादि कषाय ११	नागरादि काठा ११
त्रिफलादि कषाय ११	शृंगबेरादि काठा ११
मधुकादि फांट ११	पटोलादि यूप ११
द्राक्षादिकाठा १३३६	पटोलादि वाटा १३४४
न्याम्रादि काठा ११	तिक्तादि काठा ११
मुस्तादि काठा ११	लोहितचंदनादि काठा ११
पलादि काठा ११	जीरकादि काठा ११
रसायन १३३७	यवादि काठा ११
वातकफज्वर ।		नागरादि काठा ११
वातकफ ज्वर लक्षण ११	द्राक्षादि काठा १३४५
चिकित्सा ११	पटोलादि काठा ११

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
यवादि काठा १३४६	बालुका स्वेद १३५५
त्रायत्यादि काठा १३४६	सिंधवादि तप्त १३५५
किरमालादि काठा १३४६	मातुलुंगादि नस्य १३५५
पटोलादि काठा १३४६	कल्पतरु नस्य १३५५
गुडूच्यादि काठा १३४६	द्राक्षादिलेप जिह्वापर १३५५
शुठ्यादि काठा १३४६	आर्द्रकादिकषलमह १३५६
क्षुद्रादि पचतिक्त काठा १३४७	अष्टांगावलेह १३५६
भारंग्यादि काठा १३४७	कटुफलादि अवलेह १३५६
पटोलादि काठा १३४७	आर्द्रकादि स्वरस १३५७
त्रिफलादि काठा १३४७	मधु निषेध १३५७
वत्सकादि काठा १३४८	प्रक्रिया १३५७
अमृतादि काठा १३४८	दूसरा प्रकार १३५७
पासा स्वरस १३४८	लघनका असहन १३५७
कटुकी चूर्ण १३४८	एक कालमें दो प्रकारकी औषध देनेका निषेध.... १३५८
लाजमंड १३४८	अन्य प्रतीकार १३५८
वाय्वमंड १३४८	कंटकार्यादि पाचन १३५८
मुस्तादि निर्यूह १३४९	मनःशिलादि अंजन १३५८
निषादि यूष १३४९	भूनिषादि मदेन व उद्बलन १३५९
धंदशेखर रसः १३४९	यवानिकाघुद्बलन १३५९
सन्निपात ।		विषाद्युद्बलन १३५९
सन्निपातज्वर लक्षण.... १३५०	चलकाद्युद्बलन १३५९
धातुपाक लक्षण १३५०	घटनी १३५९
दोषपाक लक्षण १३५१	लघनाविधि १३६०
सन्निपात ज्वरके विशेष लक्षण.... १३५१	लघन १३६०
साध्यासाध्य लक्षण १३५१	अति लघनके विचार १३६०
सन्निपातकी कालमर्यादा १३५२	लंघितको अन्न १३६०
दोषजनित कालमर्यादा १३५२	पंचमुष्टिक यूष १३६१
कटुफलादि पाचनम्.... १३५२	सप्त मुष्टिक यूष १३६१
दशमूलादि मंड १३५२	कंपादिककी चिकित्सा १३६१
दुरुपशादि सिद्धान्त १३५३	अभ्यंजन १३६१
लाजसकुफ १३५३	चर्सेकादि रस १३६२
पित्त क्षमन करनेके कारण १३५३	सन्निपाती मासनिषेध १३६२
शीतोदक सेचनका निषेध १३५४	सुवर्णादि लेप १३६२
शिरिषापंजन १३५४	चिकित्सा प्रक्रिया १३६२
कस्तूरिकापंजन १३५४	अन्य सन्निपात १३६२
लंघन १३५४	वातोलघण ।	
शीतबलपान निषेध.... १३५४	वातोलघण सन्निपात १३६२

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वातोल्वण सन्निपातकी चिकित्सा	१३६३	हीनपित्त मध्यकफ श्लेष्माधिकसंनि०	१३६९
मुस्तादि काठा	१३	हीनकफ मध्यवात व पित्ताधिक ।	
कटूफलादि काठा	१३	संनि०	१३
पित्तोल्वण ।		हीनकफ मध्यपित्त व वाताधिक	
पित्तोल्वण सन्निपात निदान	१३६४	सनि०	१३
पित्तोल्वण सन्निपात चिकित्सा काठा	१३	उद्दोषकी एक श्लोकसे चिकित्सा	१३
चदनादि पानी	१३	प्रबलदोषकी ज्ञाति होनेसे अन्यहीन	
मुस्ताद्यष्टादशंग	१३	दोषोकी ज्ञाति कथन	१३
किरातादि काठा	१३६५	द्वात्रिंशंग काष	१३
शब्बादि काठा	१३	अष्टादशंग काठा	१३७०
कफोल्वण ।		द्वादशंग काठा	१३
कफोल्वण सन्निपात निदान	१३	सन्निपातपर रेचन	१३७१
कफोल्वण चिकित्सा	१३६६	संज्ञानाश चिकित्सा	१३
कफोल्वणोपर काष....	१३	विल्वादि काठा	१३
त्र्युल्वण ।		शुब्बादि काठा	१३
त्र्युल्वण सन्निपात	१३	अर्कादि काठा	१३७२
बागरादि काठा	१३	तिक्तादि काठा ..	१३
व्योषादि काठा	१३	त्रिदोषपर	१३
वात पित्तोल्वण ।		दान्यौषधादशंग ..	१३७३
वात पित्तोल्वण सन्निपात ...	१३६७	गुडून्यादि काठा	१३
वातपित्तोल्वण चिकित्सा ...	१३	अमृतादि काठा ..	१३
वातश्लेष्मोल्वण ।		विश्वादि काठा	१३
वातश्लेष्मोल्वण	१३	च्यूपणादि काठा ..	१३७४
चिकित्सा	१३	दशमूलादि काठा	१३
पित्त कफोल्वण ।		आटरूपादि काठा	१३
पित्त कफोल्वण	१३६८	कटूफलादि काठा	१३
चिकित्सा	१३	किरातादि काठा	१३७५
हीनवात मध्यपित्त वर श्लेष्मा-		अष्टादशंग काठा	१३
धिकसं०	१३	पंचतिलक काठा	१३
हीनवात मध्यकफ व पित्ताधिक		दान्यौषुदादि काठा	१३
संनि०	१३	शंघ्यादि काठा	१३७६
हीनपित्त मध्यकफ व वाताधिकसं०	१३	लज्जुनादि काठा	१३
		दशमूलादि काठा	१३
		पंचमूलादि काठा	१३
		अर्कादि काठा	१३७७
		यूतसजीवनी वटिका	१३
		त्रिनेत्र रसः	१३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
भस्मेश्वरो रसः	१३७८	मृतसंनिवनी रसः	१३
अधिकुमार रसः	१३७८	पप्यादि काटा	१३८९
पंचवक्त्र रसः	१३७९	असाध्यत्व	१३
दूसरा प्रकार	१३७९	अंतकर्म मुख्य औषध	१३
उन्मत्त रसः	१३८०	रुग्दाह ।	
कनकसुंदर रसः	१३८०	रुग्दाह संनिपात निदान	१३९०
तन्द्रा	१३८१	जलधर काटा	१३
असुरादि अंजन	१३८१	अभयादि काटा	१३
लोहांजन	१३८२	ब्राह्मादि काटा	१३
सैधवादि अंजन	१३८२	उशीरादिपडंग काटा	१३
ज्योतिष्मतीनस्य	१३८२	धान्याक काटा	१३९१
जातीपुष्प नस्य	१३८२	अगुर्वादि धूप	१३
द्राक्षाघबलेह	१३८२	दध्यादि लेप	१३
सन्निपात मकोप कारण	१३८३	षट्पदी लेप	१३
सन्निपातके नाम	१३८३	लाजतर्पण	१३
उनकी मर्यादा	१३८३	स्त्रीका आलिंगन	१३९२
साध्यासाध्य	१३८४	पप्यावलेह	१३
संधिक ।		भेरी गुटी	१३
संधिक सन्निपात	१३८४	चित्तभ्रम ।	
संधिकारी रसः	१३८४	चित्तभ्रम सन्निपात....	१३९३
सन्निपातानल रसः	१३८४	मध्वादि काटा	१३
निर्गुडयादि धूप	१३८५	द्राक्षादि काटा	१३
हसरीनिर्गुडयादि धूप	१३८५	माइयादि काटा	१३
देवदारुकाटा	१३८५	पप्यादि काटा	१३९४
मुस्तादि काटा	१३८६	हरीतक्यादि काटा	१३
पचादि काटा	१३८६	कणापंजन	१३
रास्नादिकाटा	१३८६	कुम्भोद्भवनस्य	१३
अमृतादि काटा	१३८६	धूप	१३९५
ग्रंथ्यादि काटा	१३८७	सन्निपात गजांजुका....	१३
पंचमूल्यादि काटा	१३८७	प्रणेश्वर रस	१३
रास्नादि काटा	१३८७	मोरेश्वर रस	१३
क्षारादि परिमाण	१३८७	शीतांग ।	
संधिकपर लेपन	१३८७	शीतांग सन्निपात निदान	१३
अंतक ।		शीतांगकी चिकित्सा	१३९७
अंतक सन्निपात निदान	१३८८	अर्कादि काटा	१३
अंतके रोटिका बंधनम्	१३८८	मातुलुंगादि काटा	१३
		क. कोटापुद्गलन	१३
		श्वेतिष्टादि चूर्ण	१३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
तंद्रिक ।			
तंद्रिक संनिपात निदान १३९८	बीजपूरादि लेप १४०५
तंद्रिक परीक्षा १३९८	वज्रमुष्ट्यादि लेप १४०५
भारग्यादि काठा १३९९	सिद्धार्थादि लेप १४०५
दूसरा प्रकार १३९९	रोहिताकादि लेप १४०५
अमृतादि काठा १३९९	मरिचादि नस्य १४०६
रास्नाध्वजन १३९९	कर्णकपरनस्य १४०६
तुरंगलाला अंजन १३९९	सामान्य उपचार १४०६
कृष्णादि नस्य १३९९	कांजिकादिलेप १४०६
मरिचादि नस्य १३९९	उपचार १४०६
सुद्रादि नस्य १४००	अन्न १४०७
कंठकुब्ज ।		भुमनेत्र	
कंठकुब्ज निदान १४०१	भुमनेत्र सन्निपात निदान १४०७
शृंग्यादि काठा १४०१	दान्यादि काठा १४०७
त्रिकटुवादि कषाय १४०१	श्रेष्ठादि काठा १४०७
फलत्रिकादि काठा १४०१	यष्ट्यादि काठा १४०७
किरातादि काठा १४०१	मरिचादि नस्य १४०८
कृष्णादि नस्य १४०१	अश्वगंधादि नस्य १४०८
सिद्धवटी १४०१	भूनिवादि अवलेह अंजन व १४०८
कर्णक ।		रक्तष्टीवी ।	
कर्णक संनिपात निदान १४०२	रक्तष्टीवी संनिपातनिदान १४०९
रास्नादि कषाय १४०२	पर्पदादि काठा १४०९
रास्नादि काठा १४०२	जलदादि काठा १४०९
मरिचादि काठा १४०२	रोहिवादि काठा १४१०
भारग्यादि काठा १४०२	पद्मादि काठा १४१०
दशमूलादि काठा १४०३	मधुकादि काठा १४१०
शृंग्यादि लेप १४०३	दूवादि नस्य १४१०
प्रलेप.... १४०३	आघादि नस्य १४११
व्रण चिकित्सा १४०३	चिकित्सा १४११
कुलित्वादि लेप १४०३	रक्तष्टीवी चिकित्सा १४११
भोरिकादि लेप १४०३	सोमपाणिरसः १४११
प्रियङ्गवादि लेप १४०४	प्रलापक ।	
अर्कादि लेप १४०४	प्रलापक सन्निपात निदान १४१२
दंलादि लेप १४०४	मुस्तादि काठा १४१२
नागरादि लेप १४०४	तगरादि काठा १४१२
निद्रादि लेप १४०४		





ज्वर १ ला









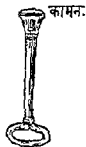
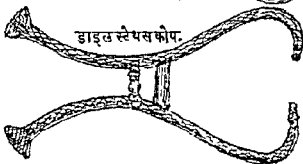
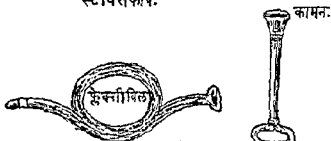
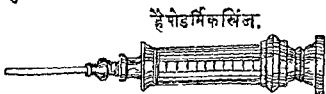
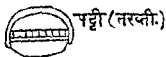
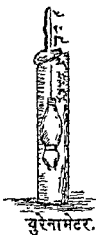














श्रीः ।

अथ मूत्रपरीक्षा ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥

येन विज्ञानमात्रेण रोगचिह्नं प्रकाशते ॥ १ ॥

अर्थ-अब नाडीदर्पण कहनेके अनंतर हम मूत्रपरीक्षण कहतेहैं, जिसके जाननेसे रोगके चिह्न प्रकाश होतेहैं ।

मूत्रपरीक्षाका समय ।

निशांतयामे घटिकाचतुष्टये उत्थाप्यवैद्यः किल रोगिणां च ॥ मूत्रं धृतं काचमये च पात्रे सूर्योदये तत्सततं परीक्षेत् ॥ २ ॥

अर्थ-रात्रिके चौथेप्रहरकी जब ४ घड़ी रात्रि बाकीरहै तब वैद्य रोगीको उठाय कांचके पात्रमें मूत्रवराकर धरकरखे जब सूर्योदय होवे तब उस मूत्रकी परीक्षाकरे ।

तस्याद्यधारां परिहृत्य मध्यधारोद्भवं तत्परिधारयित्वा ॥ सम्यक् परिज्ञाय गदस्य हेतुं कुर्व्याञ्चिकित्सां सततं हिताय ॥ ३ ॥

अर्थ-रोगीका मूत्र लेतेसमय प्रथम और अंतकी धाराको त्यागकर बीचकी धाराको लेवे तथा उसमूत्रसे रोगका कारण जानकर रोगीके हितार्थ औ.पाधि करे ।

वातेच पांडुरं मूत्रं सफेनं कफरोगिणाम् रक्तवर्णं भवेत्पित्ते द्रव्ये मिश्रितं भवेत् ॥ सन्निपाते च कृष्णं स्यादेतन्मूत्रस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥

१ घातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलं च पित्ततः । रक्तमेव भवेद्द्रक्ताद्भ्रूलं फेनिलं कफात् ॥ इति पुस्तकान्तरे.

अर्थ—रोगीका मूत्र वातविकारसे पांडुरवर्णहोताहै कफविकारसे श्लेष्मियुक्त पित्तविकारसे रक्तवर्ण और द्रव्यजव्याधिसे मूत्र मिश्रवर्णका होताहै और सन्निपातसे कृष्णवर्ण होताहै । यह मूत्रके सामान्य लक्षण जानने ।

नीलं च रूक्षं कुपिते च वायौ पीतारुणं तैलसमं च
पित्ते ॥ स्निग्धं कफे पल्वलवारितुल्यं स्निग्धोष्णरक्तं
रुधिरप्रकोपे ॥ ५ ॥

अर्थ—मतांतर कहतेहैं कि वातके कोपमें रोगीका मूत्र नील और रूक्ष होताहै । पित्तके कोपमें पीला और लाल तथा तैलके समान होताहै । कफके विकारमें रोगीका मूत्र चिकना और पोखराके जलके समान गदला होताहै रक्तप्रकोपमें रोगीका मूत्र चिकना गरम और थाला होताहै ।

मातुलुंगरसाभासं सौवीराभं जलोपमम् ॥

प्रपाकरहितानांच मूत्रं चन्दनसन्निभम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसके अन्न भलेप्रकार पाचन नहीं होताहै उसका मूत्र विजारेके रसके समान अथवा कांजीके समान अथवा जलके समान किंवा चन्दनके समान उतरताहै ।

अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तंडुलतोयवत् ॥

नवज्वरे धूम्रवर्णं बहुमूत्रं प्रजायते ॥ ७ ॥

अर्थ—अजीर्णसे जो विकारहुआहो उसमें मूत्र चावलके धोवनके समान होताहै । और नवीन ज्वरमें मूत्र धूपके समान तथा बहुन होताहै ।

पित्तानिलेधूम्रजलाभमुष्णं श्वेतं मरुश्लेष्मणि बुद्बुदा
भम् ॥ सश्लेष्मपित्ते कलुपं सरक्तं जीर्णज्वरेऽसृक्
सदृशं च पीतम् । स्यात्सन्निपातादापि मिश्रवर्णं तूर्ण
विधिज्ञेन विचारणीयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मूत्र वातपित्तके कोपमें धूम्रवर्ण, गरम, और जलके समानहोताहै । वातकफके विकारमें सपेद तथा बुलबुलेदार होताहै । कफपित्तके विकारमें लाल तथा दूषितहोता है । जीर्णज्वरहोनेमें पीला तथा रुधि-

रके समान होय । और सन्निपाहहोनेसे मूत्र अनेकप्रकारके मिश्रित-वर्णका होताहै । इसप्रकार वैद्यको मूत्रके वर्ण जानने चाहिये ।

परीक्षा विधिवत्कार्या रोगिमूत्रस्य तत्त्वतः ॥

तृणेन दापेयतैलविन्दुं तत्रातिलाचवात् ॥ ९ ॥

अर्थ-रोगीके मूत्रकी यथाविधिसे उत्तम परीक्षा करनी चाहिये । वह इसप्रकार कि पूर्वोक्त धरेहुए मूत्रमें तिनकासे लेकर वैद्य शीघ्र तैलकी बूंदडाले फिर उसकी इसप्रकार परीक्षाकरे ।

विकासि चेत्तैलमथाशु मूत्रे साध्यः स रोगी न विकासितं
चेत् ॥ स्यात्कष्टसाध्यस्तलगेत्वसाध्यो नागार्जुनैव
कृता परीक्षा ॥ १० ॥

मूत्रमें डाली हुई तैलकीबिंदु यदि सबमूत्रके ऊपर जलदी-फैलजावे तो जाने रोगी साध्यहै । और यदि न फैले तो जाने कि रोगीकष्टसाध्यहै । तथा वह तैलकी बूंद मूत्रके नीचे बैठजावे तो असाध्यजानना यह नागार्जुनसिद्धकी कृती हुई परीक्षाहै ।

पूर्वाशां वर्द्धते विन्दुर्यदा शीघ्रं सुखी भवेत् ॥

दक्षिणाशां ज्वरो ज्ञेयस्तथारोग्यं क्रमाद्भवेत् ॥ ११ ॥

अर्थ-मूत्रमें डालीहुई तैलकी बूंद यदि पूर्वकीतरफ फैले तो रोगी शीघ्र अच्छा हो और दक्षिणदिशाकी तरफ फैले तो ज्वरजानना । वह रोगी औषधदेनेसे अच्छा होय ।

उत्तरस्यां यदा विन्दोः प्रसरः संप्रजायते ॥ अरोगिता

तदा नूनं पुरुषस्य न संशयः ॥ १२ ॥

अर्थ-यदि तैलकी बिंदु उत्तरदिशाकी तरफ फैले तो रोगी रोग-रहित है इसमें संदेह नहीं है ।

वारुण्यां प्रसरेद्विन्दुः सुसाध्योऽपि न जीवति ॥ १३ ॥

अर्थ-यदि पश्चिमदिशामें तैलकी बिंदु फैले तो उस रोगीकी सुख तथा आरोग्य होय ।

विकासितं हलं कूर्मैरभाकारसंयुतम् ॥ करण्डमण्डलं

चापिनरं मूर्धविवर्जितम् ॥ १४ ॥ गात्रखण्डं च शङ्खं च

खड्गं मुसलपट्टिशम् ॥ शरं च लगुडं चैव तथैव त्रिचतुः
पथम् ॥ १५ ॥ विन्दुरूपं नरोदृष्ट्वा न कुर्वीत क्रियां
कचित् ॥

अर्थ—यदि तैलकी विंदु हल, कटुआ, भैंसा, तथा करंड (पिटारी) मंडल. अथवा मनुष्यके धडके समान अथवा तोडे द्रुये हाथपैरके समान अथवा शस्त्र, तलवार, मूसल; पट्टा, बाण, दंड किंवा तिराहे-चौराहेके आकार विंदुरूप होय तो उस रोगीकी चिकित्सा न करे ।

हंसकारंडताडगं कमलं गजचामरम् ॥ छत्रं वा तोरणं
हर्म्यं सुपूर्णं दृश्यते यदि ॥ आरोग्यता ध्रुवं ज्ञेया तदा
कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—यदि तैलकी विंदु हंसपक्षीके समान, खंजन, तलाव, कमल, हाथी, चमर, छत्र, तोरण, किंवा महल इनके आकार होंवें तो उस रोगीको आरोग्यहोय अतएव उसका यत्न करना चाहिये ॥

तैलविन्दुर्यदा मूत्रे चालनीसदृशी भवेत् ॥

कुले दोषो ध्रुवं ज्ञेयः प्रेतदोषसमुद्भवः ॥ १८ ॥

अर्थ—यदि तैलकी विंदु मूत्रमें चालनीके छिद्र सदृश होय तो उस रोगीको कुलदेवका दोष अथवा प्रेतदोष जानना चाहिये ।

नराकारं प्रजायेत किंवा स्यान्मस्तकद्वयम् ॥

भूतदोषं विजानीयाद्भूतविद्यां तदाचरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—तैलविंदु मूत्रमें मनुष्याकार अथवा दो मस्तकके आकार होय तो उस रोगीको भूतदोषहै इस प्रकार विचार उसका यंत्र मंत्रादि भूत-विद्याका प्रयोग करना चाहिये ।

मांजिष्ठाभं धूम्रवर्णं च नीलं स्निग्धं मूत्रं वारितुल्यं च
शीतम् ॥ ज्ञात्वा चित्ते बुद्धिमान्मानुषाणां कुर्यान्वतंभे
पज्ञं रोगिणां च ॥ २० ॥

अर्थ—यदि मूत्र मजीठके रंगके समान अथवा धूम्रवर्ण, नीला, चिकना पानीके समान शीतल होय तो बुद्धिमान् वैद्यको उसरोगकी औषध फरना चाहिये ।

सर्पाकारं भवेद्वाताच्छत्राकारं तु पित्ततः ॥

श्लेष्मणा मौक्तिकाकारमित्येतन्मूत्रलक्षणम् ॥ २१ ॥

अर्थ-तैलाबद्ध मूत्रमें वातविकारसे सर्पके समान तथा पित्तकोपसे छत्रके समान तथा कफकोपकरके मोतीके समान होयहै इसप्रकार मूत्र-लक्षण जानना ।

प्रकारांतरेण परीक्षा ।

अहोरात्रेण विसृजेत्स्वस्थो मूत्रमनाविलम् ॥ अपाण्डु
रं च तरलं पलानामष्टसम्मितम् ॥ २२ ॥ बाहुल्येन जलं
तत्र कठिनं स्वल्पमेव हि ॥ दृश्यते पलमूत्रे तु चतुर्गुणाऽ
द्रवस्थिति ॥ २३ ॥

अर्थ-स्वस्थ मनुष्य दिनरात्रमें ८ पल निर्मल कुच्छ पाण्डुवर्ण तरल मूत्र परित्याग करताहै उसमें बहुधा जलभागहै, और कठिन भाग अल्प है, परीक्षाद्वारा निश्चय हुआहै कि १ पल मूत्रमें ४ रत्ती कठोर पदार्थहै ।

वस्तिदेशे समुद्रिग्ने मलेष्वन्त्रे चितेषु च ॥ तस्मिन् कृमि
गणाकीर्णे दाहेर्वापि सुदारुणैः ॥ २४ ॥ नार्याश्चापन्नस
त्वाया अश्मर्या वापि निःस्रवेत् ॥ सुकृच्छ्रं विन्दुशस्त
द्धानस्रवेद्वापिकिञ्चन ॥ २५ ॥ वस्तौ विस्तीर्णतां याते
तद्भीवाकुञ्चनात्तथा ॥ मस्तुलंगरुजामूत्रं संचितं वापि न
स्रवेत् ॥ २६ ॥ विद्रधिर्मूत्रपिण्डे चेद्विसृचीवापि दारुणा ॥
नोत्पद्यते ततो मूत्रंतद्वंधावापि कञ्चन । वस्तेः प्रदाहतो
मूत्रं तद्वंधावापि किञ्चन ॥ २८ ॥ वस्तिः प्रदाहतो मूत्रं
विन्दुशस्तु स्रवेत्सदा ॥ द्रवातियोगाच्छैत्येन संयोगा
च्चाति वर्द्धते ॥

अर्थ-वस्तिदेशका उत्तेजन, अंत्रोंमें कृमि तथा मलसंचय एवं दाह पयरी इन सब कारणोंसे तथा गर्भवती स्त्रीआदिके मूत्र बड़े कष्टसे बूंद बूंद होकर निकले, अथवा एकसाथही मूत्र उतरना बंद होजावे, एवं मूत्राशयकी विस्तीर्णता उसके मीवादेशका संकोचहोना मस्तिष्कमें

पीडा और संचितमूत्रका न उतरना । मूत्रग्रन्थिकी विद्रधि तथा विषु-
चिकारोगमें उक्तग्रन्थिसें एकसाथ मूत्र उतरे नहीं । वस्ती अर्थात् मूत्रा-
शयमें दाहकेसाथ विदुबिदु होकर मूत्र निकले अधिक पतले पदार्थ
पीनेसे और देहको शरदीलगनेसे मूत्र अधिक उतरताहै ।

व्याधिक्षीणशरीरस्य नष्टसंज्ञस्य देहिनः॥ तस्य स्वेदस्य
वात्यर्थं वृद्धिः स्यान्मृत्यवेमता ॥ ३० ॥ विरत्या द्रव
पानाच्च स्वेदाधिक्यात्सृतेऽसृजि ॥ जलोदरेऽतिसारे च
मूत्रं स्तोत्रं स्रवेवृणाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—व्याधिद्वारा क्षीणदेह तथा चेतना विहीन रोगीके मूत्रकी वृद्धी
और पसीने अधिक आवे तो वह रोगी निश्चयमरे द्रवपानकी अल्पता
तथा द्रवपानमें वैराग्य, रक्तस्राव, जलोदर और अतिसाररोगमें मूत्र
अत्यंत थोडा उतरताहै ॥

यूनानी मतानुसार मूत्रपरीक्षा.

दोषैराक्रान्तदेहस्य प्रतिकर्तुं रुजां चयम् ॥ मूत्रनाडी
परीक्षा तु प्रथमं परिभाव्यते ॥ ३२ ॥ मरीज्वीमार
रोगी स्यात्तत्परीक्षा द्विधैव हि ॥ शनाशी नब्जकारू
रा नाडीमूत्रस्य सा स्मृता ॥ ३३ ॥

अर्थ—दोषोंकरके आक्रान्त देहकी रोगोंसे यत्नकरनेके लिये प्रथम हम
मूत्र और नाडीकी परीक्षा कहतेहैं तहां रोगीको यूनानीभाषामें मरीज
और विमार कहतेहैं उसकी परीक्षा दो प्रकारकीहै प्रथम शनाशी जिसमें
नब्ज और कारूरा अर्थात् नाडी और मूत्रकी परीक्षाहै तहां प्रथम मूत्र-
परीक्षा कहतेहैं ।

मूत्रकेवर्ण ।

सुपेद अवियज श्वेतं स्याद् अस्वद मेचकम् ॥

जर्द अस्कर पीतं स्यात् सुखं अहमर रक्तकम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-मूत्रके वर्ण चार प्रकारके हैं जैसे सफेद, अवियज, ये दोनों श्वेतवर्णके नाम हैं स्याह और असवद ये काले वर्णके नाम हैं जर्द और अस्कर ये पीतरंगके नाम हैं एवं सुख और अहमर लालरंगको कहते हैं ।

सितमच्छं च बहुलं मूत्रं शैत्यविशेषतः ॥ शुभ्रं सान्द्रं
कफोद्रेकादसान्द्रं दोषपाकतः ॥ ३५ ॥ अवदातं घनं
चापि विच्छिन्नं श्लेष्मदोषतः ॥ उपायो गदितो वैद्यस्त-
त्रमूत्रविरेचनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-जिस रोगीका मूत्र सफेद, स्वच्छ, और बहुत हो उसके शीतकी विशेषता जाननी और जिसका मूत्र सफेद और गाढा हो उसके कफकी आधिक्यता जाननी एवं पतलामूत्र दोषपाक होनेसे होता है उसी प्रकार सफेद गाढा और लहसदार कफके विकारसे होता है इसका उपाय वैद्योंने मूत्र विरेचन अर्थात् इन्दी जुलाब देना कहा है ।

असितं मलिनं वातकोपवैकृत्यसूचकम् ॥ सौदा विकृ-
तिजं चापि परिज्ञातं भिषग्वरैः ॥ ३७ ॥ श्यामलं
घनविच्छिन्नं सौदा कोपेन संभवेत् ॥ सञ्ज अरज्वर
पालाशं भवेन्मूत्रं विषा शिनः ॥ ३८ ॥ श्यामं सान्द्रं च
यन्मूत्रमूष्मणा दग्धदोषताम् ॥ प्रकटी कुरुते दोष
विचारे भिषजं प्रति ॥ ३९ ॥

अर्थ-जो मूत्र काला और मलिन हो वो वातकोपको सूचित करता है तथा यही सौदाकी विकृतताको भी सूचना करता है एवं श्यामरंग और गाढा यह सौदाके कोपसे होता है सञ्ज और अरज्वर पलाशीरंग अर्थात् हरितवर्ण होता है ऐसा मूत्र जिस रोगीने विषभक्षण करा हो उसका होता है और जिस रोगीका मूत्र काला और गाढा होय वह गरमीसे दोषोंको दग्ध होना सूचित करता है ।

शुष्कस्य यवसस्येव नीरं यद्भावनाद्भवम् ॥ ईपत्पीतं हि
मन्दाग्ने रंगतिव्री उदाहृतः ॥ ४० ॥ फलपूरत्वगाभासं
तीक्ष्णाऽग्रेरुपजायते ॥ तुरंजी उत्रजी चेति नाम्नावर्णः

प्रकीर्तितः ॥ ४१ ॥ ज्वलनज्वालभं यत्तु रक्तं पीतं च
मेचकम् ॥ सवर्ण आतशीनारी प्रोक्तस्तस्य परीक्षकैः ॥ ४२ ॥

अर्थ—सूखे जौ के भूसेको रात्रिमें भिगोनेसे प्रातःकाल पानीकारंग होजाता है उस ईपःपीतरंगको तिब्बनीरंग कहते है ऐसा मूत्रमंदाभिवालेका होता है और विजोरे नींबूकेरंगको तुरंजीरंग और उत्रजीरंग कहते है यह तीक्ष्णाभिवालेका होता है एवं अमिकी ज्वालाका जैसा लाल और पीलारंग होता है ऐसा हो या मोरकी चंद्रकाके आकार श्याममिश्रितरंग हो उस वर्णको आतशी और नारीरंग मूत्रपरीक्षकोने कहाहै.

तत्रोष्मणाखरत्वंतुदोषाणांजातमुच्यते ॥ इहतएकसवि
ज्ञेयः सोख्तगी हिर्कतस्मृताः ॥ ४३ ॥ सुहतरिक् दग्ध-
कर्त्ता स्यादेपशब्दस्थितोर्विधि । जाफरानी कुंकुमाभ
मत्युष्णज्वरिणोभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—ऐसा उक्तरंग दोषोके अत्यंत गरमीकी प्रखरतासे होताहै उसमें भी एक सोख्तगी और हिर्कत कहाता है और दोष दग्धकर्त्ताको सुहतरिक् कहते है और जिस मूत्रकावर्ण केशरिया हो उसको जाफरानीरंग कहते है यह अत्यंत उष्ण ज्वरवालेका होता है ।

ऐरावतफलाभासो नारंजीवर्ण उच्यते ॥ तत्सादृशं भवे
न्मूत्रं रक्तपित्तविकारिणः ॥ ४५ ॥ वर्दी गुलाबी पर्यायौ
पाटलं वदतो गुणम् ॥ असहव किंचिदेतस्मादवदातः
स्मृतो बुधैः ॥ ४६ ॥ वर्णद्वयानुगंमूत्रंजायतेरक्तवेगतः ॥

अर्थ—जो मूत्रनारंगीके रंगका हो उसको नारंजीवर्ण कहते है ऐसा मूत्र रक्तपित्त रोगीका होता है जो मूत्र पाटलहो उसको वर्दी और गुलाबीरंग कहते है यदि इसगुलाबीमें जो मूत्र कुछ सपेदहो उसको असहव कहते है ये दोनों प्रकारका मूत्र रक्तवेगके कारणसे होता है ।

कानी त्वत्यन्तशोणःस्यादाडिमीकुसुमादपि ॥ ४७ ॥
तत्राल्पप्राज्यभावितु शोधनं शस्तमीरितम् ॥ अक्तं
यावकवर्णस्याद्दग्धासृग्लक्षणंवदेत् ॥ ४८ ॥ अपकरी

कोपज्वरे भवेत् ॥ समास्तन्मुख्यवर्णानां रंगगुल्लाल रक्त
व्यंजनं समुदाहृतम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-जो मूत्र अनारके फूलसेभी लालहोवे उसको फारसीमें कानी रंग कहतेहैं यह अत्यंतखूनके बढनेसे होता है इसका शोधन करना उत्तम कहाहै जो मूत्र गुल्लालरंगकाहोवे उसको फारसीमें अपकारी रंग कहतेहैं यह रक्तकुपित ज्वरमें होताहै यह हमने संक्षेपसे मूत्रके वर्णोंका वर्णनकराहै विशेष भाषामें देखो ॥

मूत्रकी परीक्षा तीनप्रकारसे करी जाती है जैसे प्रथम आरोग्यावस्थाका मूत्र देखना फिर रोगावस्थाका और तीसरे मूत्रकी दशाका निश्चय करना अरबीमें मत्रको बोलू कहते हैं परंतु फारसीमें फारूरः कहते हैं इसका यहकारण है कि फारूरः एक शीशीका नाम है जिसमें वैद्यजन मूत्रकरके देखते हैं अब कहते है कि यह प्राणी जो जल पीता है वह प्रथम भेदामें आहारके साथ मिलकर उस आहारको दबीभावमेंकर कैलूस निर्माण करताहै फिर रुधिरवाहिनीमें भ्रमण करताहुआ हृदयमें परिपक्वहो फिर गुरदेमें ही मूत्राशयमें संचित होताहै और जो कुछ रुधिरमें मिलाहुआ हृदयमें रहजाता है वह धमनि नाडियोंके द्वारा सर्वदेहमें पहुँचकर कुछ पसीने से निकल जाता है और कुछ फिर गुरदेमें ही मूत्राशयमें गिरता है इसी कारण मूत्र रंगीन हो जाता है जिस मनुष्यके पसीना अधिक आता होगा उसके मूत्रभी थोडा उतरेगा और जिसके पसीने थोडे आते होंगे उसके मूत्र अधिक उतरताहै जब मूत्राशयमें संचित होजाताहै तब इस प्राणीको मूत्रकरनेकी कांक्षा होती है अतएव सर्वदेहकी चेष्टा इसमूत्रसे उत्तमप्रकार निश्चय हो सपती है ॥ अब कहते हैं कि मूत्रदेखनेकी इतनी बडी शीशी लेंवे कि समग्र मूत्र आप जावे और कुछ खालीरहे कि हिलाने चलानेमें अडचल न होवे, वैद्यको यहभी स्मरणरहे कि मूत्र दोषडीपीले परीक्षाके योग्य नहीं रहता और यहतो अवश्य याद रखे कि शरदीमें मूत्र स्वतःस्वभावसे ही गाढा रहताहै और गरमीकी ऋतुमें पतला होताहै । मेंहदीके लगानेसे एवं रंगदार वस्तुके खानेसे मूत्र रंगीन उतरता है बहुत हरितशाफ खानेसे मूत्र हरितरंगका उतरताहै एवं केशर, सनाय, अया अमलतासके पीनेसे मूत्र पीला उतरताहै बहुत भूखारहनेसे क्रोधसे

रात्रिमें जगनेसे मूत्र लालरंगका उतरताहै । वैद्यको उचितहै कि ऐसे मूत्रकी परीक्षा रोगी या रोगीके बांधवोंसे प्रथमही करलेवे नहीं तो परीक्षामें विपरीतता ही जावेगी । मूत्रके देखते समय किसीप्रकारकी छाया तथा किसीवस्तुका प्रतिबिंब उसपर न पडताहो और किसीसमय मूत्रके समान और वस्तु दृष्टिमें आजातीहै तो अपक्ववैद्य धोका खाजाते है जैसे सिकंजवी, जल मिला सहत, और मूत्र समीपके देखनेसे गाढा प्रतीतहोताहै और दूरसे स्वच्छ प्रतीत होताहै परंतु सिकंजवीआदिमें इस्सें विपरीत ज्ञान होताहै अतएव इसप्रकारकी परीक्षा वैद्य प्रथमकरलेवे.

प्रसंगवश पशुमूत्रकी परीक्षाकहते हैं जैसे गधेका मूत्र सपेद और गाढा होताहै घोडेका पतला और सपेद होताहै. परंतु ऊपरका आधा-श्वेत और नीचेका आधा गाढा होता है ॥

ऊँटका मूत्र पीला और मनुष्यमूत्रके समान होताहै परंतु मनुष्यके मूत्रसे नहीं मिलता.

मूत्रकी आठप्रकारसे परीक्षा करतेहै जैसेकि रंग, पकता, स्वच्छता, समल, गंध, फैन, रसुव और प्रमाण.

तहाँ प्रथमरंगका ज्ञान कहते हैं—

पीलेरंगके छः भेदहै.

केलरी.	रक्तवर्ण	अग्निवर्ण.	पीतरक्तवा- विशिष्ट	नारगी	तृणप्रक्षालन सदृश.	सस्कृ०ना
जाफ रानी.	अहमर	नारी	अशकर.	उत्तरजा	तबनी	फार०ना०
देशीवर्णका मूत्र उबर-पाहु- रोग आदिसे होताहै	लालवर्णका मूत्र शधिरकोपसे होताहै	जैसे अग्निज्वाला पीली और चमकदार होतीहै ऐसा मूत्र अत्य- ंत गरमोंके कारण होताहै	पीत और रक्तता मिश्रित व- र्णभी पित्तधियसे होताहै	समत रंगके समान अथवा नार- गीकेसमान मूत्रका वर्ण रक्तपि- तके कोपसे होताहै	तृणधोवनके समान मूत्रकावर्ण कफपित्तकुपितके कारण होताहै.	व्यवस्था

हरितवर्णके भेद.			कृष्णवर्णके भेद.			
भतिहरित.	हरित.	नीलवर्ण.	श्वेतकृ०	हरितकृ०	रक्तकृष्ण.	केशरी.
कुरांती.	जंगाली.	नीला.	स्याद.	सवज-स्याद.	अहमरी.	जाफरानी.
<p>मंदनेकासा रंग अथवा वृक्षपत्रकाजल जैसा ऐसा मूत्र गरमी और पित्तके जल-नेसे होताहै.</p> <p>मूत्र जंगारके रंगका होतो वातपित्त मिश्रित जानना.</p> <p>सरदीसे मूत्र नीलवर्णका होताहै यदि बालकका मूत्र नीला हो तो पक्षाघात आदिवातका विकारजाने.</p> <p>जो मूत्र प्रथम सपेद फिर काला प्रतीत हो तो कफ जलकर वात हुआजाने.</p> <p>जो प्रथम हरित और पीछे कृष्णवर्ण हो तो कफ जलकर सौदा वात हुआहै</p> <p>जो प्रथम रक्त फिर कृष्ण हो जावे तो जाने कि रुधिर बिगडकर वात बनगया है इसमें दुर्गंध बहुत होतीहै.</p> <p>प्रथमपीला और पीछे काला हो जावे तो पित्तजलकर वात होगया ऐसा निश्चय करना.</p>						
रक्तवर्णके भेद.			श्वेतवर्णके भेद.			
पिकवर्ण.	रक्तकृ०	पाटलवर्ण.	पाटलवर्ण.	कृत्रिम.	स्या भाविक.	
भकरम.	अहमर-कांजी	वरदी.	असह्य.	मिजाजी.	हकीकी.	
<p>त्रिसं रक्ता अधिक और कृष्णता स्वरूप हो तो रुधिर कंठ और गरमी कुछ न्यून जाने.</p> <p>जिस मूत्रमें रक्तता हो परंतु कृष्णवर्ण अधिक हो तो रुधिर तोष जाने परंतु गरमी अधिक है.</p> <p>जो मूत्र शुद्धाब पुष्पके समान रंगमें हो तो रुधिरकी आधिस्यता और गर्मी जाने.</p> <p>जो मूत्र प्याजके पत्तकेसमान रक्तमिश्रित श्वेत होतो रुधिरकी शयत्यता जाने.</p> <p>जो मूत्र मधुच्छ जलके समान प्रतीत होतो शरदी अथवा दुर्बलताको सूचितकरे है.</p> <p>दूधके समान सपेदी होनेसे मूत्र कफाधिस्य-कां सूचित करावै, अथवा चरबी निकलती है, ऐसा जाने.</p>						

अब पक्वता (किवाम) के जाननेका प्रकार लिखते हैं । वह तीन प्रकारका है इसके लिखनेसे यह प्रयोजन है कि वैद्यको यह परीक्षा करनी चाहिये कि इसरोगीका मूत्र पकहुआ निकला है या कच्चा ॥

मूत्रकी पक्वापक्वदशा दर्शक कोष्ठक.		
मध्यम	घन	द्रव
मोतदिल	गलीज	रकीक
नैरोग्य अवस्थावा ले प्राणीका मूत्र मध्य अवस्थाका अर्थात् न बहुत पतला और न बहुत गाढा ऐसा उतरता है ।	वातादि दोषोके अत्यंत बढनेसे मूत्र बहुत गाढा उतरता है यदि अंतर्ब्रणके फटनेसे आँतोंकी गोंठ सुलनेसे अथवा जीर्णज्वरमें गाढा मूत्र होवे तो बुरा है ।	यदि देहमें शरद्री अधिक हो या मंदाग्नि तथा बहुत जलपीनेसे मूत्राशय और वस्तीमें दुर्बलताके कारण इस प्राणीका मूत्र पतला उतरता है ।

स्वच्छता ।

अब कहते हैं कि निर्मलता (सफाई) और अनिर्मलता (गदलाहट) से रोग ज्ञातहोता है । यदि रोगीका मूत्र स्वच्छ उतरेतो जाने कि पाक होकर उतरा है । यदि गदला प्रतीत होवे तो जानना कि अपक्व मूत्र उतरा है । अर्थात् पानी हजम नहीं हुआ ॥ देहकी कुव्वत घटनेसे मूत्राशयमें मूत्रशुद्ध नहीं होता, एवं अंतर्ब्रणकी सूजनसे मूत्र गदलासा प्रतीत होता है ॥

इनमें गाढा और गदलेकी पृथक् २ परीक्षा इसप्रकार है कि जो मूत्र गाढाहोता है वह ऊपर नीचे समान रहता है । और जो गदला होता है वह बीचमें अथवा नीचे गाढा और पतला प्रतीतहोता है ॥

रसूव (उर्द्धमध्यः अधोभागस्थ)

रसूव तीनप्रकारका है जैसे १ असफल २ औसत ३ फक १ असफल अर्थात् अधोभागस्थित २ औसत मध्यभागस्थित, ३ फक नाम

उद्धभागस्थित-फिर उस रसूबके दो भेदहैं । एकरश्चेत, दूसरारक्तवर्ण, तहाँ सपेदरंगका रसूब उससमय होताहै जब जठरामि (पाकदशा) शुद्धहोतीहै । और रक्तवर्णकाररसूब पाकदशाके गड़बड़ होनेमें दृष्टि-गोचर होता है ॥

पूर्वोक्तपाकदशाकाचक्र.		
ऊर्ध्वस्थ	मध्यस्थ	अधस्थ
शीत	औसत	भस्मकल
और जिसप्रमाणकि मूत्रमें वायुके अंश अधिक होवे तथा पुरुषार्थभी अधिक होवे तो उसके परमाणु मूत्रके ऊपर आजातेहैं ।	मूत्रमें वायु मध्यमदशामें रहे और पुरुषार्थभी देहमें मध्यम होता है तो उसके परमाणु मध्यमें रहतेहैं ।	जब मूत्रमें वायु न्यूनहो तथा देहमें निबलता अधिकहो तो उस मूत्रके परमाणु नीचे बैठ जायेंगे ।

डॉक्टरमिमतानुसारमूत्रपरीक्षा ।

इदानीं कथयिष्यामि चमत्कृतिकरं परम् ।

डॉक्टरमिमतमालोक्य मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥

अर्थ-अब हम परम चमत्कृतिकारक डाक्टरों मतके अनुसार मूत्र परीक्षा कहतेहैं । डॉक्टरोंमें मूत्रको (यूरन) Urin कहते हैं उसकी तीनप्रकारसे परीक्षा फहीहै । अर्थात् आरोग्यावस्थाकामूत्र, रोगीकामूत्र और मूत्रकी दशा निर्णयकरनेकी विधि ॥

आरोग्यावस्थामेंमूत्रकीपरीक्षा

रोग रहित प्राणीका मूत्र निर्मल और फहरवाह (हलके) रंगका होता है । जिसका स्पिसिफिफ्रैक्टोतोल् (वजनमृतनासिबह) १००३ से लेकर १०३० पर्यंत होता है । परंतु कभी २ आहार, विहारके फा-

रणसे न्यूनाधिक होजाता है । अर्थात् जैसा भोजन और चेष्टाकरताहै उसीके अनुसार होता है ॥

जैसे यूरिनापोटास (Urina Potas) अर्थात् द्रव (पतली) वस्तुके पीनेसे पीछे जो फीकेरंगका मूत्रहोताहै उसकां स्फिसिफिकग्रेवटी (तोल) १००३ से १००९ तकहोतीहै ॥

युरैनाकाईलाई (Urina Chyli) अर्थात् भारीपदार्थके पचनेके पश्चात् जो मूत्रहो उसका स्फिसिफिकग्रेवटी १०३० होतीहै ॥

यूरिनासें ग्यूनिस Urina Segunis अर्थात् अत्यंतसोनेके पश्चात् प्रातः कालके मूत्रका स्फिसिफिकग्रेवटी १०१५ से १०२५ तक होताहै । इसी कारण पडताफेलानेसे मूत्रका स्फिफिकग्रेवटी १०२० पर्यंत गिना गयाहै ॥

२४ घंटे अर्थात् आठमहरके करेद्वए मूत्रका प्रमाण ४० औंस अर्थात् सेरसे कुछ अधिक होताहै कि जिसमें १॥ अंशके लगभग भारीवस्तु पाईजातीहै ॥

मूत्र निकलतेही उसमें देहकी गरभीके अनुसार गरमीहोतीहै । तथा एकप्रकारकी गंधहोतीहै । परंतु कुछसमयके पश्चात् यह दोनों बात जाती रहतीहै ॥

तत्कालके मूत्रका खारीस्वादहोताहै, यदि थोडीदर रखादिया जावे तो लैक्टिकएसिड वो एसिटिकएसिड उत्पन्न होनेसे खट्टा होजाताहै । तथा अधिक देरीतक रखरहनेसे उसका घनभाग (म्युकस) नीचे पड़ेमें बैठ जाताहै । जिमें यूरिकएसिडकीकलमें अलग दिखाई देतीहै । यदि उसके पश्चात् देरीतक धरारहनेसे सडजाताहै । और कार्बोनेट आफ एमोनियामें यूरियाके बदलनेसे खारी दुर्गंधितहोजाताहै तथा उसके ऊपरके भागमें झाग प्रतीत होतेहैं । जिसमें फासफेट निमफ मिलताहै उसके । पीछेभी मूत्रको रखनेसे नीलेरंगके कालापनलिये झाग होजाते हैं औरफाई पैदा होजातीहै ॥

मूत्रमें दोप्रकारकी वस्तुरहतीहै । एक आरगेनिक, दूसरी इनआरगेनिक।

आरगेनिक वो वस्तुहै जो जरायुन और उद्भिजके स्वरूपमें मिलतीहै-उनमेंसे इतनीपरतु मुख्यहै यूरिकएसिड-हिप्पूरिकएसिड-लैक्टिकएसिड एमोनियाफानमक और कुछकियेटेन-हीप्टीनैन-इत्यादि ॥

इनआरगेनिक (धातुरूप पदार्थों) मेंसे वह निमकहै जो सोडापोटास-लाइम-मेग्नेशिया-केसाथ कार्बोनिकएसिड-हेड्रोक्लोरिकएसिड-सलफ्यूरिकएसिड-स्फास्फोरिकएसिड केसंयोगसेवनतेहैं और अतिसूक्ष्म प्रमाणमें सिलीका फौलाद क्लोरिन भी मिलताहै ॥

पूर्वोक्त दोप्रकारके अतिरिक्त मूत्राशयकी म्यूकस और एपिथीलियल सेल्सभी मूत्रमें मिलतेहैं ॥

मूत्रमें जो वस्तुहै उनका प्रमाण निम्न लिखित चक्रसे जानो ।

नकसा.

पानी	९५०		हिप्पूरिक एसिड	०	२५
यूरिया	२४	७	फास्फेटनमक	९	००
यूरिकएसिड (पाषाणभाग)	६०	३०	सैलफेट नमक	६	००
क्रियटिन	१	२५	हेड्रोक्लोरेटनमक	८	००
क्रियटिनेन	१	२०	सब मिलकर	१०००	

मूत्रपरीक्षामें इतनी बातोंका जानना मुख्यहै । मूत्रनिकलनेकीरीति, प्रमाण, स्फेस्फिकग्रावटी, रंगत, गंधी, स्वाद, तथा नीचेबैठने वाली वस्तुएँ तहाँ ॥

मूत्रनिकलनेकीरीति ।

जब मूत्र कष्ट और कठिनताकेसाथ निकले तथा पेशाबके स्थानपर दाहहोय जैसे-सूजाक, मूत्राघात, और मूत्राशयकी सूजनमें, तो उसे (डिसयूरिया) कहतेहैं ॥

यदि मूत्रनिकलनेमें अत्यंत कष्टहो और बूंद २ टपके तथा सीवनके स्थानपर दाहपीडा, और मरोडाहो जैसे-तारपीन या मक्खी के खाने अथवा उक्तरोगोंकी अधिकता होनेसे तो उसे (म्यूयूरी) कहते हैं ।

मूत्रका बिलकुल बंद होजाना इस्चुरियाकहाताहै ॥ यह दो प्रकारसे होताहै । एकतो यह कि मूत्रोत्पत्तीही न होना । दूसरे मूत्रके मार्ग रुकनेसे होताहै ॥

मूत्राशयकी सूजनके कारणसे मूत्र वेअखितयार या उसकीहाजत वा रंधारहो, या मूत्राशयकी गर्दनमें फालिजहोनेके कारण बूंद २ मूत्रटपके तो उसको (एन्यूरेसिस) या (इन्कांटीनेन्शआफ्यूरेन्) कहते हैं ॥

रणसे न्यूनाधिक होजाता है । अर्थात् जैसा भोजन और चेष्टाकरताहै उसीके अनुसार होता है ॥

जैसे यूरिनापोटास (Urina Potas) अर्थात् द्रव (पतली) वस्तुके पीनेसे पीछे जो फीकेरंगका मूत्रहोताहै उसका स्पिसिफिकग्रेवटी (तोल) १००३ से १००९ तकहोतीहै ॥

युरैनाकाईलाई (Urina Chyli) अर्थात् भारीपदार्थके पचनेके पश्चात् जो मूत्रहो उसका स्पिसिफिकग्रेवटी १०३० होतीहै ॥

यूरिनासें ग्यूनिस Urina Segunis अर्थात् अत्यंतसोनेके पश्चात् प्रातः कालके मूत्रका स्पिसिफिकग्रेवटी १०१५ से १०२५ तक होताहै । इसी कारण पडताफेलानेसे मूत्रका स्पिफिकग्रेवटी १०२० पर्यंत गिना गयाहै ॥

२४ घंटे अर्थात् आठगहरके करेडुए मूत्रका प्रमाण ४० औंस अर्थात् सेरसे कुछ अधिक होताहै कि जिसमें १॥ अंशके लगभग भारीवस्तु पाईजातीहै ॥

मूत्र निकलतेही उसमें देहकी गरमीके अनुसार गरमीहोतीहै । तथा एकप्रकारकी गंधहोतीहै । परंतु कुछसमयके पश्चात् यह दोनों बात जाती रहतीहै ॥

तत्कालके मूत्रका खारीस्वादहोताहै, यदि थोड़ीदर रखदिया जावे तो लैक्टिकएसिड वो एसिटिकएसिड उत्पन्न होनेसे खट्टा होजाताहै । तथा अधिक देरीतक रखरहनेसे उसका घनभाग (म्युफस) नीचे पेंदेमें बैठ जाताहै । जिमें यूरिकएसिडकीकलमें अलग दिखाई देतीहै । यदि उसके पश्चात् देरीतक धरारहनेसे सडजाताहै । और कारबोनेट आफ- एमोनियामें यूरियाके बदलनेसे खारी दुर्गंधितहोजाताहै तथा उसके ऊपरके भागमें झाग प्रतीत होतेंहैं । जिसमें फासफेट निमफ मिलताहै उसके । पीछेभी मूत्रको रखनेसे नीलेरंगके कालापनालिये झाग होजाते हैं औरकाई पैदा होजातीहै ॥

मूत्रमें दोप्रकारकी वस्तुरहतीहै । एक आरगेनिक, दूसरी इनआरगेनिक।

आरगेनिक वो वस्तुहै जो जरायुज और टद्विजके स्वरूपमें मिलतीहै- उनमेंसे इतनीवस्तु मुख्यहै यूरिकएसिड-हिप्पूरिकएसिड-लैक्टिकएसिड एमोनियाफानमक और कुछक्रियेटेन-फीएटीनेन-इत्यादि ॥

मूत्रकारंग ।

रंगतदार वस्तुके बिना खानेसे भी मूत्रकी रंगतफिकी कहरवाई-भूरी लाल आदि होसकीहै । एवं जब मूत्र पतिल होता है तब फीकेरंगका या साफ या धेरंगहोता है । जैसे पानीपीनेके पश्चात् रुधिरकी न्यूनतामें तथा पानी न पीने-पसीने निकलने इस अवस्थामें मूत्रमें रुधिरके माफिक कालेरंगका रुधिर निकलताहै। और यदि खून ही निकले तो मूत्रका रंग अधिक काला होजाता है। गठियामे नारंगी रंगका पीव मिलनेसे या फास्फे टके मिलापसे मूत्रका रंग दूधके समान होताहै। कमलवायुमें मूत्र पीला कुछ कालौच लिये उतरताहै । इसीप्रकार पतंगकी वस्तु अथवा चुर्कदुर आदिके साग खानेसे मूत्र लालरंगका होताहै । इसीप्रकार जिस २ रंगतके पदार्थ या औषधी यह मनुष्य खाताहै तो मूत्रभी उसी २ रंगका निकलताहै ॥

मूत्रकीगंध ।

यह प्रथम लिख आएहैं कि मूत्रमें एकप्रकारकी गंध होतीहै परंतु कुछकालके बाद सीतल होतेही वह गंध नहीं रहती ॥

मूत्रको अधिक देरतक रखनेसे तेजावके सदृश होजाताहै, और सडनेके सबब उसमें दुर्गंध आने लगतीहै । परंतु मसानेकी सूजनमें सडनेके प्रथमही मूत्रमें दुर्गंध आने लगती है । धातुक्षीण आदि रोगके मूत्रमें मरीमछलाकी या सुदंकीसी दुर्गंध मारने लगतीहै ॥

तथा बहुतसी ऐसी ऐसी वस्तुहैं जिनके भक्षणसे उनकीसी दुर्गंध आने लगैहै जैसे-प्याज, लहसन, तारवीन, और हींगआदि ॥

मूत्रकास्वाद ।

स्वस्थमनुष्यके मूत्रका स्वाद नमकीन और बहूमूत्रके रोगमें मीठा होता है ॥

तलस्थद्रव्य ।

मूत्रमें नीचे बैठनेवाली वस्तु कितनेई प्रकारकी होती है । एकतो वह जो स्वाभाविक गरमीके कारण उसमें मिली रहती है । और बाद शर्दके जमजाती है । जैसे यूरेटस-और क्रोरायडनमक-आदि- । दूसरी नहीं मिलनेवाली वस्तु जैसे-म्यूकस और पीव आदि मूत्रके मार्गसे निकलकर जमजाते हैं । इत्यादि और भी जानने ॥

यूरिया प्रायः अमिश्रित रहताहै यदि किसी वस्तुके साथ मिला होय तो सहजही पृथक् होसकताहै । यह एक कठोर कलमदार वस्तुहै । इस-

पतलीचीजोंके पीनेसे-पसीनेकमनिकलेसे जैसे गरमीकी अपेक्षा शरदीमें गरमहवाकीअपेक्षा शरदहवामें-सायंकालकी अपेक्षा प्रातःकाल दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अथवा मूत्राशयके फैलनेसे मूत्र अधिक उतरताहै ॥

अत्यंत फिकर, शरदीसे ज्वरहोना, इत्यादि कारणभी मूत्रअधिक करनेवालेहैं । तथा पूर्वोक्त नियमके विरुद्ध अर्थात् गाढीवस्तुओंके पीनेसे त्वचा और फुफ्फुसकाकार्य अधिकहोनेसे, तथा हैजा, पित्तज्वर, जलंधर और मूत्राशयमें सूजन होनेके कारण इस प्राणीके मूत्र कम उतरताहै ॥

मूत्रका प्रमाण ।

चिन्हभेद, अवस्था, ऋतु, आहार, देहकीदशापलटना, और विमारी आदिके, कारणसैं मूत्रकी तौलमें कुछ २ भेद होजाताहै । जैसे-पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके, बालककी अपेक्षाजवानी, और वृद्धावस्थामें फरक होजाताहै ॥

कसरत करनेसैं, बहुतपसीना निकलनेसे, सूखेपदार्थखानेसे निद्राके पश्चात् मूत्रकरनेसैभी वजन मूतनासिवह अधिक होताहै । एवं सर्दी, आलस्य, पतली और खट्टी वस्तुकेभोजनसैं तथा पुराने रोगोंमें वजन मूतनासव मूत्रका कम होजाताहै ॥

यदि मूत्रकी तौल एकहजार पांचसौसे कम हो या १०३० से ऊपर होय तो अवश्य कोई रोग होनेकी संभावना जाननी कैभी वजनमूतना सवासे जलभागकी अधिक्यता और कठोरभागोंकी न्यूनता प्रतीत होतीहै प्रायः ऐसे मूत्रोंमें अलव्युमनमिलना है । और वजनमुतनासिवा अधिक होनेसे दृढभागोंमें जैसे यूरिया और शक्कर आदि होनेका संदेह होताहै ॥

कदाचित् मूत्रमें गुरुपदार्थके भारीपनेकी परीक्षा करनी होवेतो उसके यह रीतिहै कि २४ घंटेका जितना मूत्रहो इयट्टाकरे, अथवा रुब समयका न मिले तो प्रातःकालके मूत्रकी स्पेसिफिक ग्रावटी मादूम करके उसके अंत्यके दो अंकोंसैं। २-३३ को गुणनकरे फिर जितना गुणन फलहोय उतनेही घेन भारी वस्तु हजार घेन मूत्रमें समझे ॥

उदाहरण-जैसे मूत्रका वजनमूतनासिवः १२२३ है तो उसके अंतके दो अक्षर अर्थात् २३ तेईस को २०३३ से गुणा करा तो ५३२५९ हुआ अतएव इसी हिसाबके अनुसार एकहजारघेनमें (घेन १ मासेका) ५३। ५९ घेन समझे जातेहैं ॥

मूत्रकारंग ।

रंगतदार वस्तुके विना खानेसे भी मूत्रकी रंगतफिकी कहरवाई-भूरी लाल आदि होसक्तीहै । एवं जब मूत्र पतील होता है तब फीकरंगका या साफ या वेरंगहोता है । जैसे पानीपीनेके पश्चात् रुधिरकी न्यूनतामें तथा पानी न पीने-पसिने निकलने इस अवस्थामें मूत्रमें रुधिरके माफिक कालेरंगका रुधिर निकलताहै। और यदि खून ही निकले तो मूत्रका रंग अधिक काला होजाता है। गठियामे नारंगी रंगका पीव मिलनेसे या फास्फे टके मिलापसे मूत्रका रंग दूधके समान होताहै। कमलवायुमें मूत्र पीला कुछ कालौच लिये उतरताहै । इसीप्रकार पतंगकी वस्तु अथवा चुंकदर आदिके साग खानेसे मूत्र लालरंगका होताहै । इसीप्रकार जिस २ रंगतके पदार्थ या औषधी यह मनुष्य खाताहै तो मूत्रभी उसी २ रंगका निकलताहै ॥

मूत्रकीगंध ।

यह प्रथम लिख आएहैं कि मूत्रमें एकप्रकारकी गंध होतीहै परंतु कुछकालके बाद सीतल होतेही वह गंध नहीं रहती ॥

मूत्रको अधिक देरतक रखनेसे तेजावके सदृश होजाताहै, और सडनेके सबब उसमें दुर्गंध आने लगतीहै । परंतु मसानेकी मूत्रनमें सडनेके प्रथमही मूत्रमें दुर्गंध आने लगती है । धातुक्षीण आदि रोगके मूत्रमें मरीमछलाकी या मुदेकीसी दुर्गंध मारने लगतीहै ॥

तथा बहुतसी ऐसी ऐसी वस्तुहैं जिनके भक्षणसे उनकीसी दुर्गंध आने लगैहै जैसे-प्याज, लहसन, तारवीन, और हींगआदि ॥

मूत्रकास्वादु ।

स्वस्थमनुष्यके मूत्रका स्वाद नमकीन और बहुमूत्रके रोगमें भीठा होता है ॥

तलस्यद्रव्य ।

मूत्रमें नीचे बैठनेवाली वस्तु कितनेई प्रकारकी होती है । एकतो वह जो स्वाभाविक गरमीके कारण उसमें मिली रहती है । और बाद शर्दीके जमजाती है । जैसे यूरेटस-और क्लोरायडनमक-आदि- । दूसरी नहीं मिलनेवाली वस्तु जैसे-म्यूकस और पीव आदि मूत्रके मार्गसे निकलकर जमजाते हैं । इत्यादि और भी जानने ॥

यूरिया प्रायः अमिश्रित रहताहै यदि किसी वस्तुके साथ मिला होय तो सहजही पृथक् होसक्ताहै । यह एक कठोर कलमदार वस्तुहै । इस-

का स्वादु कुछ कडुआ नमकीन सोरैसा शीतल तेजावके समान होता है । यदि इसमूत्रमें २४८ दर्जेकी गर्मी पहुँचाई जायतो इसका स्वरूप पलट जाता है, और उसकी कलम बन जाती हैं । जिसका चित्र हमने इस बृहन्ननिघण्टुरत्नाकरकी दूसरी जिल्दमें दीनाहै यदि फिर उन कलमोंमें कुछ पानी मिलाकर औंटाओ और कुछ जियादा कावॉ-नेट आफवरायटा डालो और वाटरवाथसे उसको सुखाओ फिर एक कैंडाल डालो कि, यूरिया उसमें मिलजाय पीछे उसको छानकर सुखानेसे यूरिया की कलमें प्रगटहोगी । इसकीभी तसवीर प्रथम हम लिख आएहैं । इसीप्रकार डॉक्टरलोग यूरिकएसिड अर्थात् जोमूत्रमें पथरीला भाग मिलारहता है उसकीभी कलम बनातेहैं । विशेष देखनाहो तो डाकटरीकी पुस्तकोंमें देखो ॥

मूत्रपरीक्षाकीतरकीब ।

वैद्यको उचितहै कि, मूत्रकी रंगत, स्वच्छता, दूषितता (मैलापन) गंध, तोल, और गर्मी सर्दी आदि सब जाहिरी अवस्थाओंका निश्चय करना चाहिये ॥

तहां रोगीके मूत्रकरतेही (टेस्पेपर) अर्थात् परीक्षाकरनेके कागदसे (जोहलदी और वनस्पतीके नीले रंगसे रंगाहुआ होताहै) परीक्षा करे । यदि मूत्रमें तेजआवी भाग अधिक होगा तो उसमें हरा कागज डालनेसे सुख होजायगा । और मूत्रमें खारका भाग अधिक होगा तो हलदीके रंगें कागदका रंग भूरा और सुर्खीलिये हो जायगा और तेजावसे सुख हुआ कागज उसमें फिरपहली दशामें आय जावेगा ॥

यदि परीक्षाके समय खार प्रतीत होय तो यह निश्चय करना कि यह विकार अमोनियाके कारण है या और किसीकारणसे । यदि आमो नियाके कारण होगा तो उस कागजकी सुखानेसे । रंग उडजावेगा और अफलीका होगा तो रंग ज्योंका त्यों बनारहेगा ॥ यदि वनसके तो २४ घंटेका समय मूत्र लेकर नापे और (यूरेनामेटर) मूत्रमापक यंत्रद्वारा उसकी स्पेसिफिकग्रावटी मालूम करनी चाहिये ।

एकछोटासा यंत्र शीशेका या पीतलका बनाहुआ होताहै जिसकी अंजनीमें यूरेनामेटरफहतेहैं जिसका चित्र इस खंडके आदिमें देखा उसके साथ एक ग्लास होताहै, जिसमें नंबर की रेखा सिंचीद्वई हो-

तीहै । उसमें स्पेस्फिकग्रावटीके निश्चयकरनेके समय पूर्वोक्त ग्लास अथवा किसी पात्रको समानभूमिमें रखकर यूरेनामेटरको उसमें डालके देखो तो यूरेनामेटरकी डंडी जिस नंबरके साम्हने ठहरीहो उसपर हजार और मिलायदेनेसै स्पेस्फिकग्रावटी मालूम हो जातीहै । जैसे १५ के नंबर पर यूरेनामेटरकी डंडी ठहरी है तो मूत्रकी स्पेस्फिकग्रावटी (भारीपना) १०१५ हुई ॥

यदि यूरेनामेटर यंत्र न मिलसके तो यह रीतिकरे कि कांचके डाटवा ली बोटलका घडाकर उसमें साफजल भरके तोले, फिर उसीके हिसाब माफिक मूत्रको भरके तोले तो मूत्रके भारीपनेका ज्ञान होजायगा ॥

जैसे कल्पनाकरो कि साफपानी बोटलमें ४०० ग्रेन आया फिर उसपानीको निकाल मूत्रभरके तोला तो ४०६ ग्रेन हुआ तो ४०० ग्रेन पानीका भारीपना १००० हुआ तो ४०६ ग्रेन मूत्रका गुरुत्व १०१५ होगा एकग्रेन १५ मासेका होता है ॥

खुर्दवीनयंत्रकावर्णन ।

मूत्रपरीक्षा आदिमें खुर्दवीनका अधिक काम पडताहै अतएव प्रसंगवस उसका वर्णन भी इसी स्थानपर होना ठीक है ॥

आज कल इस खुर्दवीनका वैद्यकमें अधिक काम पडताहै । परंतु उसका मौल्य अधिक होनेके कारण अत्यंत प्रचार नहींहै ॥

खुर्दवीन दो प्रकारकी होती है १ सादां कांच जो केवल शीशाहा होता है । इसमें किसी चीजको देखो तो उसके बडा अक्स होकर नेत्रोंपर गिरताहै ॥

दूसरा मिश्रित जिसमें अनेक टुकडे होतेहैं असलमें इसीको खुर्दवीन कहना चाहिये यद्यपि खुर्दवीन अनेक प्रकारकी है परंतु यहां वैद्यके वर्तने योग्य कहतेहैं । ऐसे खुर्दवीनमे पीतलकी एक टिकटी लकडी पर जडी हुई होती है । एक लंबी डंडी ऊपर और एकडंडी नीचे लगी हुई होती है ॥ तथा उस डंडीमें नलीलगी हुई होतीहै । नलीके नीचे तीन इंचकी लंबी और दो टाई इंच चौडी एक रफेवी होतीहै जिसके बीचमें छेद होता है और छेदके दोनोंतरफ लोहेकी कमानी या और कोई ऐसी वस्तु होतीहै जिसमेंग्लास आदि कोईवस्तु छेदके ऊपर रखी जाय तो रक्खीरहे । इसीप्रकार इसके कितनेही टुकडे होतेहैं देखनेसे मालूम होजावेगा ।

सुर्दवीनकोकाममंलानेकीविधि ।

प्रथमसुर्दवीनके सब टुकड़े सांफहं। यदि मैले हों तो सावरसे पोछ डाले कपड़ेसे न पोछे क्योंकि कपड़ेके पोछनेसे शीशेमें लकीर होजातीहै ॥

देखनेके समय सुर्दवीनको कुछ तिरछीकरलेवे और एक आंख बंदकरके देखे और सुर्दवीनके पेचको इतना घुमावे कि देखनेकी वस्तु दृष्टिके सामने आयजावे तथा सूर्यके प्रकाशमें परीक्षाकरे यदि रात्रि-होतो दीपकके उजेलेमें परीक्षाकरे ॥

जब देखनेकी वस्तु ठीक २ दीखने लगे तब पैन्सिलसे उसकी तसवीर खींचले कि जिस्से याद रहे, पूरा चित्र खिंचजानेके बाद बंद करदे-इस प्रकार पूरी २ परीक्षाकरे इस जगे भूत्र देखनेके सब नियम ठीक २ नहीकहे यदि अधिक देखना होतो डॉक्टरकी पुस्तक से देखो ॥

इति मूत्रपरीक्षासमाप्ता ।

आर्तवपरीक्षा ॥

द्वादशाद्दत्सरादूर्ध्वमापंचाशत्समाःस्त्रियः ॥

मासिमासिभगद्वाराप्रकृत्यैवार्तवं स्रवेत् ॥ १ ॥

अर्थ-बारहवर्षकेउपरांत पचासवर्षकी अवस्थापर्यंत स्त्रियोंके महीनेकी महीने रजोदर्शका रुधिर भगद्वारा सदैव निकला कर्त्ता है ॥

शुद्धआर्तवकेलक्षण ।

शशासृक्प्रतिमंयच्चयद्वालाक्षारसोपमम् ॥

तदार्तवंप्रशंसंतियच्चाप्सुचविरज्यते ॥ २ ॥

अर्थ-शशके रुधिरके रंगका अथवा लासके रसके समानहो और जिस रुधिरके रंगेहुए वस्त्रको जलमें धोनेसे दाग जाय नहीं वो आर्तव उत्तम जानना ॥

मासान्निष्पिच्छदाहातिपंचरात्रानुबंधिच ॥

नैवातिबहुलात्यल्पमार्तवंशुद्धमादिशेत् ॥ ३ ॥

अर्थ-जो महीनेके महीने पिच्छलता-दाह-और पीडाराहित पाँचरात्रिपर्यंत गिरनेवाला-एव न बहुत अधिक न बहुत थोडा परिमाणका निकलनेवाला आर्तव शुद्ध होता है ॥

आर्त्तवकेयथार्थअप्रवृत्तिकेदोष ।

तस्यायथाप्रवृत्त्याहिशारीरामानसास्तथा ॥

व्याधयोबहवःस्त्रीणांजायंतेकृच्छ्रसाधनाः ॥ ४ ॥

अर्थ—यथा नियम रजोदर्शकी प्रवृत्ती न होनेसे स्त्रियोंके शारीरिक और मानसिक विविध कष्टसाध्य पीडाओंकी उत्पत्ती होती है ॥

स्नायूनारक्तयंत्राणांपाचकाम्नेश्चजायते ॥

व्याहतिव्याहतेतस्मिन्सुस्थितिर्नियतेभवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—नियम पूर्वक रजोदर्श होनेसे स्रायु-रुधिरयंत्र-और पाचकामि ये सब क्रिया उत्तम प्रकारसे निर्वाहित होती है ॥ रक्तस्रावके रुकनेसे पूर्वोक्त क्रियाओंमें विपरीतता होती है अतएव स्त्रीजातिकी संपूर्ण पीडा और विषयका ज्ञान करना अत्यंत आवश्यक है ॥

ऋतौकंदूयनंयोनौक्वचिदंगेचवेदना ॥

वाहुल्यंस्वल्पतोवापिचानुबंधित्वमस्यवा ॥ ६ ॥

संरोधःसर्वथावापिवेद्यान्येतानियत्नतः ॥

आमयेष्वखिलेष्वेवभिपग्भिर्योपितांसदा ॥ ७ ॥

ऋतुके समय योनिमें खुजली चले-कमर-तलपट अथवा अन्य किसी-स्थानमें पीडा-रुधिरस्रावकी आधिक्यता-वा अल्पता-अथवा अधिक कालपर्यंत रुधिरका जाना और रुधिरका सर्वथा बंद होजाना इत्यादि विषयको वैद्यजाने इसी प्रकार सर्व समुदाय विशेषकी परीक्षा करके फिर स्त्रियोंकी चिकित्साकरनी चाहिये ॥

इति आर्त्तवपरीक्षा ॥

मलपरीक्षा ।

त्रुटितं फेनिलं रूक्षं धूम्रं वा वातकोपतः ॥

वातश्लेष्मविकारे च जायते कपिशं मलम् ॥

अर्थ—वातके कोपसे रोगीका मल (दस्त) दूदा हुआ, झागदार,

रूखा और धूँके रंगका होता है । वातकफके विकारमें मल काला लालमिले रंगका होता है ॥

बद्धं सुञ्जुटितं पीतं श्यामं पित्तानिलाद्भवेत् ।

पीतश्यामं श्लेष्मपित्तादीषदाद्रं च पिच्छिलम् ॥

अर्थ—वातपित्तके रोगमें बँधाहुआ, दूटा, पीला, श्यामवर्णका मल होता है । कफपित्तके रोगमें पीला, श्याम और कुछ गीला एवं मलाई-दार दस्त होता है ॥

श्यामं ऋटितपीताभं बद्धं श्वेतं त्रिदोषतः ॥

अर्थ—त्रिदोषकेकोपसे काला दूटा, पीला, बँधाहुआ, और सपेददस्त होता है ॥

दुर्गन्धः शिथिलश्चैवविष्टोत्सर्गो यदा भवेत् ।

तदा जीर्णं मलं वैद्यैर्दोषज्ञैः परिभाष्यते ॥

अर्थ—जिस रोगीका मल दुर्गन्धयुक्त, शिथिल उतरे उसको दोषज्ञ वैद्य जीर्णमल कहते हैं ॥

कपिलं गुंठियुक्तं च यदि वर्चोऽवलोक्यते ।

प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते ॥

सितं महत्पूतिगन्धं मलं ज्ञेयं जलोदरे ॥

अर्थ—जिसरोगीका आमिके सदृश वर्णवान् और गांठदार मलहो तो क्षीणमलदोषसे दूषितजानना और जलंधररोगीका मल सपेद बहुतसा दुर्गन्धयुक्तहोता है ॥

श्यामं क्षयेत्वामवाते पीतं सकटिवेदनम् ।

अतिकृष्णं चातिशुभ्रं मतिपीतं तथारुणम् ।

मरणाय मलं किंतु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवम् ॥

अर्थ—क्षयरोगमें मल काला होता है, आमघातसे कमरमें पीडा करता हुआ पीलेरंगका दस्त होता है, और अत्यंत काला, अत्यंत सपेद, अत्यंत पीला, अत्यंत लालरंगका और अत्यंत गरम दस्त होय तो उस रोगीकी अवश्य मृत्युहोय ॥

वातस्य च मलं कृष्णं ततः पित्तस्य पीतविट् ।

रक्तवर्णमलं किञ्चिन्मलं श्वेतं कफोद्भवम् ॥

१ मलका प्रमाण-अवस्था और प्रकृतिके अनुसारहै । जैसे अधिक भोजन वाला मलकोंके दिनमें कईबार दस्तहोताहै पुंवा पुरुषोंके १ बार-

अर्थ—वादीसे काला, पित्तसे पीला और किंचित् लाल, कफसे सपेद रंगका मल होता है ॥

आमं वा श्वेतजं प्राहुः मिश्रितं द्वंद्वजं वदेत् ।

अपक्वं स्यादजीर्णं तु पक्वं स्वस्थमलं भवेत् ॥

अर्थ—सपेद रंगका मल आमका होता है, और जिसमें मिश्रितरंगहो वह द्वंद्वज जानना, अजीर्ण रोगीका मल कच्चा और स्वस्थ मनुष्यका मल पक होता है ॥

अत्यग्नौ पीडिते शुष्कं मन्दाग्नौ तु द्रवीकृतम् ।

दुर्गंधं चन्द्रिकायुक्तमसाध्यं मललक्षणम् ॥

अर्थ—तीक्ष्णाग्निवाले पुरुषकामल गांठदार होता है । और दुर्गंध तथा चंद्रिका युक्त मलहोनेसे रोगीअसाध्य ऐसा जानना ॥

वद्धं श्यामं मरुति कुपिते पित्तकोपे तु पीतं

पानीयाभं सफेनं कफरुपि च मले सान्द्रपांडूरवर्णम् ॥

रक्ते कुद्धे सरक्तं जलनिभमथतत् द्वंद्वकोपेद्विलिंगं

सर्वदोषैः सरोषैर्भवतिकिलमलं रोगिणः सर्वलिंगम् ॥

अर्थ—बधाहुआ, कालामल, वादीकेकोपसे होताहै । पित्तकोपसे पीलावर्ण, कफकोपसे पानीके समान, ज्ञागयुक्त, सघन और सपेद होता है और रुधिरके कोपकरके रक्तवर्ण, पानीके समान मल होता है । द्वंद्वजदोषोंके कोपसे दो दोषोंके चिह्नमिलताहोताहै । और त्रिदोषके कोपसे तीनों दोषोंके चिह्न मिला रोगीका मल उतरता है ॥

बृद्ध पुरुषोंके और जिनको अधिक बैठे रहनेकाअभ्यासहै उनको एकवारसे भी कम दस्तहोताहै । अब कहतेहै कि जिनरोगोंमें दस्त अधिक आतेहै वह येहै । जैसे—आतों में गाठ और सूजन होनेसे, दुष्टभोजन अथवा अपाचक भोजन करनेसे, अथवा जुल्लाप लेनेसे अधिक दस्त होतेहै । एवं आतोंमें घाव होनेके कारण, देहमें अधिकगर्माके कारण, तथा आव हवा के पलट जानेसे, एव भीतरी चोट लगनेसे, शोक, चिंता, और भय आदिकारणोंसे इस मनुष्यके अधिक दस्त होते हैं ॥

मिली हुई लोहमस्म आदि काली वस्तु खानसे दस्त काले रंगका होताहै पतंग आदि औषधसे लाल रंगका, हरासाग आदिसे हरे रंगका, रेवतचीनी आदिसे पीले रंगका दस्त होताहै इसी प्रकार अनेक रंगका दस्त होताहै ॥

दुर्गंधिद्यामर्णं मलमरुणनिभं पांडुराभं विचित्रं
मांसाभं मेचकं तत्प्रभवति मरणायैव रोगान्वितस्य ॥
विश्वं शैथिल्ययुक्तं मुहुरिति निपतत्स्यादजीर्णाच्च वर्ज्यं
दिङ्मात्रं चैतदेवं निगदितमगदैर्लक्षणं वर्चसोऽपि ॥

अर्थ-दुर्गंधयुक्त, काला, किञ्चितलाल, सफेद, अनेकवर्णयुक्त मांसके समान, सुरमईरंगका ऐसा मल होनेसे रोगीमरे और अजीर्णसे दूटा हुआ, शिथिल वारंवार ऐसा मल होता है। ये वैद्योंको किञ्चित् दिङ्मात्र लक्षण मलके कहें। बाकी कुशलवैद्य अपनी बुद्धिसे विचार लेवे ॥

इति मलपरीक्षासमाप्ता ।

मुखपरीक्षा ।

वाते च मधुरास्यत्वं पित्ते च कटुकंतथा ॥

मधुराम्लं कफे चैव सर्वलिङ्गं त्रिदोषजे ॥

अजीर्णं घृतपूर्णस्यात्कपायं वाग्निमांद्यके ॥

अर्थ-अब मुखपरीक्षा कहते हैं जैसे कि वादीके रोगसे रोगीका मुख भीठा होता है पित्तके रोगसे कटुआ और कफके रोगसे मुख भीठा और खट्टा होता है एवं सन्निपातवाले रोगीके मुखका स्वाद भीठा कटुआ और खट्टा होता है अजीर्ण रोगमें मुखका स्वाद घृतपूर्णके सदृश होता है और मंदाग्निमें मुखकास्वाद कषेला होता है इसप्रकार वैद्य मुखकी परीक्षा करें ॥

अजीर्णवस्थामे मल कठोर बड़े लेंच २ अपवा ऊटके मेलके समान गोल २ उतरताहै । हेजाये पतथा और चावलके धोवनकाता दस्त होताहै । आमवात बवासीर, पथरी मूत्रगर्भ, इत्यादि रोगोंमें वरंवार दस्त की क्षमता होताहै इत्यादि ॥

डाक्टरसिमतानुसार मुखपरीक्षा ।

सब लक्षणोंमें प्रथम मुखके लक्षण जानना वैद्यको अत्यावश्यक है । क्योंकि जब रोगी आता है तो प्रथम वैद्यकी दृष्टि मुखपरही जाती है और मुखपरीक्षा द्वारा अनेक रोगोंका ज्ञान होता है ॥

जैसे पीडाके पश्चात् मुखपर प्रसन्नता और उम्मेद प्रगट होय तो उत्तम है परंतु अकस्मात् किसी घोर रोगकी तत्काल निवृत्ति होजाय और मुखपर प्रसन्नता और देदीप्यमानता देखे तो यह बुराहै ॥

जिह्वापरीक्षा ।

जिह्वा शीताखरस्पर्शा स्फुटिता मारुताऽधिके । रक्तश्यामा
भवेत्पित्ते कफे शुभ्रातिपिच्छिला ॥ कृष्णासकण्टका शुष्का-

यदि मुखसे किसी प्रकारका कोई चिह्न जैसे रोगके विना होठ न हिले न नेत्र अच्छीतरह खुले तो यह निर्बलताका धर्म है । पुराने रोगोंमें मुखचमकीला होता है । प्रायः जुजाक-गरमी या भीतरी अन्य रोगोंमें मुखसे फिकर और पीडा प्रतीत होती है । अच्छी रीतिके विचार करनेसे मानसिक विमारियोंमें तथा अन्य घोर विमारियोंमें मुखपर चिंता और जीनेसे निरासता प्रगट होती है ॥

बावरेपनेमें भोलापन विनाकारण हँसी-आती है । मृगीरोगमें निर्वुद्धीपना और सुस्ती प्रतीत होती है दिवानेका मुख भयंभर प्रतीत होता है । नामदोंका मुख सरसिंदगी लिये होता है ऐसा मनुष्य किसीसे आँख नहीं मिलाता ॥

मृत्युके समय मुखपतला-दुर्बल नाककी आगेकीहड्डी निकली हुई कनपटी बैठी हुई हीठ लटकते गालपिचके त्वचा सिमटी हुई-और काली तथा नाकके बाल और पलकोंपर सपेद पिलास लगाहुआ प्रतीत होता है इत्यादि अनेक चिह्न होते हैं ये लक्षण अशुभ हैं ॥

रुधिरके पतले होनेके कारण रोगोंमें मुखफीका और कुछ सूजन लिये होता है पित्तध्वरमें मुख लालरंगका सरतानमें चिन्तायुक्त और नीलतालिये सीसेके रंगका होता है गरमीके रोगमें मट्टीके रंगका पांडुरोगमें पीला तिल्लीके षडी होनेमें मैलयुक्त और फीका होता है ॥

हैजा तथा श्वासके अवरोधमें नीलेरंगका मृगीकी घारिकेपूर्व बैंगनी रंगका मुख होजाता है । इत्यादि और भी अनेक चिह्न होते हैं ॥

इति मुखपरीक्षा समाप्ता ।

१ जिह्वाके देखनेसे बहुधा रोगोंकी परीक्षा होती है—जैसे रुधिरका भ्रमण दोषोंकी कमी बेसीकाहाल आदि और प्रायः आमाशयकी अवस्था उत्तमरीतिसे जानीजाती है । इसका यह कारण है कि लुभावदार शिर्छिकेद्वारा इन रोगोंका विशेष संघष रहता है ।

प्रायः रोगोंकी आद्य अन्त्यावस्था जाननेमें जिह्वासे बहुत सहायता मिलती है । और आरोग्यावस्थामेंभी सर्वप्राणियोंकी जिह्वाका स्वरूप एकसा नहीं होता जैसे—किसीकिसी की लाल किसीकी सफेद, किसीकी स्वच्छ और किसीकी मलिन एवं किसीकी नम्र, और किसीकी कटोर होती है । किसीकी जिह्वा बाहर निकालनेके समय क्षिपिल और किसीकी मोदार आदि विधोंसे चिह्नित होती है ।

सन्निपाताधिके तु सा॥मिश्रिते मिश्रिता ज्ञेया सर्वलक्षणवर्जिता॥

अर्थ—जिस जीभका शीतल कठोरस्पर्श हो तथा फटी हुई प्रतीत होतो वाताधिक्य जानना । पित्ताधिक्यमें लाल और कालेरंगकी, एवं कफाधिक्यसे सफेद और अत्यन्त कफसे ल्हिसी हुई होती है । सन्निपातमें जीभ काटिदार सूखी और काली होती है । और मिश्रित दोषोंसे जीभकाभी रंग मिश्रित होता है ॥

शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटिता रसनानिलात् । रक्ताश्यामा भवेत्पित्ताल्लिप्तार्द्रा धवला कफात्॥परिदग्धा खरस्पर्शाकृष्णा दोषत्रयाधिके ॥ सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषद्वितयलक्षणा ॥

अर्थ—वादीसे जीभ शाकपत्रके समान रूखी, और फटी हुई होती है । पित्तसे लाल और काली एवं कफसे ल्हिसी हुई गीली और सफेद होती है । त्रिदोषकी अधिकतासे जीभ जली हुईसी, खरदरी और काली होती है । एवं द्विदोषकी आधिक्यतासे दोदोषोंके मिले लक्षण होते हैं ।

बब मनुष्य सोकर उठता है तो जिह्वापर मैलकी पतली पपड़ीसी नम जाती है । जो मनुष्य मुख खोलकर सोते है उनकी जीभ सोकर उठनेके बाद सूखीसी प्रतीत होती है बहुतसे रोगोंकी अवस्था जिह्वाके द्वारा प्रतीत होती है । परन्तु हिन्दुस्थानी मनुष्योंको पान तमाखू खानेके कारण जिह्वा परीक्षा करना कठिन है तथापि थोडासा वर्णन हम करते है ।

जैसे जिह्वाका आकार, सूखी, गीली, रंग, थकाघट, आदि वस्तु है ॥ प्रथम वैद्यको जिह्वा निकालनेकी व्यवस्था देखनी आवश्यक है क्योंकि अनेक रोगोमे अनेक प्रकारकी अरस्था होती है जैसे ज्वरमे निर्बलता या मस्तकके रोगोमे रोगी जिह्वा को बाहर नहीं निकालसकता । वातके बहुतसे रोगोमे जिह्वा थरथरती है और रोगी भलेप्रकार वात्तोलाप नहीं करसकता । उसीप्रकार सन्निपातावस्थामे भी जिह्वा थरथरती है । उन्मत्तावस्थामे रोगी जिह्वा निकाले है और फिर तत्क्षण भीतर करलेता है । अर्द्धा गन्धामें जिह्वा एक ओर दबीसी प्रतीत होती है ॥

रोगके निमित्त फर्के जिह्वाका आकार न्यूनाधिक होता है । परन्तु न्यूनता बहुत कम होती है जिह्वाका आकार न्यूनहोना केवल कृशावस्था आदिके कारणसे होता है ॥

जिह्वाका बढना इन कारणोंसे होता है जैसे—जीभमे सूजन, शीतला, लालज्वर, गरमी, पारद आदि द्रुष्ट धातुके भक्षणसे, तथा मुखका आना आदि ।

आरोग्यावस्थामें मुख खोलकर सोनेके कारण जिह्वा सूखी रहती है परन्तु किसी रोगके कारण थूक थोडा प्रगट होता है जैसे—ज्वर, देहके भीतरका दाह और रूपवान् शिथिलिदाहमे, जिह्वापर सूखापन कालौच यठोरता और मलिनता होतो मालूम होता है कि रतुवर्तकेन प्रगट होनेसे रुधिरमे संभीयत होजानेके कारण अतिनिर्बलता आगई है ।

शब्दपरीक्षा ।

गुरुस्वरो भवेच्छ्लेष्मीस्फुटवक्त्रा च पित्तलः ।

उभाभ्यां रहितोवातः स्वरतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ—अब शब्द परीक्षा कहतेहैं—भारीस्वर कफरोगीका और पित्त-रोगीका स्पष्ट उच्चार होताहै, और वात रोगीका इन दोनोंके लक्षणों करके रहित उच्चार (आवाज) होतीहै इसप्रकार स्वरसे रोगकी परीक्षा वैद्यको करनी चाहिये ।

नेत्रपरीक्षा ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामिनेत्रस्यचपरीक्षणम् ।

येपांविज्ञानमात्रेणरोगचिह्नंप्रकाशते ॥

अर्थ—अब हम नेत्र परीक्षाको कहतेहैं जिसको जाननेमात्रसे ही रोगोंके चिह्नप्रकाशित होतेहैं ॥

जिह्वाके शुष्क और मलिनावस्थाके पश्चात् गीलापन होजावेतो उत्तम चिह्नहै अत-एव जैसे २ ब्वर उतरताहै उसीप्रकार कमसे धीरे २ जीभके किनारोपर आर्द्रता आ-तीहै फिर धीरे २ सब पर आतीहै ॥

आरोग्यताकी अपेक्षा रोगमें जीभक्ता वर्ण पलटजाताहै जैसे—रुधिरकी न्यूनतामें प्लो-हको सूजनतामें जिह्वाका रंग पीका होता है श्वास रुकनेकी दशामें नीला या बैजनी, तालु अथवा हलकादिकी सूजन तथा पित्तज्वरमें जीभ संपूर्ण लाल होती है मयजन्य-ज्वरमें तथा अजीर्णमें केवल नोक और किनारे लाल होते हैं ॥

मूच्छा—हैजा और श्वासरोधमें जिह्वाका कार्य मंद होजाताहै और जिह्वाकी सूजनमें अधिक ॥

जिस समय जिह्वा सफेद—देदीप्यमान और मैलसे एकसा आच्छदितहो तो चोरज्वर जानना यदि मैल पल्लिरंगका होता हृदयकारोग तथा रुधिरमें पित्तका मिलाप है ऐसा जानना यदि जिह्वाका मैल भूरा अथवा श्याम होवे तो मिलाप रुधिरके कारण आत्मशक्तिका नष्ट होना सिद्ध होताहै ॥

रक्तज्वर (लालज्वर) में जीभपर सपेदरंगका मैल जमाहुआ होता है और उसमें ला-लरंगके काटे उठे हुए प्रतीत होते हैं और जैसे २ वह मैल दूर होजाताहै—दाने उठे हुए सद्वृत्तके समान प्रतीत होते हैं जिह्वाकी नोक और किनारोंसे धीरे २ मैल दूर होने लगे तो यह चिह्न शुभ है परंतु जिह्वाके मध्य गत उच्च विभागमें बड़े २ भाग श्यक् २ हो तथा जीभ लाल नहो और चमकदार हो जाय तो चिरकालमें पूर्ण आरोग्यता होती है किंतु रोगके फिर उलटनेका संदेह रहता है जब द्वितीय बार रोग प्रगट होता है तब पूर्वोक्त जिह्वाका मैल भी पूर्व नियमानुसार जम जाताहै ॥

वातजन्यनेत्र.

रूक्षाधूम्रातथारौद्राचलाचांतज्व्वलत्यपि ।

दृष्टिर्यदातदावातरोगरोगविदोजगुः ॥ १ ॥

अर्थ—रूख धूँआकेरंगके भयंकर और भीतरसे जाज्वल्यमान ऐसी दृष्टि वात रोगीकी वैद्योंने कहीहै ॥

पित्तकफजन्यनेत्र.

दीपद्वेपितसन्तप्तंवीतिंपित्तेनलोचनम् ।

जलार्द्रज्योतिपाहीनंस्निग्धमंदंकफेनतत् ॥ २ ॥

अर्थ—जिसप्राणीको दीपक अच्छा न लगे तथा गरम पीले ऐसे पित्त-रोगवाले रोगीके नेत्र होतेहैं, तथा जलसे आर्द्र ज्योतिहीन स्निग्ध और मंद ऐसीदृष्टी कफरोग वालेकी होतीहै तथा नेत्रसपेद होतेहै

द्वंद्वज और संनिपातजन्य ।

द्वंद्वदोषेभवेन्मिश्रतूष्णतूष्णविलोचनम् । श्मामवर्णचनिर्भुगं

डाक्टरीमतसेशब्दपरीक्षा ।

बहुतसे रोगोंमें रोगीसे बोला नहीं जाय । जैसे संनिपातकी वेहोसी—बहुतसे रोगमें रोगी समझसके परंतु बोल नहीं सके ऐसे रोगको अंगरेजीमें एफेसीया कहते हैं कथा वाँचनेवाले—बकील—पादरी—और जो अत्यंत पुकारके बोले हैं उनकी आवाज ऐसी वैद्वजातीहै कि प्रतीत नहींहोती गरमीके रोगमें सीटीदेनेका शब्द निकलने लगताहै निर्वल ताके कारण शब्द अत्यंत मंद होजाताहै खसगीमें या शूल आदि पीडाके कारण रोगी चिल्लाने लगताहै इत्यादि जानने ॥

यदि निन्हाका एफही पार मेल दूर हो जाय और जीभ तत्काल घावके समान दरारदार काली और चमकदार होजाय तो यह चिन्ह रोगीके विषयमें अशुभ है । गरमीके रोगमें निन्हाके नीचे और किनारोंपर छोटे २ पाय और फटी हुई होती है । बालों के मुस आनेमें निन्हापर सफेद रंगके दाग पड जाते है ॥

डाक्टरीमतानुसारनेत्रपरीक्षा ।

हृदयमें यंत्र और मूत्रपिहनी क्रियामें जब कुछ बिगाड होता है अपना उदरया कोई रोग उत्पन्न होनेसे प्रथमनेत्रके पलक मुगते हैं । भ्रमरोगमें नेत्रोंके पलक माषनेमें अत्यंत मष्ट होता है । मृगीरोगकी पालीके समय नेत्रके पलक पारंपार मंडित होते हैं पुष्पुम मस्तिष्क और हृदययंत्रमें रुधिरके रुहनेसे तथा टम रुधिरकी गरमीके वेगसे नेत्रया आकार पूर्णरूपसे बढा होता है

तन्द्रामोहसमन्वितम् ॥ ३ ॥ रौद्रं च रक्तवर्णं च भवेच्चक्षुस्त्रिदोषतः
 अर्थ—दो दोषके मिलनेसे दृष्टिभी मिश्रित होती है । अर्थात् वात पि-
 त्तसे घूम और पीले, कफपित्तसे पीले और कीचडसे परिपूर्ण, इत्यादि
 त्रिदोषके कोपसे नेत्र काले विकराल तन्द्रा और मोहयुक्त बीभत्स और
 लाललाल होते हैं ॥

असाध्यलक्षण ।

एकचक्षुर्यदाभीमद्वितीयं मीलितं भवेत् ॥ ४ ॥

त्रिभिर्दिनैस्तथारोगी स या तियममंदि रम् ।

अर्थ—जिस रोगीका एक नेत्र भयंकर और दूसरा मिचाहुआहो वो
 तीनदिनमें यममंदिर अर्थात् मृत्युके मुखमें जाता है ॥

ज्योतिर्विहीनं सहसारा गिणो यस्य लोचनम् ॥ ५ ॥

इंपत्कृष्णं स नियतं प्रयातियमसादनम् ।

अर्थ—जिस रोगीके नेत्र अकस्मात् ज्योतिहीन और कुछ कुछ कालिहो
 वह निश्चय यमालयको जायगा ऐसा जाने ॥

सरत्तंकृष्णवर्णं च रौद्रं च प्रेक्षते यदा ॥ ६ ॥

इतिलिङ्गैर्विजानीयान्मृत्युरेव न संशयः ।

अर्थ—जो रोगी लाल और काले तथा भयानक नेत्रसे देखे इन लक्ष-
 णोंसे वैद्य जाने कि इस रोगीकी मृत्युहीवेगी ॥

एकदृष्टिरचैतन्यो भ्रमन्स्फुरिततारकः ॥ ७ ॥

एकरात्रेण नियतं परलोकपथं व्रजेत् ।

अर्थ—जो एकदृष्टिसे देखे होस होय नहीं तथा जिसकी दृष्टी चारोंतर
 फभ्रमणकरे और तारे फडके वह एकरात्रिमें निश्चय परलोकको पधारे ॥

यामलेऽपि.

शुष्कास्यः श्यामकोष्ठोऽप्यसितरदततिः शीतनासाप्रदेशः ।

शोणाक्षश्चैकनेत्रोलुलितकरपदः श्रोत्रपातित्ययुक्तः ॥

शीतश्वासोऽथ चोष्णश्चसनसमुदयः शीतगात्रप्रकंपः

सोद्विगोनिः प्रपञ्चः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ॥

यामलप्रथमें भी लिखाहै कि जिसका मुख सूखजावे कोष्ठकाला तथा दाँत काले नाक जिसकी शीतल एक नेत्रलाल हाथ पैर गिरेपडे कानोंसे सुने नहीं कभीशीत और कभी गरमी लगे गरम श्वास निकले-सरदीसे देह काँपे-तथा वह रोगी उद्वेग युक्त और प्रपंच रहितहो येलक्षण प्राणीकी मृत्युके समय जानने ॥

॥ इति नेत्रपरीक्षा समाप्ता ॥

स्पर्शपरीक्षा ।

पित्तरोगी भवेदुष्णो वातरोगी च शीतलः ।

पिच्छिलःश्लेष्मरोगीस्यात्रिलिंगात्संनिपातवान् ।

आर्द्रकः स भवेच्छ्लेष्मा स्पर्शतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ-अब स्पर्शपरीक्षाकहतेहैं-जैसे कि पित्तरोगवाले मनुष्यका देह गरम होता है । वातरोगीका शीतल औ कफरोगीका देह पसीनोंसे ल्हि-साडुआसा- होता है । और सन्निपातवाले रोगीका देह तीनोंदोषोंके लक्षणयुक्त होता है । अथवा कफरोगीका देह गीला होता है । इसप्रकार वैद्यको स्पर्शसे परीक्षाकरनी चाहिये ॥

त्वचा व स्पर्श ।

त्वचासे देहकी उष्मा (भाफ) निकलती रहती है इसीकारणसे देहमें समान गरमी रहेहै

युवावस्थावाले प्राणियोंके देहसे २४ घंटेमें ३० औंसके लगभग भाफ

अत्यंत रुधिरके निकलनेसे अत्यंत शुष्क होनेसे रागपदमादि क्षयरोग और निराहारप्रत इत्यादि कारणोंसे नेत्र अत्यंत भीतरकी बैठ जातेहैं यदि एकनेत्र बैठ जावे और दूसरानेत्र यथावस्थित रहे तो उसकी दर्शन संपाद करीं स्नायूका पक्षाघात हुआहै अथवा किसी प्रकारके शिरारोगके कारण यह दशाहुई है ऐसा जाने

यदि दोनोंनेत्र अत्यंत लाल होने तो मस्तिकमें रुधिरका संचय हुआ जानना पांडुरोगमें नेत्र पीले रंगके होतेहैं सरिकमामेनेत्रके संपद भागमें दाह होताहै मस्तिकके उद्वेजन अथवा मस्तिकमें रुधिरके रुकनेसे मृगी सन्यासरोग और अर्धामके खानेसे नेत्रके तारे संकुचित होजाते हैं मस्तिकसे रुधिरके निकलनेमें तथा सन्यास और मूर्च्छा आदिरोगके अरिष्ट लक्षण उत्पन्न होनेसे तारे फटे और फले हुएसे दाखतेहैं घृतराम्यानेसे या नेत्रके चारोंतरफ लगानेसे कर्नातिका फेल जाती है घोर उन्माद रोगमें नेत्र अत्यंत बमकीले तथा स्नायुकी दृष्टतामें नेत्र प्रभारहित होते हैं ।

निकलती है यदि इसे न्यून निकले तो देह सूखी रहती है और अधिक निकले तो देह गीली रहती है ।

हैजा-ज्वर आदिरोगोंमें त्वचा शुष्क रहती है और दाह रोगमेंभी ऐसाही होताहै । देहमें गीलापना पसीनेके कारण होताहै परंतु पसीने आनेके कारण पृथक् है जैसे साधारण ज्वरमें पसीना प्रसिद्धहै परंतु विषमज्वरमें पसीने बहुत आतेहैं क्योंकि उसमें निर्बलता अधिक हो जाती है मरनेके थोड़ी देर पहले पसीना शीतल निकलता है ।

यह प्रसिद्ध नियम है कि दुर्बलताके कारण देहका परिष्म न्यून हो जाताहै तब देह शीतल होजाताहै और शीतल पसीने निकलने लगते है जैसे कि प्रायः विपूचिका (हैजा) में होयहै अथवा हाथपैर अत्यंत शीतलहो और देहके भीतर दाह हो तथा बेचैन चिंतायुक्त दीखे तो जानना कि अब शीघ्रही यह रोगी मरेगा ॥

बहुतसे रोगोंकी परीक्षा देहका गरमीके द्वारा होती है परंतु स्पर्शसे ठीक २ तिश्चय नहीं होता अतएव बुद्धिमानोंने इसके वास्ते यंत्र बनायाहै जिसको थर्मामिटर (Thermameter) कहतेहैं इसके द्वारा गरमीकी न्यूनाधिक्यता ठीक २ हो जाती है ।

थर्मामिटर यंत्र अनेक प्रकारकाहै परंतु सेल्फरैजिस्ट्रिंग सबमें उत्तम होता है इसकी तसवीर इस जिल्दके प्रथमही दीनीहै सो देखलेना ॥

थर्मामिटर लगानेकीविधि ।

थर्मामिटर लगानेका मुख्यस्थान बगलहै परंतु आवश्यकता के समय अन्य अन्य सुखादि स्थानमेंभी लगाते हैं । यदि होसके तो थरमामिटर लगानेके पूर्व एकघंटे रोगीको लिटाए रखे यदि शरदीकी ऋतु अथवा काबुल कश्मार आदि शर्ददेश होवे तो थर्मामिटरको हाथसे मलकर गरम करले कि पारा ९४ चौरानवे अंशपर्यंत चढजावे और गरमऋतु वा गरमदेश जैसे द्रविड आफ्रिका आदि ही तो शीतल जलमें डुबायकर नीचे उतारलेवे फिर जहां लगाना होवे उसजगे लगावे ।

कमसे कम ५ मिनट और बढसे बढ २४ मिनट तक लगावे परंतु चौबीस मिनट लगानेका बहुत थोडा कामपढता है फिर उसको उजे लेमें लेजाकर देखे कि पारा कितने अंश चढाहै

और यहभी निश्चयकरे कि थर्मामिटर लगानेसे पारा शीघ्र चढगया या धीरे २ चढाहै प्राय ज्वरवाले रोगोंमें जबतक रोगकी गरमीकी

ठीक अवस्था नहीं निश्चय करी जाय उससमयतक रोगीके रोगका निश्चय होनाभी सहज बात नहीं है और यहभी ठीक नहीं है कि एक-वारके थर्मामिटर लगानेसे ही रोगका निश्चय होजावे किंतु वैद्यको उचित है कि प्रातःकाल और सायंकालमें लगावे तथा संभव हो तो दिनमें कईवार देहकी गरमी का निश्चय करे ।

आरोग्यके समय ९७-३ से लेकर ९९-५ अथवा १०० से और औसतकं ९८-४ पर्यंत होती है इससे कम या अधिक होंकर उसीजगह रहे तो समझना कि कुछ न कुछ दोष है ।

परंतु यहभी याद रहे कि देहके प्रत्येक स्थान-प्रत्येकदेश प्रत्येक समय प्रत्येक अवस्थामें गरमी एकसी नहीं रहती जैसे मुँह आदिमें गरमी अधिक रहती है ठके हुएकी अपेक्षा खुलेमें छातीकी अपेक्षा हाथ पैरमें बालकोंकी अपेक्षा जवानके एवं जवानकी अपेक्षा बृद्धापमें गरमी अधिक रहती है

प्रातःकालसे सायंकालतक गरमी अधिक होजाती है एवं सायंकालसे प्रातःकालतक न्यून अर्थात् २४ घंटेमें अनुमान १ डिग्री के चढाव उतार होता है शरद सुल्ककी अपेक्षा गरम सुल्कमें गरमी अधिक होती है अर्थात् १०० अंशपर्यंत गरमी पहुच जाती है

गरम जलके स्नानकरनेसे गरमी बढजाती है एवं शीतल जलमें नहानेसे अथवा किसीस्थानपर शरदीं पहुचानेसे अधिक मानसिक परिश्रमसे गरमी न्यून होजाती है ॥

ज्वरमें अधिक गरमीका होना एक साधारण धर्म है इसीसे १०१ दर्जेपर्यंत पारा चढनेसे ज्वर हलका जानना १०५ दर्जेपर्यंत हो तो सामान्य और १०६ से १०७ दर्जेपर्यंत होनेसे भयानक ज्वर जानना यदि इससे भी अधिक अर्थात् ११० से ११२ दर्जेपर्यंत होनेसे रोगीके बचनेकी आशा नहीं रहे १ अर्थात् मृत्यु उसकी समीपही जाननी ॥

बहुतसे रोग देखनेमें थोड़े होते है परंतु थर्मामिटरके लगानेसे रोग अधिक होता है तो मालूम होजाता है बहुतसे रोगी अपना रोग नहीं बतासकते जैसे पागलमनुष्य तो उनकी गरमीका हाल थर्मामिटरलगा नसें प्रत्यक्ष होजाता है

बालकोंमें प्राय ऐसे भयानक चिन्ह दृष्टि आते है कि जिसे उनकी मातापिता शोकवस होजाते है परंतु थर्मामिटरलगानेसे ठीक २ घृत्तांत मालूम होजा

ताहै यदि वास्तवमें किसीप्रकारका अधिक रोग न होवे तो चाहे जैसे दृष्ट लक्षण क्यों नहो परंतु चिंता नही होती

जब ९८ दर्जासे एकभी दर्जागरमी बढेतो नाडीभी प्रत्येक मिनटमें १० गुनी बढ जातीहै जैसे ९८ दर्जेपर नाडी ६० होतो ९९ पर ७० एवं १०० दर्जेपर ८०० एवं १०६ दर्जेपर १४० होजातीहै इसीप्रकार और भेदभी बुद्धिमानोंको डाक्टरके ग्रंथोंसेजानने चाहिये

प्लेक्सी मेटरयंत्र

पेट छातीके देखनेके निमित्त इंग्लैंडके डाक्टरोंने एक यंत्र बनायाहै उसको प्लेक्सीमेटर कहतेहैं इसयंत्रमें हाथीदांतकी एक तख्ती दो इंच लंबी और १ इंच चौड़ी होतीहै उसके दोनोतरफ दस्ते लगे रहतेहैं जिस्से पकडतेहैं । दूसरीवस्तु एकपीतलकी हथौड़ीहोतीहै उसपर रबडलगी रहतीहै उसका दस्ता लकडीका होताहै बस जहां ठोकनाहो वहां प्लेक्सीमेटरके दस्तेको बाँए हाथमें हथौड़ीको पकडकर एकसी चोटलगातेहैं कि जो न अत्यंत धीरेसे न बहुत जोरसे जहां ठोकनाहो वहाँपर मर्दोंमें कपडा हटाकर और औरतोंमें एकमहीन कपडा बराबर एकसा फैलाकर और उसकी सिलवट दूरकरके बाँएहाथकी मध्यमा-अंगुली और तर्जनीखूब जमाकर रखते हैं और दाहिने हाथकी उक्त दो उंगलियोंसे इसप्रकारटोकतेहैं कि हाथ न हिले केवल पहुँचेको हरकत ही जिससे चोट एकसीलगे और उंगलियाँ चोट देनेके समय सीधी रखतेहैं तिरछीनही रखेऔर ध्यानसे परकशनकी आवाजसुने इत्यादि इसका चित्रभी इस पुस्तककी आदिमें है सो देखना ॥

स्टिथसकोपयंत्र

यह यंत्र अनेक प्रकारकाहै । परंतु प्रचलित यंत्रहलकी लकडीकी नली चार इंचसे आठ इंच पर्यंत लंबी होती है एकतरफका शिरा बडा और चपट्टा होताहै जिसपर कान लगाकर सुनते हैं और दूसरा छोटा होताहै जिसको रोगीके देहपर रखतेहैं-इसके द्वारा आवाज सुननेमें बहुत सुगमता पडती है इसकाभी चित्र इसजिल्दके आदिमें लिखाहै एक थस्टि सकोप ऐसाभी बनातेहैं जिस्से छातीके दोनो बगलका शब्द सुना जाय है उसकानाम फ्लूजिविल स्टिथसकोपहै ॥

अवस्था

रोगज्ञानमें अवस्थाका परीक्षणभी एकमुख्यकारणहै क्योंकि प्रत्येक अवस्थामें इसप्रमाणके देहके विभागोंमें कुछकुछफरक पडजाताहै अतएव

रोगभी पृथक् २ उत्पन्न होतेहैं तहाँ मुख्य अवस्थातीनहैं प्रथमबालक-दूसरी युवा-और तीसरी वृद्धावस्था ॥

तहाँ बालक अवस्थामें थोड़ीभी सरदी लगनेसे बालकवीमारहो जातेहैं । दांतनिकलनेके समय प्रायःज्वर, खांसी, फोडा, फुंसी-नेत्रदू खनेके रोग होतेहैं ॥

दूसरीयुवावस्थामें २५ वर्षतक शरीरके बढनेका कार्य परिपूर्णहो जाता है अतएव प्रायःइसी अवस्थामें दौड धूपके कारणशरीरके टूटने फूटनेसे मृत्युकाभयरहताहै ॥

परंतु पच्चीससे उपरांत पचास वर्षतक पथ्यपूर्वक आहार विहारसे रहते कोई रोगनहीं होते ॥

परंतु स्त्रियोंके यथासमय रजोदर्शन होनेसे रोगप्रगटहोतेहैं पचास वर्षके उपरांत तीसरी वृद्धावस्थाका अमल आताहै जिसमें कम २ से

हाथ पैरआदिकमेंन्द्रियें और नेत्र नासिका आदिज्ञानेंन्द्रियें तथा मन इनका न्हास (घटना) होनेलगता है आखिरअत्यंत बुढ़ाहोनेसे मर जाताहै इसप्रकारवैद्यको अवस्थाके सर्व कारणविचारके रोगीका यत्नकरना

जाति

जातिके तीनभेदहैं स्त्री पुरुष और नपुंसक परंतु नपुंसक इन्द्रिय दोनोंके बीचमें मानाहै उसका यत्न पृथक् कहीं नहींलिखा,

जैसे प्रत्यक्ष पुरुषस्त्रियोंके बीचमें बहुत अंतरहै उसीप्रकार उनके रोगोंमें भी अंतर जानना । पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अतिबली और दृढ होते हैं कारण कि उनके सब कार्य कठोर और परिश्रमके हैं । तथा प्रायः पुरुष मादकवस्तु (भांग-अफीम-पोस्त आदि) के खानेवाले होतेहैं इसी कारण उनको अनेकप्रकारके फट्टउठाने पडतेहैं तथा तंदुरुस्तीके कारणों को बसबव अपने रुजगारके नहीं करसके अतएव उनको महामारी आदि दूतके रोग अत्यंत दुःख देते हैं ॥

स्त्रियोंका स्वभावकोमल और निर्बल होताहै और प्रायः घरमें ही बैठी हुई सब घरके कामोंको कराकर्ती हैं बाहर डोलना फिरना कम होता है अतएव इनको दूतके रोगभी कम बाधा करें हैं

स्त्रियोंके निर्बलतासे रोगहोते हैं वो पुरुषोंकी अपेक्षा असाध्य कम होते हैं उसका प्रत्यक्ष दृष्टांत यहीहै कि मनुष्य संख्या (मर्दम सुमारी) के अनुसार पुरुषोंसे स्त्री अधिकहैं तथा स्त्रियोंके महीने के महीने रजोदर्शन होनेके कारण संचित दुष्टदोषनिवृत्तजातेहैं परंतु गर्भजन्य रोग प्रगट होते हैं इसप्रकार वैद्यको जाति विचारकरके यत्नकरना चाहिये

श्रीः ।

अथ कालज्ञानमाह ।

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं शम्भुना स्वयम् ।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥

अर्थ—अब हम कालज्ञानको कहते हैं । जो साक्षात् श्रीशिवने कहा है । जिसके जाननेमात्रसे ही यह मनुष्य त्रिकालज्ञ (अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमानका जाननेवाला) होता है

कालेन सृजते ब्रह्मा कालेन हरते हरः ।

कालेन पाल्यते विष्णुस्तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अब कालको मुख्यत्व दिखाते हैं—जैसे कि ब्रह्मा कालकरके सृष्टीको रचै है, श्रीरुद्र संहार करै हैं, और विष्णु उसीकाल करके जगत्को पालन करते हैं अतएव वैद्य कालको चिंतवन करें ॥

कालज्ञानं कलायुक्तं शम्भुना यच्च भाषितम् ।

येन पण्मासतो मृत्युः पूर्वं ज्ञायेत रोगिणाम् ॥

अर्थ—श्रीशिवका कहा कलायुक्त (शक्ति सहित अथवा उलयुक्त)काल-ज्ञान जिसके जाननेसे लुभहीने पहिले रोगियोंकी मृत्युको वैद्य जान सकता है [उसको कहते हैं]

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।

कालः सुतेषु जागर्ति तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ—कालही प्राणियोंको उत्पन्नकर और संहार करता है । तथा प्राणि-योंके सोनेपरभी काल जागता रहता है । अतएव कालको चिंतवन करे ॥

काले देवास्तथा नागा यक्षाश्चासुरपन्नगाः ।

विद्याधरा मनुष्याश्च सर्वे नश्यन्ति कालतः ॥

अर्थ—कालमें देव, नाग, यक्ष, असुर, पन्नग, विद्याधर, और मनुष्य सर्व नष्ट होते हैं ॥

विरंचिदिनमध्ये तु पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश ।

सोऽपि चाब्दशतांते तु स्वयं कालेन नश्यति ॥

अर्थ—जिसके १ दिनमें चौदह इन्द्र पतन होतेहैं, असाभी ब्रह्मदेव सौवर्षके अंतमें काल करके स्वयं नष्ट होताहै ॥

मातुषस्तु शतंजीवी पुरावेदेषु भाषितम् ।

सोपि कालप्रभावेण विनश्यति न संशयः ॥

अर्थ—वेदमें यह लिखाहै कि मनुष्य सौवर्षजीताहै परंतु वोभी सौवर्षके उपरांत कालके प्रभावकरके नष्ट होताहै ॥

वर्षाशीतं तथा चोष्णं प्रत्यूषं मध्यमं दिनम् ।

अपराह्णं तथा नक्तं रूपं कालस्य कथ्यते ॥

अर्थ—वर्षा, शीत, गरमी, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्ण, तथा रात्रि ये कालकेही रूपहैं । अर्थात् इन्हीमें यह जीव मरताहै ॥

काले फलंति तरवः काले बीजं प्ररोहति ।

काले पुष्पवती नारी सर्वे कालेन जायते ॥

अर्थ—कालमें वृक्ष फलतेहै, कालमें बीज उपजताहै । कालमें स्त्री रजो दर्शवती होतीहै एवं यावनमात्र वस्तुहै सबकालकरके होतीहै ।

कालेऽशनं च तोयं च काले मेषःप्रवर्षति ।

काले कर्म समुद्दिष्टं विपरीतं न शोभनम् ॥

अर्थ—कालमें भोजन पान होताहै । मेषवर्षताहै । और जिस कालमें जो कर्म करना कहाहै उसमें करनेसे शुभ होताहै और विपरीत करनेसे शुभ नहीं है ॥

कालाग्निर्जठरे जातस्तस्य बांछा चतुर्विधा ।

आहारमुदकं निद्रा कामश्चैव चतुर्थकः ॥

अर्थ—जब कालाग्नि उदरमें होतीहै तब उसप्राणीकी इच्छा चार प्रकारकी होतीहै भोजन, जल, निद्रा, और चौथा कामदेव ॥

पट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योमपंचकम् ।

स्वदेहे यो न जानाति कथं वैद्यः स उच्यते ॥

अर्थ—जो वैद्य अपनीदेहमें स्थित छःचक्र, सोलह आधार, और तीनलक्ष व्योमपंचक को नहीं जाने उसको वैद्य किसप्रकार कहना चाहिये ।

तत्रादौ पट् चक्राण्यह

प्रथमं ब्रह्मचक्रं तु लिंगचक्रं द्वितीयकम् ।

तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥

पंचमं कंठचक्रं तु भ्रुवोर्मध्ये तु षष्ठकम् ।

एतानि षट्चक्राणि यो जानाति स वैद्यराट् ॥

अर्थ-अब छः चक्रोंको कहतेहैं-ब्रह्मरंध्र अर्थात् कपाल प्रथमचक्रहै, दूसरा लिंगचक्र, तीसरा नाभिचक्र, चतुर्थ हृदयचक्र, पंचम कंठचक्र और षोडशोके बीचमें छठा-चक्रहै, इन छःचक्रोंको जो जानताहै वो वैद्योंका राजाहै ।

मतान्तर

प्रथमं कपाटचक्रं ज्योतिश्चक्रं द्वितीयकं ।

तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकं ॥

पंचमं नासिकाचक्रं गुदचक्रं तु षष्ठकम् ।

एतानि षट्चक्राणि यो वेत्ति स तु वैद्यभाक् ॥

अर्थ-मतांतरसे कहतेहैं-प्रथम कपाट (घसस्थल) चक्रहै, दूसरा ज्योतिः (प्राण) चक्रहै, तृतीय नाभिचक्र, चौथा हृदयचक्र, पांचवा नासिकाचक्र, और गुदाचक्र छठाहै इन छः चक्रोंको जो जानता है वह वैद्य-शब्दका भागी है ॥

अथ षोडशाधाराण्याह

अहंकारो मनो बुद्धिश्चित्तं कारणमेव च ।

प्राणोऽपानःसमानश्च उदानो व्यान एव च ॥

पृथ्वी आपश्च तेजश्च वायुराकाशएव च ॥

ज्योतीरूपं च तत्रैव षोडशाधारउच्यते ॥

अर्थ-सोलह आधारयेहैं-जैसे १ अहंकार, २ मन, ३ बुद्धि, ४ चित्त, ५ कारण, ६ प्राण, ७ अपान, ८ समान, ९ उदान, १० व्यान, ११ पृथ्वी, १२ जल १३ तेज, १४ वायु, १५ आकाश, और १६ ज्योति रूपजीव ये इसदेहमें सोलह आधारहैं ॥

त्रिलक्षाण्याह

ऊर्ध्वलक्षं भवेत्तालौ मध्यलक्षं भवेद्धृदि ।

अधोलक्षं भवेन्नाभ्यां लक्षातीतं निरंजनम् ॥

अर्थ-तालुएमें ऊर्ध्वलक्ष (जाननेयोग्य) है । हृदयमें मध्यलक्षहै और

नाभिमें अधोलक्षहे परंतु जो लक्षमें न आवे ऐसा निरंजन (परमात्मा) हे
 एकस्तंभं नवद्वारं त्रिशून्यं पंचदेवता ।

पञ्चेन्द्रियकुटुंबेषु यत्रात्मा तत्र मे गृहम् ॥

अर्थ—एकस्तंभ (अहंकाररूपखंभ) नवद्वार (नेत्रनासिकाआदि नौ
 दरवाजे) तीनशून्य, (रजसत्वतम) पंचदेव (पंचतत्त्वदेवरूप) और
 पंचइन्द्रिय सोई हुआ कुटुंब इनमें जहां आत्माहे वही मेरा घरहै, ये
 व्योमपंचक हुआ ॥

कुर्वंशतिसहस्राणि पट्टशतान्यधिकानि च ।

निशाहि चलते प्राणः सोऽपि स्तंभोऽत्र कथ्यते ॥

अर्थ—२१६०० इक्कीस हजार छःसो श्वास इसप्राणीकी दिनरातमें
 चलती हैं इसकोभी स्तंभ कहतेहैं ॥

आत्माशरीरमित्युक्तमन्तरात्मा मनो विदुः ।

परमात्मा भवेत्प्राणः पञ्च तत्त्वानि धारयेत् ॥

अर्थ—शरीरको आत्मा, मनको अंतरात्मा और प्राणोंको परमात्मा
 कहते हैं, येही पंचतत्वोंको धारण करतेहैं ॥

कायानगरमध्ये तु प्रतोली शून्यवद् भवेत् ।

नरेन्द्रो गच्छते तेन तत्पुरं शून्यकं भवेत् ॥

अर्थ—देहरूप नगरमें नस नाडी और इन्द्रिय आदि जो गलीहैं ये
 शून्यहोजातेहैं अर्थात् इनके कार्य बंद होजातेहैं तब प्राणरूप राजा उस
 गलीमें होकर निकल जाताहै । तब यह देहरूप पुर शून्य होजाताहै ।

स्वरोदयमतात्

कायानगरमध्येतु मारुतो रक्षपालकः ।

प्रवेशो दशभिः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलनिर्गमः ॥

अर्थ—अब स्वरोदयके मतसे कालज्ञानको कहतेहैं कि इस देहरूप
 नगरमें श्वासरूप पवनही रखवाली वालाहै उसका १० अंगुल करके
 प्रवेश और बारह अंगुलनिर्गमकहाहै इस्से न्यूनाधिक अरिष्टहोनेका चिन्हहै.

उदयं सूर्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयं यदि ।

ददाति गुणसंघातं विपरीतं विनाशकृत् ॥

अर्थ—स्वर्का उदय नासिकाके दहने मार्गसे हो और वाममार्गसे अस्तहो

तो अत्यन्त गुणदाताहै इसके विपरीतहो अर्थात् वामस्वरसे उदय और दहने स्वरसे अस्तहोवे तो विनाश कर्ता है

संपूर्ण वहते सूर्यः सोमश्चैव न दृश्यते ।

पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थ—यदि सदैव दहना स्वर चले वाम स्वर कभी चले नहीं उस प्राणीकी १५ दिनमें मृत्युहो यह कालज्ञानने कहा है ॥

मासश्चैव तु षण्मासः पक्षश्चैव त्रिमासकः ।

पंचरात्रिर्वहेच्चैक स्तस्य मृत्युर्न संशयः ॥

अर्थ—जिस प्राणीका एकही स्वर एक महीने या छः महीने या एक पक्ष तथा तीनमहीने, या पांचरात बराबर चले उसकी निस्संदेह मृत्युहो

शुक्लपक्षे वहेद्रामं कृष्णपक्षे च दक्षिणम् ।

उभयोस्त्रीणि चाहानि दृश्यते चंद्रसूर्ययोः ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें प्रथम वामस्वर चलताहै, और कृष्णपक्षमें दहनास्वर एवं शुक्लकृष्णपक्षोंमें चंद्र और सूर्य दोनो स्वर तीन २ दिन चलतेहैं ॥

पंचभूतात्मकं दीपं चन्द्रस्नेहेन पूरितम् ।

रक्षेच्च सूर्यवातेन तेन जीवस्थिरो भवेत् ॥

अर्थ—यह पंचभूतात्मक देह रूप दीपक चंद्रस्वररूप तैलसे भराहुआहै इसको सूर्यस्वररूप पवनसे रक्षा करनी चाहिये तो यह जीव स्थिर रहे ॥

आत्मादीपः सूर्यज्योतिरायुस्नेहकलात्मकः ।

कायाकज्जलसंसारे वृत्तिरेखा तनोर्मता ॥

अर्थ—आत्मारूप दीपक सूर्यस्वररूपज्योति आयुरूपी तैल भराहै, इसमें काया रूपी कज्जलहै और इस संसारमें इसप्राणीकी वृत्तिहै वही इस देहकी रेखा कही है

अरुंधती ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।

आयुर्हीना न पश्यंति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥

अर्थ—अरुंधती, ध्रुव, और विष्णुकेत्रिपद (श्रवणनक्षत्रकेतीनतारे) एवं चतुर्थ मातृमंडल(कृत्तिकाके छःतारे)इनको हीनायु मनुष्य नहीं देखसकते ।

अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।

विष्णुस्तु भ्रूद्योर्मध्ये भ्रूद्यं मातृमंडलम् ॥

अर्थ-इस कालज्ञानमें असंधती जीभको कहते हैं । और नासाका अग्र-भाग है वोही ध्रुवका तारा है । दोनों भौंहका बीचहै वोही विष्णुपदैह । और दोनोंभौंहको मातुमंडल कहते हैं । अर्थात् मरणासन्न मनुष्य इनको नहीं देखसकता ॥

अक्षैर्लक्षितलक्षणेन पयसा पूर्णेन्दुना भानुना ।

पूर्वादक्षिणपश्चिमोत्तरदिशां पट्टत्रिद्विमासैककम् ॥

छिद्रं पश्यति चेत्तदा दशदिनं धूम्राकृतिं पश्चिमे ।

ज्वालां पश्यति सद्य एव मरणं कालोचितज्ञानिनाम् ॥

अर्थ-जो रोगी जलमें सूर्य अथवा चंद्र इनके प्रतिबिंबमें पूर्वकी ओर या दक्षिणकीयापश्चिम अथवा उत्तरकी तरफ छिद्र देखे तो कमसे छः-तीन दो-और एक इतने महीने बचे और सूर्यचंद्रका धूम्रवर्णदेखे तो दश-दिन और उसप्रतिबिंबके पश्चिमकी तरफज्वाला देखे तो तत्काल मरण हो यह कालज्ञान के जानने वालोंने कहा है. ॥

मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व ।

पुष्पं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः ।

तथा लिंगमरिष्टारूपं पूर्वरूपं मरिष्यतः ॥

अप्येवतु भवेत्पुष्पं फलेनाननुवांघि यत् ।

फलं चापिभवेत्किञ्चिदस्य पुष्पं नपूर्वजम् ॥

अर्थ-जैसे पुष्प होनेवाले फलका बोधक अर्थात् वृक्षमें फूलके आतेही अनुमानद्वारा निश्चय होताहै कि अब इसमें फलभी आवेगा उसी प्रकार अरिष्टलक्षण (मिश्रमरणसूचक चिन्ह) द्वाराभावी (होनहार) मृत्युका निश्चय होता है । अनेक पुष्पोंमें फलनही आताहै इसी प्रकार कोई २ पुष्पकेबिनाभी होते हैं (जैसे गूलर-पीपरमें)

नत्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते ।

मरणं चापितन्नास्ति यन्नारिष्टपुरःसरम् ॥

मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता ।

अरिष्टं चाप्यसंबुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम् ॥

अर्थ-परंतु अरिष्ट चिन्हके होनेसे अवश्य मृत्युहोये । यह मृत्युही नहीं जिसमें प्रथम अरिष्ट लक्षण उपस्थित नहो । अनेकजगोरेसा बोधहोताहै

कि अरिष्ट लक्षणद्वयहैं और रोगीकी मृत्युनहीं हुई औरकहीं २ मृत्युहो गई परंतु मृत्युके पूर्व कोई अरिष्ट चिन्ह दृष्टनहीं आए । परंतु ऐसाबोध भ्रमात्मकहै इसमें कोईसंदेह नहींहै । जिसको वैद्य अरिष्टजानताहै वह प्रकृति अरिष्ट चिन्हनहींथा अज्ञानसे उसको ऐसाभ्रमहोगया ॥

तानिसौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वातथैवाशुव्यतिक्रमात् ।

गृह्यन्तेनोद्धतान्यज्ञैर्मुर्मूर्धुर्नत्वसंभवात् ॥

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्नगतायुषः ।

अतोरिष्टानियत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—किसी २ मृत्युके पूर्व अरिष्टलक्षण संपूर्ण जानेनही जाते इसका यह कारणहै किये उक्तलक्षण समस्त जो हैं वो अत्यंत सूक्ष्म (वारीक) रूपसे उठतेहैं अथवा जल्दी २ एकलक्षणके होनेपर दूसरालक्षण होनेलगताहै उसका अनुमान मरनेवाले रोगीको नहींहोता । अथवा जैसेये अरिष्टकाज्ञानहो ऐसाविशेष मनको नहींलगाता इसीसे यथार्थज्ञान नहींहोता । इससे यह निश्चयहुआ कि मृत्युके पूर्व ये अरिष्टलक्षण अवश्य उत्पन्नतो होतेहैं, परंतु उससमय यह निश्चय नहीं करता । इसमें निश्चय नहीं होनेका कारण अज्ञानता अथवा यथार्थ निश्चयात्मक मनका न लगाना मात्रहै ॥

गतायुमनुष्यकीचिकित्साकरनेसे अवश्य व्यर्थ परिश्रम होताहै [अर्थात् उसको यश और धन इनमेंसे किसीवस्तुकी प्राप्तिनही होती] अत एव वैद्यको समस्त अरिष्ट लक्षणोंका जानना अति आवश्यकहै ॥

अथातः पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—अब पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्याकरेंगे ॥

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।

तत्त्वारिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोधमे ॥

अर्थ—जिस प्राणीके शरीर मानसिक स्वभाव और प्रकृति ये तीनों पलटजावें वो मरणकेलक्षणहैं । यह भेद संक्षेपसे कहा अब इनको हे वत्स ! व विस्तारसे सुन ॥

कर्णेन्द्रियकीविकृति ।

शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानामभावतः ।

सयुद्रपुरमेधानामसंपत्तौ च निःस्वनम् ॥

तान् स्वनाम्नावगृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ।
 ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीतान् शृणोत्यपि ॥
 द्विपच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।
 न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ।

अर्थ-जो मनुष्य विविधशब्द (बोलना, पाठ, गीत, बाजे, आदि)
 और दिव्य (सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, आदिके) तथा समुद्र, पुरमेघ, आदिके
 न होनेपर इनका शब्द सुने, अथवा इन समुद्रादिके होनेपरभी इनका
 शब्द न सुने, अथवा इनके शब्दको औरही शब्दके समान सुने, तथा
 गौँवके शब्दोंको वनके शब्द समान सुने और वनके शब्दोंको गौँवके
 शब्द समान सुने, एवं शत्रुके वाक्यमें प्रीतिकरे, और माता, पिता, भाई,
 मित्रादिके शब्दको सुनकर क्रुपितहो, अथवा सुनते २ अकस्मात् न सुने
 उस प्राणीकी गतायु (मरणासन्न) जानना । ये कर्णेन्द्रिके चिन्ह कहे ॥

त्वचाकी विकृति ।

यस्त्वृष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ॥
 संजातशीतपिडको यश्च दाहेन पीडयते ॥
 उष्णगात्रोऽतिमात्रं च यः शीतेन प्रवेपते ।
 प्रहारान्नाभिजानाति योऽङ्गच्छेदमथापि वा ॥
 पांशुनेवावकीर्णानि यश्चगात्राणि मन्यते ।
 वर्णान्यभावो राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि ॥
 स्नातानुलिप्तं यश्चापि भजन्ते नीलमक्षिकाः ।
 सुगंधिर्वाति योऽकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥

अर्थ-अब रोगीके स्पर्शकी विप्रातिपत्ति (विपरीतता) दिखातेहैं । कि
 जो मनुष्य शीतलवस्तुको गरमके समान ग्रहणकरे, और गरमवस्तुको
 शीतलके समान, एवं शीतपिडिका देहमें होनेपरभी दाहके मारे पीडित
 हो । जिसका देह गरमहो परंतु मरिशीतके थरथरकाँपे । और लफडी
 तलवार आदिकी चोट लगनेको तथा अंगकटजानेकोभी नजाने, एवं जो
 अंगोंको धूलसे आच्छादितमाने, तथा देहका वर्ण पलट जावे अथवा जि-
 सके देहमें काली, लाल, रेखा होजावे । एवं तत्काल स्नानकराहो और

चंदनादि लेपभी कर रक्खाहो इस प्रकार सुगंधित देहवालेके देहमे नीलीमक्खी चारों तरफसे आनकर बैठें, तथा जिसकी देहमें अकस्मात् सुगंध आने लगे वो १ वर्षमे अवश्य मरे ॥

विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ।

उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥

यस्य दोषाग्निसाम्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिता ।

यो वा रसान्न संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥

अर्थ—जो मनुष्य खट्टेरसको मीठा और मीठेरसको खट्टा इसी प्रकार सर्व, रसोको विपरीतजाने और क्रमपूर्वक सेवनकरेहुएभी मधुरादिरस दोषोंको बढ़ावे और जो वैपरीत्यसे सेवनकरे हुए रस दोष और अग्निकी समानता करे [अर्थात् हितकारी पदार्थ उपद्रव करे । और उपद्रवकारी पदार्थ जिसको हितहो] तथा जो अन्नके रसको न जाने उसको गतआयु जानना यह एकमहीनेमें मरे ॥

सुगंधं वेत्ति दुर्गंधं दुर्गंधस्य सुगंधिताम् ।

यो वा गंधान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जो मनुष्य सुगंधको दुर्गंध और दुर्गंधको सुगंध समझे अथवा जो सुगंध और दुर्गंध किसीको न जाने उसे गतप्राण जानना ये भी एकमहीनेमें मरताहै ॥

द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्थादिशस्तथा । विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥ दिवाज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवावा चन्द्रवर्चसम् ॥ अमेघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्गणान् ॥ तडित्वतोऽसि नान्यो वा निर्मले गगने घनान् ॥ विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलनंवरं ॥ यश्चानिलंमूर्त्तिमंतमन्तरिक्षं च पश्यति ॥ धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ प्रदीप्तमिव लोकं च यो वा घृतमिवाम्भसा ॥ भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्चपश्यति ॥ न पश्यतिसनक्षत्रांयश्च देवीमरुंधतीम् ॥ ध्रुवमाकाशगंगां वा तं वदंति गतायुपम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य गरमी सरदी काल की अवस्था (प्रवातनिर्वात)

और वर्षादि, और दिशा इनको तथा अन्यभाव कहिये द्रव्य गुण कर्मादिकोंको विपरीततासे ग्रहणकरेवो १ मासमें मरे ॥ अब रूपग्रहणको दिखाते हैं कि जो मनुष्य दिनमें ज्योतिवाले पदार्थ (सूर्यचंद्रआदिको) अधिके समान जलते से देखे और रात्रिमें सूर्यको प्रज्वलित देखे अथवा दिनमें सूर्यको चंद्रमाके समान शीतल तेजवाला देखे ॥ एवं विनावादलके जो इन्द्रधनुष और विजली चमकती देखे, तथा विजलीवाले वादलोंकी काले पीले देखे और निर्मलआकाशको बादलोंसे व्याप्त देखे, तो दो या तीन महीनेमें मरे, जो मनुष्य आकाशको विमान यान (रथ घोडा हाथीआदि) और महलोंसे व्याप्त देखे तथा चलती हुई पवनको मूर्तिमान (देवताके आकार अथवा अन्यपुरुषाकार) देखे तथा विना नेत्ररोगके जो मनुष्य पृथ्वीको धूआ, कुहल और बखोंसे आच्छादित देखे तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगतको फुकताहुआ देखे, तथा जलमें डूबाहुआ देखे, तथा पृथ्वीको रेखारचित चतुष्पथके आकार देखे । और जो मनुष्य नक्षत्र सहित अरुंधती ध्रुवकातारा और शिशुमारचक्र को न देखे वो मरणके समीप जानना ॥

ज्योत्स्ना दशोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति ॥

पश्यत्येकांगहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वनाम् ॥

श्वकाककंकगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसम् ॥

पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥

योवा मयूरकंठाभं विधूमं बन्दिमीक्षते ॥

आतुरस्य भवेन्मृत्युःस्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥

अर्थ-जो मनुष्य घूप चांदनी आदिप्रकाशमें दर्पण, पसीने और जलमें अपनी छायाको न देखेयदि देखेतो (हाथ, पैर, मस्तक आदि) एक अंगरहित देखे, अथवा विकृत तथा अन्यसत्त्व (और प्राणी गधा कुत्ते आदि) कीसी देखे, तथा कुत्ता, फाक, कंक, गीध, प्रेत, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सर्प, नाग, और मनुष्य इनकी छायाको विकृतदेखे ॥ तथा जो मनुष्य धुआं रहित अमिकां वर्ण मोरकंठके समान नील देखे तो आतुर (रोगी) की मृत्युहोवे और नैरोग्य पुरुष देखेतो रोगी होय-इति

अथातःछायाविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ-अब छायाविप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे इस जग

छायाशब्दके पश्चात् हीन्धी तुष्ट्यादिकीभी विपरीतता जाननी अर्थात् इनकीभी व्याख्या करेंगे

**श्यावा लोहितका नीला पीतिका वापि मानवम्
अभिद्रवन्ति यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥**

अर्थ-अब छायाकी विपरीतता दिखातेहैं जैसेकि जिस पुरुषके साथ काली, लोहित, (लाल) नीली और पीली छाया दीखे वो गतप्राण जानना अर्थात् मरेगा ॥

**ह्रीश्रियो नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा ।
अकस्माद्यं भजन्ते वा स परासुरसंशयम् ॥**

अर्थ-अब प्रभाकी विपरीतता दिखातेहैं । जिस रोगीकी लज्जा, लक्ष्मी, ओज, स्मरणशक्ति, और कांति, ये अकस्मात् जातीरहें । अथवा जो लज्जा आदिसे रहितहो वह अकस्मात् लज्जा आदि युक्तहोजावे तो वह मनुष्य अवश्य मरे ॥

**यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः ।
उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥**

अर्थ-जिसका नीचेका होठ नीचेको गिरपडे और ऊपरका होठ ऊपरको विपट जावे, अथवा दोनो होठ जामुनके समान काले हो जाँय उस मनुष्यका जीना कठिन है ॥

**आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति च ।
खञ्जनप्रतिमावापि तं गतायुषमादिशेत् ॥**

अर्थ-जिस मनुष्यके दाँत लाल अथवा काले होजावें, अथवा गिर पडें या खंजन पक्षीके समान सपेद और काले होजावें उसे गतायु अर्थात् मरेगा ऐसा जाने ।

**कृष्णा स्तब्धावलित्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै ।
कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥**

अर्थ-जिसकी जीभ-काली, लठर, कफसें ल्हिसी, सूजी और कठोर होजावे वह थोडे समयमें मरेगा ऐसा वैद्य जाने । यह एकमहीनेमेंमरे है ॥

**कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ।
अवस्फूर्जति मग्ना वा न सजीवति मानवः ॥**

अर्थ-जिसकी नाक टेडी, फटीसी, सूखीसी और शब्दयुक्तहो, अथवा भीतरको बैठ जावे वह मनुष्य नहीं जीवे । यह मनुष्य सातरात्रिमें मरेहै ॥

संक्षिप्ते विपमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोचने ॥

स्यातां वा प्रस्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥

अर्थ-जिसके नेत्र संकुचित, ऊँचेनीचे, निश्चैष्ट, लाल, और नीचेको गिरजावें, अथवा जलबँह वो मनुष्य निश्चय गतायु जानना ॥

केशा सीमंतिनो यस्य संक्षिप्ते विनते ध्रुवौ

लुनंति चाक्षि पक्ष्माणि सो चिराद्याति मृत्यवे ॥

अर्थ-जिसके बालोंकी वेनीसी गुथजावे, और दोनों भौंह संकुचित और नीचेको गिरजावें, और जो पलकोंके बालोंकी बारं बारखोले, मुँदे वो थोड़ेकालमें यमराजके गृहको पधारि । यदि ये लक्षण नेरोग्यपुरुषके होते वो छः महीनेमें मरे । और रोगी तीनदिनमें मरे ॥

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ।

एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् जहाति सः ॥

अर्थ-अव देहके अवयवक्रियाकी विपरीतताको कहते हैं, जैसेकि जो मनुष्य मुखमें धरे हुए अन्नको न निगले और जो मस्तकको धारण न करे अर्थात् गेरगेर देवे एकही स्थानमें दृष्टी लगाय दे, शीलताजाती रहे वह तत्कालप्राणोंकी परित्यागकरे ॥

बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति ।

उत्थाप्यमानो बहुशस्तंधीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-बलवान् हो या दुर्बलहो जिसको बहुतसा उठानेपरभी बारं-बार मूर्च्छा आवे उसको धीर पुरुष त्यागदे ॥

उत्तानः सर्वदा शीते पादौ विकुरुते च यः ॥

विप्रसारणशीलो वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ-जो सदैव चित्त सोवे और पैरोंको कभी उठावे कभीधरे कभी मोटे इत्यादि विकृतिकरे, अथवा सुकडेही रखे वो रोगी नहीं जीवे ॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्च यो भवेत् ।

काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तंधीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ- जिसके हाथपैर और श्वास शीतलहो तथा श्वास दृट २ जावे, अथवा काककेसमान श्वासलेवे उसेधीरवेद्य त्याग देवे ये सद्यमरणके चिन्हहैं

निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा ।

सुहृद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानता ॥

अर्थ—जो सोयाही करे जागे नहीं, अथवा जो सदैव जागाकरे सोवे नहीं और जब घोलाचाहे तभी मूर्च्छित होजावे उसे वैद्य त्याग देवे ॥

उत्तरोष्ठश्च यो लिह्यादुद्गारांश्च करोति यः ।

प्रेतैर्वा भापते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जो ऊपरके होठको चाटाकरे, और जो वारंवार डकारलेवे, तथा मृतपुरुषोंके साथ जो भापण करे, उसको प्रेतरूपही जानना ।

स्वेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्त्तते ।

पुरुषस्य विपातस्य सद्यो जह्यात्स जीवितम् ॥

अर्थ—अब शरीर देश विशेषाश्रित व्याधि विशेष अरिष्ट कृतोंको दिखातेहैं—जैसे जिसके रोमांचोंमेंसे रुधिर बहवे लगे वो विपात पुरुष तत्काल जीवनको परित्याग करे ॥

वातष्ठीला तु हृदये यस्योर्ध्वमनुयायिनी ।

रुजात्रविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ—जिसके वातष्ठीला हृदयमें प्रगटहो ऊपरको चढे, और उसमें पीडाहो तथा अन्नमें प्रीत न होवे, वह रोगी भरेगा ऐसा जाने ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोफः पादसमुत्थितः ।

पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥

अर्थ—पैरोंमें सूजनहो और उसमें सोफकेही उपद्रव श्वास प्यास आदि होवे । वो पुरुषको नाशकरे । और मुखसे उठी सूजन उक्त उपद्रवों करके युक्तहो वह स्त्रीको नाश करे, और गुदाकी सूजन स्त्रीपुरुष दोनोंको नष्ट करती है ॥

अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनांडमेद्रता ।

श्वासिनो कासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—खांसी श्वासवाले रोगीके अतिसार, ज्वर, हिचकी, और चमन ये उपद्रव होतेहों तथा अंडकोष और लिंग भग परसूजनहो उसे वैद्य त्याग देवे ॥

स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् ।

बलवंतमपि प्राणैर्वियुज्यन्ति न संशयः ॥

अर्थ—जिसके पसीना और दाह अत्यंतहो ऐसे बलवान् पुरुषको हिचकी और श्वासरोग प्राणरहित करतेहै इसमें संदेह नहीं है ॥

श्यावा जिह्वा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमजति ।

मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-जिसकी जीभ फालीहो और दहना नेत्र बैठ जावे, तथा मुख-मेंसे दुर्गंध आवे उसको वैद्य त्याग देवे ॥

वक्रमापूर्यतेश्रूणां स्विद्यतश्चरणानुभौ ।

चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥

अर्थ-जिसका मुख आंसुओंसे भरजावे, और दोनों पैर पसीजें तथा नेत्र जिसके व्याकुल होजाय वह यमराजके देशको जायगा ऐसा जाने । यह रोगी प्रहर अथवा दोघडीमें मरे है ॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च ।

यस्याकस्मात्स विज्ञेयो गंता वैवस्वतालयम् ॥

अर्थ-जिस रोगीका भारी देह अकस्मात् अत्यंत हलका होजावे वह रोगी यमराजके घर जानेवालाहै ॥

पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगंधांश्च ये नराः ।

मृष्टगंधांश्च ये वांति गंतारस्ते यमालयं ॥

अर्थ-जिन रोगियोंकी देहमेंसे कीच, मछली, वसा, तेल, और घृतकी सीवास आवे, तथा जो दिव्य सुगंधवान् वमनकरे वो यमालयको जायेंगे । यह एक व पंमें मरताहै ॥

यूकाललाटमायांति बलिं नाश्रन्ति वायसाः ।

येषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥

ज्वरातीसारशोकाः स्युर्धस्यान्योऽन्यावसादिनः ।

प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ-जिनके मस्तकपर जूआ आवे और कौआ फाक बलिषो न खांय तथा जिनको कहीं सुस्रनहो वो यमालयजाने वाले है । ऐसा जानना यह अरिष्ट एक वर्षकाहै जिसके परस्पर उपद्रव करता ज्वर अतिसार और सृजनहो। तथा बल मांस ये क्षीण होजाय वह रोगी चिकित्साके योग्यनहीहै

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ।

न शाम्यतोऽन्नपाने श तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ-जिस क्षीणपुरुषकी भूख प्यास हृद्य मिष्ट और हितकारी अन्न जलसे भी शांत न हो उसकी मृत्यु खडीहुई है ऐसा जाने ॥

प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलं च दारुणम् ।

पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरूपस्थितः ॥

अर्थ-जिस रोगीकेप्रवाहिका, मस्तकशूल, घोर उदरशूल, प्यास, और बलहानिहो उसकी मौत खडी है ऐसा जानो ॥

विषमेणोपचारेण कर्मभिश्च पुराकृतैः ।

अनित्यत्वाच्च जंतूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥

अर्थ-अब यह कहते हैं कि इस मनुष्यके अरिष्ट किस तरह उत्पन्न होतेहैं जिनसे यह निश्चय मरताहै । तहां विषम चिकित्सा करनेसे और पूर्वजन्मके कर्मोंकरके, तथा प्राणीमात्रोंको अनित्य होनेसे, जीवोंका जीवन विनाशको प्राप्तहोताहै ॥

प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ॥ मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पति मानवम् ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नन्ति जिघांसया ॥ तस्मान्मोचाः क्रियाः सर्वा भवंत्येव गतायुषः ॥

अर्थ-मरणके समय सब क्रिया निष्फल क्यों होजाती है इसवास्ते कहते हैं कि इसमनुष्यके मरण समय प्रेत, भूत, पिशाच अनेक प्रकारके ब्रह्मरक्षसआदि नित्य इसके मारनेको समीप आते हैं, इसीसे गतायु मनुष्यकी सर्वक्रिया निष्फल होजाती है ॥

इति ।

अथातः स्वभावविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-अब स्वभाव (प्रकृति) विप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे । यहां स्वभाव शब्दके अनंतर आदिशब्द लुप्तहै अर्थात् स्वभावादि विप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

स्वभावादप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्यभावित्वं मरणाय तद्यथा शुक्लानां कृष्णता कृष्णानां शुक्लता रक्तानामन्यवर्णत्वं स्थिराणामस्थिरत्वं मृदूनां स्थिरता चलानामचलत्वमचलानां चलता पशूनां संक्षिप्तत्वं संक्षिप्तानां पृथुना दीर्घाणां ह्रस्वत्वं ह्रस्वानां दीर्घताऽपतनधर्मिणां पतनधर्मित्वं

पतनधर्मिणामपतनधीमत्वमकस्माच्चशैत्यौष्ण्यस्नैग्ध्यरौ
क्ष्यप्रस्तम्भवैवर्ण्यावसदनाश्चाङ्गानाम् ॥

अर्थ-जो देहमें स्वभाव सिद्धपदार्थ हैं उनका शरीरके एकदेशमें विपरीतहोजाना मरणके अर्थ है। जैसे अकस्मात् सपेदपदार्थोंका काला होजाना, और कालोंका सपेद होजाना, लालपदार्थ (होंठ, तालुआदि) का सपेद काला पीला होजाना, स्थिरपदार्थोंका अस्थिर होना और (किश्रुमश्रु आदि कठोर पदार्थोंका) नम्र होजाना और नम्रपदार्थ (मांस, रुधिरादिकोंका) कठोर होजाना इसी प्रकार चलपदार्थोंका स्थिरहो जाना और अचलपदार्थोंका चलायमान होना मोटेनूकी सुकड़जाना सुकड़ेहुओंका मोटा होना, दीर्घोंका ह्रस्वहोना, और ह्रस्वोंका दीर्घहोना विनागिरने वालोंका गिरजाना, और गिरनेवालोंका स्थिरहोना, तथा, शीतलता, गरमी, चिकनाई, रुखाई, स्तब्धता विवर्णता, और विकलता ये अंगोंके विपरीत होना मरणके अर्थ जानने ॥

स्वेभ्यः स्थानेभ्यः शरीरैकदेशानामवस्रस्तोत्क्षिप्तभ्रंतावाक्षि
त्पतितविमुक्तनिर्गतांतर्गतगुरुलघुत्वानि ॥

अर्थ-शरीरके एकदेशोंका अपनेस्थानसे स्थितिलहोना, उनको ऊपरको जाना नेत्रादिकोंका भ्रमणहोना, तिरछागिरना, शिरशीवादिकोंका गिरना, संधी, आदिका लुटना, जिब्हाआदिका निकलना, जिब्हा नेत्रादिकोंका भीतरप्रवेशहोना, वाडुशिरआदि भारीहलकोंका विपरीतहोना, ये लक्षण अरिष्टकरतेहैं ॥

प्रवालवर्णव्यंगप्रादुर्भावोऽप्यकस्मात् । सिराणां च दर्शनं
ललाटे नासावंशे वा पिडकोत्पत्तिः । गोमयचूर्णप्रकाशस्य
वारजसो दर्शनमुत्तमांगे निलयनं वा कपोतकंकप्रभृतीनां
मूत्रपुरीपवृद्धिरभुंजानानां तत्प्रणाशो भुंजानानां । स्तनमू-
लहृदयोरःसुच शूलोत्पत्तयः मध्ये शूनत्वमन्तेषु परिम्ला-
यित्वंविपर्ययो वा तथाद्धीगि श्वयधुः ॥

अर्थ-अकस्मात् लालवर्णका व्यङ्गरोग प्रगटहो, लालवर्णकी नस दी-
खने लगे. मस्तकमें और नासिकाकी हड्डीमें पिडकाकी उत्पत्तिहो,
मस्तकमें गोबरकी घूलसमान रजदीखे, तथा कचूतर कंकआदि पक्षियोंका

मस्तकपरवैठना, विनाभोजनके मल मूत्रकी वृद्धिहोना, अर्थात् अधिक उतरना, और भोजन करेहुओंका मलमूत्रका नाशहोना, स्तनमूल, हृदय, छाती, इनमें शूलकी उत्पत्तिहो । और जिसका देहका मध्यभाग सूजजाय और अंतकेभाग मुरझाए हुएसे होजावें अथवा अंतकेभाग (हाथ-पैरआदि) सूजजाय, और बीचकाभाग मुरझायासाहो अथवा अर्द्धाङ्गमें सूजनहो उसको अरिष्ट है ऐसाजानना यह एकमहीनेका है ॥

शोषोपक्षयोर्वा नष्टहीनविकलविकृतिस्वरता । विवर्णपु-
ष्पप्रादुर्भावो वा दन्तनखशरीरेषु । यस्य वाप्सु कफपुरी-
परेतांसिनिमज्जति । यस्य वा दृष्टिमंडले भिन्नविकृतानि
रूपाण्यालोक्यन्ते ! स्नेहाभ्यक्तकेशांगइव यो भाति यश्च
दुर्बलो भक्तद्वेषातिसाराभ्यां पीड्यते । कासमानश्च तृष्णा
भिभूतः । क्षीणच्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तः सफेनपूयरुधिरोद्गामी
हतस्वरः शूलाभिपन्नश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—अंगोंका सूखना अथवा आधि देहका शोषहोना, एवं स्वर अत्यंत क्षीण हो जाय वा विकलस्वरहो जाय । (गदगदादि स्वर हो जाय) वा विकृत अर्थात् स्वभावसे विपरीतहोजावे तथा दांत नख और शरीरमें विवर्णपुष्प अर्थात् दुष्टरंगकी बिंदु प्रगट होजावें जिसके जलमें कफ, मल और धीर्य डूबजावे । और नेत्रोंके सामने भयानक अनेकप्रकार (तीनशिर, शिर रहित) रूपदीखे । तेल लगाएहुए बाल रूखेसे दीखे, और जो दुर्बल पुरुष अन्नसेद्वेष और अतिसारकरके पीडितहो । जब खाँसे तब तृषासे पीडितहो । क्षीणरोगी वमन, अन्नद्वेषयुक्तहो । तथा ज्ञागयुक्त राध रुधिरकी वमन करे । स्वर बैठ जावे, और शूलसे पीडित हो, उसको अरिष्ट जानना ॥

शूनकरचरणवदनःक्षीणोऽन्नद्वेषी स्रस्तापिंडिकांसपाणिपादो
ज्वरकासाभिभूतः यस्तु पूर्वाणहे भुक्तमपराणहे छर्दयत्यवि-
दग्धमतिसार्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्त्रियते ।
वस्तवन् विलपन् यश्च भूमौ पतति स्रस्तमुष्कस्तब्धमेद्रो
भग्नग्रीवःप्रनष्टमहेनश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—जिसके हाथ. पैर मुख सूजेहुए हों, अन्य अंग क्षीण होगये हों,

अन्नमें अरुचि, सिधिल हैं घोटू, कंधे, हाथ और पैर जिसके, ज्वर खाँसी-
करके युक्त एवं जो प्रातःकालमें भोजनकरेहुएकी अपराद्धमें वमनकरदेवे,
और जिसके विनपचा अन्न दस्तके मार्गहोके निकले, और ज्वर खाँसीसे
व्याप्तहो, वो श्वासरोगसे मरे । एवं बकरेका शब्द समान विलापकरता
हुआ पृथ्वीमें गिर पडे । अंडकोशस्थान छूटजावे, लिंगस्तंभितहो जाय,
नारगिरपडे, तथा लिंगभीतरको चलाजाय । उसको अरिष्टजानना ॥

प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरोयश्चलोष्टलोष्टेनाभिहन्ति
काष्ठंकाष्ठेन तृणानि वाछिनत्तिअधरोष्टंदशत्युत्तरोष्टंवाले
दि॥आलुंचतिवाकर्णौकेशांश्च देवद्विजगुरुसुहृद्द्वैद्यांश्चद्रेष्टि॥

अर्थ—जिस पुरुषका सब देह गीला रहते प्रथम हृदय ही सूखजावे
उसको पक्षभरका अरिष्ट है और मिट्टीके टलेसे टलेको तोडे लकड़ीसे
लकड़ीको और तिनकोंको तोडे. नीचेके होठको दांतोंसे डसे और ऊपर-
के होठको चाटे. और कान माथेके वालोंको तोडे । एवं देव, ब्राह्मण, गुरु,
सुहृद और वैद्य इनसे द्रोहकरे तो उसको १ वर्षका अरिष्ट जानना ॥

यस्यवक्रानुवक्रगाग्रहागर्हितस्थानगताःपीडयंतिजन्मक्षवा-
यस्योल्काशनिभ्यामभिहन्यतेहोरावागृहदारशयनासनया
नवाहनमणिरत्नोपकरणमर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावोवेति॥

अर्थ—जिसके वक्रोग्रह जोग्रह उपस्थितराशिको छंडकरपूर्व भुक्तराशि
पर आजावे और मार्गीग्रह ये दुष्टस्थानपर आनकर जन्म नक्षत्रको
पीडित करे तथा जिसका जन्म नक्षत्र और होरा उल्का (जिसे तारा
दृढा कहते हैं) और विजली करके हतहो एवं पर, स्त्री, शय्या,
आसन, सवारी, वाहन, मणि, रत्न, और सामग्री आदिमें दुष्ट लक्षण
इनके निमित्त करके अरिष्टकी उत्पत्ति होती है ॥

चिकित्स्यमानःसम्यक्चविकारोयोऽभिवर्द्धते

प्रक्षीणवलमांसस्यलक्षणंतद्रतायुषः ॥

निवर्ततेमहाव्याधिःसहसायस्यदेहिनः

नचाहारफलंयस्यदृश्यतेसविनश्यति ॥

अर्थ—जिस रोगीका उत्तम रीतिसे चिकित्सा करते २ परभी रोगबढे
और बलमांस जिसके क्षीण हो जायें वो गतायु जानना । जिस रोगीका

घोररोग अकस्मात् जातारहे और जो भोजनकरे उसका कुछ देहमें (पुष्टाई क्षुधा शांति आदि) फल न दीखे वो रोगी अवश्य मरे ॥

ज्ञानसंबोधनार्थतुलिंगैर्मरणपूर्वकैः ॥

पुष्पितानुपदेक्ष्यामोनरान्बहुविधान्बहून् ॥

नानापुष्पोपमोगंधोयस्यवातिदिवानिशम् ॥

पुष्पितस्यवनस्येवनानाद्रुमलतावतः ॥

तमाहुःपुष्पितंधीरानरंमरणलक्षणैः ॥

स वै संवत्सराद्देहंजहातीतिविनिश्चयः ॥

अर्थ—मरणपूर्वक लक्षणों करके कालज्ञानके जाननेके लिये अनेक प्रकारके बहुतसे पुष्पित मनुष्योंको कहताहूँ । अनेक वृक्ष लतावान् फूले हुए वनकीसी जिसके देहमें दिनरात्रि फूलोंकीसी गंध आवे उसको घोर वैद्य पुष्पित कहते हैं. वो १ वर्षके भीतर निश्चय मरणको प्राप्तहो ॥

एवमेकैकशःपुष्पैर्यस्यगंधःसमोभवेत् ॥ इष्टैर्वायदिवानिष्टैः

सचपुष्पितउच्यते ॥ तद्यथाचन्दनंकुष्ठंतगरागुरुणीमधु॥मा

ल्यमूत्रपुरीषेवामृतानिकुणपानिवा ॥ येचान्येविविधात्मानो

गंधाविविधयोनयः॥तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगते ॥

अर्थ—उसी प्रकार एक एक फूलकी पृथकरसुगंध या दुर्गंध आवे तो उस को पुष्पित कहतेहैं जैसे—चंदन, कूठ, तगर, अगर, सहत, माला, मूत्र, मल मुरदेके समान दुर्गंध, तथा और अनेक प्रकारकी आपकी दुर्गंध आवे वो भी इसी अनुमानसे जरिष्ट गत मनुष्यके देहमें जाननी चाहिये ॥

इदंचाप्यतिदेशार्थलक्षणंगंधसंश्रयम् ॥

वक्ष्यामोयदभिज्ञायभिपक्व मरणमादिशेत् ॥

अर्थ—इस प्रकार वैद्योंके जाननेके लिये गंधसंश्रयलक्षणोंको कहूंगा जिन लक्षणोंको वैद्य जानकर रोगी का मरण कहे (अर्थात् ये रोगी इतने दिनमे मरेगा)

वियोनिविज्वरोयस्यगन्धोगात्रेपुद्ग्यते ॥इष्टोवायदिवानिष्टो

नसजीवतितांसमाम् ॥ एतावद्रंधविज्ञानंरसज्ञानमतःपरम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके देहमें पशु पक्षी आदि कीसी और अनेक प्रकारके रोगोंकीसी गंध आवे चाहिये वो अच्छीहो वो मनुष्य वर्षभर नहीं जीवे यह हमने गंध विज्ञान कहा अब रसज्ञानको कहते हैं ॥

आतुरेषुशरीरेषुवक्ष्यामोविधिपूर्वकम् ॥ योरसः प्रकृतिस्थानां
नराणां देहसंभवः ॥ स एषां चरमेकाले विकारं जतेद्वयम् ।
कश्चिदेवास्य वैरस्य मत्पथं मुपपद्यते ॥ स्वादुत्वमपरं चापि
विपुलं भजते रसः ॥ तमनेनानुमानेन विद्याद्विकृतिमागतम् ॥

अर्थ-अब रोगीके शरीरमें रसज्ञानको विधि पूर्वक कहेंगे नैरोग्य पुरुषोंके
देहका रस जो स्वस्थावस्थामें होता है वही मरणके समय दो प्रकारके
भावको होजाता है किसीके तो सुखमें विरसता हो जाती है और किसीके
मुखमें अत्यंत स्वादुता आयजाती है उसको वैद्य अनुमान द्वारा जानें कि
विकृति आनपहुची है ॥

मनुष्यो हि मनुष्यस्य कथं रसमवाप्नुयात् ॥ मक्षिकाश्चैव यक्षा
श्वदंशाश्च मशकैः सह ॥ विरसादपसर्पति जन्तोः कायान्मुमुर्षु
तः ॥ अत्यर्थं रसकं कायङ्कालपक्वस्य मक्षिकाः ॥ अपि स्नाता
नुलितस्य भृशमायांति सर्वशः ॥ यान्येतानि मयोक्तानि लिंगा
निरसगंधयोः ॥ पुष्पितस्य नरस्यैतैः फलं मरणमादिशेत् ॥

अर्थ-कदाचित् कोई प्रश्नकरे कि मनुष्य मनुष्यके देहका रस कैसे जान
सक्ता है इस लिये धन्वन्तरि कहते हैं कि जिस समय यह मनुष्य मरणोन्मुख
होता है तब इस मनुष्यकी देह विरस हो जाती है अतएव उस गंधके
प्रभावसे मक्खी, यक्ष, मच्छर, डास इत्यादि इसके ऊपर नहीं बैठते हैं
और जब कालकरके अत्यंत देह पक्वहोजाता है तब इसप्राणीके स्नान
करनेके पश्चात् और चंदन आदि लगाने परभी मक्खी पीछा नहीं छोडतीं
तब वैद्य जानलेवे कि इस मनुष्यके देहका रस पलटगया है यह हमने
पुष्पित मनुष्यके रस, और गंधके लक्षण कहे इस्से वैद्य रोगीका मरणकहे ॥

दंतपंक्त्यन्तरे न्यस्तं न विशेदंगुलित्रयम् ।

स याति सतरात्रेण निश्चितं यमसादनम् ॥

जिसके दांतोंके भीतर देनेसे तीन अंगली न जावें, वो निश्चय सातादिनमें मरे
छायां विधोर्न ध्रुवभृक्षमालामालोकयेद्यो न च मातृचक्रम् ।
खंडपदं यस्य च कर्दमादौ कफश्रुतो मज्जति चाम्बुचुंबी ॥

अर्थ-जो मनुष्य चंद्रमाके कलंकको, ध्रुवको, नक्षत्रोंको और मातृमंड-
लको न देखे और कीचआदिमें पैर रखनेसे आधा पैरकाही चिन्ह दखे

और जलमें कफ गेरनेसे जलको लेकर नीचे बैठजावे, उसे अरिष्ट जानना चाहिये ॥

उरः पुरःशुष्यति यस्य चार्द्रं न मांति तिस्रोऽंगुलयश्च वक्त्रे ।

स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्ली निलीयते रिक्तमुखः खगो वा

अर्थ-जिसकादेह चंदन अथवा जलआदिसे गीलाहोकर प्रथम छाती-सूखे, और जिसके मुखमें तीन उंगली न अमावे और जलमें स्नानकरेदुए मस्तकमें धूम (धूआं) की शिखाउठे एवं जिसके मस्तकपर फलधान्या-दिसे रीती चोंचवाले पक्षीबैठे, उसको अरिष्टहै ऐसा जानना ॥

नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वा सुभुक्तोऽपि धृतिं न धत्ते ।

निःश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीःकृशःस्थवीयानपि योप्यकस्मात्

अर्थ-जो मनुष्य, उंगलियोंसे कानोंको बंदकर कानोंके भीतरका स्वाभाविक शब्दको न सुने, और जो बहुत भोजन करनेपर भी तृप्त न होवे, तथा अशोभित अकस्मात् शोभावान् होजाय, और शोभावान् अशोभित हो जाय, एवं जो कृशहै वो मोटाहोजावे और मोटा मनुष्य अकस्मात् पतलाहोजावे तो उसको अरिष्टजानना ॥

अतीवतुच्छं बहुचाल्पहेतोरतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौ ।

अप्यंगुलिक्रांतविलोचनांतो न मेचकं चान्द्रकमीक्षते यः ॥

अर्थ-जो ज्वरादि रोगके विना अत्यंतथोडा भोजन करनेलगे, और भस्मकादिरोगके विना बहुत भोजन करनेलगे, और जो उत्तमविषय तथा दुष्टविषयोंमें अपने सात्म्यको छोड़ देवे, अर्थात् जो उत्तमकर्मकर्ता वो दुष्ट कर्म करने लगे और दुष्टकर्म वाला अच्छेकर्म करने लगे, एवं उंगलियोंसे नेत्रोंको टकने पर मोरचंद्रकके समान तिलमिले अनुभवसिद्धको न देखे उसको अरिष्ट जानना ॥

मध्येललाटं मणिवंधधारी न चाल्पिकां पश्यति यःकलावीम्

अहेतुकं यः श्वगन्धिगात्रः सर्वत्र सीमंतितमूर्धजो वा ॥

जो ललाटपर पहुँचेको धरकर थोडाभी पहुँचेको (कलाईको) न देखे, और बिनाकारण जिसमें मुरदेकीबास आनेलगे, और जिसके समस्त मस्तकमें बालोंकी वेनीसी गुथजावे उसको अरिष्ट जानना ॥

अपिक्षरद्रोमनखः शरीरात्सद्यः स्रवद्रामविलोचनो वा ।

निरीक्षते सत्त्वममानुषं वा विस्रस्तनासानयनश्रुतिर्वा ॥

अर्थ-जिसके शरीरसे रोम और नख स्वयं उखडकर गिरने लगें,

और जिसका वामनेत्रसे आंसु बहनेलगे और जो भूतपिशाचादि प्राणि-
योंको देखे, एवं जिसके नाक, नेत्र और कान ये सिथिलहोजावें,
उसको अरिष्ट जानना चाहिये ॥

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमाम्बुदा यथा ॥

ख्यापयन्ति भविष्यत्वं तथा रिष्टानि पंचताम् ॥

अर्थ—जैसे—पुष्प, धुंआ, और बादल, ये फल, अग्नि, और जलके
भविष्यको प्रगटकरतेहैं, उसीप्रकार अरिष्ट मरणको सूचना करताहै ।
अर्थात् फूलफलको और धुंआहोनेसे अग्नि, एवं बादल होनेसे पानविषने
का भविष्यसूचनाहोताहै । उसी प्रकार अरिष्टद्वारा मरणका बोध होता
है । अरिष्ट दो प्रकारकाहै एक नियत (निश्चित) और दूसरा अनि-
यत (अनिश्चित) है ॥

तानि सूक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् ।

गृह्यन्ते नोद्धतान्यज्ञैर्मुमूर्षोर्नत्वसम्भवात् ॥

अर्थ—उन प्रगटहुए अरिष्टोंको मरणेच्छू मूढमनुष्य अत्यंत सूक्ष्महोनेसे
और शीघ्रनष्टहोजानेसे नहीं जानसक्ता अर्थात् वो परमाणुके समान
अत्यंत सूक्ष्म होतेहैं । और रोगी मतवालासा होताहै इसकारण तथा
जिस समय अरिष्टहुआ उसी समय रोगी मरगया इन सबकारणोंसे
मूर्ख नहीं जानते किंतु यह नहींहै कि वो अरिष्ट उनके न होतेहों इसका-
रणको नहीं जाने ॥

नक्षत्रपीडा बहुधा यथा कालाद्विपच्यते ।

तथैवारिष्टपाकं च ब्रुवते बहुधा जनाः ॥

अर्थ—अब यह कहतेहैं कि । ये अरिष्ट पीडा पञ्चीसवर्षादिमें क्यों
होती है । इसवास्तेहै कि जैसे नक्षत्रजनित पीडा प्रायः कालांतरमें पचती
है उसीप्रकार अरिष्टफलको बहुतसे मनुष्य कहते हैं ॥

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः ।

अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—जो वैद्य गतायु अर्थात् मरणोन्मुखकी चिकित्सा करताहै वो
इसलोकमें सिद्धि (चिकित्साफलधनयशादि) को नहींप्राप्तहोता, अतएव
कुशलवैद्य यत्नपूर्वक अरिष्टोंको देखे ॥

अपसंयुद्धीतश्लोकः न्यस्ताङ्गादिस्वभावा अग्नि च पददल भाषिकारोंऽपुपूर्वं स्वस्पोऽन्जांके
न पश्येत्तनुमित्तरदाशि स्वाक्षि वा रीडचतेजः । भौवादीन्वाप पश्येद्रमइनि च तडिचाप-
पूर्वं निरक्षे स्येन्द्रोश्चिद्रपूर्वं मृत्किदिह च मृत्युअपाजाप्यहोमौ ॥ १ ॥

ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणैस्तत्किलामलैः ।

रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥

अर्थ-अब दोषज अरिष्टों करके मरण निश्चयको दिखातेहैं कि अरिष्ट होनेसे इसप्रकारका अवश्य मरण होताहै । वो अरिष्ट जन्ममरण रागादि दोषरहितब्राह्मणोंकीसेवा, रसायन औषधोंका सेवन, तपश्चरण और गाय-त्र्यादिमंत्रोंके जपकरनेसे निवारण होते हैं। यहकेवल अनियत अरिष्टमें भिषक उपायहै और नियतहै वो दानपुण्यआदि किसी उपायसे दूरनहीं होते ॥

अथ छाया पुरुषलक्षणम् ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामिछायापुरुषलक्षणम् ।

येनविज्ञानमात्रेणत्रिकालज्ञोभवेन्नरः ॥

अर्थ-अब हम छायापुरुषके लक्षण कहते हैं जिसके जाननेसे यह प्राणी त्रिकालज्ञ (भूत-भविष्यत्-वर्तमानका जाननेवाला) होता है ॥

कालोदूरस्थितश्चापियेनोपायेनलक्ष्यते ।

तंवक्ष्यामिसमासेनतथात्तंशंभुनापुरा ॥

अर्थ-दूरस्थितभी काल जिसउपायकरके दृष्टिगोचरहो उसको मैं संक्षेप करके कहूँ जैसे पहिले शिवजीने कहा है ॥

एकांति विजने गत्वा कृत्वादित्यं च पृष्ठतः ।

निरीक्षितनिजांछायांकंठदेशेसमाहितः ॥

अर्थ-कालज्ञानका परीक्षक मनुष्य निर्जन एकांतवनमें जाय समान-भूमिमें सूर्यको पिछाडीकरके सीधा खडाहो फिर अपनी छायाके कंठ-देशमें देखताहुआ सावधानीसे परीक्षा करे ॥

ततश्चाकाशमीक्षितततःपश्यतिशंकरम् ।

अर्हो परब्रह्मणेनमः इतिमंत्रः अष्टोत्तरशतवारंजपेत् ॥

अर्थ-बराबर [दोषही पर्यंत छायाको देखाकरे] फिर उसछायापरसे दृष्टिको उठाकर आकाशकी तरफ देखेतो साक्षात् शिवको देखेगा जिससमयछाया देखनेको खडाहो तब १०८ बार इसमंत्रको पढे " अर्होपर ब्रह्मणेनमः " ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरंहरम् ॥

षणमासाभ्यासयोगेनभूचराणांपतिर्भवेत् ॥

अर्थ-इसप्रकारकरनेसे शुद्धस्फटिकमाणिके समान अनेक रूप धारणक-

र्त्ताशिवको देखे इसप्रकार छःमहीने करनेसे संपूर्णप्राणीमात्रका अधिपतिहो
वर्षद्वयेन हेनाथ कर्त्ताहर्त्ता स्वयंप्रभुः ॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानंदमेवच ॥

अर्थ—दो वर्ष इसक्रियाके साधनकरनेसे स्वयं कर्त्ता हर्त्ता और त्रिकालका जाननेवाला परमानंदयुक्त होवे ॥

सतताभ्यासयोगेननास्ति किंचनदुर्लभम् ॥

अर्थ—इसीप्रकार बराबर नित्यप्रति साधनकर्त्ता रहितो इस संसारमें
ऐसीकोई वस्तुनहीं है जो इससाधकको प्राप्ति नहो ॥

तद्रूपंकृष्णवर्णयः पश्यतिव्योम्निनिर्मले ॥

पण्मासान्मृत्युमाप्नोतिसयोगीनात्रसंशयः ॥

अर्थ—यदि यहयोगी आकाशमें उसछायापुरुषका वर्ण कालेरंगका
देखेतो छःमहीनेमें निःसंदेहमृत्यु हो ॥

पीतेव्याधिभयंरक्ते नीलेहत्यांविनिर्दिशेत् ।

नानावर्णस्वरूपोस्मिन्नुद्देशे गजायतेमहात् ॥

अर्थ—यदि पीलावर्ण देखेतो इसको रोगहो लाल देखेतो भयहो और
नीले वर्णकी छाया देखेतो हृत्पालगे एवं अनेक प्रकारके रंगकी छाया
देखेतो इसके चित्तमें धोर उद्वेग होवे ॥

पादेगुल्फेचजठरे विनष्टेमृत्युमादिशेत् ।

अर्धवर्षेणवर्षेणक्रमाद्धर्षद्वयेनच ॥

अर्थ—छाया पुरुषके पैर-टकना-और पेट न दीखनेसे क्रमपूर्वक छः
महीने वर्षदिन और दोवर्ष में मृत्यु हो अर्थात् पैर नदीखने से छःमहीनेमें
टकना न दीखनेसे वर्षदिनमें और पेटनदीखनेसे दो वर्षमें मरे ॥

विनष्टेदक्षिणेबाहौस्वबंधुर्भ्रियतेध्रुवम् ।

वामे बाहौ तथा भार्या विनश्यतिनसंशयः ॥

अर्थ—छाया पुरुषका दहिना हाथ न दीखनेसे अपना भाई मरे और
बाँयाँ हाथ न दीखनेसे अपनी स्त्रीमरे इसमें संदेह नहीं है ॥

शिरोदक्षिणबाह्वोस्तुविनाशे मृत्युमादिशेत् ।

अशिरामासिमरणविनाजंघेदिनेनवा ।

अष्टभिः कंधरानाशे छायालुप्तचतत्क्षणात् ॥

अर्थ-छाया पुरुषके शिर और दहिना हाथन दीखनेसे मृत्युहो यदि कंधदीखे तो महीनेमें मरे और विना पिंडरीके दीखेतो एकदिनमें मरे कंधानदीखनेसे आठदिनमें और सर्व छाया न दीखेतो तत्कालमृत्युहो, परंतु यह ज्ञान केवल योगियों को होता है अन्यको नहीं ॥

इति कालज्ञानं समाप्तम् ।

वृत्तिभेद (पेशा)

वृत्ति अर्थात् पेशाभी एक रोगका कारण है जैसे जो अत्यंत कष्टकी मेहनत करते हैं जैसे बोझा उठानेवाले उनको वातकी विमारी होती है.

और जो आनंदसे बैठे रहते हैं उनको अरुचि मंदाभि-बवासीर आदि रोग होय है जैसे-शेठसाहूकार-लेखक-चित्तेरे आदिको लुहार घडीसाज-सुनार-रसोय्या और चूड़ी बनानेवाले नेत्रहीन और अन्य २ नेत्रके रोगोंसे ग्रसित होते हैं.

धुनिया, बुहारी (झाड़ू) देनेवाले चून मैदा छाननेवाले प्रायः श्वास रोगी होते हैं.

सीसेके कामकरनेवाले प्रायः पतले हाथके या झुकेहुए पङ्खेके होते हैं दिया सलाईके बनानेवाले हनुस्तंभ आदि रोगमें ग्रसित होते हैं

परंतु जंगली मनुष्य खेती करनेवाले गैया, भेड़, बकराके चरानेवाले प्रायः स्वच्छ पवनके सेवन करनेसे रोगहीन होते हैं.

इत्यादि पेशाका विचारभी घेद्य अवश्य करके पश्चात् चिकित्सा करे.

रीतिभातिके भेदसे जातिभी रोग होनेका कारण है जैसे कि मुसलमान एकही कुलमें विवाह करलेते हैं इस कारण माँबापके रोग पीढीदर पीढीचले जाते हैं और हिंदू जो बहुत छोटी अवस्थामें विवाह करते हैं इसीसे उनकी संतान अत्यंत दुर्बल होती जाती है जैसा कि हिन्दुओंकी संतान प्रथमकी होते ही मरजाती है कदाचित् बचजावे तो बहुतही कमजोर होती है कि उसकी संपूर्ण अवस्था दुःख और अनेक प्रकारके रोग भोगनेमें कटती है तथा जो जवानीमें विवाह करते हैं उनकी संतान हृष्ट पुष्ट और रोगरहित होती है ॥

स्वरूपपरीक्षा ।

वातादीनांस्वरूपंतुप्राङ्मयाकथितंप्रिये

दूषणंपुनरुक्तिःस्यात्तस्मान्नात्रप्रकाशितम् ॥

अर्थ-वातपित्तादिकोंका स्वरूप प्रथम शारीरस्थानमें कह आएहैं फिर कहनेसे पुनरुक्ति दूषण आता है इस कारण यहांपर नहीं कहा ॥

जठरस्थरोगोंकीपरीक्षा ।

तातास्माभिः श्रुतपूर्वनेत्रादीनांपरीक्षणम् ।

अधुनोदररोगाणांपरीक्षावक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाप्रियशिष्यस्यधीमतः

आत्रेयोषकुमारेभेतत्सर्वशिष्यवत्सलः ॥ २ ॥

अर्थ—हारीतकृषि परम कारुणिक सर्वशास्त्रविशारद अपने गुरु श्रीम-
हर्षि आत्रेयके चरणकमलमें प्रणामकर बोलें कि हे तात ! आपने प्रथम
नेत्र आदि परीक्षा कही की जिसे हमको उस विषयमें बहुत कुछ लाभ
हुआ अब आप कृपा करके उदरयंत्रोंकी परीक्षा कहनेको योग्यहो ।
इस प्रकार शिष्यवत्सल आत्रेय भगवान् प्रियशिष्य हारीतके वचन सुन
इस प्रकार कहनेका प्रारंभ करते भए ॥

यकृदामाशयप्लीहाग्रहण्यान्त्राणिवृक्कौ

मलमूत्राशयोयंत्राण्यौदराण्यपराणिच ॥ ३ ॥

तेषां विकृतितोयानिलक्षणानि भवन्ति हि ।

शृणुतावहितावत्सावच्चिसोऽहंसमासतः ॥ ४ ॥

अर्थ—यकृत आमाशय प्लीहा संग्रहणी संपूर्णअंत वृक्क दोनो मलाश-
य और मूत्राशय ये सब इसी प्रकार औरभी अनेक उदरयंत्र विद्यमान
होकर अपने २ कार्यको करते हुए प्राणियोंकी जीवनरक्षा करते हैं । इन
में किसी प्रकारका विकार होनेसे जो लक्षण होते हैं उनको मैं संक्षेपसे
वर्णन करताहूँ उनको वृ सावधान होकर सुन ॥

उदरेसर्वहस्तस्यस्थापयेन्मध्यमांगुलीम् ।

तामन्यस्यकरस्याग्रैरंगुलीनां विधानतः ॥ ५ ॥

अभिहत्याभिघातोत्थैर्ध्वनिभिर्विविधैर्भिषक् ।

क्रियाविशेषान्त्रयंत्राणां विद्यादुदरवर्तिनाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—तहाँ प्रथम अभिघात परीक्षा कहते हैं जैसे—परीक्षा करनेवाले
रोगिके पेटपर वैद्य अपना बायें हाँथके बीचकी अँगुली धरके उसके
ऊपर दहने हाथकी सब अँगुलियोंको एकत्रितकर ताडना । करनेसे
पृषक् २ शब्दद्वारा उदर यंत्रोंकी पृथक् २ अवस्थाका ज्ञान होता है
सो आगे लिखते हैं ॥

यकृद्देशान्मन्दतरःशब्दः प्रकृतितो भवेत् ।

शून्यामाशयतःशब्दोजायतेशौन्यगर्भिकः ॥ ७ ॥

वातेर्वायुदिवावाष्पैःपूर्णश्चामाशयोभवेत् ।

ततःप्रादुर्भवेच्छब्दोवाताध्मातोद्दतेर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—यकृतके ऊपर स्थितउदरके भागमें ताडना करनेसे अस्फुट धीरा शब्दप्रतीतहोवे । शून्य अमाशयके ऊपर ताडना करनेसे जैसाशून्य (रीते) पात्रकी आवाजहो ऐसी ध्वनि निकलती है । यदि आमाशय-वायु अथवा वाष्प द्वारा पूर्ण होनेसे हवाभरी हुई धौंकनीके शब्दसदृश आवाजनिकलती है ॥

वायुनास्फीतिमापन्नेप्रहतेचमलाशये ।

प्रतिध्वनिर्भवेच्छब्दोमन्दःस्यान्मलपूरिते ॥ ९ ॥

उदकोदरिणंकृत्वासर्वथापार्श्वशायिनम् ।

तस्योर्ध्वपार्श्वविधिनापरीक्षेताभिघाततः ॥ १० ॥

अर्थ—वायु पूर्ण मलाशयके ऊपर आघात (चोटदेने) से प्रतिध्वनि-अर्थात् जैसी चोटदेने से आवाजहोती है (उसीके माफिक) आवाजहो यदिमलाशय मलपूरीत होवे तो मंद २ शब्दनिकले । जलंधर रोगीको किसी एककरवटसुलायकर ऊपरके पार्श्वमें आघात (चोट) से परीक्षाकरे

स्वभारत्संचितंतोयमध्येव्रजतिनिश्चितम् ।

तदूर्ध्वमुपतिष्ठतेक्षिप्रमंत्राणिवत्सकाः ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वगतेभ्यश्चात्रिभ्यःशब्दश्चाध्मानिकोभवेत् ।

अभिघातपरीक्षयंमयाप्रोक्तासमासतः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार सोते हुए जलंधररोगीके पेटका संचित जलसमूह अपने भारीपनेके बससे नीचेको उतर बीचमे रहता है और आंतडें सब उपरहीके पसवाडेमें रहजाती हैं इसकेऊपरके पसवाडेमें आघात करनेसे आध्मानिक शब्दहोता है यह मैंने अभिघातपरीक्षा संक्षेप से कही है ॥

भोजनादुदरस्योर्ध्वगौरवंजायतेमहत् ।

शिरोरुग्वक्त्रवैरस्यंहृदाहोवमथुस्तथा ॥ १३ ॥

रसनामलसंपूर्णाक्लान्तिर्हृदयवेपनम् ।

निद्रानाशोग्रिमान्द्येस्याज्जाडयंदुःस्वप्नदर्शनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—आमाशयकी विकृति से मंदाग्रिमा रोग होता है भोजनके उप-रांत पेट अत्यंत भारीहो मस्तकपीडा-मुखमे विरसता-हृदयमें दाह-

वमन-जीभपरमैलका जमना-क्लांति-हृदयका फडकना-निद्रानाश-तथा
निद्रा आवेतो बुरे २ स्वप्न दीप्ते-और इसमंदाभि रोगमें प्राणो जकड़ा-
साहो जाता है ये सबलक्षण होते हैं ॥

आमाशयव्रणेनृणांजायतेपरिकर्तिका ।

वांत्यातदाज्ञयेशून्येवेदनासाप्रशाम्यति ॥ १५ ॥

भोजनाद्वांतिरेवस्याच्छेष्मशोणितसंयुता ।

रुधिरस्यापिवमनंरक्तपित्तस्यवाभवेत् ॥ १६ ॥

पुरीषैर्मलिनंरक्तंनिर्यायाद्बद्धतोऽपिच ।

प्रायशोयोपितामेवव्याधिःस्यादतुरोधतः ॥ १७ ॥

अर्थ-आमाशयमें घावहोने से उसमें कतरमे कीसी पीडा होवे, जब
वमन होनेसे आमाशय खाली होजावे तब पीडाभी शांति होजावे ।
तथा भोजनके पश्चात् कफ अथवा रुधिर मिली वमन (रद्द) वा केवल
रुधिरकी रद्द अथवा रक्तपित्तकी वमनहो एवं मल (विष्टाके) साथ रुधिर
निकले ये संपूर्ण लक्षण होते हैं । यह व्याधि प्रायःस्त्रियोंके होतीहै
स्त्रियोंके ऋतुके न होनेसे यह रोग होताहै ॥

पशुकाधोयकृत्प्लीहानाविकृत्योऽनुभूयते ।

दक्षिणाञ्चूचुकात्रिम्नेद्व्यङ्गुलाद्यकृतःस्थितिः ॥ १८ ॥

अतीत्यैकांगुलिस्थानंपशुकाभ्यश्चनिश्चितम् ।

उरःप्राचीरसंकोचाद्विवृद्ध्याहृदयस्यच ॥ १९ ॥

वायुनाफुफ्फुसस्फातयक्षोभणैरपरैरपि ।

यकृत्स्थानात्प्रच्यवतेनतद्बृद्धंविधारयेत् ॥ २० ॥

अर्थ-रोगरहित प्राणिके यकृत (कलेजा) प्लीहा (तिल्ली) पसलीके
नीचे टटोरनेसे मतीत नही होती । दक्षिण स्तनके दो अंगुल नीचेसे
पसलीके नीचे एक अंगुलपर्यंत स्थानमें व्याप्त यकृत को जानना । वक्ष-
स्थल प्राचीका संकोच हृदयकी संवृद्धि-वायुके फुफ्फुसका परिपूर्ण होना-
तथा अन्य २ क्षोभकारक कारण द्वारा यकृत हटकर नीचेको आजातीहै
इसप्रकार नीचेको आई हुई यकृतको बढीहुई कहनेसे भ्रमनहीं होता ॥

दक्षिणेशकलेप्रायोविद्रिधिर्यकृतोभवेत् ।

हिक्काश्वासोवामिःकासोजायतेतीव्रवेदना ॥ २१ ॥

नशक्तिःज्ञयनेतस्यसव्येपार्श्वेभवेच्चतु ।

इतिप्रोक्तसमासेनयकृद्विद्रधिद्विलक्षणम् ॥ २२ ॥

अर्थ-यकृतमें विद्रधि रोगहोनेसे हिचकी-श्वास-वमन-खांसी-इत्यादिसे तीव्रपीडा हो तथारोगीसे वाइ करवट नही सोया जावे इत्यादि संपूर्ण लक्षण होते हैं इसप्रकार यकृत विद्रधि के लक्षण भेने कहे हैं यकृतके प्रायःदहने खंडमें विद्रधि होती है ॥

अनुभूयेतहस्तेनप्लीहाचयदिकस्यचित्

तदातंव्याधितंविद्यात्तेनरक्तक्षयोभवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-प्लीहा (तिल्ली) यदि हाथोसे प्रतीत होने लगे अर्थात् टटोरनेसे मालूम होनेलगे तो जानेकि इसके रोग है प्लीहाके वठनेसे मनुष्यका रुधिर क्षीण होता है ॥

पश्चान्मलाशयाद्वृक्कौवर्त्ततेचोदरान्तरे ।

तत्ररक्तावरोधेनमूत्रंस्तोकृत्यजेन्नरः ॥ २४ ॥

मूत्रंसशोणितंवापिवेदनात्त्रदारुणा ।

तथास्पर्शासहत्वंचवृक्कविकृतिलक्षणम् ॥ २५ ॥

अर्थ-मलाशयको पिछाडी दोवृक्क है उसवृक्कमें रुधिर रुकनेसे मूत्र थोडा उतरता है अथवा रुधिरयुक्त मूत्रउतरे तथा उसमें दारुणपीडाहो इसपीडाके कारण स्थानके इस छूनेमें रोग न सहाजाय । ये वृक्कमें विकार होनेसे लक्षण होते है ॥

विकृतेतिलकेनृणांमलंमदोद्युतंभवेत् ।

अग्निमांद्यंभवेच्चापिदौर्वल्यंचाप्यजीर्णता ॥ २६ ॥

अंत्रावरोधाद्भ्रान्तिःस्यादवसादश्चचेतसः ।

विद्संगो वेदनात्युग्रा पुरीषवमनं तथा ॥ २७ ॥

अर्थ-तिलक (क्लोम) की विकृति होनेसे समेदमल-मंदापि-दुर्बलता और अजीर्ण रोग होते है तथा अंत्रावरोधरोग-वमन-चित्तकी असावधानता कोष्ठ रोग उग्रपीडा और मलकीरद-ये सब लक्षण होते है ॥

रोगस्थानादधश्चात्रेशून्यतोपरिपूर्णता ।

रोगेणानेनचाक्रांतोनरः प्रायस्त्यजत्यसून् ॥ २८ ॥

मलमूत्राशयोदुष्टैर्मेहानाहादिकान्बहून् ।

व्याधीन्जनयतोदुष्टाग्रहणीवह्निमन्दताम् ॥

अर्थ-रोगस्थानके नीचे अंत्राशयमें शुन्यता और ऊपरके भागमें पूर्णता प्रतीत होती है । इससे व्याप्त रोगीके जीनेकी आशा नकरे । इसजगे संक्षेपसे उदरयंत्र आदिकी विकृति लक्षण लिखते हैं । मलमूत्राशयोंकी दुष्टी होना अनेक प्रमेहअफराआदिरोगोंको-तथा संग्रहणी और मंदामि आदि दुष्टरोगोंको प्रगट करे है ॥

इत्यौदराणांयंत्राणांविक्रियायांसमासतः

यान्युद्भवन्तिचिन्हानिमयाप्रोक्तानिवत्सकाः ॥ २९ ॥

प्रतिरोगंप्रवक्ष्यामिकृत्स्नज्ञश्चपराणिच ।

तानिसर्वाणिवेद्यानिभिपजासिद्धिमिच्छता ॥ ३० ॥

अर्थ-ये उदरयंत्रोंकी विकृतिसे होनेवाले जो चिह्न हैं वो मैंने हेवत्स! संक्षेपसे तेरे आगे कहे हैं । बाकी संपूर्ण लक्षण रोग २ के प्रति पृथक् २ कहूंगा उनको सिद्धिकी इच्छाकरनेवाले वैद्यको अवश्य जानना चाहिये ॥ इति जठरस्वरोगोंकीपरीक्षा ।

बालकोंके रोगकी परीक्षा ।

नकिंचिदस्तिकर्मदुरूहतसंयथाशिशूनांरोगपरीक्षणम्

परधैर्यशीलगांभीर्यशान्त्यादिभिस्तेपांप्रियदर्शनप्रदा

नाभ्यां तथान्यैस्तोपणकर्मभिश्चतदपिसुकरंभवति ॥

अर्थ-बालकके रोगपरीक्षाके समान और कोई विषय कठिन नहीं है । अतएव वैद्य धीरज-शीलता और गांभीर्यके आश्रयसे सांत्वनवादद्वारा [पुचकारी देकर] तथा बालकको प्रिय खिलौने आदि दिखाके वा देकर एवं अन्य प्रकारों करके बालकको फुसलाकर रोगोंकी परीक्षाकर सकता है [अन्यथा नहीं] ॥

बालाह्यात्मवेदनानिवेदनेसर्वथैवासमर्थारोदनमात्रस-

हाया आत्मशुभाशुभवुद्धिपरिहीनाः सर्वथान्येषुसम-

पितप्राणाभृशंपरावलम्बिनः परदथाभाजनानि ॥

अर्थ-बालक अपने दुःखके कहनेमें सर्वथा असमर्थ होता है केवल रुदन मात्र सहाय अर्थात् रुदनके सिवाय वो कुछ नहीं करसका तथा

आपकेलिये हित और अहित बुद्धि करके रहित होताहै एवं सर्वथा औरोंके हाथमें समर्पित प्राण होतेहै अतएव इनके समान दयाका पात्र दूसरा नहीं है ॥

जगतिनतस्मात्कश्चिदपरः पापीयान्नयः सर्वथासर्व
प्रयत्नेनसमाहितचेताः सम्यग्विचार्यतान्भेषजैरुप
पादयेत् । भिषजासर्वेवातुराभविशेषेणपुत्रवद्द्रष्ट-
व्याविशेषतःशिशवःतेनात्यर्थमवधानपरेणावश्यंभा
वयितव्यम् । यथातेनतस्माद्गीतिमापादयन् ॥

अर्थ—उस प्राणीके समान दूसरा घोर पापी कोई नहींहै जो सर्वथा सर्व यत्न करके सावधानीके साथ विचार पूर्वक बालकोंकी चिकित्सा नहीं करता । वैद्यको उचितहै कि संपूर्ण रोगियोंको प्रायः पुत्रके समान देखें [जैसे अपने पुत्रकोकि चिन्मात्रभी पीडा युक्त नहीं देख सके इसी प्रकार सब रोगियोंको देखे] इनमेंभी बालकोंके ऊपर परम कृपादृष्टिसे देखे । वैद्यको इस प्रकार सावधान होना अत्यंत आवश्यक कहै कि जिस प्रकार बालक डरपै नहीं ॥

भिषजापरीक्षार्थं गृहं प्रविश्य प्रथमं शिशोर्धात्रीतः एता
न्यवश्यं वेद्यानि । यथा । वर्तमानरोगोत्पत्तेः प्राकृत
स्य देहिकोवस्थाविशेषः अतीतापूर्वरूपप्रकृतिर्जात
रोगसंपृक्ताविविधाश्च पराविकृतयः शिशुः पुमान् स्त्री
वात्यक्तस्तनोवानवासयदाहारप्रियस्तस्यवयः परिमा
णं मलमूत्रादीनां प्रकृतिरित्याद्यानि ।

अर्थ—वैद्य बालकको देखके उसके घरमें प्राप्त होतेही उसकी धाय [अथवा मातासे] इतनी वार्ता प्रथमही अवश्य जान लेवे । जैसे वर्तमान रोगके उत्पन्न होनेके पूर्व उसकी कैसी दशार्था । किस प्रकार पूर्व रूप लक्षण हुए थे । उपस्थित रोग संयुक्त होनेके पीछे विकृति स्वरूपका जानना एवं बालक पुरुष है या स्त्री है स्तनको पीताहै या नहीं पीवे । यदि बाल भोजन प्रिय होवे तो उसकी अवस्थाका परिमाण पूछना तथा मल मूत्रादिकी प्रकृति इत्यादि ॥

शिशुर्यदि स्वपितिनतं प्रबोधयेत्सुतस्यैव तस्याकृत्यंग
संस्थितिप्रभृतीनि विशेषेण क्षणीयानि । स उत्तानशायी

पार्श्वशायी वा विस्तीर्णजंघःकुंचितजंघोवाइत्यादि-
भिस्तस्यांगसंस्थितिविशेषैर्व्याधेःकृच्छ्रत्वमकृच्छ्रत्वं
वावगम्येत ।

अर्थ—यदि बालक सोता होवे तो उसको जगाने नहीं सोते हीकी
आकृति अंगोंकी स्थिति आदिकी परीक्षा करलेवे बालक सीधा सोताहै
या करवटसे सोताहै पैरपसारके या पैरोंको सिकोडिकर सोताहै इत्यादि
उसको अंगसंस्थिती विशेष करके लक्षकरे । इत्यादि संपूर्ण अवस्था
विशेषों करके कृच्छ्रसाध्य और सुखसाध्य व्याधि जानना ॥

ज्वरेसान्निपातिकेफुफ्फुसेच व्यथाकुलेगण्डौलोहितौ
स्याताम् । कूजनात्सहसानिद्राछेदादकस्मादाक्षेपाद् ।
विक्रोशनाद्धस्तग्रहाच्चतस्यमस्तिष्कविकृतिरनुमेया ।
आमाशयेऔग्रतामापन्नेऽकस्मान्मुखविवरमाक्षिप्य
ते । नयनयोरसम्यङ्गुनिमीलनान्मस्तिष्कविक्रियारोग
स्यकृच्छ्रसाध्यत्वंचावगम्यम् ।

अर्थ—संनिपातज्वरमें-और फुफ्फुसकी पीडामें बालकके गंड दोनो
लालरंगके होते है । कुंजना सहसा निद्रा जाती रहना अकस्मात् आक्षे-
पकीक मारना और हाथोंका जकडना ये संपूर्ण लक्षण मस्तिष्क विकार
के सूचक है अर्थात् इन लक्षणोंसे बालकके मस्तिष्क संबंधी रोग जानना
आमाशयमें उपद्रव होनेसे अकस्मात् मुखमिच जाताहै । दोनों नेत्रोंके
आधे आधे मूंदनेसे उस बालकके पीडाकी आधिक्यता तथा मस्तिष्क
विकृति ज्ञापक है ॥

॥ इति बालरोग परीक्षाविधिः समाप्ता ॥

अथवस्त्रपरीक्षा ।

ज्वरव्याप्तशरीरस्य ऊष्मा भवति दारुणः ।

सऊष्मावहिरामोतिवस्त्रेतिष्ठतिनिश्चितम् ॥

अर्थ—ज्वरयुक्त देहमें दारुणगरमी रहती है वह गरमी देहसे निकल
वस्त्रमें ठहरतीहै अतएव इस प्राणीके वस्त्रोंकी परीक्षा करनी चाहिये ॥

वातपित्तकफानांचद्वित्रिदोषस्यलक्षणम् ।

परीक्षेज्वरिणोवस्त्रं वैद्यो वै शुद्धवंशजः ॥

अर्थ-ज्वरवाले प्राणीके वात-पित्त कफ द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षण शुद्ध वंशोत्पन्नवैद्य वस्त्रद्वारा परीक्षाकरे सो इसप्रकार ॥

वातेवस्त्रंसौरभंघ्राणतःस्यात्

पौष्पपैत्तेमत्स्यतुल्यंविगंधि ॥

पाकास्थोणंश्लेष्मणः संप्रकोपात्

द्वंद्वैर्द्वैद्रोत्युल्वणैरुयेकताच ॥

अर्थ-वादीसे रोगीके वस्त्रोंमें फूलकीसी गंध आती है पित्तसे मछली कीसी और कफके फोपसे पकेहुए फोडे किसी और द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षणमिलनेसे त्रिदोषके लक्षणजानने ॥

यदावस्त्रेभवेद्गंधः सटिताजालकर्दमः ।

तदादीर्घोभवेद्गोगोम्रियतेशवगंधकः ॥

अर्थ-जिसके वस्त्रोंमें सड़ीहुईजाल और कीचकीसी दुर्गंध आवे उसके बहुत दिनोंका रोगजानना और जिसके वस्त्रोंमें मुरदेकीसी दुर्गंध आवे उसकी मृत्यु हो ॥

इति वस्त्रपरीक्षा ।

अथ देशाः ।

भूमिदेशस्त्रिधाऽनूपोजाङ्गलोमिश्रलक्षणः ॥

अर्थ-भूमिदेश तीनप्रकारका है एक अनूप दूसरा जांगल और तीसरा मिश्र संज्ञक (मिलासुला) है तहाँ प्रथम अनूप देशके लक्षण कहते हैं ॥

अनूपक्षलगम् ।

नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः ॥

हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः ॥

शशवाराहमहिपरुरोहिकुलाकुलः ॥

प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्योनीलसस्यफलान्वितः ॥

अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः ॥

अर्थ-जिसमें नदीनाले-तलैया-पर्वत-फुलेहुए कमल-हंस-सारस

चवका आदि पक्षी शशा-सूकर-भैसा-रुरु (हरिणकाभेद) और रोहिंस
इत्यादि चतुष्पद समूहयुक्त-तथा अत्यंत वृक्ष-फूलकेवृक्ष-नीलवर्णपुष्प
हरी २ घास और फलयुक्तहो तथा अनेक प्रकारके चावल खेती केलक
वृक्ष और गन्ना ऐसे अनेक प्रकार धान्यादिकों करके जो देश युक्त हो
उसको अनूपदेश कहते हैं जैसे कश्मीर काबुल तिब्बत, आदिदेश हैं.

अनूपदेशकेभेद ।

तच्चोक्तकृत्स्ननिजलक्षणधारिभूरिच्छांयावृतांतरवहद्बहुवा
रिमुख्यम् । ईपत्प्रकाशसलिलंयदिमध्यमंतदेतच्चनातिवहु
लांबुभवेत्कनीयः ॥

अर्थ-जिसदेशमें अनूपदेशके उक्तलक्षणसमग्र पाये जावे और अत्यंत
छाया युक्तहो तथा अत्यंत जलयुक्तहों वो उत्तम अनूपदेश जानना ।
और जिसमें थोड़ी छाया और थोडा जलहो तथा उक्तलक्षण कुछ २
मिलते हों वहमध्यम अनूपदेश है और जिसमें बहुतही थोडा जलहो
उसको कनिष्ठ अनूपदेश जानना ॥

जांगललक्षणम् ।

आकाशशुभ्रउच्चश्चस्वल्पपानीयपादपः ।

शमीकरिरविल्वार्कपीलूकर्कधुसंकुलः ॥

हरिणैर्णक्षपृपतगोकर्णस्वरसंकुलः

सुस्वादुफलवान्देशोवातलोजांगलः स्मृतः ॥

अर्थ-जोदेश आकाशके समान शुभ्र और ऊंचाहो, थोड़े जलाशय
(कूआवावडीआदि) और थोड़े जहां तहां वृक्षहों तथा छोकरा-करील
बेल आक पीलू-और बेर इत्यादि वृक्षजहां हों तथा हरिण-एण (काला
हरिण) रीछ चीता-रोज-और गधा ए अधिकहों, तथा जिसदेशमें स्वादु
फलप्रगट होते हों वह वातकारक जांगल देशजानना ॥

यत्रानूपविपर्ययस्तनुतृणास्तीर्णाधराधूसरा ।

मुद्गव्रीहियवादिधान्यफलदा तीव्रोष्मवत्युत्तमा ॥

प्रायःपित्तविवृद्धिरुद्धेतवलाः स्युर्नीरुजःप्राणिनो ।

गावोजाश्च पयः क्षरंतिबहुतत्कूपेजलंजांगलम् ॥

अर्थ—अब ग्रंथान्तर से जांगल देशके लक्षण कहते हैं कि जिसमें अनूप देशसे विपरीत लक्षण मिलते हों तथा थोड़े तिनकाओंसे पृथ्वी आच्छादितहो और धूसरे रंगकी हो तथा मूंग-मोठ-मक्का यवआदि धान्य अत्यंत होते हों. तीव्र गरमी करके युक्त और पित्तके बढ़ानेवाली एवंजिसमें बलवान् और रजोगुण रहित प्राणी होते हों और गौओंके थनोमें दूध बहुतहो तथा कूआसे जलप्रायः प्राप्त हो उसे जांगल देशकहते हैं जैसे मारवाडके देश (आफ्रिकाकामुल्क और) अरब आदिकी विलायत जाननी

एतच्चमुख्यमुदितंस्वगुणैःसमग्रमल्पाल्पभूरुहयुतंयदिमध्य
मंतत् । तच्चापिकूपखननेसुलभांबुयत्तज्ज्ञेयंकनीयइतिजा
गलकंत्रिरूपम्

अर्थ—जिस जांगल देशमें सर्व लक्षण मिलतेहों वह उत्तम है । और जिसमें बहुत थोड़े वृक्ष और थोड़े दूरपर पानी मिले तथा जांगल देशके कुछ लक्षण मिलते हों और कुछ न मिलतेहों वह जांगलदेश मध्यमहै । और जिसमें कूआखोदनेसे पासही जल निकल आवे वह फनिष्ठ जांगल देशहै ॥

साधारणलक्षणम् ।

संसृष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणोमतः

समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः ॥

समतातेनदोषाणांतस्मात्साधारणोवरः

अर्थ—जो अनूपदेश और जांगलदेशके मिले हुए लक्षण युक्तहों उसे साधारण देशकहतेहैं इससाधारणदेशमें शीत-वर्षा-गरमी-और पवन समान रहती है इसीसे दोष भी समान रहते हैं अतएव यह साधारण देश उत्तमकहाहै. साधारणदेश जैसे मथुरा आगरा दहली काशी पटना आदिजानने ॥

लक्ष्मोन्मीलितियत्रकिंचिदुभयोस्तज्जांगलानूपयोर्गंधूमोल्बण-
यावनालविलसन्मापादिधान्योद्भवम् । नानावर्णमशेषजंतुसुखदं-
देशंबुधामध्यमंदोषोद्भूतिविकोपशांतिसहितंसाधारणंतंविदुः ॥

अर्थ—जिसदेशमें जांगल और अनूप ए दोनोदेशोंके लक्षणमिलतेहों और गेहू जो ठंडद आदि धान्य प्रगट होतेहों-तथा अनेक वर्णके पशुपक्षी आदि सबको सुखकारी उसको पंडितजन मध्यमदेशकहते हैं इसमें

विकारोंका कोप और शांति स्वयं होती रहती है इसीको साधारण देशजानना चाहिये ॥

तत्र साधारणं द्वेषानूपजांगलयोः परम् ।

यत्रयत्रगुणाधिक्यंतत्रतस्यगुणंभजेत् ॥

अर्थ—इससाधारणकेभी दो भेद हैं एक अनूप साधारण दूसरा जांगल साधारण इनदोनोंमें जिस २ देशके अधिक गुणमिलतेहों उसको उसी नामसे विख्यात जानना ॥

सुश्रुतात्—उचितेवर्तमानस्यनास्तिदुर्देशजंभयम् ।

आहारस्वप्नचेष्टादौतद्देशस्यकृतेसति ॥

अर्थ—जो प्राणी उचित आहार विहारकरताहै—उसको दुष्टदेशसे कुछ भयनही है. अतएव जिसदेशमें रहे उसके अनुसार आहार-निद्रा-और विहारका सेवन करना चाहिये यह सुश्रुतमें लिखाहै. ॥

वृद्धवाग्भटात्—यस्यदेशस्ययोजंतुस्तज्जंतस्यौषधंहितम् ।

देशादन्यत्रवसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥

अर्थ—वृद्धवाग्भट कहते हैं कि जिसदेशका जो प्राणीहै उसको उसी देशकी प्रगटहुई औषध हितकरी होती है और अपने देशकोत्यागके जो अन्यदेशमें रहते हैं उसको उसदेशके तुल्यगुणकारी औषधदेवे ॥

स्वदेशेनिचितादोषान्यस्मिन्कोपमागताः ।

बलवंतस्तथानस्युर्जलजाः स्थलजास्तथा ॥

अर्थ—जो अपने देशमें संचित दोषहैं, वो दूसरे देशमें जायकर यदि कुपितहों वो बली नहीं होते उसीप्रकार जलजदेशके स्थलमें और स्थल-जदेशके जलमें बलहीन होते हैं ॥

अथ मानपरिभाषा ।

अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसंदिग्धार्थप्रकाशिकाः ।

परिभाषाःप्रकथ्यन्तेदीपभूताःसुनिश्चिताः ॥

अर्थ—शास्त्रकी विधि सर्वत्र स्पष्टनहीं लिखी बहुतसी जगें संदेहयुक्तहै उसीउसी स्थलमें अर्थजानना दुष्करहै वह इस परिभाषाध्यायमें समग्र सांकेतिक अर्थ प्रकाशकरते हैं ॥

प्रथम मानसूत्र लिखतेहैं ।

नमानेनविनायुक्तिर्द्रव्याणांज्ञायतेक्वचित् ।

अतःप्रयोगकार्यार्थमानमत्रोच्यतेमया ॥

अर्थ—विना मान (परिमाणज्ञान) के सर्व द्रव्यप्रयोगकी युक्ति नहीं हो सकती इसी हेतुसे प्रथम हम परिमाणज्ञानको प्रयोगकार्यके अर्थ लिखते हैं । मानपरिभाषा अनेक देशमें अनेकप्रकारकी हैं और मानभेदभी मित्रभिन्न हैं इससे हम प्रथम माग्धपरिभाषा जो मध्येदेशमें प्राचीन आचार्योंने बाँधी है उसे लिखते हैं ॥

त्रसरेणुबुधैःप्रोक्तस्त्रिशद्विःपरमाणुभिः ।

त्रसरेणोस्तुपर्यायोनाम्नावंशीनिगद्यते ॥

अर्थ—तीस परमाणुका १ त्रसरेणु वैद्योंने कहा है वंशी इस त्रसरेणुका पर्यायवाचक नाम है अर्थात् उसीत्रसरेणुको वंशीभी कहते हैं ॥

परमाणुकेलक्षण ।

जालांतरगतेभानौयत्सूक्ष्मंद्दृश्यतेरजः ।

तस्यत्रिशत्तमोभागः परमाणुःसउच्यते ॥

अर्थ—अब परमाणुके लक्षण कहते हैं कि, घरमें जाली झरोखा आदिमें सूर्यकी किरण पडती है उनकिरणोंमें जो बहुत सूक्ष्म धूलके किनके उडते दीखते हैं उस किनकेका तीसवाँ जो भाग है उसको परमाणु ऐसा कहतेहैं॥

वंश्यादिकोंकेपरिमाण ।

पङ्कशीभिर्मरीचिःस्यात्ताभिःपङ्क्तिस्तुराजिका ।

तिसृभीराजिकाभिश्चसर्पपः प्रोच्यतेबुधैः ।

यवोष्टसर्पपैःप्रोक्तोगुआस्यात्तच्चतुष्टयम् ।

अर्थ—अब फिर उसी त्रसरेणुसे प्रमाण कहते हैं कि ५ वंशी (त्रसरेणु) की १ मरीची होती है । छःमरीची की १ राई, ३ राई की १ सरसों, आठ सरसोंका १ यव (जौ), चार जौ की १ रत्ती (धूँघची) होती हैं ॥

मासेकापरिमाण ।

पङ्क्तिस्तुराजिकाभिःस्यान्मापकोहेमधान्यकौ ।

अर्थ—छःरत्तीका एक मासा इस मासेको हेम और धान्यकभी कहतेहैं॥

शाणका और कोलकापरिमाण ।

मापैश्चतुर्भिःशाणःस्याद्धरणःसनिगद्यते ।

१ बहुतसे इसपरिभाषाको कलिगपरिभाषा कहतेहैं और कालिगके माग्धपरिभाषा कहतेहैं.

टंकःसएवकथितस्तदद्वयंकोलउच्यते ॥

क्षुद्रभोवटकश्चैवद्रंक्षणःसनिगद्यते ।

अर्थ—चारमासेका १ शाण होता है, इसशाणको धरण और टंकभी कहते हैं, दोशाणका १ कोल कहाता है इसे क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं [कोलनाम भाषामे वेरका है अतएव तोलमें वेरके प्रमाण होने से इसकी कोल संज्ञा वैद्योने कही है]

कर्षकापरिमाण ।

कोलद्वयंतुकर्षःस्यात्संप्रोक्तः पाणिमानिका ।

अक्षः पिबुः पाणितलंकिंचित्पाणिश्चित्तुदुकम् ॥

विडालपदकंचैवतथापोडशिकामता ।

करमध्यहंसपदंसुवर्णकवलग्रहम् ॥

उदुंबरंचपर्यायैःकर्ष एवनिगद्यते ॥

अर्थ—दोकोलका १ कर्षहोताहै इसकर्षको पाणिमानिक-अक्ष-पिबु-पाणितल-किंचित्पाणि-तिदुक-विडालपदक-पोडशिका-करमध्य-हंसपद-सुवर्ण-कवलग्रह-और उदुंबर भी कहते हैं अर्थात् ये तेरह नामभी उसी कर्षके हैं । कर्षको लौकिकमे तोला कहते हैं । तोलेभर वस्तुका प्रमाण गूलरके समान होताहै इसीसे इसकी उदुंबरभी संज्ञाकही है ।

अर्द्धपल तथा पलकापरिमाण ।

स्यात्कर्पाभ्यामर्धपलंशुक्तिरष्टमिकातथा ।

शुक्तिभ्यांचपलंज्ञेयंमुष्टिराम्रचतुर्थिका

प्रकुंचः पोडशीविल्वंपलमेवात्रकीर्त्यते ॥

अर्थ—दोकर्षका १ अर्धपल इसको शुक्ति (सीप) और अष्टमिकाभी कहतेहैं दोशुक्तिका १ पलहोताहै उसको मुष्टी (मुठीभर) आम्र चतुर्थिका प्रकुंच-शोडशी और विल्वभी कहते हैं [आम और विल्वकी बराबर वस्तुका परिमाण होनेसे पलकी आम्र और विल्वसंज्ञाहै]

प्रसृतिसे आदिलेके मानिकापर्यतका परिमाण ।

पलाभ्यांप्रसृतिज्ञेयाप्रसृतश्चनिगद्यते ॥

प्रसृतिभ्यामंजलिःस्यात्कुडबोर्धशरावकः ॥

अष्टमानंचसंज्ञेयंकुडवाभ्यांचमानिका ॥

शरावोष्टपलंतद्वज्ज्ञेयमत्रविचक्षणैः ॥

अर्थ-दोपलका १ प्रसृति इसे प्रसृतभी कहते हैं-दोमसृतिकी १ अंजली इसको कुडव अर्ध शरावक और अष्टमानभी कहते हैं. [कुडवको लौकिकमें पावभर कहते हैं] दो कुडवकी मानिका होती है उसे शराव, और अष्टपल भी कहते हैं. [मानिकाकी लौकिकमें आधसेर संज्ञाहै शरावके भरजानेसे इस तोलका नाम शराव है]

प्रस्थका और आढककापरिमाण ।

शरावाभ्यांभवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ।

भाजनंकंसपात्रंचचतुःपष्टिपलंचतत् ॥

अर्थ-दोशरावका १ प्रस्थ अर्थात् सेर होताहै और चार प्रस्थका १ आढक, आढकको भाजन और फंसपात्रभी कहतेहैं इसके ६४ पल और २५६ तोले होते हैं.

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतपरिमाण ।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणःकलशोनत्वणोन्मनौ ॥

उन्मानश्चघटोराशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकः ॥

द्रोणाभ्यांशूर्पकुंभौचचतुःपष्टिशरावकाः ॥

शूर्पाभ्यांचभवेद्द्रोणीवाहोगोणीचसास्मृता ॥

अर्थ-चार आढकका १ द्रोणहोताहै उसको कलश नत्वण उन्मन उन्मान घट और राशि कहतेहैं (एकघडेभर वस्तुकी आढकसंज्ञाहै) दो द्रोणका एक शूर्प और कुंभ होताहै. उस सूर्यके ६४सराव अर्थात् ५१२ पल और १०४८तोलें होते हैं दोशूर्पकी १ द्रोणी उसको गोणीभी कहते हैं ॥

खारीकापरिमाण ।

द्रोणीचतुष्टयंखारीकथितासुक्ष्मवृद्धिभिः ॥

चतुःसहस्रपालिकापणवत्यधिकचत्ता ॥

अर्थ-चार द्रोणकी १ खारी होती है उस खारीके

१६३८४ तोले होते हैं ॥

४०९ पल तथा

टंकःसएवकथितस्तद्व्यंकोलउच्यते ॥

क्षुद्रभोवटकश्चैवद्रंक्षणःसनिगद्यते ।

अर्थ—चारमासेका १ शाण होता है, इसशाणको धरण और टंकभी कहते हैं, दोशाणका १ कोल कहाता है इसे क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं [फोलनाम भापामें बेरका है अतएव तोलमें बेरके प्रमाण होने से इसकी कोल संज्ञा वैद्योंने कही है]

कर्षकापरिमाण ।

कोलद्वयंतुकर्षःस्यात्संप्रोक्तः पाणिमानिका ।

अक्षः पित्रुः पाणितलं किंचित्पाणिश्चातिदुकम् ॥

विडालपदकंचैव तथा षोडशिकामृता ।

करमध्यहंसपदंसुवर्णकवलग्रहम् ॥

उदुंबरंचपर्यायैः कर्ष एवनिगद्यते ॥

अर्थ—दोकोलका १ कर्षहोताहै इसकर्षको पाणिमानिक-अक्ष-पित्रु-पाणितल-किंचित्पाणि-तिदुक-विडालपदक-षोडशिका-करमध्य-हंसपद-सुवर्ण-कवलग्रह-और उदुंबर भी कहते हैं अर्थात् ये तेरह नामभी उसी कर्षके हैं । कर्षको लौकिकमें तोला कहते हैं । तोलेभर वस्तुका प्रमाण गूलरके समान होताहै इसीसे इसकी उदुंबरभी संज्ञाकही है ।

अर्द्धपल तथा पलकापरिमाण ।

स्यात्कर्पाभ्यामर्धपलंशुक्तिरष्टमिकातथा ।

शुक्तिभ्यांचपलंज्ञेयंमुष्टिराम्रचतुर्थिका

प्रकुंचः षोडशीविल्वंपलमेवात्रकीर्त्यते ॥

अर्थ—दोकर्षका १ अर्धपल इसको शुक्ति (सीप) और अष्टमिकाभी कहतेहैं दोशुक्तिका १ पलहोताहै उसको मुष्टी (मुट्ठीभर) आम्र चतुर्थिका-प्रकुंच-शोडशी और विल्वभी कहते हैं [आम और बेलकी बराबर वस्तुका परिमाण होनेसे पलकी आम्र और विल्वसंज्ञाहै]

प्रसृतिसे आदिलेके मानिकापर्यंतका परिमाण ।

पलाभ्यांप्रसृतिज्ञेयाप्रसृतश्चनिगद्यते ॥

प्रसृतिभ्यामंजलिःस्यात्कुडवोर्धशरावकः ॥

होता है उसको कहते हैं-चारह धान्यमापक कर्क करे हुए ६४ मासोंका जो सुश्रुतने पल कहा है वो रत्तियोंके तोलनेसे ५ रत्तीका मापा होकर चरकके मतसे आधा पल होवेगा ॥

चरकेदशरत्तिकैः ॥

मापैः पलं चतुःपष्ट्या यद्भवेत्तत्थेरितम् ॥

अर्थ-चरकके मतसे दश रत्तीका मापा होता है और ऐसे ६४ मासेका पल होता है अर्थात् ३२ मापकलाय कर्क करे हुए ४८ मासेका जो पल-मान है वो दशरत्तीका मासा मानकर ६४ मासेसे तोले तो पूर्वोक्त मान होता है क्यों कि २४ मापकलाय (मटर) दशरत्तीके बराबर होती है ॥

तो अब दशरत्तीका मासा मानकर ऐसे ६४ मासोंको २४ से गुण दिया तो १५३६ मासकलाय होगये ॥

इसी प्रकार चरकके मतसेभी ३२ मापकलायका मापा मानकर ऐसे ४८ मासोंको ३२ से गुण दिया तो १५३६ मापकलाय होते हैं ॥

तो अब दशरत्तीके मासेवाले पलको ३२ मापकलाय प्रमाण मासेवाले पलके साथ मिलान करनेसे समानता प्रत्यक्ष मिलती है सुश्रुतके मतसे चारह मापकलाय वाले ६४ मासेका पल होता है ॥

उनको ६४ मासोंको १२ मापकलायसे गुणा तो ७६८ ये चरकके मतसे आधामान सुश्रुतका हुआ ॥

तस्मात्पलं चतुःपष्ट्यामापकैर्दशरत्तिकैः ।

चरकानुमतं वैद्यैश्चिकित्सासूपयुज्यते ॥

अर्थ-अब चरक सुश्रुत दोनोंके मानमें चरककाही मान व्यवहारो-पयोगी है यह कहते हैं-पूर्वोक्त कारणकर्क दशरत्ती मासेके हिसाबसे ६४ मासेकाही पल चरकके मतका वैद्योंको चिकित्सामें लेना चाहिये सुश्रुतका नहीं ॥

अब हमने लौकिकोदाहरणमें १ पलकी छटकी मानी है तो इसकोभी विचारकर देखा जावे कुछ थोडाही फरक पड़ेगा जैसे चरकके मतसे १० रत्ती वाले मासोसे ६४ मासेका पल कहा है यदि चौंसठको दशसे गुणा तो ६४० छः सौ चालीस रत्ती होवेंगी ।

परंतु आजकल अंग्रेजी राज्यमें ८ रत्तीका मासा मानते हैं तो इस हिसाब पांचतोले और पांचमासे की छटकी हुई और हिसाबमें बड़ा फरक पड़ता है ॥

भारका और तुलाकापरिमाण ।

पलानाद्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः ॥

तुलापलशतं ज्ञेया सर्वत्रैपि निश्चयः ॥

अर्थ-दो हजार पलका एकभार होता है और सौ पलकी १ तुला होती है ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना ॥

सुखबोधार्थं उक्तमानको एकश्लोकमें कहते हैं ।

माषटं काक्षविल्वानिकुडवः प्रस्थमाढकम् ॥

राशिगोणीस्वारिकेतियथोत्तरचतुर्गुणाः ॥

अर्थ-मासेसे लेकर खारी पर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी जैसे चार मासेका १ शाण-चारशाणका १ कर्ष-चारकर्षका १ विल्व चारविल्वकी १ अंजली चार अंजलीका १ मस्थ चार प्रस्थका १ आढक चार आढककी १ राशि चार राशिकी १ गोणी चार गोणीकी १ खारी इस प्रकार समझनी चाहिये ॥

परिभाषाके मतभेदकी ऐक्यता ।

द्वात्रिंशन्मापकैर्माषश्चरकस्य तु तैः पलम् ।

अष्टचत्वारिंशतास्यात्

अर्थ-रत्तीके आधीन मापेका मापेके आधीन कर्षपलादिकका ज्ञान है अर्थात् जबतक यह निश्चय न करलेवे कि रत्ती कितने वजनको कहते हैं तथा कितने रत्तीका मापा और कितने मापेका कर्ष होता है तबतक किसी तोलका प्रमाण नहीं होता । अतएव मापकादि मानके स्थापनके अर्थ परिभाषा कहते हैं ३२ धान्य मापकोंका (मापकलयोंका) चरकके मतसे मापा होता है और उन्हीं ४८ मासेका चरकके मतसे पल होता है इसी कारण कर्षकी लौकिकमें तोला संज्ञा कही है ॥

सुश्रुतस्य तु मापकः ।

द्वादशभिर्धान्यमाषैश्चतुषट्या तु तैः पलम् ॥

अर्थ-सुश्रुतके मतसे १२ ब्रीही मासक चावलोंका एकमासा होता है और ६४ मासेका पल होता है ॥

एतच्चतुर्लितं पञ्चरक्तिमापात्मकं पलम् ।

चरकार्द्रपलोन्मानम्

अर्थ-अब चरक सुश्रुत इन दोनोंके मतसे जितनी रत्तियोंका मापा

होता है उसको कहते हैं-वारह धान्यमाषक कर्के करे हुए ६४ मासोंका जो सुश्रुतने पल कहा है वो रत्तियोंके तोलनेसे ५ रत्तीका मापा होकर चरकके मतसे आधा पल होवेगा ॥

चरकेदशरत्तिकैः ॥

मापैः पलं चतुःपष्ट्या यद्भवेत्तथेरितम् ॥

अर्थ-चरकके मतसे दश रत्तीका मापा होता है और ऐसे ६४ मासेका पल होता है अर्थात् ३२ मापकलाय कर्के करे हुए ४८ मासेका जो पल-मान है वो दशरत्तीका मासा मानकर ६४ मासेसे तोले तो पूर्वोक्त मान होता है क्यों कि २४ मापकलाय (मटर) दशरत्तीके बराबर होती है ॥

तो अब दशरत्तीका मासा मानकर ऐसे ६४ मासोंको २४ से गुण दिया तो १५३६ मासकलाय होगये ॥

इसी प्रकार चरकके मतसेभी ३२ मापकलायका मापा मानकर ऐसे ४८ मासोंको ३२ से गुण दिया तो १५३६ मापकलाय होते हैं ॥

तो अब दशरत्तीके मासेवाले पलको ३२ मापकलाय प्रमाण मासेवाले पलके साथ मिलान करनेसे समानता प्रत्यक्ष मिलती है सुश्रुतके मतसे वारह मापकलाय वाले ६४ मासेका पल होता है ॥

उनको ६४ मासोंको १२ मापकलायसे गुणा तो ७६८ ये चरकके मतसे आधामान सुश्रुतका हुआ ॥

तस्मात्पलं चतुःपष्ट्यामापकैर्दशरत्तिकैः ।

चरकानुमतं वैद्यैश्चिकित्सासूपयुज्यते ॥

अर्थ-अब चरक सुश्रुत दोनोंके मानमें चरककाही मान व्यवहारो-पयोगी है यह कहते हैं-पूर्वोक्त कारणकर्के दशरत्ती मासेके हिसाबसे ६४ मासेकाही पल चरकके मतका वैद्योंको चिकित्सामें लेना चाहिये सुश्रुतका नहीं ॥

अब हमने लौकिकोदाहरणमें १ पलकी छटकी मानी है तो इसकोभी विचारकर देखा जावे कुछ थोड़ाही फरक पड़ेगा जैसे चरकके मतसे १० रत्ती वाले मासोसे ६४ मासेका पल कहा है यदि चौंसठको दशसे गुणा तो ६४० छः सौ चालीस रत्ती होवेंगी ।

परंतु आजकल अंग्रेजी राज्यमें ८ रत्तीका मासा मानते हैं तो इस हिसाब पांचतोले और पांचमासे की छटकी हुई और हिसाबमें बड़ा फरक पड़ता है ॥

पतली गीली और शुष्क औषध इनके योगकामान् ।

गुंजादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः ॥

द्रवाद्रेशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥

प्रस्थादिमानमारभ्यद्विगुणं तद्द्राद्योः ॥

मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥

अर्थ-जलआदि पतले पदार्थ गीली औषध और सूखी औषध ये रत्तीसे लेकर कुडव पर्यंत बराबर लेंवै तथा जलआदि पतले पदार्थ और गीली औषध ये लेना होय तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत दुगुनीलेवै ऐसा कहीं नहीं लिखा अतएव इनकामान सूखी औषधके समानही लेना चाहिये ॥

दूधआदिपतलीवस्तु नापनेकी युक्ति ।

मृदुस्तु वेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरंगुलम् ।

विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥

अर्थ-नम्रवाँसा लोह आदिका चौखुदा बरतन लंबा चौड़ा और ऊँचाई निचाईमें चारही अंगुलका हो उसको कुडव नाम कहते हैं, कुडव नाम पावसेरका है परंतु व्यवहारका पौआ कुछ अधिक बज्जनवाला होता है इस कुडवपात्र द्वारा घी-दूध तेल आदि पतली वस्तु नापीजाती है ॥

कालिंग्यः पञ्चगुञ्जाभिर्मागधाः सप्तभिस्तथा ।

मापकं दशभिर्गौडामानज्ञाः कीर्तयन्ति च ॥

अर्थ-कलिंग परिभाषामें पांचरत्तीकामापाहोता है [यही भास्कराचार्यनेभी माना है] और मागध परिभाषाके मतसे सातरत्ती का मापा होता है और गौडदेशवासी १० रत्तीका मासा मानते हैं ॥

कालिंग्यं सौश्रुतं मानं मागधं चरकादिषु ॥

गौडादिदेशे गौडं च मानं मानविदो विदुः ॥

अर्थ-सुश्रुत कलिंग परिभाषाको कहता है और चरकादि ग्रंथमागध परिभाषाको एवं गौडदेशवासी गौड परिभाषाको मानते हैं परंतु " कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं " इसवाक्यसे मागध परिभाषा उत्तम है. मध्ये देशमें इसका प्रचार हुआ इसी से मागध परिभाषा कहलाती है ॥

औषध तोलनेके विषयमें मागधपरिभाषाका वजन ।

- ३ परमाणुका १ त्रसरेणु इसे वंशीभी कहते हैं.
 ६ वंशीकी १ मरीची.
 ६ मरीचीकी १ राई.
 ३ राईकी १ सरसो.
 ८ सरसोंका १ यव.
 ४ यव (जों) की १ रत्ती (पुंघची) होती है इसे कुंचभी कहते हैं.
 ६ रत्तीका १ मासा इसको हेम और धान्यकभी कहते हैं.
 ४ मासेका १ शाण इसके व्यवहारिक मासे ३ होते हैं.
 उस शाणको निष्क धरण और टंकभी कहते हैं.
 २ टंकका १ कोल होता है उसके व्यवहारिक मासे ६
 उसकोलको क्षुद्रभं, वटक और द्रंक्षणभी कहते है.
 २ कोलका १ कर्ष होता है जिसके व्यवहारिक तोला १
 उसकर्षको पाणिमानिका-अक्ष-पिचु-पाणितल-किंचित्पाणि-
 तिदुफ-विडालपदक-पोडशिका-हंसपद सुवर्ण कवलग्रह और
 उदुंबरभी कहते हैं.
 २ कर्षका १ अर्धपल होता है उसके व्यवहारिक तोले २
 इसअर्धपलको शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं.
 २ अर्ध पलका १ पल होता है जिसके व्यवहारिक तोले ४
 इसपलको मुष्टि-आम्र चतुर्थिका-प्रकुंच-पोडशी और विल्वभी
 कहते हैं.
 दोपलकी प्रमृति होती है जिसके व्यवहारिक तोले ८
 इसप्रमृतिको प्रमृत भी कहते हैं.
 २ प्रमृती की १ अंजली होती है जिसके व्यवहारिक तोले १६
 इस अंजलीको कुडव-अर्धशराव और अष्टमानभी कहते हैं.
 २ अंजलीकी १ मानिका जिसके व्यवहारिक तोले ३२
 उस अंजलीकी शराव और अष्टमिकाभी कहते हैं.
 २ मानिकाका १ प्रस्थ जिसके व्यवहारिक तोले ६४
 ४ प्रस्थका १ आढक जिसके व्यवहारिक तोले २५६
 उस आढकको भाजन और फंसपात्रभी कहते हैं.
 ४ आढकका १ द्रौण जिसके व्यवहारिक तोले १०२४
 उस द्रौणकी फलश-नल्वण-उन्मान घट और राशिभी कहते हैं.

२ द्रोणकाशूर्प जिसके शराव ६४ और व्यवहारिक तोले	२०४८
इसशूर्पको कुंभभी कहते हैं.	
२ शूर्पकी १ द्रोणी जिसके व्यवहारिक तोले	४०९६
इस द्रोणको वाँह और गोणीभी कहते हैं.	
४ द्रोणीकी १ खारी जिसके व्यवहारिक तोले	१६३८४
दोहजार पलका १ भार जिसके व्यवहारिक तोले	८०००
सौपलकी १ तुला जिसके व्यवहारिक तोले	४००

यदौषधंतुप्रथमंयस्ययोगस्यकथ्यते ।

तन्नामैवसयोगोहिकथ्यतेऽत्रविनिश्चयः ॥

अर्थ-जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध हो उसी औषधके नामसे वह प्रयोग जानना जैसे पीपरपाक पेठापाक शुंठ्यादिकाढा प्रसारणी तेल इनमें पीपरपाकमें प्रथम पीपरलिखी है इसीसे पीपरपाक कहतेहैं शुंठ्यादि काढेमें प्रथम सोंठहैं अतएव शुक्यादि काढा कहताहै इसी प्रकार प्रसारणीतेलमें प्रथम प्रसारणी औषध कहीहै इसीसे उसका नाम प्रसारणी औषध कहीहै इसीसे उस का नाम प्रसारणी तेलहै इसी प्रकार औरभी उदाहरण जानने ॥

नाल्पं हंत्यौषधं व्याधियथा लपां बुमहानलम् ।

दोषवच्चातिमात्रं स्याच्छस्यमत्युदकं यथा ॥

अर्थ-थोड़ी औषध रोगको दूर नहीं करती जैसे थोड़ाजल बहुतभी अग्निको शांति नहीं करता उसी प्रकार बहुत औषधभी रोगको नहीं दूरकरे जैसे बहुत सा जल नवीन वृक्षादिकको नष्ट करदेता है ॥

मात्रयाहीनयाद्रव्यं विकारं न निवर्तयेत् ।

द्रव्याणामतियोगाच्च व्याधिस्संजायते ध्रुवम् ॥

अर्थ-थोड़ी मात्रासे विकार दूर नहीं होता उसी प्रकार बहुत मात्राके खानसे अनेक प्रकारकी व्याधि होतीहै अतएव दोष काल अवस्था आदिके अनुसार औषधीखाना चाहिये ॥

भक्षणरूपमात्राका अनियम ।

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाः कालमग्निवयोबलम् ।

प्रकृतिदोषदेशौचद्वामात्रांप्रकल्पयेत् ॥

अर्थ-औषधिकी मात्राके प्रमाणकी स्थिति नहीं अर्थात् निश्चय नहीं है अतएव वैद्य काल अग्नि अवस्था बल प्रकृति दोष और देश इनका विचार करके अपनी बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे ॥

औषधसेवनका प्रमाण कलिंगपरिभाषाकरके कहते हैं ।

यतो मन्दाग्रयो द्विस्वाहीनसत्वानराः कलौ ।

अतस्तु मात्रातद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥

अर्थ-कलियुगमें मनुष्य मन्दाग्निवाले छोटे और बलहीन हैं अत एव उनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसी औषधीका प्रमाण कहता हूँ ॥

कलिंगपरिभाषाका वजन ।

यवोद्गादशभिर्गौरसर्पैः प्रोच्यते बुधैः ॥ यवद्वयेन गुञ्जास्या

त्रिगुंजो वल्ल उच्यते ॥ मापो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवे

त्क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टक एव च ॥ गद्या

णो माषकैः षड्भिः कर्पः स्याद्दशमाषकः ॥ चतुःकर्पैः पलं प्रोक्तं

दशशाणमितं बुधैः ॥ चतुःपलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥

अर्थ-वारहसपेद सरसोंका १ मव होता है दोषवकी १ रत्ती ३ रत्तीका १ बल्ल आठरत्ती अथवा कहीं सातरत्तीका मासा होता है. चार मासेका १ शाण उसको निष्क और टंकभी कहते हैं छः मासेका १ गद्याणक दशमासेका १ कर्प चारकर्पका १ पल कि जिसके दशशाण अर्थात् ४० मासे होते हैं चार पलका १ कुडव होता है और प्रस्थ आठक आदिका प्रमाण पूर्वोक्त मागधीपरिभाषाके समान जानने अर्थात् ४ कुडवका १ प्रस्थ चार प्रस्थका एक आठक इसीप्रकार और भी जानो यह कलिंगपरिभाषा कही है ॥

अथ कृष्णात्रेयात् ।

रजांसित्रीणिसिकताताभिः षोडशभिस्तथा ।

सर्पपश्च भवेद्गौरस्ते चाष्टौ तण्डुलं विदुः ॥

तद्वयं धान्यकं मापंतद्वयं रक्तिकामता ।

रक्तिकाद्वितयेनापि वल्लः प्रोक्तो विशारदैः ॥

चतुर्भिश्चंडिकातैः स्यादेवं मानपरंपरा ॥

अर्थ—तीनेरजकी १ सिकता १६ सिकता औंकी १ सपेदसरसों ८ स-
पेद सरसोंका १ चावल २ चावलोंका १ धान्यक और माप २ धान्यक-
की १ रत्ती २ रत्तीका १ वल्ल ४ वल्लकी १ चंडिका होती है इसप्रकारे
मानपरंपरा जाननी यह कृष्णात्रेय ऋषिका मत है ॥

औषधोंकायुक्तायुक्तविचार ।

नवान्येवहियोज्यानिद्रव्याण्यखिलकर्मसु ।

विनाविडंगकृष्णाभ्यांगुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥

अर्थ—संपूर्ण कार्यमें नवीन औषधोंकी योजनाकरनी चाहिये परंतु
वायविडंग पीपर—गुड चावल घी और सहत ए छः पदार्थ पुराने ही
लेने चाहिये ॥

गीलीऔषधग्रहणी ।

वासानिवपटोलकेतकवलाकूष्मांडकैंद्रीवरी

वर्षाभूकुटजाश्वकंदसहिताः सापूतिगंधाःस्मृताः ॥

मांसीनागवलाकुरंटकपुरोहिंवाद्रकंचैक्षवं

गृह्णीयात्सरसान्यमृनिनपुनःकुर्याद्विभागानिच ॥

अर्थ—अडूसा नीमकीछाल परवल केतक पेठा इंद्रायण सतावर पुन-
नेवा कूडा असकंद गंधप्रसारणी छड गुलसफरी कटसरैया गूगल हींग
अदरख और ईख इतनी वस्तु सरस लेय परंतु गीली जानके इनी न
लेवे जितनी लिखी हो उतनी लेवे ॥

साधारणऔषधोंकीयोजना ।

जीर्णमेवप्रशस्तंस्यात्तांबूलंकांजिकंतथा ॥

शुष्कंनवीनद्रव्यंचयोज्यंसकलकर्मसु ॥

आद्रिचद्विगुणंयुंज्यादेपसर्वत्रनिश्चयः ॥

अर्थ—पान सुपारी और फांजी ये पुरानेही उत्तम होते हैं । सर्वकार्यमें
उक्तविडंग और पानसुपारी आदिकी त्यागकर सब वस्तु नवीन और
सूखी लेनाचाहिये यदी वह औषध गीली होय तो वांसे आदिकी त्याग
कर बाकी की औषध दुनी लेवे यह सर्वत्र निश्चय है ॥

अतुक्तकालादिकोंकीयोजना ।

कालेऽनुक्तेप्रभातंस्यादंगेऽनुक्तेजटाभवेत् ।

भागेनुक्तेतुसात्म्यंस्यात्पात्रेनुक्तेचमृन्मयम् ॥

अर्थ-जिसप्रयोगमें कालनहीं कहाहो उसजगेपातःकाल लेना चाहिये और जहां औषधीका अंग न कहा हो तहां औषधीकी जडलेवे और जिसप्रयोगमें भाग न कहा हो तहां समान भाग लेवे, जिसजगे पात्र न कहाहो वहां पर मिट्टीका पात्रलेना चाहिये ॥

पात्रोक्तौचापिमृत्पात्रमुत्पलेनीलमुत्पलम् ।

मूत्रेगोमूत्रमादेयंविशेषोयत्रनेरितः ॥

अर्थ-सामान्यता करके पात्र शब्द करके मिट्टीका पात्रलेवे उत्पल शब्द करके । नीलकमलले-मूत्रशब्द से गोमूत्रलेना चाहिये यह जहां विशेष नाम न कहा हो तहांकरे ॥

पयःसर्पिःप्रयोगेपुगवामेवप्रशस्यते ।

स्त्रियश्चतुष्पदेग्राह्याःपुमांसोविहगेपुच ॥

जांगलानां वयस्थानांचर्मरोमनखादिकम् ॥

हित्वाग्राह्यंपूतमांससास्थिकंखंडशःकृतम् ॥

अर्थ-जहां केवल दूध घी लिखा हो तहां गौका घी दूध लेवे । चौपाए जानवरोंमें स्त्रीग्राह्य है, जैसे गौमेंस और पखेरुओंमें पुरुष लेना जैसे कबूतर चिडा जंगली जीवोंमें जवान जीवले उसके चर्म, नख रोम आदिको त्याग करके हड्डी सहितटुकडे २ करके मांसलेना चाहिये ॥

पक्तव्यमाजमासंचविधिनाघृततैलयोः ॥

हित्वास्त्रींपुरुषंचापिक्रीवंतत्रापिदापयेत् ॥

अर्थ-स्त्री पुरुषको त्याग नपुंसक बकरालेकर उसके मांसको घी तैलमें भूने यदि नपुंसक बकरा न मिले तो बंध्या बकरी लेवे ॥

शृगालबर्हिणोः पाके पुमांसतत्रदापयेत् ॥

मयूरी जम्बुकीछागीवीर्यहीनास्वभावतः ॥

अर्थ-स्यार और मीरके पाकमें पुरुष लेवे-क्योंकि मीरनी स्यारनी और बकरी ये स्वभावसे ही वीर्यहीन होती हैं ॥

स्त्रीणांतीक्ष्णंगवांमूत्रंनतुपुंसांविधीयते ॥

पित्तात्मिकाः स्त्रियोयस्मात्सौम्यास्तुपुरुषामताः ॥

क्षीरमूत्रपुरीषाणिजीर्णाहारेतुसंहरेत ॥

अर्थ-यदि गौजातिकामूत्रलेना होयतो स्त्रीजातिकालेवे इसका कारण यह है कि स्त्री गौजातिका मूत्र तीक्ष्ण और पित्तात्मक होता है. एवं पुरुषजातिका मूत्र शीतल और तीक्ष्णता रहित होता है । यदि दूध, मूत्र और गोबर लेना होवे तो जब पशुका आहार पचजावे तब लेय अजीर्ण वालेका न लेय ॥

विशेषकथन ।

एकमप्यौषधयोगेयस्मिन्यत्पुनरुच्यते ।

मानतोद्विगुणंप्रोक्ततद्व्यंतत्वदर्शिभिः ॥

अर्थ-प्रयोगमें एक औषध दोवार आवे तो वह औषध वैद्यको दुगनी डालनी चाहिये ॥

औषधोंकेहीनवीर्यहोनेमेंप्रमाण ।

गुणहीनंभवेद्वर्षादूर्ध्वतद्रूपमौषधम् ॥ मासद्वयात्तथाचूर्णहीन
वीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ हीनत्वंगुटिकालेहौलभेतेवत्सरात्परम् ।
हीनाःस्युर्धृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ औषध्योल
घुषाकाःस्युर्निर्वीर्यावत्सरात्परम् ॥ पुराणाःस्युर्गुणैर्युक्ताभा
सवाधातवोरसाः ॥

अर्थ-एक वर्षके पश्चात् औषधोंका तेज और उनके गुणहीन हो जाते हैं उनमेंभी दोमहीनेके बाद चूर्ण हीनवीर्य होता है तथा गुटिका और अचलेह ये एक वर्षके उपरांत हीनवीर्य होते हैं तथा घृत और तैलादिक ये चारमहीनेसे हीनवीर्य होते हैं तथा औषधी हलके पाकवाली वर्षके पश्चात् निर्वीर्य हो जाती है एवं आसव (कुमारीसर्व द्राक्षासवआदि) धातु (सोने चांदी रंगा लोहा आदि की भरम) और रस (चंद्रोदयादि) ये जितने पुराने होंवे उतनेही गुणमें उत्तम होते हैं ॥

व्याधेरनुक्तंयद्रव्यं गणोक्तमपितत्यजेत् ।

अनुक्तंमपियुक्तंयद्युज्यतेतत्रतद्बुधेः ॥

अर्थ-रोगमें चूर्ण और काटे आदि की योजना गणकरके करते समय यदि उसगणमें एक दो औषध रोगके विरुद्ध होंवे तो वैद्य त्यागदेवे और जिसजगें गुणदायक औषध गणमें नहीं कही हो तो उसको वैद्य स्वबुद्धिसे मिलाय देवे ॥

देशभेदककेऔषधोंकेभेद ।

आग्नेयाविंध्यशैलाद्याः सौम्येहिमगिरिर्मतः ॥

अतस्तदौषधानिस्थुरनुरूपाणिहेतुभिः ॥

अन्येष्वपिप्ररोहंतिवनेषूपवनेषुच ॥

अर्थ-विंध्याचलपर्वत आदिकी औषध उष्णवीर्य होती है. और हिमालय पर्वत आदिकी सौम्य (शीतल) औषधी होती है । अतएव जैसी २ पृथ्वी होती है उसी २ प्रकारकी औषधी और २ वनोंमें तथा उपवनोंमें होती है उनको विचारकर वैद्य ग्रहण करे ॥

औषधीलानेकाप्रकार ।

गृह्णीयात्तानिसुमनाः शुचिःप्रातःसुवासरे ॥

आदित्यसन्मुखोमौनीनमस्कृत्यशिवंहृदि ॥

साधारणधराद्रव्यंगृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोपरमार्गजा ॥

जंतुवह्निहिमव्याप्तानौषधीकार्यसिद्धिदा ॥

अर्थ-औषधी लानेके समय प्रातःकाल उठकर स्वस्थचित्त करके पवित्रहो उत्तमदिन और मुहूर्तमें सूर्यके सन्मुख खडाहोके नमस्कार करे, और हृदयमें शिवका ध्यान करके और मौनधारण करके जो औषध लानीहो उसके समीप जायकर औषधीके उत्तरेके तरफकी छाल अथवा जड़ खोदके लावे

जो औषध सर्पकी बाँधीके ऊपरहो, दुष्ट पृथ्वीमेंहो, जलभय पृथ्वीमें हो, इमसान ऊत्तर और मार्ग (रास्ते) में हो, तथा जिसको कीड़े खाए गयेहों अमिसे या धूपसे झूलसगई हो तथा जाड़ेकी मारीहो ऐसी औषधकी न लेंके क्योंकि ऐसी औषध कार्यकर्ता नहीं होती (परंतु यहाँ हिंदुस्थानमें वैद्य अहेरिया वा पसारी आदिसे औषध लेतेहैं भला वो इस बातको क्या जाने कि ऐसी जगेसे औषध लेना और ऐसी जगेसे नलेना दूसरे देखो शास्त्रवैद्यकोही आज्ञा देताहै कि आप जायकर औषध लावे परंतु पश्चात्तापहें यहाँके वैद्य औषधके जाननेमें सर्वथा मूढहैं) ॥

ऋतुविशेषकरकेरोगविशेषोंपरऔषधलेनेकाकाल ।

शरद्यखिलकार्यार्थग्राह्यंसरसमौषधम् ।

विरेकवमनार्थचवसंतांतिसमाहरेत् ॥

अर्थ-आश्विन और कार्तिक इन दो महीनोंमें सर्व औषधी रससे भरी

होतीहैं अतएव सर्व कार्यके वास्ते इन्ही दो महीनोंमें औषधी लेना चाहिये, और दस्त करानेको तथा वमनकेलिये वसंतांत (वैशाख और ज्येष्ठ) इन दो महीनोंमें औषधी वनसे लावे ॥

औषधविशेषका अंगग्रहण ।

अतिस्थूलजटायाः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ।

गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानिसकलान्यपि बुद्धिमान् ॥

अर्थ—जिस वृक्षकी जड़ अत्यंत स्थूल हो उस वृक्षकी छाल लेव जैसे नीम, बड, जामुन आदि जानना और जिस वनस्पतिकी जड़ छोटी हो उस रुखड़की जड़लेव तथा सर्व अंग (जड़ फल पत्ते आदि) लेवे जैसे कटेरी गोखरू धमासा अडूसा आदि जानना तथा कितने वैद्योंका यह मत है कि ऐसी २ छोटी वनस्पतियोंकी जड़ही लेना ॥

न्यग्रोधादेस्त्वचोग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ।

तालीसादेश्चपत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः

धातव्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहेरत् ॥

अर्थ—बड आदि शब्द करके पापरी, जामुन, आम और पीपर इत्यादिकोंकी छाल लेना चाहिये, बीजकवृक्ष आदि शब्दसे खैर, महुआ इनका सार लेना जैसे विजसार, खैरसार लेवे तालीस आदि शब्द करके तमालपत्र, ग्वारपाठा, नागरवेल इत्यादिकोंके पत्ते लेना चाहिये त्रिफला आदि शब्दसे सुपारी, आम, बेर इत्यादिकोंके फल लेना चाहिये धाय आदि शब्दसे गुलाब, केवडा आदिके फूल लेवे थूहर आदि करके आक, तिधारा, थूहर इत्यादिकोंका दूधलेव इस प्रकार औषधी लेना चाहिये ॥

क्वचिन्मूलं क्वचित्कंदः क्वचित्पत्रं क्वचित्फलम् ।

क्वचित्पुष्पं क्वचित्सर्वं क्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥

अर्थ—किसीकी जड़ किसीका कंद किसीके फल किसीके पत्ते किसीके फूल किसीका सर्व अंग और किसीका सार अथवा गोंद वैद्यको यथायोग्य लेना चाहिये ॥

चित्रकः सूरणो निंबो वासाच त्रिफला क्रमात् ।

धातकी कंदकारी चखदिरः क्षीरपादपः ॥

अर्थ—चित्रकलीछाल, जमीकंद नीम अडूसेके पत्ते हरड वेहडा आमला इनके फल, धायके फूल, कटेरीका सर्वांग, खैरका सार, इस प्रकार लेना चाहिये

क्वचिन्निवस्यगृह्णीयात्पत्राभावेत्वचामपि ।

वालंफलंतुविल्वस्यपक्वमारग्वधस्यतु ॥

अर्थ—कहीं नीमके पत्ते न मिलनेसे छाललेना चाहिये वेलका कोमल फल लेवे और अमलतासकी पक्की फलीलेना चाहिये ॥

पक्वपदार्थोंकोफिरपक्वकरनेमेंदोष ।

घृतंतैलंचपानीयंकपायंव्यंजनादिकम् ।

पक्त्वाशीतीकृतंतसंतत्सर्वस्याद्विपोपमम् ॥

अर्थ—घृत तेल पानी काढा भोजनके पदार्थ (दालभात रोटी आदि) को एकघार सिजायकर जब शीतल होजाय तो फिर गरम न करे पुनः गरम करनेसे ये विपके समान होजाते हैं ॥

द्रव्योंकीपरीक्षा ।

सूक्ष्मास्थिमांसलापथ्यासर्वकर्मणिपूजिता ।

क्षिप्ताभिसिनिमज्जेद्याभल्लातक्ष्यभयोत्तमा ॥

अर्थ—जितनी बारीक तथा ऊपरकी त्वचामोटीहो वो छोटीहरड सर्व कार्यमें अति उत्तमहै, और जो जलमें गरनेसे दूबजावे वो हरड और भिलावा उत्तमहै ऐसा जानना ॥

वाराहीकंदसंचरऔरसंधवइनकीपरीक्षा ।

वराहमूर्धवत्कंदोवाराहीकंदसंज्ञितः ।

सौवचलंतुकाचाभसंधवंस्फटिकप्रभम् ॥

अर्थ—सूकरके मस्तक समान जो कंद होय वोवाराहकंद, जो पांचके समान चमके वो संचरनोन, और स्फटिकमणिके समानचमके वो संधानोन उत्तम होता है ॥

सुवर्णमाक्षिकतथारौप्यमाक्षिककीपरीक्षा ।

सुवर्णछविकंज्ञेयंस्वर्णमाक्षिकमुत्तमम् ।

उडुपुप्पप्रतीकाशामनोह्वाचोत्तमोत्तमा ॥

सौनिके रंगका सुवर्णमाक्षिक उत्तम होताहै, और जो चंद्रमाके समान स्वच्छ और सपेद होय वो रौप्यमाक्षिक उत्तम जानना ॥

शिलाजतिपरीक्षा ।

श्रेष्ठशिलाजतुज्ञेयंयत्क्षिप्तंनविशीर्यते ।

तोयपूर्णैकांस्यपात्रेप्रतानेनविवर्द्धते ॥

अर्थ-वो शिलाजीत उत्तम जाने जो जलमें गरनेसे फूटे नहीं किंतु-
कासीके पात्रमें जलभरके शिलाजीत डालेतो तारसे चूटने लगे वो उत्तम है
कपूर इलायची और चंदनकी परीक्षा ।

कर्पूरस्तुवरस्निग्धएलासूक्ष्मफलावराः ।

श्वेतचंदनमत्यंतसुगंधिगुरुपूजितम् ॥

अर्थ-कपूर कपेला और चिकना उत्तम होता है इलायची छोटी
सुगंधदार उत्तम होती है सपेदचंदन अत्यंत सुगंधदार और भारी उत्तम
होता है ॥

रक्तचंदनपरीक्षा ।

रक्तचंदनमत्यंतलोहितंप्रवरंमतम् ।

काकतुंडनिभःस्निग्धोगुरुःश्रेष्ठोगुरुर्मतः ॥

अर्थ-जो रक्तचंदन अत्यंत काला तथा कौएके मुखमांस समान लाल
हो और चिकना तथा भारी हो वह उत्तम है ॥

देवदारुऔरसरलकीपरीक्षा ।

सुगंधिलघुसूक्ष्मंचसुरदारुवरंमतम् ।

सरलंस्निग्धमत्यर्थसुगंधिचगुणावहम् ॥

अर्थ-सुगंध, हलका, सूक्ष्म, ऐसा देवदारु । और चिकना तथा सुगंध-
वाला सरल बहुत उत्तम गुणकारी जानना ॥

दारुहल्दी और जायफलकीपरीक्षा ।

अतिपीताप्रशस्तातुज्ञेयादारुनिशाबुधैः ।

जातीफलंगुरुस्निग्धंसमंशुभ्रेतरद्वयम् ।

अर्थ-अत्यंत पीली ऐसी दारुहल्दी उत्तम होती है और जायफल
भारी चिकना-गोल और काला उत्तम होता है ॥

दाखकीपरीक्षा ।

मृद्धीकासोत्तमाज्ञेयायास्याद्गोस्तनसत्रिभा ।

करमर्दफलाकारामध्यमासाप्रकीर्तिता ॥

अर्थ—गौके धनों के समान जो दाखहो वो उत्तम जानना और करोंद के फलके समान हो वह मध्यमजानना ।

खांड और सहतकीपरीक्षा ।

खंडंतुविमलंश्रेष्ठं चन्द्रकांतिसमप्रभम् ॥

गवाज्यसदृशं रुच्यं गंधं धुवरं मतम् ॥

अर्थ—मिथ्री चंद्रमाके कांतिके समानसपेदवो उत्तमहोती है (यह जोधपुरमें होती है) और गौके घृतके समान रुचिकारी-गंधवाला ऐसा सहत उत्तम जानना

स्वभावसँ हितकारीद्रव्य ।

शालीनांलोहितःशालिःषष्टिकेषुचषष्टिका ।

शूकधान्येष्वपियवोगोधूमःप्रवरोमतः ॥

अर्थ—सर्वशालियोंमें लालशाली (धान्य विशेष) और सांठियोंमें सांठी-चावल उत्तम होतेहैं. शूकधान्योंमें गेहूँ और जौ उत्तम होते हैं ॥

शिबीधान्योंमेंउत्तमधान्य ।

शिबीधान्येवरोमुद्गोमसूराश्चाढकीतथा ।

रसेपुमधुरः श्रेष्ठोलवणेषुचसंधवम् ।

अर्थ—फलीके धान्योंमें मूंग-ममूर और अरहर उत्तम होताहै रसोंमें मधुर रस श्रेष्ठहै. नॉनमें सैंधानिमक उत्तम जानना ॥

उत्तमफल ।

दाडिमामलकंद्राक्षाखर्जूरंचपरूपकम् ।

राजादनंमातुलुंगफलवर्गप्रशस्यते ॥

अर्थ—अनार आमले. दाख-छुहारे फालसे-खिन्नी-और विजोरा ये फल वर्गोंमें उत्तम जानना ॥

पत्रफल औरकंद इन शाकोंमेंउत्तम ।

पत्रशाकेषुवास्तूकंजीवंतीपोतिकावरा ॥

पटोलंफलशाकेषुकंदशाकेषुसूरणम् ॥

अर्थ—पत्तेके शाकमें वधुएका साग, डोडीकासाग, और पोयकासाग, उत्तम है । फलके सागोंमें परवलका साग उत्तम होताहै । कंदोंमें जमी कंदका साग उत्तम होता है ॥

मृग पक्षी और मछली इनमें उत्तम ।

एणः कुरंगो हरिणो जंघालेषु च शस्यते ।

पक्षिणां तित्तिरिर्लावो वरो मत्स्येषु रोहितः ॥

अर्थ—जंघाल (दौडनवाले) पशुओंमें एण. कुरंग और हरिण ये उत्तम होते हैं पक्षियोंमें तीतर और लवा उत्तम होते हैं एवं मछलियोंमें रोहूमछली उत्तम होती है ॥

हरिणोंके भेद ।

हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णस्तथामतः ।

कुरंगस्ताम्रजिह्वो हरिणाकृतिको महान् ॥

अर्थ—लालवर्णके मृगको हरिण कहते हैं काले रंगकेका एण तथा कुल्लाल और शरीरमें भारी हो उसको कुरंग कहते हैं ये हरिणोंके भेद जानने जल, दूध घृत, तेल, इक्षुविकार इनमें उत्तम ।

जलेषु दिव्यं दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गोद्रवम् ।

तैलेषु तिलजंतैलमैक्ष्वेषु सिताहिता ।

अर्थ—जलोंमें मेघका जल—दूध और घृतोंमें गौका दूध घी—तैलोंमें तिलका तेल—तथा ईखके सर्व पदार्थों में मिश्री उत्तम होती है ॥

स्वभावसे अहितकारी द्रव्य ।

शिबीषु मापान् ग्रीष्मर्तौ लवणेष्वाखरन्त्यजेत् ।

फलेषु लकुचं शकिसार्पपंनहितं मतम् ॥

अर्थ—दो दलके अन्नोंमें उडद त्याज्य है, निमकोंमें रेहूका निमक और फलोंमें छोटा बडहर और सागोंमें सरसोंका साग त्याज्य है ॥

गोमांसं ग्राम्यमांसेषु नहितामहिपीवसा ॥ मेपीपयः कुसुंभस्य तैलं त्याज्यं च फाणितम् । इक्षुरसः परिपक्वो यो र्धवनः फाणितं तद्धि ॥

अर्थ—मांसोंमें गौका मांस त्याज्य है, भैंसकी वसा त्याज्य है, दूधोंमें मेढीका दूध, तैलोंमें कुसुमका तेल त्याज्य है, ईखका रस निकाळे जब पकानेसे आधारहजावे उसको फाणित कहते हैं वो राव अपथ्य है ॥

संयोगविरुद्ध द्रव्य ।

मत्स्यमानूपमांसं च दुग्धयुक्तं विवर्जेर्यत् ।

कापोत्सार्पपस्नेहर्भजितंपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—मछली और जलसमीप जीवोंकामांसदूध मिलापके नखावे कबूतरकामांस सरसोंके तेलमें भूनके नखाय क्योंकिये संयोग विरुद्धहै॥

मत्स्यानिक्षोर्विकारेणतथाक्षौद्रेणवर्जयेत् ।

सकून्मांसपयोयुक्तानुष्णैर्दधिविवर्जयेत् ॥

अर्थ—इंखके पदार्थसे मछलीका खाना अथवा सहतके साथ खाना निषेध है सत्तू मांस और दूध इनके साथभी मछली नखाय तथा गरम पदार्थके साथ दही नखावे ॥

उष्णैर्दध्यंबुनाक्षौद्रंपायसंकृसरान्वितम् ।

रंभाफलंत्यजेत्तक्रंदधिविल्वफलान्वितम् ॥

अर्थ—उष्णपदार्थ दहीके साथ, तथा दूध खिचडीके साथ, सहतजलके साथ, केलेकी फली छाँछके साथ और बेलका फल दहीकेसाथ नभक्षणकरे

दशाहमुपितंसर्पिःकांस्येमधुघृतेसमम् ।

कृतान्नंचकपायंचपुनरुष्णीकृतंत्यजेत् ॥

अर्थ—घी कांसेके वासनमें दसदिन धरारहने से त्याज्य है, सहत और घी बराबरका मिलाहुआत्याज्य है भोजनका अन्न और फाटा दूसरे बार गरमकराहुआ त्याज्य है ॥

एकत्रवहुमांसानिविरुध्यंतेपरस्परम् ।

मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि यथा तथा ॥

अर्थ—एकत्रकरे हुए अनेक पशुपक्षियोंका मांस त्याज्य है-और सहत, घृत घसा-तेल-और जल एकत्रकरे हुए अपध्य होते है अतएव इनको नखाय ॥

औषधग्रहणमेंसंकेत ।

लवणसैधवंप्रोक्तंचंदनरक्तचंदनम् ॥ चूर्णलेहासवस्नेहाः
साध्याधवलचंदनैः॥ कपायलेपयोः प्रायोजुज्यतेरक्तचंद
नम् ॥ अंतःसंमार्जनेज्ञेयाह्यजमोदायवानिकाः॥वहिःसैव
चविद्रद्रिर्विज्ञातव्याजमोदिका ॥ पयःसर्पिःप्रयोगेषुग
व्यमेवहिगृह्यते ॥ सकृद्रसोगोमयजोमूत्रंगोमूत्रमुच्यते ॥

अर्थ-औषधि ग्रहणमें जहां सामान्यकरके लवण कहाहो तहाँ सैधानिमक लेना और चंदन कहने से काढेमें लालचंदन लेना तथा चूर्ण, घृत तैलादि-अवलेह-और आसवमें सपेदचंदन डालना-परंतु लेपमें लालचंदनडालना-भीतरकीशुद्धि करनेवाली औषधोंमें जहां अजमोद लिखा हो तहां अजवायन डालना और बाहरकी शुद्धिमें अजमोदके स्थानमें अजमोदही लेना-दूध घृतके प्रयोगमें गौका दूधही लेना-गोबरकारस और मूत्रके स्थानमें गोमूत्र लेनाचाहिये ॥

अंतःसंमार्जनेयोज्यंवचास्थानेकुलिजनम् ।

वहिःसंमार्जनेसैवप्रयोक्तव्यामनीपिभिः ॥

अर्थ-अंतर्गतकी शुद्धिमें वचके स्थानमें कुलिजन डाले और बाहर लेपादिकोंमें वचके स्थानमें वचही लेना चाहिये ॥

औषधभक्षणमेंकाल ।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभातेप्रायशोबुधः ।

कपायांश्चविशेषेण तत्रभेदस्तुदाज्ञितः ॥

अर्थ-वैद्य रोगीको बहुधाकरके औषध प्रातःकालमें भक्षण करावे तथा स्वरस फल्क-काढे-फाट-हिम होयतो विशेषकरके प्रातःकालमें पिवावे, इसमेंभी कालका भेद वक्ष्यमाणप्रकार करके कहते हैं ॥

औषधभक्षणकेपांचकाल ।

ज्ञेयःपंचविधःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम्

किंचित्सूयौदयेजातेतथादिवसभोजने ।

सायंतनेभोजनेचमुहुश्चापितथानिशि ॥

अर्थ-मनुष्योंको औषध भक्षणके विषयमें पांचकाल है उनको कहते हैं, किंचित्सूयौदयहोने पर औषध लेना वह प्रथमकाल है, तथादिनमें भोजनके समय औषधलेना द्वितीयकाल, सायंकालमें व्यारीके समय औषधलेना तृतीयकाल, चारंवार औषधलेना वहचतुर्थ काल है, और रात्रिमें औषधलेना वो पंचमकाल है इसप्रकार औषधसेवनके पांचकालकहे हैं अबइनकी क्रमसे कहते हैं ॥

प्रथमकाल ।

प्रायःपित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ।

लेखनार्थेच भैषज्यं प्रभातेनात्रमाहरेत् ॥

एवंस्यात्प्रथमःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम् ॥

अर्थ—पित्त और कफ इनका प्रकोप होनेसे पित्तको विरेचन और कफको वमन-तथा लेखन कहिये पतलीकरण इनविषयोंमें प्रातःकाल औषध लेवोपरंतु प्रातःकाल रोगीको अन्ननदेवे यह औषधग्रहणमें प्रथमकालकहा द्वितीयकाल ।

भैषज्यंविगुणेपानेभोजनाग्रेप्रशस्यते ॥ अरुचौचित्र
भोज्यैश्चमिश्रंरुचिरमाहरेत् ॥ समानवातेविगुणेमंदेग्रा
वग्निदीपनम् ॥ दद्याद्भोजनमध्येचभैषज्यंकुशलोभिपक्व ॥
व्यानकोपेचभैषज्यंभोजनान्तेसमाहरेत् ॥ हिक्काक्षेपक
कंपेपुपूर्वमंतेचभोजनात् ॥ एवंद्वितीयकालश्चप्रोक्तोभै-
षज्यकर्मणि ॥

अर्थ—गुदासंबंधी वायुके कुपित होनेमें भोजनके कुछ थोड़ी देरपहले औषध खाये । और अरुचि होनेसे अनेक प्रकारके अन्न तथा अनेक प्रकारके रुचिकारी पदार्थोंके साथमिलायके वैद्य रोगीको औषध देवे । और नाभि संबंधी वायुके कुपित होनेमें तथा मंदाग्निहोनेमें जैसे अग्निप्रदीत होवे ऐसी औषधभोजनके मध्यमें वैद्यरोगीको देवे । तथा सकल देह व्यापी व्यानवायुके कुपित होनेसे भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे । और हिचकी-तथा आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनका कोप होनेसे भोजनके प्रथम और अंतमें वैद्य रोगीको औषधी भक्षण करावे इसप्रकार औषध भक्षणमें दूसरा कालकहा ॥

तृतीयकाल ।

उदानेकुपितेवातेस्वरभंगादिकारिणि ॥
ग्रासेग्रासांतरेदेयंभैषज्यंसांध्यभोजने ॥
प्राणप्रदुष्टेसांध्यस्यभक्षस्यान्तेचदीयते ॥
औषधंप्रायशोर्धरैःकालोऽयंस्यात्तृतीयकः ॥

अर्थ—कंठ संबंधी उदान वातके कोपहोनेसे जो प्रगटहुएस्वरभंगादि-
रोग उनमें सायंकालमें भोजनके समय ग्रासके साथ औषध देवे अथवा दो

१ पातादि दोषोंको स्नेहादि च योग्यकरके पतले करना टसीप्रकार स्थूल मनुष्यको सइतपानी इत्यादि देकर वृद्ध करना ॥

मासोंके बीचमें देय और हृदय स्थित प्राण पवनके कुपित होनेसे प्रायः सायंकालके भोजनके अंतमें वैद्य औषधी देवे इस प्रकार औषधि भक्षणका तीसरा कालकहा ॥

चतुर्थकाल ।

मुहुर्मुहुश्चतृदृर्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ।

सात्रं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥

अर्थ—प्यास वमन और हिचकी श्वास विषदोष ये रोग होनेसे चार, चार अन्नके साथ औषध भक्षण करावे श्लोकमें जो चकारहै इससे अन्न रहितभी भक्षण करे ऐसा जानना यह औषध भक्षणका चतुर्थ कालकहा पंचमकाल ।

ऊर्ध्वजडुविकारेषु लेखने वृंहणे तथा ॥

पाचनं शमनं देयमन्नं भेषजं निशि ॥

इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भेषज्यक्रमणि ॥

अर्थ—नाडके ऊपरके भागोंके विकार (कर्ण नेत्र मुख नासिका आदि रोगों) में तथा प्रवृद्धवातादि दोषोंके घटानेमें और अति क्षीण दोषोंके बढ़ानेके वास्ते रात्रिमें पाचन रूप और शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षणकरे इसप्रकार औषध भक्षणका पांचवां कालकहा ॥

औषधिप्रतिनिधि ।

कदाचिद्द्रव्यमेकं वा योगेयत्र न लभ्यते ।

तत्तद्गुणयुतं द्रव्यं परिवर्तनं गृह्यते ॥

अर्थ—कदाचित् किसी योगमें एक औषध न मिले तो उसी उसीके समान गुणकारी दूसरी औषध तत् प्रयोगमें लेना चाहिये ॥

वज्राभावे तु वैक्रान्तं स्वर्णाभावे तु माक्षिकम् ।

हेममाक्षिकजं सत्त्वं मत्तं हेमसमं गुणैः ॥

अर्थ—हीराके अभावमें वैक्रान्त (वांसुला) लेवे सुवर्णके अभावमें सुवर्ण माक्षिकले और जहां चाँदी नहीं मिल सकती हो वहां पर रूपामाखी लेवे ॥

विमलामाक्षिकं ज्ञेयं ध्रुवं रजतवद्गुणैः ।

मुक्ताऽभावे क्षिपेन्नं मुक्ताशुक्लिचतद्गुणाम् ॥

अर्थ—तथा माक्षिकका भेद विमला है उसकी रूपकी प्रतिनिधिमें

लेवे जहां मोती न मिलती हो तो उसकी एवजमें मोतीकी सीप डाले तो मोतीके तुल्य गुण करे ॥

अभावेऽभ्रकसत्वस्यकान्तलोहंप्रयोजयेत् ।

कान्ताभावेतीक्ष्णलोहमित्युक्तंरसदर्पणे ॥

अर्थ—जहां अभ्रकसत्व नमिले तहां कान्तलोहकी भस्मलेवे, यदि कान्तलोहकी भस्मभी न मिले तो खेरी लोहकी वा गजवेललोहकी भस्म लेवे ऐसा रसदर्पण ग्रंथमें लिखाहै ॥

चित्रकाभावेतोदंतीक्षारः शिखिरिजोऽथवा ॥

अभावेधन्वयासस्यप्रक्षेतव्यादुरालभा ॥

अर्थ—चित्रकके अभावमें दंती लेवे अथवा आंगाका क्षारलेवे जवासेके अभावमें धमासालेना चाहिये ॥

यदिनस्यादारुनिशातदादेयानिशाबुधैः ॥

रसांजनस्याभावेतुसम्यक्दार्वाप्रयुज्यते ॥

अर्थ—यदि दारुहल्दी न मिले तो उसके पलटेमें हल्दीही डालना और रसोत नमिले तो उसके पलटेमें दारुहल्दी लेना चाहिये ॥

चविकागजपिप्पल्यौपिप्पलांमूलवत्स्मृते ।

अभावेसोमराज्यास्तुप्रपुंनाटफलंस्मृतम् ॥

अर्थ—पीपरामूलके अभावमें चव्य अथवा गजपीपर लेवे और वावकीके अभावमें पवाडके बीजलेने चाहिये ॥

पौष्कराभावतः कुष्ठंतथालांगल्यभावतः ।

स्थौण्यकस्यचाभावेभिपग्भिर्दायतेगदे ॥

अर्थ—गुहकर मूलके कलिमारीके और ग्रंथिपर्णी इनके अभावमें वैचकुष्टलेवे जातीपुष्पंनयत्रास्तिलवंगंतत्रदीयते ।

अर्कपर्णादिपयसोह्यभावेतद्रसोमतः ॥

अर्थ—जहां जायफल न मिले उसके स्थानमें लौंगडाले जहां आकके पत्तेका दूधकहा है यदि वह न मिले तो उसमें आकके पत्तोंका रस काम में लाना चाहिये ॥

वकुलाभावेतोदयंकल्हारोत्पलपंकजम् ।

नीलोत्पलस्याभावेतुकुमुदं देयमिष्यते ॥

अर्थ-मौलसरीके अभावमें कल्हार (लालकमल) अथवा नीलकमल और नीलकमलके अभावमें कुमुद (रात्रिमें फुलनेवाला कमल) लेवे ॥

अहिंसायाअभावेतुमानकंदः प्रकीर्तितः ।

लक्ष्मणयाअभावेतुनीलकंठशिखामता ॥

अर्थ-अहिंसा (धृहरकाभेद) इसके अभावमें मानकंदलेना और लक्ष्मणा रुखडीके न मिलनेपर मोर शिखा (बूटी) वैद्यको लेना चाहिये ॥

तगरस्याप्यभावेतुकुष्ठंद्याद्भिपग्वरः ।

मूर्वाभावेत्वचोग्राह्याजिगिनीप्रभवानुधैः ॥

अर्थ-तगरके अभावमें कूठ औषध लेवे और पूर्वा औषधके न मिलनेसे मजीठलेना चाहिये ॥

भाग्यभावेतुतालीसंकंठकारिजटाथवा ।

रुचकाभावतोदद्याल्लवणंपांशुपूर्वकम् ॥

अर्थ-भारंगीके अभावमें तालीसपत्र लेवे अथवा कटेरीकी जडलेवे और फाले निमकके अभावमें खारी निमक लेना चाहिये ॥

सौराष्ट्र्यभावतोदेयास्फटिकातद्गुणाजनैः ।

तालीसपत्रकाभावेस्वर्णतालीप्रशस्यते ॥

अर्थ-सौराष्ट्रगोष्ठीके अभावमें फिटफरी लेवे और तालीसपत्रके अभावमें स्वर्णतालीसपत्र लेना चाहिये ॥

अभावेमधुयष्ट्यास्तुधातर्कांतुप्रयोजयेत् ।

अम्लवेतसकाभावेचुक्रंदातव्यमिष्यते ॥

अर्थ-मुलहटीके अभावमें धायके फूल लेवे जहां अमलवेत न मिले उस जगे चूकालेना चाहिये ॥

लवंगकुशुमंदद्यान्नखस्याभावतः पुमान् ।

कस्तूर्यभावेकंकोलक्षेपणीयंविदुर्वुधाः ॥

अर्थ-नख (सुगंधद्रव्य) के अभावमें लौंगलेना और कस्तूरीके अभावमें कंकोल लेना ऐसा बुद्धिमान् वैद्यनि कहा है ॥

द्राक्षायदिनलभ्येतप्रदेयंकाश्मरीफलम् ।

तयोरभावेकुसुमंमधूकस्यमतंबुधैः ॥

अर्थ- जहां दाख न मिले उसजगे कंभारीके फल लेने चाहिये, यदि दाख और कंभारीके फल दोनों न मिलें उसजगे महुआके फूललेना ॥

कंकौलस्याप्यभावेतुजातीपुष्पंप्रदीयते ।

सुगंधमुस्तकंदेयंकपूराभावतोबुधैः ॥

अर्थ-कंकौलके अभावमें-जावित्रीलेना-जहांक पूर न मिलता हो वहां सुगंध मुस्तक अर्थात् नागर मोथा लेना वैद्योंने कहा है ॥

कर्चूराभावतोदेयंग्रंथिपर्णविशेषतः ।

कुंकुमाभावतो दद्यात्कुसुंभकुसुमंनवम् ॥

अर्थ-कर्चूरके अभावमें ग्रंथिपर्णा लेवे जहांकेशर न मिलती होवे उस जगे नवीन कुसुमका फूल लेवे ॥

श्रीखंडचन्दनाभावेकपूरंदेयमिष्यते ।

अभावेत्तैतयोर्वैद्यःप्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ॥

अर्थ-सपेदचंदनके अभावमें कपूर लेना चाहिये और जहां चंदन और कपूर दोनों नमिलें उसजगे लालचंदन लेना चाहिये ॥

रक्तचंदनकाभावेनवोशीरविदुर्बुधाः ।

मुस्ताचातिविपाभावेशिवाभावेशिवामता ॥

अर्थ-लालचंदनके नमिलनेमें नवीन खसलेनी चाहिये अतीसके अभावमें मोथालेवे और छोटीहरडके अभावमें आमले लेना चाहिये ॥

अभावेनागपुष्पस्यपद्मकेशरमिष्यते ।

मेदाजीवककांकोलीऋद्धिद्वंद्वेपिचासति

वरीविदार्यश्वगंधावाराहीश्वक्रमाक्षिपेत् ॥

अर्थ-नागकेशरके अभावमें कमलकी केशर लेवे और मेदा, जीवक, काकोली, ऋद्धि वृद्धि, इनके अभावमें क्रमसे शतावर विदारीकंद अस-गंध और वाराहीकंद यं चार औषध पृथक् २ लेवे ॥

वाराह्याश्वतथाभावेचर्मकारालुकोमत ॥ वाराहीकंदसं

ज्ञस्तुपश्चिमेशृष्टिसंज्ञकः ॥ वारहीकंदएवान्यैश्चर्मका

रालुकोमतः ॥ अनूपसंभेवेदेशवाराहइवलोमवान् ॥

अर्थ-सपेद विदारी कंदके अभावमें वाराही कंद लेवे इसको पछेंयां

चर्मकाराल और गृष्टीभी कहते हैं यहकंदजलप्रायःभूमिमें होता है और इसके ऊपर सूअरकेसे कडे २ बाल होते हैं ॥

भल्लातकासहत्वेतुरक्तचन्दनमिष्यते ।

भल्लाताभावतश्चित्रंनलश्चेशोरभावतः ॥

अर्थ—भिलावेके अभावमें लालचंदन अथवा चित्रकलेवे और ईखके अभावमें नरसललेवे ॥

माक्षिकस्याप्यभावेतुप्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम् ।

सुवर्णमथवारौप्यंमृतंयत्रनलभ्यते ॥

तत्रलोहेनकर्माणिभिषक्कुर्याद्विचक्षणः ।

कांताभावेतीक्ष्णलोहंयोजयेद्वैद्यसत्तमः ॥

अर्थ—सुवर्ण माक्षिकके अभावमें सुवर्णगेहूलेवे और सुवर्ण तथा चांदी की भस्मके अभावमें लोहभस्मडालके कर्मकरे और कांतलोहके अभावमें गजवेल लोहकी भस्मले ॥

मधुयत्रनविद्येतत्रजीर्णोऽगुडोमतः ॥ पुरातनगुडाभा

वरौद्रेयामचतुष्टयम् ॥ संशोष्यनूतनंश्राह्यंपुरातनगुणैपिणा ॥

अर्थ—जहाँ सहत नमिले उसजगे पुराना गुडलेना जहाँ पुराना गुड न मिलता हो वहाँ नएगुडको ४ प्रहर धूपमें सुखायके लेवे तो पुराने के समान गुणकरे ॥

क्षीराभावेभवेन्मौद्गोयूपोमासूरसंभवः ।

सिताभावेचखंडंस्यात्शाल्यभावेचपष्टिकः ॥

अर्थ—जहाँ दूध नमिलताहो वहाँ पर मूंगकायूपले अथवा मसूरका यूप लेवे मिश्रीके अभावमें खांडलेना और शाली चांवलोके अभावमें सांठी चावललेना चाहिये ॥

नभवेदाडिमोयत्रवृक्षाम्लंतत्रदापयेत् ॥

सौराष्ट्रमृदभावेचश्राह्यापंकस्यपर्पटी ॥

अर्थ—जहाँअनारदाना नमिलता होय वहाँ तंतडीककी खटाईडाले और जहाँ फिटकरी न मिलती होय वहाँपर कीचकी जमीहुई पपडीलेनी ॥

नतंतगरमूलंस्यादभावेसिंहलीजटा ।

प्रयोगेयत्रलोहःस्यादभावेतन्मलंस्मृतम् ॥

अर्थ—छडके और तगरकी जडके अभावमें कठेरीकी जड लेवे—जहां प्रयोग में लोहलिखा है यदि न मिले तो उस लोहकी कीटी लेवे ॥

सर्पपःशुकुवर्णोयःसहिसिद्धार्थकोमतः ।

तत्रसिद्धार्थकाभावेसामान्यःसर्पपोमतः ॥

अर्थ—सर्पेदरंगके सरसों को सिद्धार्थककहा है जहां यह सिद्धार्थक नमिले उस जगे सामान्यसरसों डालना चाहिये ॥

अभावेप्रश्रपण्यांश्चसिंहपुच्छीविधीयते ।

कुंकुमस्याप्यभावेतुनिशाग्राह्याभिपग्वरैः ॥

अर्थ—प्रश्रपर्णीके अभावमें पिठवनलेना चाहिये—केशरके अभावमें वैद्य हल्दी की योजना करे ॥

धान्यकाभावतोदद्याच्छतपुष्पाभिपग्वरः ॥

सामुद्रसैंधवाभावेविडंबागृह्यतेबुधैः ॥

अर्थ—धान्यके अभावमें सौंफलेवे सामुद्र और सैंधेनिमकके अभावमें विडनिमक लेना चाहिये ॥

पुष्पाभावेफलंचामंविड्भेदेषित्वतःफलम् ।

कर्पूरस्याप्यभावेऽपिसुगंधंमुस्तमिष्यते ॥

अर्थ—जहां जिस द्रव्यका पुष्पलिखा है उसके अभावमें उसका कच्चा-फल लेवे उदरके रोगमें बेलकी गीरी ही डाले ॥

रास्नाभावेचवंदाकोजीराभावेचधान्यकम् ।

रसाञ्जनस्यचाभावेदार्वाकाथंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—रास्नाके अभावमें वंदाक लेवे जीरेके अभावमें धनिया रसो-तके अभावमें दारुहलदीका काढा लेके कार्य साधन करे ॥

मेदा भावेश्वगंधास्यान्महामेदेतुसारिवा ।

जीवकर्पभकाभावेगुडुचीचविदारिका ॥

अर्थ—मेदाके अभावमें असगंधलेवे, महामेदाके अभावमें सारिवाले जी-वक और ऋपभकके नमिलनेपर गिलोय और विदारी कंद लेना चाहिये ॥

ऋद्धयभावेवलाग्राह्यावृद्धयभावेमहावला ।

कांकोलीयुगलाभावेनिक्षिपेच्चशतावरीम् ॥

अर्थ—ऋद्धिके अभावमें बलालेवे वृद्धिके अभावमें महाबलालेय दोनोंकाकोलीके अभावमें शतावरी लेना चाहिये ॥

दयोमृगमदाभावे पृत्तिकातद्गुणानुधैः ।

रोहीतकत्वचोऽभावेपिचुमर्दस्यगृह्यते ॥

अर्थ—कस्तूरीके अभावमें गंधमार्जार (मुष्कविलाई) लेना चाहिये रोहीडेकी छालके अभावमें नीमकी छाललेवे ॥

कापोतंसर्वमांसानां तुल्यगुणकरंस्मृतम् ।

मांसकाथापरिप्राप्तौयूपोमोद्गः प्रदीयते ॥

अर्थ—सब मांसोंमें कबूतरका मांस तुल्य गुणकारी है इसवास्ते यही देवे और जहां मांसकाथ न मिले वहांपर मंगकायूप देना चाहिये ॥

धेन्वाः प्रकटवत्सायाः क्षीरंकृत्स्नपयोगुणम् ।

वेतसाम्लस्यचाभावेहरिमन्थाम्लमादिशेत् ॥

अर्थ—संपूर्णदुग्धके अभावमें बछरेवाली गौकादूध लेना चाहिये और अमल वेतके अभावमें चनेका रार लेना चाहिये ॥

अभावेचंदनस्यापिमेलयेद्रक्तचंदनम् ।

तुगाभावेप्रदातव्यात्वक्क्षीरीतद्गुणानुधैः ॥

अर्थ—सपेद चंदनके अभावमें लालचंदन लेवे तवाक्षीरके अभावमें वंशलोचन लेना चाहिये ॥

अभावेसतिपत्राणां रसादेर्भावनाविधौ ।

विपमुष्टि कपायेणषड्गुणाभावनाभवेत् ॥

अर्थ—जहां रसकी भावना लिखी है यदि उस जगे वो पत्ते न मिलें तो कुचलेके काठकी छः गुनी भावना देनेसे पूर्ववत् गुण करे ॥

फलमाममपुष्टं चत्यजेद्विल्वाहृतेसदा ।

द्राक्षाविल्वाशिवादीनांफलंशुष्कं गुणोत्तरम् ॥

अर्थ—जितने फल हैं उनमें बेलफलके सिवाय सब फल कच्चे और पुष्टि रहित त्याज्य हैं और सूखेफलभी त्याज्य हैं परंतु दास्य बेलगिरी और आमले ये सूखेही गुणकारी होते हैं ॥

यत्रयद्द्रव्यमप्राप्तंभेपजेपरपूर्वतः ।

ग्राह्यंतद्गुणसाम्यात्तुनतत्रकापिदूषणम् ॥

अर्थ—जिस औषधके बनानेमें यदि एक औषध न मिले तो वैद्यको उचितहै कि, उसके समान गुणकारी दूसरी औषध लेनेमें किसी प्रकारका दूषण नहींहै ॥

अत्रप्रोक्तानिवस्तूनियानितेषुचतेषुच ।

योज्यमेकतराभावे परं वैद्येन जानता ॥

अर्थ—इसमें जो जो औषधादि कही हैं उनके न मिलनेपर बुद्धिमान् ज्ञाता वैद्य उक्त प्रमाण उसी २ की प्रतिनिधि ग्रहण करे ॥

रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिंत्य च ।

युज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्याणां च रसादिवत् ॥

अर्थ—जो द्रव्य न मिले उसके रस वीर्य और विपाकके सदृश औषधी चिंतवन करके मिलावे—जैसे द्रव्योंमें रसादिविचारके मिलाये जाते हैं ॥

योगेयदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः ।

यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥

अर्थ—जो द्रव्य काथ-चूर्ण-गुटिका आदिमें मुख्य करके कही है (जैसे योगराजगूगलमें गूगलमुख्यहै) तो इस गूगलकी प्रतिनिधी नहीं लीना जावेगी बाकी अप्रधान और २ औषधोंकी प्रतिनिधि लेना चाहिये ॥

अथातोरसविशेषविज्ञानीयमध्यायः ।

अर्थ—अब मधुरादि रस विशेष विज्ञानीयाध्यायकी व्याख्या करते हैं तहां संपूर्ण रसोंका प्रथम कारण संभव दिखाते हैं यह सश्रुतकी अध्याय है

आकाशपवनदहनतोयभूमिपुयथासंख्यमेकोत्तरवृ

द्धाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः । तस्मादाप्योरसः पररूप

रसंसर्गात्पररूपरानुग्रहात् पररूपरानुप्रवेशाच्च सर्वेषु स

र्वेषां सान्निध्यमस्त्युत्कर्षापकर्षात्तुग्रहणम् ॥

अर्थ—आकाश-पवन-अग्नि-जल-और पृथ्वी इनमें क्रमसे एक २ वृद्धिके हिसाबसे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-और गंध ये रहते हैं [जैसे शब्दगुण आकाश, शब्द स्पर्श गुणवान् वायु, शब्द-स्पर्श-रूपगुणविशिष्ट

अग्नि, शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणवान् जलहै, एवं शब्द-स्पर्श रूप-रस-गंध गुणवान् पृथ्वी है] ।

इसी कारण रसहै सो जलका गुणहोनेसे आप्यकहलाताहै । परंतु ये संपूर्ण पंचभूत आपसमें परस्पर संयोगहोनेसे परस्पर एक दूसरेके सहायक होनेसे और परस्पर आपसमें एकात्मी भावहोनेसे सबभूतोंमें सबभूतोंकी सान्निध्यताहै [अर्थात् जितने आकाशादि भूतहै ये पंचीकरणकी रीतिसे एकमेंएक हो रहे हैं] परंतु वृद्धि और हासके होनेसे ग्रहण करे जाते हैं इन्हींके अंशसे पंचविधद्रव्यहै तहां आकाश अंश अधिक द्रव्यमें शब्दाधिक्य जानना, वाताधिक्यमें स्पर्शाधिक्यहै इसी प्रकार अन्य द्रव्योंमें जानो

सखल्वाप्योरसःशेषभूतसंसर्गाद्विदग्धःपोढाविभज्यते ॥

अर्थ-वर्हा आप्यरस अन्यभूत (आकाश-अग्नि-पवन और पृथ्वी) के मिलापसे अप्रगटभी है परंतु कालकी सहायतासे पृथ्वी-आकाश-पवन अग्नि इनके संसर्गसे परिपाकको प्राप्त होकर छः प्रकारका होजाताहै ॥

तद्यथा-मधुरोऽम्लोलवणःकटुकस्तिक्तःकपायइति ॥

अर्थ-तहां मधुर (मीठा) अम्ल (खट्टा) लवण (खारी) कटुक (नरपरा) तिक्त (कडुआ) और कपायकहिये कसेला यह छः रसहै ॥

तेचभूयःपरस्परसंसर्गाग्निपट्टिधाभिद्यंते ॥

अर्थ-वह छः रस आपसमें मिलकर ६३भेदवाले होते हैं ये भेद आगे कहेंगे

तत्रभूम्यम्बुगुणवाहुल्यान्मधुरः । भूम्यग्निगुणवाहुल्या

दम्लः । तोयाग्निगुणवाहुल्याल्लवणः । वाय्वग्निगुणवा

हुल्यात्कटुकः । वाय्वाकाशगुणवाहुल्यात्तिक्तः ।

पृथिव्यनिलगुणवाहुल्यात्कपायइति ॥

अर्थ-तहां पृथ्वी जल-गुण वाहुल्य मधुररसहै। पृथ्वी-अग्नि गुण वाहुल्य अम्ल रसहै । जल अग्नि गुण वाहुल्य लवण रसहै । वायु अग्निगुणवाहुल्य कटुक (तीक्ष्ण) रस है । वायु आकाश गुणवाहुल्य तिक्त (कडुआ) रस है । एवं पृथ्वी और पवनगुण वाहुल्य कपाय (कसेला) रसजानना ॥

तत्रमधुराम्ललवणावातघ्नाः ॥

मधुरतिक्तकपायाःपित्तघ्नाः ॥

कटुतिक्तकपायाःश्लेष्मघ्नाः ॥

अर्थ-तहां मधुर अम्ल और लवण ये तीन रसवादीके नाशक हैं । मधुरतिक्त और कपाय ये तीन पित्तनाशक । एवं कटु तिक्त और कपायरस कफ नाशक जानने ॥

तत्रवायुरात्मनैवात्मापित्तमाग्नेयंश्लेष्मासौम्यइति ।

तएवरसाः स्वयोनिवर्द्धनाअन्ययोनिप्रशमनाश्च ॥

अर्थ-तहां वायु-आत्मककेंही अपनी आत्मा है-पित्त आग्नेय है अर्थात् इसकी अग्नि आत्मा है । और कफसौम्य है अर्थात् इस का शीतलता आत्मा है । ये पूर्वोक्तछःहों रस अपनी योनिके (जिस्से जो प्रगट है) बढानेवाले हैं और दूसरे की योनिको नाशकरते हैं ।

केचिदाहुरग्नीपोमीयत्वाजगतोरसाद्विविधाःसौम्याआग्नेयाश्च । तत्रमधुरतिक्तकपायाःसौम्याः कटुम्ललवणाआग्नेयाः ॥ मधुराम्ललवणाः स्निग्धागुरवश्च ॥ कटुतिक्तकपायारूक्षालवणश्च । सौम्याःशीताआग्नेयाश्चोष्णाः ॥

अर्थ-कोई आचार्य ऐसाकहते हैं कि जगत् अग्नि और सोमीयत्व-होने से रस दोहीप्रकारके हैं जैसे-सौम्यरस और आग्नेयरस इनमेंभी मधुर-तिक्त-और कपले येतीनरस सौम्य (शीतल) हैं और कटु-अम्ल-और लवणरस आग्नेय (गरम) है । तहां मधुर-अम्ल-और लवण ये रस स्निग्ध और भारी हैं । कटुतिक्त और कपाय येतीनोरस रूखे और हलके हैं।इनमें सौम्यरस शीतल है और आग्नेय रस सब गरम हैं॥

तत्रशैत्यरौक्ष्यलाघववैशद्यवैष्टम्भ्यगुणलक्षणोवायुस्तस्यसमानयोनिः कपायोरसः सोऽस्यशैत्याच्छैत्यंवर्द्धयति । रौक्ष्याद्रौक्ष्यंलाघवाल्लाघवं वैशद्याद्वैशद्यंवैष्टम्भ्याद्वैष्टम्भ्यमिति ॥

अर्थ-तहाँ-शीतल-रूक्ष-हलका-विशद और विष्टंभ लक्षणवान् वायु उसकी समान योनि कसेला रस है वह स्वयं शीतल होनेसे वायुको बढाता है रूक्षहोनेसे वायुमें रूक्षताको बढाता है उसीप्रकार हलकाहोनेसे हलके पनेको और विशद (फैलने) वाला होनेसे इसवायुको फैलाता है, विष्टंभीगुणहोनेसे कसेला रस इसवायुमें विष्टंभताको प्रगटकरे है-तात्पर्य ये है कि वायुके और कसेले रसके (तुल्ययोनिके) कारण जो कसेले रसमें गुण हैं वही वायुमें जानने ॥

ओष्ण्यतैक्ष्ण्यरौक्ष्यलाघववैशद्यगुणलक्षणंपित्तम् ॥
तस्यसमानयोनिः कटुकोरसःसोऽस्यौष्ण्यादौष्ण्यं व
र्द्धयति तैक्ष्ण्यात्तैक्ष्ण्यरौक्ष्याद्गौक्ष्यलाघवाद्वाघववैश
द्याद्देश्यमिति ।

अर्थ-उष्ण-तीक्ष्ण रुक्ष हलका और विशदगुण इत्यादि लक्षणवाला पित्तहै उसके समानयोनि (तुल्यगुणवाला) कटुक (चरपरा) रसहै वो इसपित्तको उष्णताके कारण गरमी तीक्ष्णताके कारण तीखापना रूक्षताके कारण रुखापना, हलकेके कारण हलकापना विशदताके कारण वैशद्य गुणोंको बढ़ाताहै कटुरसके सेवनसे इन गुणों की वृद्धि होती है ॥

माधुर्यस्नेहगौरवशैत्यपैच्छिल्यगुणलक्षणःश्लेष्मात्
स्यसमानयोनिर्मधुरोरसःसोऽस्यमाधुर्यान्माधुर्यवर्द्ध-
यति ॥ स्नेहात्स्नेहं, गौरवाद्गौरवं, शैत्यात्शैत्यं, पै-
च्छिल्यात्पैच्छिल्यमिति ॥ तस्यपुनरन्ययोनिःकटुको-
रससश्लेष्मणःप्रत्यनीत्कत्वाकटुत्वान्माधुर्यमभिभव
तिरौक्ष्यात्स्नेहलाघवाद्गौरवमौष्ण्यात्शैत्यवैशद्या-
त्पैच्छिल्यमिति ॥ तदेतन्निर्दिशन्मात्रमुक्तम् ॥

अर्थ-मधुर-स्नेह (चिकनाई) गौरव (भारीपना) शीतल-पैच्छिल्य (लसदार) इत्यादि लक्षणवाला कफहै उसकी समानयोनि (तुल्य-गुणवाला) मधुर (मीठा) रस है वो इस कफको मधुरके कारण माधुर्यता चिकनेके कारण चिकनाई, भारीहोनेके कारण भारीपना, शीतलताके कारण शीतलत्व, और लसदार होनेके कारण कफमें लसदारपना बढ़ावे है । अबकहते हैं कि, उस कफकी अन्ययोनी (विपरीतगुणवाला) कटुक (चरपरा) रस है वह कफके विरुद्ध होनेसे और चरपरा होनेसे मिठासको नाशकर्ता है, रुक्षहोनेसे चिकनाईको नाशकर्ताहै, हलके पनेसे कफके भारीपनेको, उष्णहोनेसे कफकी शीतलताको, और विशदगुणवान् होनेसे इसकेकफके लसदार गुणको हरणकर है । यह केवल एकनिर्दिशन्मात्र (दृष्टान्तमात्र) कहा है इसी प्रकार बुद्धिमान् वेद्य सवरसोंमें उसके समान रसको प्रुष्टकर्ता और विपरीत रसको उसका नाशकर्ता जाने ॥

रसलक्षणमतुर्ध्ववक्ष्यामः ॥

अर्थ-अब इसके उपरांत रसोंके लक्षण कहते हैं ॥

तत्रयःपरितोपमुत्पादयतिप्रलहादयतितर्पयतिजीवयति
मुखावलेपंजनयतिश्लेष्माणंचाभिवर्द्धयति स-मधुरः ।

अर्थ-तहां जो संतोपको प्रगटकरे सुखबढावे तृतिकरे प्राणोंको धारण करे मुखमें मैलको प्रगटकरे और कफको बढावे उसको मधुर (मीठा) रस जानना अर्थात् इतने गुण मिष्टरस कर्त्ता है ॥

योदन्तहर्षमुत्पादयतिमुखस्रावंजनयतिश्रद्धाञ्चो
त्पादयति सौऽम्लः ॥

अर्थ-जो दंतहर्ष (दांतोंकाखट्वापना)प्रगटकरे मुखसे पानी गिरावे और श्रद्धाप्रगटकरे उसको अम्लरस जानना । अर्थात् अम्लरसमें इतने गुणहैं ॥

योभक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकंजनयतिमार्दवंचा
पादयति सलवणः ॥

अर्थ-जो भोजनमें रुचिको प्रगट करे मुखसे कफके स्रावको प्रगट करे और नम्रताको प्रगट करे उसको लवण रस जानना । अर्थात् लवण रसमें इतने गुणहैं ।

योजिह्वाग्रंवाधतेउद्वेगंजनयतिशिरोगृह्णीतेना
सिकांचस्रावयतिसकटुकः ॥

अर्थ-जो जिह्वाके अग्रभागमें वाधाकरे अर्थात् बुरालगे तथा उद्वेगको प्रगट करे तथा उद्वेगके कारण मस्तक पकड़े और नाकसे पानीका स्राव करे उसको कटुरस (चरपरारस) जानना ॥

योगलेचोपमुत्पादयतिमुखवैशद्यंजनयतिभक्त
रुचिंचापादयतिहर्षेच स तिक्तः ॥

अर्थ-जो गलेका आकर्षण करे अर्थात् खींचे मुखमें विशुद्धता प्रगट करे भोजनमें रुचि बढावे और जिस्के खानेसे रोमांचखडे हों वो तिक्त-रस (कडुआरस) जानना ॥

योवक्रं परिशोपयतिजिह्वांस्तंभयतिकंठवध्नाति
हृदयंकर्षयति पीडयतिच सकपायः ॥

अर्थ-जो खानेसे मुखको सुखावे जीभका स्तंभन (जकडोसी) करे देवे कंठ बांधे हृदयका आकर्षण करे और पीडा करे उसको कपाय (कसेला) रस जानना ये रसोंके लक्षण कहे ॥

रसगुणानत ऊर्ध्ववक्ष्यामः ।

अर्थ-अब इसके उपरांत रसोंके गुणोंको वर्णन करेंगे-

तत्रमधुरोरसोरसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जाजः शुक्रस्तन्य
वर्द्धनश्चक्षुष्यः केड्योवर्ण्योवलकृतसंधानः शोणितरस
प्रसादनो वालवृद्धक्षतक्षीणहितः पट्टपदपिपीलिकाना
मिष्टतमस्तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः पडिन्द्रियप्रसादनः
क्रमिकफकरश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमासेव्यमानः
कासश्वासासकवमथुवदनमाधुर्यस्वरोपघातकृमीगल
गंडानापादयति तथावुदश्लीपदवस्तिगुदोपलेपाभिस्य
न्दप्रभृतीन् जनयति ॥

अर्थ-तहां मधुर (मीठा) रस, रस रुधिर मांस मेदा हड्डी मज्जा ओज शुक्र और स्त्रीके दूध इनको बढ़ाताहै तथा नेत्रोंको परम हितकारी है. वालोंको बढ़ाताहै वर्णको उजलाकर्ता है. बलकारी टूटे हाडको जोड़ता है रुधिर रसको स्वच्छ कर्ता है बालक वृद्ध और क्षतक्षीण (घावोंसे दुर्बल) इनको हितकारी है मक्खी चींटी इनको मियहै ये प्यास मूर्च्छा और दाह इनको नष्टकर्ता है तथा मनको प्रसन्न करे है एवं कफ और कृमिरोगको प्रगटकर्ता है वही मधुर रससे गुणवालाभी है परंतु यदि केवल इसी मिष्टरसका अत्यंत सेवन करे तो श्वास खांसी अलसक वमन मुखका भीठा रहना स्वरभंग (गलेका बैठजाना) कृमि रोग गलगंड आदि अनेक रोगोंको प्रगटकरे है तथा अर्जुद श्लीपद वस्ती गुदाका उपलेप और अभिष्यंदी आदि रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥

अम्लोजरणः पाचनः पवननिग्रहणोऽनुलोमनः कोष्ठवि
विदाहीवहिःशीतः क्लेदनः प्रायशोहृद्यश्चेति सएवंगुणो
प्येकएवात्यर्थमपसेव्यमानो दन्तहर्षनयनसंमिलनरोम
संवेजनकफविलयनशरीरशैथिल्यान्यापादयति तथा
क्षताभिहतदग्धदष्टभग्नशूलरुग्णप्रच्युतावमृत्रितविसर्पि
तच्छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टादीनिपाचयत्याग्नेयस्वभावात्
परिदहति कंठसुरो हृदयश्चेति ॥

अर्थ-अम्ल (खट्टा) रस आहारको जरानेवाला-पाचक वादीका नाशक सूजन आदिका अनुलोमकर्ता (चटाने वाला) कोष्ठमें दाहकर्ता वाहर शीतलकर्ता क्लेदन और प्रायः हृदयको प्रिय है, ऐसा गुणवालाभी है परंतु केवल खट्टे रसकेही सेवन करनेसे दाँतोंका कुंदहोना वा खट्टे होना नेत्रोंका मूंदना-रोमांचोंका खडा होना-कफविलीन कर्ता-शरीरको शिथिलकरे है तथा क्षताभिहत (घावसे पीडित) अभिसं फुका-सर्पादिकसे काटा-चोटलगा सूजन-हड्डीका टेढाहोना तथा स्थानसे हड्डीका हटना जहरीजानवरकामूत्रलगना-तथा जहरी जानवरका स्पर्श होना छिन्न भिन्न-विद्ध-उत्पिष्टादि भमररोग इनसबको अम्लरस आप्रेय स्वभाव होनेसे पाचनकर्ता है और इसी कारणसे कंठ छाती और हृदयमें दाहकर्ता है ये लक्षण अम्लरसके कहे ॥

लवणःसंशोधनःपाचनविश्लेषणःक्लेदनःशैथिल्यकृदुष्णः
सर्वरसप्रत्यनीकोमार्गविशोधनःसर्वशरीरावयवमाह्वक-
रश्चेतिसएवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकंडू-
कोठशोफवैवर्ण्यपुंस्त्वोघातेन्द्रियोपतापान् तथासुखा-
क्षिपाकंरक्तपित्तवातशोणिताम्लीकाप्रभृतीनापादयति॥

अर्थ-अब लवणरसके गुणकर्म कहते हैं । तहाँ लवणरस वमनविरचन द्वारा व्रणका शोधनकरे है पाचनहै, प्रत्येक अवयवोंको न्यारे २ फरे है आर्द्र और शिथिलकरे है तथागरमहै, सर्वरसमात्रकाविरोधी है मूत्र, नाडी-ग्रणादिकके मार्गोंका शुद्धिकर्ता है शरीरके सर्व अवयवोंका नम्र करने वालाहै । यदि केवल निमकही निमक सेवनकरे तो देहमें खुजली कोठ (चकते) सूजन-देहका विवर्ण और पुरुषार्थ (शुक्र) का क्षयकरे है तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंका घातकहै तथा मुखपाक नेत्र पाक रक्त और खट्टी डकार आदि रोगोंको करे है ॥

कटुकोदीपनःपाचनरोचनःशोधनःस्थौल्यालस्यकफ-
कृमिविपकुष्ठकंडूपशमनःसंधिबंधविच्छेदनोऽवसादनःस्त-
न्यशुक्रमेदसामुपहन्ताचेति सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमु-
पसेव्यमानोभ्रममदगलताल्वोष्ठशोषगात्रसंतापवलवि-
घातकम्पतोदभेदकृत्करचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिपुचवात-
शूलानापादयति

अर्थ-अब चरपरे रसकी प्रकृति और कर्मदिखाते हैं कटुक (चरपरा)

रस दीपन-पाचन-रोचन-शोधन है स्थूलता आलस्य-कफ-कृमि-विष कुष्ठ खुजली इनको नाशकरे । संधिवंधनको खोलनेवाला-अनुत्साहकर्ता-स्तन्य (स्तनसंबंधी दूध) शुक्र भेदइनको नष्टकरे है ऐसाभी है परंतु केवल इसी रसका अत्यंत सेवनकरे तो भ्रमकरे मदकरे गला-तालुए-होठ-इनका शोषकरे-देहमें संताप-बलको नष्टकरे कंप-सुईकीसी चभक-तथा तोडने कीसी पीडा-तथा हाथ-पैर दोनों बगल-पीठ इत्यादि अंगमें घात शूलोंको प्रगट करे है ॥

तित्तच्छेदनोरोचनोदीपनःशोधनःकंडूकोष्ठतृष्णामूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनोविण्मूत्रकृदमेदोवसापूयोपशोषणश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानो गात्रमन्यास्तंभाक्षेपकादितः शिरः शूलभ्रमतोदभेदच्छेदास्यवैरस्यान्यापादयति ॥

अर्थ-अब कडुपरस की प्रकृति और कर्म दिखाते हैं-कडुआरस छेदन रोचन (अन्यवस्तुओंका है किंतु स्वयं रोचन नहीं है) दीपन-शोधन है तथा खुजली-चकते-प्यास-मूर्च्छा और ज्वर इनको नाशकर्ता है । स्त्री-स्तनसंबंधी दूधका शोधनकरे मलमूत्र-कृद-भेद-वसा-पूय (राध) इन इनको शोषणकर्ता है । इत्यादि गुणविशिष्टभी है परंतु यदि केवल यही रस अत्यंत सेवनकरा जाय तो देहस्तंभ और मन्यास्तंभ तथा आक्षेपकसे आदिले मस्तकशूल-भ्रम-चभका छेदनकीसी पीडा और मुखमें विरसता इत्यादि रोगोंको करे है ॥

कपायःसंग्राहकोरोपणःस्तंभनशोधनोलेखनःशोषणःपीडनःकृदोपशोषणश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानो हृत्पीडास्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तंभगात्रस्फुरणचुमचुमायनाकंचनाक्षेपणप्रभृतीन्नयति ॥

अर्थ-अब कपायरसके गुण-कर्म दिखाते हैं-कफलारस संग्राही ग्रणको रोपणकर्ता है देहको स्तंभनकारी है-अथवा मृदुको टूटकरे है-ग्रणका शोधनकारी है घनाच्छन्न मांसकालेसनकारी है द्रवधातुका शोषणकर्ता है-अथवा ग्रणप्रमेहका शोषणकर्ता है तथा ग्रणका वा हृदयका पीडनकर्ता और कृदका शोषणकर्ता है इत्यादि गुणवालाभी है परंतु केवल इसही रसका अत्यंतसेवनकरे तो हृदयपीडा मुखकामूत्रना-उदररोग-अफरा-

वाणीका रुकना मन्यास्तंभ अंगोंका फड़कना राई लगानेके समान
त्वचामें चुमचुमपीडाहो. देहसंकोच-देहका काँपना प्रभृतिके कहनेसे अन्य-
भीवातके विकार अर्दित आदिहोवे ॥

अतः सर्वेषामेवद्रव्याण्युपदेक्ष्यामः

तद्यथा । कांकोल्यादिः क्षीरघृतवसामज्जाशालिपट्टि-
कयवगोधूममापशृंगाटककसेरुकत्रपुसैर्वारुककर्कारु-
कालांबुकालिंदकतकगिलोडचपियालपुष्करबीज-
काश्मर्यमधुकद्राक्षाखजूरराजादनतालनालिकेरेक्षु-
विकारबलातिबलात्मगुप्ताविदारीपयस्यागोक्षुरक-
क्षीरमोरटमधूलिकाकूष्मांडप्रभृतीनिसमासेन मधुरोवर्गः ।

अर्थ-अब संपूर्ण रसोंकी द्रव्योंको कहते हैं तहां प्रथम मधुरवर्ग कहते
हैं जैसे कांकोल्यादिगण-दूध-धी-वसा- मज्जा शालि और साँठी चावल
जौ गेहूँ उडद सिंघाडे कसेरू खीरा आर्या फकडी धीया तरबूज कतक-
फल गिलोडच (गिल्लोठी) चिरौंजी कमलगट्टा कंभारी महुआ दाख
खजूर (झुहारा) खिरनी तालफल गरी ईखके विकारमात्र बला अति-
बला तालमखाने विदारीकंद क्षीरकांकोली गोखरू दूधका मोरट (छा-
छकाभेद) मधूलिका और पेठा इनसे आदि ले औरभी यह मधुरवर्ग
संक्षेपसे कहा है ॥

अम्लवर्गः ।

दाडिमामलकमातुलुंगाभ्रातककपित्थकरमर्दवदरको-
लप्राचीनामलकतित्तिडीककोशाभ्रभव्यपारावतवेत्र-
फललकुचाम्लवेतसदन्तशठदधितक्रसुराशुक्तसौवी-
रकतुपोदकधान्याम्लप्रभृतीनि समासेनाम्लोवर्गः ॥

अर्थ-अनार, आमले, विजोरा, अंबाड़े, कैथा, करोंदा, बेर, बडावेर,
पानी आमला, तित्तिडीक लालवनकाआंव कमरख, फालसा, वेतकाफल
बडहर, अमलवेत, जैभीरी, दही, छाँछ, दारू सिरका गेहूँकी फाँजी तुपो-
दक (जौकीकाँजी) धान्याम्ल इत्यादि संक्षेपसे यह अम्लवर्ग कहा ॥

लवणवर्गः ।

सैधवसौवर्चलविडपाक्यरोमकसामुद्रकपक्तिमयवक्षा-

रोपप्रसूतसुवर्चिकाप्रभृतीनिसमासेनलवणोवर्गः ॥

अर्थ-सैधानिमक-कालानिमक-विड-खारी-साक्षर-समुद्रकानिमक-
फुल्ला निमक-जवाखार-रेहकानिमक-सञ्जी-वा सोरा इत्यादिक यह
संक्षेपसे लवण वर्ग कहा है ॥

कटुकवर्गः ।

पिप्यल्यादिः सुरसादिः शिशुमधुशिशुमूलकलगुनसु-
मुखशीतशिवकुष्ठदेवदारुहरेणुकावलगुजफलचंडागु-
गुलुमुस्तलांगलकीशुकनाशापीलुप्रभृतीनि सालसा-
रादिश्च प्रायशः कटुकोवर्गः ॥

अर्थ-पिप्यल्यादिगण. सुरसादिगण-सहंजना-सहत-सहंजनेकीजड
लहसन-वैजयंती-तुलसी-फूर-कूठ-देवदारु-हरेणु-चावची-अजमोद
के आकार सुगंधद्रव्य-गुगल-नागरमोथा-कलियारी-टेंडु-पीलू-और
सालसारादिगण इत्यादि यह सब संक्षेपसे कटुकवर्ग हैं ॥

तिक्तवर्गः ।

आरग्वधादिगुडूच्यादिर्मण्डूकपर्णावेत्रकरीरहरिद्राद्र-
येन्द्रयववरुणस्वादुकंटकसप्तपर्णबृहतीद्वयशंखिनीद्र-
वंतीत्रिवृत्कृतवेधनकर्कोटककारवेल्लकवार्त्तिककरीर-
करवीरसुमनःशंखपुष्प्यपामार्गत्रायमाणाऽशोकरो-
हिर्णावैजयन्तीसुवर्चलापुनर्नवावृश्चिकालीज्योतिष्म-
तीप्रभृतीनिसमासेनतिक्तोवर्गः ॥

अर्थ-आरग्वधादिगण-गुडूच्यादिगण-मंडूकपर्णा (ब्राह्मीकाभेद) वंत
करीरके अंकुर,हरदी-दारुहल्दी-इन्द्रजौ-वरना विर्ककत-सतोना छोटी-
कटेरी बही कटेरी यवतिक्ता दंतो-निसोत-बड़इतोरई-ककोडा-करेला
वेंगन-करीर-चमेली-शंखपुष्पी-ओंगा-त्रायमाण-कूटकी-अरनी-दुल-
दुल-सोंठ-वृश्चिकपर्णी-मालफोंगनी इत्यादि सबवस्तु संक्षेपसे तिक्तवर्गहैं ॥

कपायवर्गः ।

न्यग्रोधादिरंघटादिः प्रियंग्वादि रोध्रादिस्त्रिफलागल-
कीजम्बाप्रबकुलतिन्दुक फलानि कतकशाकपापा-

णभेदकवनस्पतिफलानि सालसारादिश्चप्रायशःकुर
वककोविदारकजीवंतीचिह्नीपालक्यासुनिपण्णकप्र
भृतीनि निवारकादयोमुद्गादयश्चसमासेनकपायोवर्गः ॥

अर्थ-न्यग्रोधादिगण-अंबष्टादिगण-प्रियंगवादिगण, रोधादिगण-त्रिफल
(हरड-बहेडा-आमला) सालवृक्ष-जामुन-आम्र-मौलसिरी-तेंदूकेफल
निर्मली-खरशाक-पापाणभेद-बड आदि वृक्षोंकेफल-सालसारादिगण
कुरवक-कोविदार (कचनारकाभेद) जीवंतीकाशाक-चिह्नी (खेतका-
वथुआ) पालक चौपतिया आदि साग और समापसाई आदि तथा
मूंग आदि ये संक्षेपसे कपायवर्ग हैं ॥

तत्रैपांरसानांसंयोगास्त्रिपष्टिर्भवन्तितद्यथा । पंचदशद्वि
का विंशतिस्त्रिकाः पंचदशचतुष्काःषट्पंचकाएकशः
पद्मसाएकःषट्कइतितेपांमन्यत्रप्रयोजनानिवक्ष्यामः ॥

अर्थ-पूर्वाक्त रसोंके संयोग होनेसे ६३ भेद होते हैं जैसे दों दोरसके
मिलापसे १५ तीनके मिलापसे २० चार २ केमिलापसे १५ पांचपांचके
मिलापसे ६ छः रसोंके मिलापसे १ भेद और एक२ पृथक् होनेसे ६ भेद
पैसे कुलजोड़नेसे ६३ भेद होते हैं इनका प्रयोजन अन्यवर्णन करेगे ॥

इनकेभेदपद्यमें लिखते हैं ।

पद्येनच सुखस्मृत्यै रसभेदाञ्छृणुष्वमे । मधुरोम्लेन पटुनातिक्तेन
कटुकेनच ॥ १ ॥ कपायेण पृथक् सार्धमम्लःसुलवणेनच । तिक्तेनकटुना
सार्धं कपायेणपृथक् पृथक् ॥२॥ पटुस्तिक्तेन कटुनाकपायेण पृथक्पृथक् ।
तिक्तस्तुकटुनासार्धं कपायेण पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥ कटुकस्तु कपायेण
द्विसंयोगे इतिस्मृताः । दशपंचच भेदास्तुसंख्याता विंशतिस्त्रिक ॥ ४ ॥
मधुराम्लौतु पटुना तिक्तेन कटुना तथा । कपायेण तथा सार्द्धं तथा
स्वादुषट् पृथक् ॥ ५ ॥ तिक्तेन कटुकेनापि कपायेण तथासह । स्वादु-
तिक्तौतु कटुनाकपायेण पृथक् सह ॥ ६ ॥ स्वादुपणौ कपायेण स्वादा-
रेवंदश त्रिके । भेदास्पुरम्ललवणौ तिक्तेन कटुना पृथक् ॥ ७ ॥ कपायेण
तथासार्धमम्लतिक्तौ पृथक्सह । कटुकेनकपायेण तथाम्लकटुको सह
॥ ८ ॥ कपायेणेतिपद प्रोक्ता भेदा अम्लस्पतुत्रिके । पटुतिक्तौ तु कटुना
कपायेण पृथक् सह ॥ ९ ॥ पटुपणौकपायेण भेदाइति पटोस्त्रयः ॥
तिक्तौपणौ कपायेण तिक्तस्यैवंसकृत्स्मृतः ॥ १० ॥ त्रिकेभेदाइतिप्रोक्ता
चतुष्के दशपंचच । स्वादम्ल लवणा सार्द्धं तिक्तेन कटुकेनच ॥ ११ ॥
पृथक्कपायेण तथा मधुराम्लौ सतिक्तौ । कटुकेनतुसंपृक्तौ कपायेणपृ-

थकृतथा ॥१२॥ स्वाद्मलकटुकाः सार्द्धिकपायेणेति पटस्मृताः। सप्तमश्चात्र
मधुरोलवणोपणतित्तकैः ॥१३॥ भेदोष्टमोमतः स्वादुकटुतित्तकपायकैः ।
नवमस्तत्र मधुरः पट्टपणकपायकैः ॥ १४ ॥ दशमोऽत्रभवेत्स्वादुतिको
पणकपायकैः । दशभेदा भवत्येवं मधुरेणचतुष्कके ॥१५॥ कटुतित्ताम्ल-
लवणेभेदएवश्चतुष्कके । द्वितीय स्त्वम्ल लवण कपायकटुकैःस्मृतः ॥१६॥
तृतीयोऽत्रभवेदम्लकटुतित्त कपायकैः चतुर्थोऽत्रभवेदम्लतिकोपणकपायकैः
॥ १७ ॥ एवमम्लेनभेदास्युश्चत्वारोत्रचतुष्कके । पट्टनैकोत्रलवण
तिकोपणकपायकैः ॥ १८ ॥ एवपंचदशख्याताश्चतुष्करससंख्यया । पट्ट
भेदान् पंचके प्रादुस्तान्वक्ष्यामि विभागशः ॥ १९ ॥ एकोभेदोम्ललवण
तिकोपणकपायकैः । द्वितीयः स्वादुलवण तिकोपणकपायकैः ॥ २० ॥
तृतीयस्त्वम्लमधुरतिकोपणकपायकैः । चतुर्थस्त्वम्लमधुरपट्टपणकपायकैः
॥ २१ ॥ पंचमस्त्वम्लमधुरपट्टतिककपायकैः । षष्ठोभेदोम्लमधुरलवणो
पणतित्तकैः ॥ २२ ॥ पट्टभेदा इतिनिर्दिष्टाः पंचकेप्रविभागशः । भेदः
स्वादुम्ललवणतिकोपणकपायकैः ॥ २३ ॥ एकएवपट्टसेन पृथक्त्वेनपट्ट
स्मृताः । स्वादुरम्लोऽथलवणतित्तकश्चकटुस्तथा ॥ २६ ॥ कपायइतिभे
दाःस्युः सर्वतोऽत्रत्रिपष्टिधा । क्षीरंसुराविडोनिवश्चव्यापन्नं रसाश्रयम् २५ ॥
द्रव्यंस्वादुरसादीनांपण्णाविद्विषयाक्रमम् । द्रव्यंद्रव्यांतरैरेवयोजयेद्वि
रसादिषु ॥ २६ ॥ धात्रीफलं शर्करयालवणेनार्द्रकंतथा । एवमादीनि
द्रव्याणियोजयेद्विपगुत्तमः ॥ २७ ॥ कानिचिद्विरसादीनिद्रव्याणिस्युः
स्वभावतः । यथैणः पट्टसः कृष्णो यथापंचरसाभया ॥ २८ ॥ मद्यंपंच
रसंयद्वत्तिकोयद्वच्चतुरसः । एरंडतैलं त्रिरसंभाक्षिकंद्विरसंयया ॥
॥ २९ ॥ घृतमेकंस्वादुरसंमधुरादिविभागतः ॥ दिह्मात्रादुदितादे
वशेषमूह्यमनोपिणा ॥ ३० ॥

उदाहरण ।

एकरसकभेद

- १ स्वादु
- २ अम्ल
- ३ लवण
- ४ कटु
- ५ तित्त
- ६ कपाय

द्वोरसकभेद

- १ मधुर-अम्ल
- २ मधुर-लवण
- ३ मधुर-तित्त
- ४ मधुर-कटुक
- ५ मधुर-कपाय
- ६ अम्ल-लवण
- ७ अम्ल-तित्त

द्वोरसकभेद

- ८ अम्ल-कटुक
- ९ अम्ल-कपाय
- १० लवण-तित्त
- ११ लवण-कटुक
- १२ लवण-कपाय
- १३ तित्त-कटुक
- १४ तित्त-कपाय
- १५ कटु-कपाय

तीनरसकेभेद.

१ मधुर-अम्ल-लवण	११ अम्ल-लवण-तिक्त
२ मधुर-अम्ल-तिक्त	१२ अम्ल-लवण-कटुक
३ मधुर-अम्ल-कटुक	१३ अम्ल-लवण-कपाय
४ मधुर-अम्ल-कपाय	१४ अम्ल-तिक्त-कटुक
५ मधुर-लवण-तिक्त	१५ अम्ल-तिक्त-कपाय
६ मधुर-लवण-कटुक	१६ अम्ल-कटु-कपाय
७ मधुर-लवण-कपाय	१७ लवण-तिक्त-कटुक
८ मधुर-तिक्त-कटुक	१८ लवण-तिक्त-कपाय
९ मधुर-तिक्त-कपाय	१९ लवण-कटु-कपाय
१० मधुर-कटु-कपाय	२० तिक्त-कटु-कपाय

चाररसके भेद.

१ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त	८ मधुर-लवण-तिक्त-कपाय
२ मधुर-अम्ल-लवण-कटुक	९ मधुर-लवण-कटु-कपाय
३ मधुर-अम्ल-लवण-कपाय	१० मधुर-तिक्त-कटु-कपाय
४ मधुर-अम्ल-तिक्त-कटुक	११ अम्ल-लवण-तिक्त-कटुक
५ मधुर-अम्ल-तिक्त-कपाय	१२ अम्ल-लवण-तिक्त-कपाय
६ मधुर-अम्ल-कटु-कपाय	१३ अम्ल-लवण-कटु-कपाय
७ मधुर-लवण-तिक्त-कटुक	१४ अम्ल-तिक्त-कटु-कपाय
	१५ लवण-तिक्त-कटु-कपाय

पांचरसोंकेभेद

१ मधुर-लवण-तिक्त-कटुक-कपाय	४ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त-कपाय
२ मधुर-अम्ल-तिक्त-कटु-कपाय	५ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त-कटुक
३ मधुर-अम्ल-लवण-कटु-कपाय	६ अम्ल-लवण-तिक्त-कटु-कपाय

छःरसका एकहीभेद है ।

१ मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कपाय.

धीमें केवलमिष्टरस रहे हैं-सहतमेंदोरसरहते हैं-अंडकेतेलमें३रसहैं-

तिलमें चाररस हैं—हरड और मद्यमें पांचरस हैं तथा काले हरिणकेमांसमें छःरसरहतेहैं मिष्टरस दूधमे—अम्लरसदारुमें—निमकमें लवणरस—निममें कडुआरस—चव्यमें चरपरा—और पन्नमें कसेलारसरहता है.

जग्धाःपडधिगच्छन्तिवलिनोवशतांरसाः ॥

यथाप्रकुपितादोषावशंयांतिवलीयसः ॥

अर्थ—भोजनकरेदुए छहोंरसमें जो बलवान् होताहै उसीके वशीभूत होते हैं अर्थात् उसीकासा फलदेतेहैं—जैसे कुपित वातादिदोषोंमें जो दोष बलवान् होताहै उसीके अनुगामी अन्यदोष होजातेहैं अथवा अभ्यासकरेदुए एक २ रस वली पुरुषके आधीन होते हैं अर्थात् उसको अवगुण नहीं करते जैसे वलीदोष—

मधुरादिकोंकेअन्यविशेषगुणतहामधुररसकेगुण ।

मधुरंश्लेष्मलंसर्वमृतेशालेःपुरातनात् ।

मुद्गाद्गोधूमतःक्षौद्रात्सितायाजांगलामिपात् ॥

अर्थ—मधुर पदार्थमात्र सब कफकारी होतेहैं,परंतु पुराने शाली चावल मूंग—गंहु—सहत—खांड— और जंगली जीवोंका मांस ये पदार्थ त्यागकर अर्थात् ये पदार्थ मधुरहोने परभी कफकारी नहीं है ॥

अम्लरसकेविशेषगुण ।

अम्लंपित्तकरंप्रायोविनाधात्रांचदाडिमम् ।

अर्थ—प्रायःकरके संपूर्ण खट्टे पदार्थ पित्तकर्ता हैं परंतु आमले और अनारदानेके बिना अर्थात् आमले और अनार दाने पित्तनहीं करते—

लवणरसकेविशेषगुण ।

लवणंप्रायशोद्धेपिनेत्रयोःसंधवंविना ॥

अर्थ—संपूर्ण लवण प्रायः नेत्रोंको विगाडने वाले हैं, परंतु संधेनिमकके बिना अर्थात् संधानिमक नेत्रोंको हितकारी है ॥

तीक्ष्णरसकेगुण ।

प्रायःकटुतयातिक्रमवृष्यंवातकोपनम् ।

शुंठीकृष्णारसोनानिपटोलममृतांविना ॥

अर्थ-प्रायः तीक्ष्ण द्रव्य वातकोपकारी है परंतु सोंठ-पीपर-लहसुन परवल-और गिलोय ये वातकोपकर्ता नहीं है ॥

पिप्पलीनागरं मुस्तंकटुचावृष्यमुच्यते ।

प्रायशःस्तंभनंप्रोक्तंकपायमभयांविना ॥

अर्थ-पीपल-सोंठ-नागरमोथा इनके बिना प्रायः संपूर्ण तीक्ष्ण पदार्थ धातुनाशक हैं और हरडको त्यागके बाकी कसेलारस स्तंभनकारी है ॥

सामान्येनात्रनिर्दिष्टागुणाः पद्मसंभवाः ।

रसानांयोगतस्तुस्यादन्यएवगुणोदयः ॥

अर्थ-ये छः रसोंके सामान्य गुणकहे हैं परंतु दूसरे रसोंके योग करके अन्य गुणभी होते हैं ॥

संयोगीगुण ।

संयोगाद्विपतांयातिसममाज्येनमाक्षिकम् ।

अमृतत्वंविपयातिसर्पदष्टस्यवैयथा ॥

अर्थ-धी और सहत ये संयोगमें समान होनेसे विपरूप होतेहैं जैसे सर्पकेकाटेहुए पुरुषको अमृत विपरूप होताहै उसी प्रकार जानना ॥

पृथिव्यादिभूतोकेगुण ।

गुरुलघुस्तथास्निग्धोरुक्षस्तीक्ष्णइतिक्रमात् ।

भूनभोवारिवातानांवल्लेरेतेगुणाः स्मृताः ॥

अर्थ-गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष तीक्ष्ण यह क्रमसे आकाश पृथ्वी जल पवन और अपि इनके गुण जानने ।

गुरुलघुइत्यदिपदार्थोंकेगुण ।

गुर्वादयोगुणाद्रव्येपृथिव्यादौरसाश्रये ॥

स्तेपुव्यपदिश्यंतेसाहचर्योपचारतः ॥

अर्थ-गुरु आदि गुण पृथ्व्यादिके द्रव्यमें रहतेहैं वों उन पृथिव्यादिके साहचर्यसे पृथिव्यादिके रसादिगुणोंमें रहतेहैं ।

सुश्रुतोक्ताविंशतिगुणाः ।

सुश्रुतेतुगुणाएतेविंशतिस्तानहंश्रुवे । गुरुलघुस्निग्ध

रुक्षोतीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः ॥ पिच्छलोविशदः

शीतउष्णश्चमृदुकर्कशौ । स्थूलसूक्ष्मौद्रवः शुष्कआशु
मंदः स्मृतागुणाः ॥

अर्थ-सुश्रुतमें ये बीसगुण कहेहैं उनको हम कहते हैं १ गुरु २ लघु ३ स्निग्ध ४ रूक्ष ५ तीक्ष्ण ६ श्लक्ष्ण ७ स्थिर ८ सारक ९ पिच्छल १० विशद ११ शीत १२ उष्ण १३ मृदु १४ कर्कश १५ स्थूल १६ सूक्ष्म १७ द्रव १८ शुष्क १९ शीघ्र और २० मंद ये बीस गुणकहे हैं ।

गुरुगुण ।

गुरुवातहरंपुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकिच ॥

अर्थ-गुरु (भारी) द्रव्य वातनाशक पुष्टता और कफको करेहै तथा देरमें पचताहै ।

लघुगुण ।

लघुपथ्यंपरंप्रोक्तंकफघ्नंशीघ्रपाकिच ॥

अर्थ-लघु (हलका) द्रव्य अत्यंत पथ्यकारकहै कफनाशक और जल्दी पचनेवालाहै ॥

स्निग्धगुण ।

स्निग्धंवातहरंश्लेष्मकारिवृष्यंवल्लवहम् ॥

अर्थ-स्निग्ध (चिकना) द्रव्य वातहरण करता कफकारी वृष्य और बल बढ़ानेवाला जानना ॥

रूक्षगुण ।

रूक्षंसमीरणकरंपरंकफहरंमतम् ॥

अर्थ-रूक्षपदार्थ अत्यंत वादीकरे और कफको हरण करनेवालाहै ।

तीक्ष्णगुण ।

तीक्ष्णांपित्तकरंप्रायोल्लेखनंकफवातनुत् ॥

अर्थ-तीक्ष्णपदार्थ प्रायः पित्तकारी लेखनकफ और वातकोनाशकरे ।

श्लक्ष्णगुण ।

श्लक्ष्णःस्नेहंविनापिस्यात्कठिनोपिहिचिकणः ॥

अर्थ-श्लक्ष्णद्रव्य विनाचिकनाईकेभी कठिन और चिकना होताहै जैसे उडद पत्थरकीसिलीआदि ॥

स्थिर और सरगुण ।

स्थिरोवातमलस्तंभीसरस्तेपांप्रवर्तने ॥

अर्थ-स्थिरपदार्थ-वात और मलका रोकनेवाला है और सर पदार्थ वात और मलको निकालने वाला है अर्थात् दस्तावर है ॥

पिच्छलगुण ।

पिच्छलस्तंतुलोबल्यः संधानःशुष्मलोगुरुः ॥

अर्थ-पिच्छलपदार्थ तंतुछूटनेवाला-बल-भ्रमसंधानकर कफ और भारीहै.

विशदगुण ।

क्लेदच्छेदकरःख्यातोविशदोव्रणरोपणः ॥

अर्थ-विशद पदार्थ-क्लेदकानाशक-दस्तावर-और व्रणको भरनेवाला ऐसाहै

शीतगुण ।

शीतस्तुहादनस्तंभीमूर्च्छातृट्स्वेददाहनुत् ॥

अर्थ-शीतपदार्थ-आनंदकारी-स्तंभक-और मूर्च्छा, तृषा, पसीना, दाह, इनका नाशक है ॥

उष्णगुण ।

उष्णोभवतिशीतस्यविपरीतश्चपाचनः ॥

अर्थ-उष्णपदार्थ-आनंदनाशक-रेचक-मूर्च्छा-प्यास-पसीना-दाहको करनेवाला-तथा पाचक है ॥

स्थूलगुण ।

स्थूलःस्थौल्यकरोदेहेस्रोतसामवरोधकृत् ॥

अर्थ-स्थूलपदार्थ देहको स्थूलकरे, तथा देहके छिद्रोंको रोकता है ॥

सूक्ष्मगुण ।

देहस्यसूक्ष्मछिद्रेषुविशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥

अर्थ-जो देहके बहुत बारीक छिद्रोंमें प्रवेशकरे उसको सूक्ष्म कहतेहैं ॥

द्रवगुण ।

द्रवःक्लेदकरोव्यापी

अर्थ-द्रवपदार्थ-देहको आर्द्रकरे-और सर्व देहमें व्याप्त होवे ॥

शुष्कगुण ।

शुष्कस्तद्विपरीतकः ॥

अर्थ-शुष्क पदार्थ-देहको शुष्ककरे और सर्वदेहमें व्याप्त नहीं हो ॥

आशुकारीगुण ।

आशुराशुकरोदेहेधावत्यंभासितैलवत् ॥

अर्थ—आशुकारीपदार्थ देहमें—शीघ्र फैले है जैसे जलमें तैलकी बिंदु फैलती है ॥

मंदगुण ।

मन्दःसकलकार्येषुशिथिलःसोपिकथ्यते ॥

अर्थ—मंदद्रव्य संपूर्ण कार्यमें शिथिल रहता है ॥

मृदु और कर्कश ।

प्रसिद्धौद्वाविमौलोकेगुणौचमृदुकर्कशौ ॥

अर्थ—इससंसारमें दोगुण प्रसिद्ध हैं एक मृदु (नम्र) दूसरा कर्कश (कठोर)

प्रस्तावाद्दीपनादयोगुणाःसलक्षणानि ।

पचेन्नामवह्निकृच्च दीपनंतद्यथामिश्रिः ॥

अर्थ—जो औषधी आमको न पचावे और अमिको दीप्त करे वो औषध दीपनसंज्ञक जानना—उदाहरण—जैसे सोंफ—
पाचनादिऔषध ।

पचत्यामंनवह्निकुर्याद्यत्तद्धिपाचनम् ॥

नागकेशरवद्विद्याच्चित्रोदीपनपाचनः ॥

अर्थ—जो औषध आमको पचावे परंतु जठरामिको दीप्त न करे उस औषधको पाचन कहते हैं जैसे—नागकेशर । और जो आमकोभी पचावे तथा जठरामिको दीप्तभी करे उस औषधकी दीपन पाचन संज्ञा है जैसे चित्रक (चीता) ॥

संशमनऔषध ।

नशोधयतिनद्वेष्टिसमान्दोषांस्तथोद्धतान् ।

समीकरोतिविषमान्शमनंतद्यथामृता ॥

अर्थ—जो औषध वातादिसमान दोषोंको न शोधन करे न विगाढ़े किंतु उद्धत (विषम) भाव स्थितोंको जो समानकर देवे उस औषधीकी शमनसंज्ञा फही है जैसे गिलोम ॥

अनुलोमनऔषध ।

कृत्वापाकंमलानांयद्भित्वाबंधमधोनयेत् ॥

तच्चानुलोमनज्ञेयंयथाप्रोक्ताहरतीतकी ॥

अर्थ-जो औषध मल (वातादिदोषों) को पाककर तथा परस्पर मिलेहुएनको पृथक् २ कर अधोभाग (नीचेगुदा लिंग) में प्राप्तकरे अथवा अधोवात-मल-मूत्र इनके बंधनको (अर्थात् बद्धकोष्ठताको) पृथक् २ कर नीचेके भागमें लायके गुदाके द्वारा निकाले उस औषधको अनुलोमन कहते हैं-जैसे हरड ॥

संसनऔषध ।

पक्तव्यंयदपक्त्वेवश्लिष्टंकोष्ठेमलादिकम् ।

नयत्यधःसंसनंतद्यथास्यात्कृतमालकः ॥

अर्थ-पश्चात् पाक होनेवाले ऐसे वातादिदोष कोष्ठके आश्रित रहने वालोंको विनापाककरे ही उनको नीचेलाय गुदाके द्वारा बाहर पटके उस औषधको संसनसंज्ञक जानना उदाहरण-जैसे-अमलतासकागूदा ॥

भेदनऔषध ।

मलादिकमबद्धंवायद्बद्धं पिंडितंमलैः ।

भित्त्वाधःपातयतितद्भेदनंकटुकोयथा ॥

अर्थ-वातादिदोष फर्के अबद्ध अथवा बद्ध (बंधाहुआ) जो मल-मूत्रादि वोग्रथित (गांठदार) हुएनको भेदकर जो औषध अधोभागमें लाय गुदाद्वारा बाहरगरे उसको भेदन कहतेहैं उदाहरण जैसे-कुटकी ॥

रेचनऔषध ।

विपक्वंयदपक्वंमलादिद्रवतानयेत् ।

रेचयत्यपित्तज्ज्ञेयं रेचनंत्रिवृत्तायथा ॥

अर्थ-पेटमें विशेषकरके अन्नादिकको उत्तमपाक होनेपर अथवा कुछ कच्चा रहनेपर उस अन्नको तथा वातादिकका पतलाकरके जो औषध अधोभागमें लाकर गुदाके द्वारा दस्तकरावे उस औषधकी रेचनसंज्ञाहै जैसे-निशोथ-जमाल गोटा-सनाय आदि-

वमनऔषध ।

अपक्वपित्तश्लेष्माण्वलादूर्ध्वनयेत्तुयत् ।

वमनंतद्धिविज्ञेयं मदनस्यफलंयथा ॥

अर्थ-पक्वदशामें नहीं प्राप्तहुए ऐसे पित्तकफको बलपूर्वक जो औषध

१ आदि शब्दकरके मलमूत्रादि जानने ।

मुखके द्वारा वमन करावे उसको वमनसंज्ञक जानना उदाहरण
जैसे-मैनफल ॥

संशोधनऔषध ।

स्थानाद्ग्रहिर्नयेदूर्ध्वमधोवामलसंचयम् ।

देहेसंशोधनंतस्याद्देवदालीफलंयथा ॥

अर्थ-अपने स्वस्थानमें वातादिकोंका हुआ जो संचय उसको ऊपरके
भागमें लायकर मुखके द्वारा-अथवा नाकके द्वारा बाहर काढे अथवा
उस संचयको अधोभागमें प्राप्तकर गुदाके द्वारा दस्तोंमें होकर या लिंग-
के द्वारा मूत्रमें होकर निकाले उस औषधको देहमें संशोधनजानना
जैसे-देवदाली (सोनैया-बंदाल)

छेदनऔषध ।

क्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयतियद्बलात् ।

छेदनंतद्यवक्षारो मरिचानिशिलाजतु ॥

अर्थ-जो औषध परस्पर एकसे एक मिले ऐसे जे कफादिदोष उनको
अपनी शक्ति करके तोड़फोड़ न्यारे २ करे उस औषधको छेदन कहते
हैं-जैसे-जवाखारादि तथा कालीमिरच-सोंठ-पीपल और शिलाजीत
इत्यादिक जानना ॥

लेखन ।

धातून्मलान्वादेहस्यविशोष्योलेखयेच्चयत् ।

लेखनंतद्यथाक्षौद्रंनारमुष्णंवचायवाः ॥

अर्थ-जो औषध रसादिधातु और वातादि दोष इनका शोधनकर
उनको पतलाकरे उसको लेखन जानना जैसे-सहत-गरमजल वच और जौ ॥

ग्राहीऔषध ।

दीपनंपाचनंयत्स्यादुष्णत्वाद्विशोषकम् ।

ग्राहीतच्चयथाशुंठीजीरकंगजपिप्पली ॥

अर्थ-जो औषध आम्रिको प्रदीप्तकरे तथा आम्रादिकोंका पाचन करे
तथा उष्णवीर्यहोकर जलस्वरूप जो कफादिदोष-धातु-और मलका
शोषणकरे उस औषधको ग्राही जानना उदाहरण-सोंठ, जीरा, गजपीपल ॥

१ देवदालीको भाषामे बंदाल और सोनैयाकहते है इनके फलके पट्टिया आबदस्त
प्यासीरके ऊपरलेना लिखाहै ॥

स्तंभनऔषध ।

रौक्ष्याच्छैत्यात्कपायत्वाल्लघुपाकाच्चयद्रवेत् ॥

वातकृत्स्तंभनंतत्स्याद्यथावत्सकटुंडुकौ ॥

अर्थ—जो औषध रुक्षगुण करके—कसेले रसकरके युक्तहो और शीतल वीर्य करके तथा लघुपाकके कारण वादीकरे उसको स्तंभनसंज्ञक कहते हैं—जैसे—कूडाकी लाछ—टेंदू इत्यादि ॥

रसायनऔषध ।

रसायनंचतज्ज्ञेयंयज्जराव्याधिनाशनम् ।

यथामृतारुदंतीचगुगुलुश्चहरीतकी ॥

अर्थ—जो औषध शरीर का जरा (बुढापा) और रोगोंको दूरकरे उसको रसायन कहते हैं जैसे गिलोय—रुदंती—गूगल—और हरड ॥

मैथुनशक्तिवर्द्धकऔषध ।

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीपुहर्षोवाजीकरंचतत् ।

यथानागवलाद्यास्तुवीजंचकपिकच्छुजम् ॥

अर्थ—जिस औषधसे धातुबढकर स्त्रियोंके विषय हर्षयुक्त शर्तीचढे अर्थात् मैथुन करनेकी अधिक शक्तिहोवे उसको वाजीकरणसंज्ञक जानना जैसे नागवला आदि और कौलकेबीज ।

धातुवर्द्धकऔषध ।

यस्माच्छुक्रस्यवृद्धिःस्याच्छुक्रलंचतदुच्यते ।

यथाश्वगंधामुशलीशर्कराचशतावरी ॥

अर्थ—जिस औषधसे धातुकी वृद्धि होय उस औषधको शुक्रल कहते हैं उदाहरण—अश्वगंध—मूसली—शतावर—मिश्री आदि ॥

वीर्योत्पादकतथावीर्यप्रवर्त्तकऔषध ।

दुग्धमापाश्चभल्लातफलमज्जामलानिच ।

प्रवर्त्तकानिकथ्यंतेजनकानिचरेतसः ॥

अर्थ—शुक्रधातुको चैतन्य करनेवाली और शुक्रको उत्पन्न करने वाली औषध दूध—उडद—भिलावे—फलकी मज्जा (घेलकी गोरी) और आमले इत्यादिक जानना ॥

वाजीकरणऔषधकानिषेध ।

प्रवर्तनीस्त्रीशुक्रस्यरेचनंवृहतीफलम् ।

जातीफलंस्तंभकंच शोषणीचहरीतकी ॥

अर्थ-शुक्रधातुको चैतन्यकरनेवाली-स्त्रीहै तथा वीर्यका रेचककर्ता कटेरीकाफलहै अथवा वनके बैगनहै एवं स्तंभनकर्ता जायफल है-तथा-वीर्य शोषणकारी हरड है " शोषणीच हरीतकी" इसटिकाने श्लोकमें " कार्लिंगं क्षयकारिच" ऐसा भी पाठ है उसका यह अर्थ है कि तरबूज वीर्यका नाशकर्ता है कोई इन्द्रजव वीर्यका नाशकर्ता कहते हैं ॥

सूक्ष्मऔषध ।

देहस्यसूक्ष्मछिद्रेषुविशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ।

तद्यथासैधवंक्षौद्रंनिवस्तैलंरुवृद्धवम् ॥

अर्थ-शरीरमें बहुत छोटे २ छिद्र है उनमें जो औषध प्रवेशकरे उसको सूक्ष्म औषध जानना उदाहरण-जैसे-सैधानिमक-सहत-कडु-आनीम-तिलको तेल और अंडीकातेल इत्यादिक जानना ॥

व्यवायीऔषध ।

पूर्वव्याप्याखिलंकायंततः पाकंचगच्छति ।

व्यवायितद्यथाभंगाफेनं चाहिसमुद्भवम् ।

अर्थ-जो औषध अपकंही प्रथम सर्व देहमें फैलकर फिर पाकदशाको प्राप्तहोवे अर्थात् मद्य विपके समान पाकहोय-उस औषधको व्यावायी जानना जैसे-भाग-और अफीम ॥

विकाशीऔषध ।

संधिवंधांस्तुशिथिलान्यत्करोतिविकाशितत् ।

विश्लेष्यौजश्चधातुभ्योतथाक्रमुककोद्रवाः ॥

अर्थ-जो औषधी सर्वदेहके संधिवंधनोंको शिथिल कर रसादिधातुसे उत्पन्न हुए ओजस हिये बलको शिथिलकरे उस औषधको विकाशी जाननी जैसे-सुपारी और फोदो ॥

१ किमी २ आचार्यके मतमें " निवर्तलम् " ऐसा पाठ है उससे मतसे नीचका तेल लिये । २ पेटमें पाक होते समय ।

मदकारीपदार्थ ।

बुद्धिलुंपतियद्द्रव्यं मदकारितदुच्यते ।

तमोगुणप्रधानंच यथामद्यंसुरादिकम् ॥

अर्थ—जो पदार्थ तमोगुण प्रधानहोकर बुद्धिका आच्छादनकरे अर्थात् बुद्धि का नाशकरे उस औषधको मदकारी जानना जैसे-मद्य-सुराआदि॥

प्राणहारकद्रव्य ।

व्यवायिचविकाशिस्स्यात्सूक्ष्मछेदिमदावहम् ।

आग्नेयंजीवितहरंयोगवाहिस्मृतंविषम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त व्यवायी-विकाशी-सूक्ष्म-छेदि-मदकारी अग्नेय औषध इन छः द्रव्योंके गुणकरके जो युक्तहोय उसद्रव्यको प्राणहारी जानना उदाहरण—जैसे विषवच्छनागादिक ये योगवाहीभी है—इसका यह कारण है कि कोईआचार्य “ योगवाह्यमृतंविषं ” ऐसा पाठ कहते हैं उसका अर्थ वही है कि, विषयोगवाही अर्थात् उसको किसी संस्कारविशेषकरके जिस २ अनुपानके साथ देय उसी २ अनुपानके गुण बढ़ायकर अमृतके तुल्यगुण करे ॥

प्रमाथीऔषध ।

निजवीर्येणयद्द्रव्यंस्त्रोतेभ्योदोपसंचयम् ।

निरस्यतिप्रमाथिस्स्यात्तद्यथामरिचंवचा ॥

अर्थ—जो औषध अपने वीर्यकरके फान-मुख-नासिका इत्यादि छिद्रोंमेंसे कफादि दोपसंचय हुएको दूर करे उस औषधको प्रमाथी कहते हैं उदाहरण जैसे वच-और कालीमिरच इत्यादि ॥

अभिष्यंदिपदार्थ ।

पौष्ठिल्याद्गौरवाद्द्रव्यंरुद्धारसवहाःशिराः ।

धत्तेयद्गौरवंतत्स्यादभिष्यंदियथादाधि ॥

अर्थ—जो पदार्थ अपने पिच्छल गुणकरके रसवाहिनी शिराओंको रोक शरीरको जडके समान करदेवे उस पदार्थको अभिष्यंदी अर्थात् कफकारक जानना उदा० जैसे दही ॥

विदाहीपदार्थ ।

विदाहिद्रव्यमुद्गारमम्लंकुर्यात्तथावृषाम् ।

हृदिदाहं च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥

अर्थ—जो खट्टी डकार-तृषा-दाह-इनको उत्पन्न करके बहुत देरमें पचे उस द्रव्यको विदाही कहते हैं ॥

योगवाहीद्रव्य ।

गृह्णाति योगवाहिद्रव्यं संसर्गवस्तुजांश्च गुणान् ।

पचमानवद्यथैतन्मधुजलतैलाज्यसूतलोहादि ॥

अर्थ—योगवाही द्रव्य जिस द्रव्यके साथ जिस द्रव्यका संयोग करे वह उसीकेसे गुणकरे है जैसे-जल-तेल घी-पारा लोहा ये पदार्थ दूसरेके गुणके समान अपने गुणकरे है उसी प्रकार अन्ययोगवाही पदार्थ जानना ॥

अथ वीर्यम् ।

उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्बुधैः वीर्यं द्विधा स्मृतम् ।

तत्सर्वमग्निपोमीयं दृश्यते भुवनत्रयम् ॥

अर्थ—उष्ण (गरम) और शीत (शीतल) इन गुणोंका वीर्य दो प्रकारका है अतएव सब त्रिलोकमें संपूर्ण वस्तुमात्र अग्नि और जल स्वरूपकी दीखती है ॥

उष्णशीतवीर्योक्ते गुण ।

उष्णवातकफौह्न्यात्पित्तं तु तनुते तराम् ।

शीतं वातकफातं कान्कुरुते पित्तहृत्परम् ॥

अर्थ—उष्णगुण-वात और कफको नष्टकरे है और पित्तको बढ़ाता है एवं शीतगुण वात और कफके रोगोंको प्रगटकरे है तथा पित्तका शमन करे है ॥

अन्यच्च ।

तत्रोष्णं भ्रमवृद्ध्यग्लानिस्वेददाहाशुपाकताः ॥

शमंच वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः ॥

हादनं जीवनस्तं भ्रंसादं रक्तपित्तयोः ॥

अर्थ—तहाँ उष्ण गुण-भ्रम, प्यास, ग्लानि, पसीने, दाह और शीघ्रपाकको करे है एवं वायु और कफ इनको शांतिकरे । शीतगुण-आनंद, जीवन और स्तंभनको करे है तथा रुधिर और पित्त इनको स्वच्छ करे है ॥

अथविपाकाः ।

जाठरेणाग्निनायोगाद्यदुदेतिरसान्तरम् ॥

रसानांपरिणामांतेसविपाकइतिस्मृतः ॥

मिष्टःपटुश्चमधुरमम्लोम्लंपच्यतेरसः ॥

कटुतिक्तकपायाणांपाकःस्यात्प्रायशःकटुः ॥

त्रिधारसानांपाकःस्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ॥

अर्थ-जठराग्निके योगसे रस उत्पन्न होकर उस रससे जो रस उत्पन्न होवे उसको विपाक ऐसा कहते हैं, तहां मिष्ट और खारे पदार्थका पाक मीठा होता है और खट्टे पदार्थका पाक खट्टाही होता है । एवं चरपरा कटुआ और कसेले पदार्थका पाक प्रायः चरपराही होता है इसप्रकार सब रसोंका मीठा खट्टा और चरपरा ऐसे तीन प्रकारहीका पाक होता है चतुर्थ प्रकारका नहीं ॥

विपाककेगुण ।

श्लेष्मकृन्मधुरः पाकोवातपित्तहरोमतः ॥ आम्लस्तु

कुरुतेपित्तंवातश्लेष्मगदापहः ॥ कटुकरोतिपवनंकफं

पित्तंचनाशयेत् ॥ विशेषणपरसतोविपाकानानिदर्शितः ॥

अर्थ-मीठा पाक कफकारक और वात पित्तका नाशक, एवं खट्टाप्रायः पित्तकारक और वायु तथा कफका नाशकारी है एवं तिक्त (कटुआ) पाक वातकारी और कफ पित्त इनका नाशक है । यह रसविपाकका विशेष गुण कहा है ॥

प्रभाव ।

रसादिसाम्येयत्कर्मविशिष्टंत्प्रभावजम् ॥ दंतीरसाद्यै-

स्तुल्यापिचित्रकस्यविरेचनी ॥ मधुकस्यचमृद्द्रीकाघृ-

तंक्षीरस्यदीपनम् । प्रभावस्तुयथाधात्रीलकुचस्यफ-

लादिभिः ॥ समापिकुरुतेदोपत्रितयस्यविनाशनम् ।

क्वचित्तुकेवलंद्रव्यं कर्मकुर्यात्प्रभावतः ॥ ज्वरंहंतिशि-

रोवद्धासहदेवीजटायथा ॥

अर्थ-परस्पर औषधोंके रसादि साम्य होनेसे जो विशिष्ट गुणहोता है उसे प्रभाव कहते हैं । जैसे दंती रसादिकरके चीतेके समान होनेपरभी

उसमें दस्त कराना यह गुण अधिक है इसीको प्रभाव जानना । और दाख मुलहदी ये समान रस होनेपर भी दाख दस्तलाती है मुलहदी नहीं तो यहां दाखमें अधिक प्रभाव है । तथा घृत और दूधके समान गुण हैं परंतु घृतमें दीपन शक्ति अधिक है । एवं आमले और बडहर ये समान रस हैं तथापि आमला त्रिदोश नाशक है बडहर नहीं और कर्हा २ केवल एकही द्रव्य प्रभाव करके विलक्षण कर्मकरे है जैसे सहदे ईकी जड मस्तकमें बांधनेसे ज्वरको नाशकरे है इत्यादि प्रभावके उदाहरण जानने ।

अमीमांस्यान्यांचित्यानिप्रसिद्धानिस्वभावतः ।

आगमेनोपयोज्यानिभेषजानिविचक्षणैः ॥

अर्थ—जो औषध स्वभावकरके प्रसिद्ध है उसको जहां शास्त्र कहे उसी जगे देवे क्योंकि औषधियोंमें तर्क वितर्क नहीं करीजाय इनमें अचित्यवीर्य है अतएव विचार न करे ।

प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्चस्वभावतः ।

नौपधीहेतुभिर्विद्वान्परीक्षेतकदाचन ॥

अर्थ—जो औषधी प्रत्यक्ष फल देनेवाली और लक्षण जिसके प्रसिद्ध हैं उसकी विद्वान् हेतुओं करके कदाचित् परीक्षा न करे [अर्थात् इस हेतुसे ये औषध शीतल होनी चाहिये इसने उष्णगुण कैसे करा] यह परीक्षा त्याग देवे ॥

विरुद्धगुणसंयोगेभूयसालपंहिजायते ।

रसविपाकस्तौवीर्यप्रभावस्तान्व्यपोहति ॥

अर्थ—विरुद्ध गुण औषधी बहुतसी एक ठिकाने पर होनेसे विपाक रसका नाशकरे है तथा रस और विपाक इनका वीर्य नाशकर्ता है और रस-विपाक और वीर्य इनका प्रभाव नाशकरे है ऐसा जानना ॥

॥ इति रसवीर्यविपाकनिर्णयं समाप्तम् ॥

अथपंचकपायाः ।

स्वरसश्चतथाकल्कःक्वाथश्चहिमफांटकौ ।

ज्ञेयाःकपायाःपञ्चैतेलघवःस्युर्यथोत्तरम् ॥

अर्थ—स्वरसकल्क-क्वाथ-हिम-फांट-ये पांच कपाय हैं क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरी हल्की है-अर्थात् स्वरसकी अपेक्षा-कल्क कल्ककी अपेक्षा क्वाथ क्वाथकी अपेक्षा हिम हल्का है इसी प्रकार और भी जानो ॥

तत्रादौस्वरसविधिः ।

आहतात्तक्षणाकृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्धरेत् ॥
वस्त्रनिष्पीडितोयः सरसःस्वरसउच्यते ॥ आहतात्
शीताग्निक्वीटादिभिरनुपहतात् ॥ क्षुण्णात्संपिष्टात् ॥

अर्थ-कीडा शीत अग्नि इत्यादिकरके अदृषित ऐसी वनस्पती को लायकर उसको कूटपीस कपड़ेमें डालके निचोडनेसे जो रस निकले उसको स्वरस अथवा अंगरस कहते हैं ॥

दूसराप्रकार ।

कुडवंचूर्णितंद्रव्यंक्षितंचद्विगुणेजले ।
अहोरात्रंस्थितंस्माद्भवेद्भारसउत्तमः ॥

अर्थ-पावभर सूखी औषधको कूट आधसेर जलमें भिगोय देवे उसको एकदिन रात्रि धरा रहनेदे फिर दूसरे दिन उसपानीको कपड़ेमें छान लेवे तो उसकोभी रस वा स्वरस कहते है, यहभी एकप्रकार स्वरसका है ॥

तीसराप्रकार ।

आदायशुष्कद्रव्यंवास्वरसानामसंभवे ।
जलेष्टगुणितेसाध्यंपादशिष्टं चगृह्यते ॥

अर्थ-जिस सूखी औषधका स्वरस न निकलता होय उसको लाय कूटकर आठगुने पानीमें डालके मंदाग्निसे औटावे जब चतुर्थांश जल बाकी रहे तब उतारके छानलेवे तो इसको भी स्वरस कहते हैं-यह तीसरा प्रकार कहा ॥

स्वरसस्यगुरुत्वाच्चपलमर्द्धप्रयोजयेत् ।
निःशोपितंचाग्निसिद्धंपलमात्रंरसंपिबेत् ॥

अर्थ-किसी औषधका स्वरसहो सब भारी अधिक होते है अतएव यदि उस रसको किधी औषधमें डालना होवे तो अर्द्धपल (२ तोले) डाले । तथा सुखायकर काढा हुआ अथवा अग्निपर काढाकरके काढा हुआरस ४ तोले पीनाचाहिये ॥

कल्कविधिः ।

द्रव्यमाद्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासज्जलंभवेत् ।
प्रक्षेपावापकल्कास्तेतन्मानंकर्पसंमितम् ॥

१ प्रक्षिप्यगालघेद्रव्यं तन्मानं कालसंमितम् । इतिपाठांतरम् ।

अर्थ—गीली औषधकी लाय चटनीके समान बारीक पीसे यदि सूखी औषध होवे तो पानीडालके बारीक पीसावे उसको कल्क ऐसा कहते हैं इसके लेनेका प्रमाण, कर्प कहा है अर्थात् एक तोला है इसको प्रक्षेप और आवापभी कहते हैं ॥

कल्केमधुघृततैलदेयं द्विगुणमात्रया ।

सितागुडोसमो दद्याद्वा देयाश्चतुर्गुणाः ॥

अर्थ—कल्कमें सहत घृत और तेल ये डालनाहोय तो कल्कसे दुगना मिलावे तथा खांड और गुडये पदार्थ डालना होयतो कल्कके समान मिलावे तथा दूध जल आदि शब्दकरके पतले पदार्थ मिलाने होय तो कल्कके चौगुने मिलाने चाहिये ॥

क्वाथ (काढेकी) विधिः ।

पानीयंपोडशगुणक्षुण्णेद्रव्येपलेक्षिपेत् । मृत्पात्रेक्वाथ

येद्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ तज्जलंपाययेद्धीमान्को

ण्णमृद्मिसाधितम् । शृतःक्वाथःकपायश्चनिर्ग्रहः सनिगद्य

ते ॥ आहारैरसपाकेचजातेचद्विपलोन्मितम् । वृद्धवैद्योपदे

शेनापिवेत्क्वाथंसुपाचितम् ॥

अर्थ—पलप्रमाण औषधले जो कूटकर उस औषधका सोलहगुना जलडाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके चूल्हेपर चढावे फिर नीचे मंद २ अग्नि देवे जबजलका आठवाँ भाग शेष रहे तब उस काढेको उतारलेवे और फण्डेसे छानकर कुछ गरम २ रोगीको पिलावे तथा रोगीके उत्तमप्रकार अन्नका परिपाक होनेबाद इसको वृद्धवैद्यकी आज्ञासेदेवे इसकाढेको शृत-क्वाथ-कपाय-और निर्ग्रहभी कहते हैं अर्थात् ये नाम पर्यायवाचक हैं ॥

कर्पादीतुपलं यावद्दद्यात्पोडशिकंजलम् ॥

ततस्तुकुडवं यावत्तोयमष्टगुणंक्षिपेत् ॥

चतुर्गुणमतश्चाद्धं यावत्प्रस्थादिकंजलम् ॥

अर्थ—कर्पसे लेकर पल पर्यंत सोलह गुनाजल डाले, पलसे उपरांत कुडव पर्यंत आठगुना जल डाले और कुडवसे लेकर प्रस्थ पर्यंत काथमें चौगुना जल डाले, यह काथमें जल डालनेकी क्रियाकरी ॥

मात्रोत्तमापलेनस्याग्निभिरक्षैस्तुमध्यमा । जघन्यातु

पलाद्धेनस्नेहकार्यौपधेषुच ॥ पानेकाथादिद्रव्यावस्था ।

अर्थ-स्नेह-काढा-और औषध इसकी उत्तम मात्रा १ पलकी है और तीन अक्षर्यात् ३ तोलेकी मध्यम है-और पलार्ध (२ तोले)की मात्रा मध्यम है ॥
काथमें तेलका परिमाण ।

दशरक्तिकमानेन गृहीत्वा तोलकद्वयम् ।

दत्वाम्भः षोडशगुणं ग्राह्यं पादावशोपितम् ॥

अर्थ-दशरक्तीका मासा इसप्रमाणसे २ तोले औषध लेकर उसमें ६२ तोले जल मिलाय मंदाग्निसे काढाकर जब चतुर्थांश रहे तब उतार कर छानके रोगीको देवे ॥

काथमें मिश्रीसहत डालनेका प्रमाण ।

काथेक्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ।

वातपित्तकफातके विपरीतं मधुस्मृतम् ॥

अर्थ-काथमें खांड डालना होय तो वातरोगमें कोठके चतुर्थांश डाले, पित्तरोगमें आठवाहिस्सा डाले, और कफरोगमें सोलहवाहिस्सा डाले और यदि सहत डालना होय तो खांडसे विपरीत डाले अर्थात् कफरोगमें सहत चतुर्थांश, वातमें षोडशांश और पित्तमें अष्टमांश ॥

हिमाविधिः ।

क्षुण्णद्रव्यपलंसम्यक्पट्टाभिर्नारपलैः श्रुतम् । निःशोपितं हिमः
सस्यात्तथा शीतकपायकः । तस्यमानं मत्तं पाने पलद्वयमितं बुधैः

अर्थ-१ पल कुटी हुई औषध को ६ पल जलमें भिगोय देवे रात्रि भर धरी रहने दे। इसको हिम अथवा शीतकपाय कहते हैं । इसकी मात्रा ८ तोले की है ॥ "तन्मानं फांटवज्ज्ञेयं सर्वत्रैव विनिश्चयः" अर्थात् इस हिमकी मात्रा फांटके समान जाननी यह सर्वत्र निश्चय है ॥

मंथ ।

मंथोपि फांटभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यते । जले चतुःपलेशीते क्षु
ण्णद्रव्यं पलं क्षिपेत् । मृत्पात्रे मंथयेत्सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥

अर्थ-मंथभी फांटका भेद है अतएव इसकी भी इसीजगह कहते हैं । एक पल औषधले उसको कूटके ४ पल शीतलजलमें भिगोय देवे, फिर मिट्टीके पात्रमें उसको मंथन करे फिर उसपानीको छानके देवे उसकी मंथकहते हैं इसकी मात्रा दोपलकी है ॥

अथान्तरभेदे तंडुलोदकमाह ।

तंडुलं कनशः कृत्वा पलं ग्राह्यं हितं डुलात् ।

चतुर्गुणजलदेयंतंडुलोदककर्मणि ॥

शीतंकपायमानेनतंडुलोदककल्पना ॥

अर्थ-१ पल चावलोंको कूट किनकीकरले उसको ४ पलवा ६ पल जलमें भिगोयदेवे थोड़ीदेरकेबाद उसका नितराहुआ पानी लेलेवे तो तंडुलोदकवने जहाँकहीतंडुलोदककाजल लिखाहोय वहाँ इसप्रकार-वनाहुआजल लेवे ॥

फांटविधिः ।

क्षुण्णेद्रव्यपलेसम्यक्जलमुष्णंविनिक्षिपेत् ।

नृत्पात्रेकुडवोन्मानंततस्तुस्नावयेत्पटात् ॥

तन्मानंफांटवज्ज्ञेयंसर्वत्रैपसुनिश्चयः ।

मधुश्वेतागुडादींश्चक्राथवत्तत्रनिक्षिपेत् ॥

अर्थ-१ पलऔषधको कूटके मिट्टीकेपात्रमें एककुडवप्रमाण गरमजल डालके भिगोवे फिर थोड़ी देरके बादउसको छानके पीवे-इसे-फांट-तथा चूर्णद्व ऐसा कहतेहैं इसफांटकी मात्रा दोपलकीहै-तथा फांटमें सहत-मिश्री-तथा-गुडआदि शब्दसे और जो वस्तु डालनीहो वो जिस-प्रमाण फांटमेंडालनीकहीहै उसी प्रकार डाले ।

यवागूकीविधिः ।

साध्यंचतुःपलंद्रव्यंचतुःपाष्टिपलेजले ।

तत्क्राथेनार्धशिष्टेनयवागूंसाधयेद्धनाम् ॥

अर्थ-चारपलप्रमाण औषधकोकूटके ६४ पलजलमें आधा रहने पर्यंत औटावे जब आधा रहे तब उतारके उसको छानलेवे, उस छाने हुए जलमें चावल, मूंग आदि द्रव्य जो कहे हैं डालके फिरफाटाकरे तो इसको यवागू कहते हैं ॥

विलेपीलक्षण ।

विलेपीचघनासिक्थासिद्धानीरेचतुर्गुणे ।

बृहणीतर्पणीद्वयामधुरापित्तनाशिनी ।

अर्थ-चौगुने पानीमें डालके औटायके लपसीके समान गाढी और चिपकनेवाली घनावे उसको विलेपी ऐसा कहते हैं । यह विलेपी धातु-घर्दक शरीरको पुष्टकारी-हृदयकी हितकारी-तथा मधुर होनेसे पित्तका नाशकर्ता है ॥

१ सस्यास्यद्रवःफांटस्तन्मानंदिपलोन्मितम् ।

पानादिकल्पना ।

क्षुण्णंद्रव्यपलंसाध्यंचतुःपष्टिपलंबुनि ।

अर्द्धशिष्टंचतदेयंपानेभक्तादिसंविधौ ॥

अर्थ-कुटाहुआ १ पलद्रव्य ६४ पलजलमें डालके आधापानी रहने पर्यंत औटावे फिरउसको छानके प्यासलगनेमें पानेको थोडा २ देवे- तथा भोजनके समय देनेका प्रकार आगे कहेंगे ॥

मधुंश्वेतगुडक्षारान्जीरकंलवणंतथा ।

घृतंतैलंचूर्णादीन्कोलमात्रान्रसेक्षिपेत् ॥

अर्थ-सपेद सहत-गुड-क्षार-जीरा-लवण-घी-तेल-और इतर चूर्णादिक ये रसमें डालने होयतो छःछ मासे डालने चाहिये ॥

प्रमथ्याकीविधिः ।

प्रमथ्याप्रोच्यतेद्रव्यपलात्कल्कीकृताद्दृशम् ।

ततोष्टगुणितेतस्याः पानमाहुः पलद्रयम् ॥

अर्थ-एकपल औषधको कूटकर कल्ककरे यदि सूखी औषधहोयतो पानीमे पीसके कल्ककरे उसमें अठगुनापानी डालके दोपलरहने पर्यंत उसको औटावे इसको प्रमथ्या कहते है इसके सेवनकी मात्रा २पलकी है ॥

यूपकीविधिः ।

कल्कद्रव्यपलंशुंठीपिप्पलीचार्द्धकार्षिकी ।

वारिप्रस्थेनविपचेत्सद्रवोयूपउच्यते ॥

अर्थ-कल्ककी औषध सामान्य १ पललेय तथा जिस प्रयोगमें सौंठ ० और पीपर होय वह प्रयोग तीक्ष्ण होनेसे आधा २ कर्षलेवे अथवा दोनोंमिलायके आधा कर्षलेय फिर उनका कल्ककर उसमें पानी एक प्रस्थडालके औटावे जब औटके कुछ गाढापेयाके समान होजावे तब उतारले इसको यूपपेसा कहते है ॥

पेयालक्षणम् ।

द्रवाधिका स्वल्प सिक्था चतुर्दश गुणे जले ॥ सिद्ध पेया

बुधैर्ज्ञेया यूपः किंचिद्धनःस्मृतः ॥ पेयालघुतराज्ञेयाग्राहि

णीधातुपुष्टिदा ॥ यूपोनल्यस्ततःकंठ्यालघुपाकःकफापहः ॥

अर्थ-द्रव्यसे चौगुना जलडालके पतली पेजके समान तथा कुछ गाढी

होय तबतक औटावे इसको पेया ऐसा कहते है । पेयाकी अपेक्षा जो कुछ अधिक गाढाहो उसको यूषकहते हैं । तहां वहपेया बहुत हलकी होनेसे मलादि कोंका स्तंभन करतीहै तथा धातु पुष्टकरे । और यूषबलदेताहै, कंठको हितकारी-हलका तथा कफको दूर करने वालाहै ॥

पुटपाककीविधिः ।

पुटपाकस्यकल्कस्यस्वरसो गृह्यतेयतः ।

अतस्तुपुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यतेमया ॥

अर्थ-पुटपाक और कल्क इन दोनोंका स्वरस लेते हैं इसी कारण पुटपाककी युक्ति में कहताहूँ ॥

पुटपाककीकृति ।

पुटपाकस्यमात्रेयंलेपस्यांगारवर्णता ॥ लेपंचद्वयंगुलं-

स्थूलंकुर्याद्वांगुष्टमात्रया ॥ काश्मरीवटजंवादिपत्रैर्वेष्ट

नमुत्तमम् ॥ पलमात्ररसो ग्राह्यः कर्पमात्रंमधुक्षिपेत् ॥

कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तुदेयास्वरसवदुधैः ॥

अर्थ-पुटपाककी मात्राका प्रमाण इसप्रकारकरे कि ऊपरकराडुआलेप अग्निमें अंगारके समान लालवर्ण होने पर्यंत उसको अग्निमें राखे-तथा जिसद्रव्यपरलेप देना होयतो दो अंगुल अथवा एक अंगुल मोटा देवे और लेपके ऊपरनीचे पत्ते लपेटनेके लिये-कंधारी बड जामुन इत्यादिके उत्तम होते हैं तथा पुटपाकमें रसडालना होयतो चारतोले तथा तौलेभर सहत और कल्कचूर्ण द्रवादिकपदार्थ स्वरसके मान प्रमाण उत्तम जाननेवाला वैद्य मिलावे ॥

पाठान्तरम् ।

द्रव्यमापोथितंजंबूवटपत्रादिसंपुटैः ॥ वेष्टयित्वाततो

वध्वाहटंरज्ज्वादिनातथा ॥ मृष्टेपद्वयंगुलंकुर्यादथवांगु

लिमात्रकम् ॥ दहेत्पुटान्तरादग्नीयावलेपस्यरक्तता ॥

अर्थ-जिसवस्तुका पुटपाक करनाहो उसको कूटके गोलाबनावे उसको जामुन बड आदिके पत्तोंसे लपेट ऊपर रस्सी आदिसे फसदे फिर ऊपर दोदो अंगुल मोटा मिट्टीका लेपकरे अथवा एक अंगुल मोटा-लेपकरे उसको अग्निमें धरके अग्निदेवे जबलाल होजावे तब निकाल रसनिचोडले-यह दूसरीविधि कही ॥

चावलधोनेकीक्रिया ।

कंडितं तंडुलपलंजलेष्टगुणिते क्षिपेत् ।

भावयित्वाजलं ग्राह्यं देयं सर्वत्रकर्मसु ॥

अर्थ-एक पल विने फटके हुए चावललेकर उसमें आठपल जलडालके हाथोंसे मीडकर धोवे फिर उसपानीको सर्व कर्ममें देवे ॥

अवलेहकल्पना ।

क्वाथादीनांपुनःपाकात्वनत्वंसारसक्रिया । सोवलेहश्चलेहश्च प्राशइत्युच्यतेबुधैः । सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगुणोगुडः । द्रवंचतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्रनिश्चयः । सुपक्वेतन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सुमज्जनम् । स्थिरत्वं पीडिते मुद्रागंधवर्णरसोद्भवः ॥ दुग्धमिक्षुरसंयूपंचमूलकपायजम् । वासाक्वाथं यथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥

अर्थ-औषधोंके काठे तथा फांटादिकको फिर औटाकर चासनीके समान गाठीकरे उसको रस क्रिया कहते हैं । उसरसक्रियाके पर्याय शब्द अवलेह-लेह-और प्राश यें हैं । उस अवलेहके लेनेका प्रमाण एकपल कहा है । तथा उसमें खांड काथचूर्णसे चौगुने गुड चूर्ण से दुगना-और पानी-दूध-मूत्र-और दूसरे पतले पदार्थ चूर्णसे चौगुने लेने चाहिये ऐसा अवलेहमें सर्वत्र नियम है । उस अवलेहके उत्तम पाककी परीक्षा कहते हैं कि पाकहोनेपर अवलेहमें तार निकलने लगता है तथा उस अवलेहकी वृंदको पानीमें गेरनेसे डूब जाता है । तथा अवलेहको कडछुलेमें लगानेसे चिपक जाता है तथा उस पाकका गंध वर्ण और रस ये अपूर्व होते हैं इसप्रकार काथका उत्तम पाक होनेके लक्षण जानने । तथा उस अवलेहका अनुपान दूध ईखका रस-पंच मूलके फांटेकायूप-अडूसेका फांटा इत्यादिक हैं जो रोगका तारतम्य देखकर वैद्य अपनी बुद्धिके साथ योजनाकरे ॥

चूर्णविधिः ।

अत्यंतशुष्कं यद्द्रव्यं सुषिष्टं वस्त्रगालितम् ।

तत्स्यात्चूर्णं रजःक्षोदस्तन्मात्राकर्षसंमिता ॥

अर्थ-उत्तम सूखी औषधको लायकर कूटपीस घारीककरे उसको

१ तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता इति पाठान्तरम् । २ सरत्त्वमिति पाठान्तरम् ।

होय तबतक औटावे इसको पेया ऐसा कहते हैं । पेयाकी अपेक्षा जो कुछ अधिक गाढाहो उसको यूपकहते हैं । तहां वहपेया बहुत हलकी होनेसे मलादि कोंका स्तंभन करतीहै तथा धातु पुष्टकरे । और यूपवलदेताहै, कंठको हितकारी-हलका तथा कफको दूर करने वालाहै ॥

पुटपाककीविधिः ।

पुटपाकस्यकल्कस्यस्वरसोगृह्यतेयतः ।

अतस्तुपुटपाकानांयुक्तिरत्रोच्यतेमया ॥

अर्थ-पुटपाक और कल्क इन दोनोंका स्वरस लेते हैं इसी कारण पुटपाककी युक्ति में कहताहूं ॥

पुटपाककीकृति ।

पुटपाकस्यमात्रेयंलेपस्यांगारवर्णता ॥ लेपंचद्व्यंगुलं-

स्थूलंकुर्याद्वांगुप्रमात्रया ॥ काश्मरीवटजंवादिपत्रैर्वेष्ट

नमुत्तमम् ॥ पलमात्रसोग्राह्यः कर्पमात्रंमधुक्षिपेत् ॥

कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तुदेयास्वरसवद्बुधैः ॥

अर्थ-पुटपाककी मात्राका प्रमाण इसप्रकारकरे कि ऊपरकराहुआलेप अभिमें अंगारके समान लालवर्ण होने पर्यंत उसको अभिमें राखे-तथा जिसद्रव्यपरलेप देना होयतो दो अंगुल अथवा एक अंगुल मोटा देवे और लेपके ऊपरनीचे पत्ते लपेटनेके लिये-कंभारी बड जामुन इत्यादिके उत्तम हीते हैं तथा पुटपाकमें रसडालना होयतो चारतोल तथा तालेभर सहत और कल्कचूर्ण द्रवादिकपदार्थ स्वरसके मान प्रमाण उत्तम जाननेवाला वैद्य मिलावे ॥

पाठान्तरम् ।

द्रव्यमापोथितंजंबूवटपत्रादिसंपुटेः ॥ वेष्टयित्वात्ततो

वध्वाहृढंरज्ज्वादिनातथा ॥ मृष्टेपद्रव्यंगुलंकुर्यादथवांगु

लिमात्रकम् ॥ दहेत्पुटान्तरादग्नौयावलेपस्यरक्तता ॥

अर्थ-जिसवस्तुका पुटपाक करनाहो उसको कूटके गोलाबनावे उसको जामुन बड आदिके पत्तोंसे लपेट ऊपर रस्ती आदिसे फसदे फिर ऊपर दोदो अंगुल मोटा मिट्टीका लेपकरे अथवा एक अंगुल मोटा-लेपकरे उसको अभिके बीचमें धरके अग्निदेवे जबलाल होजावे तब निकाल रसनिचोडले-पह दूसरीविधि कही ॥

चावलधोनेकीक्रिया ।

कंडितं तंडुलपलंजलेष्टगुणिते क्षिपेत् ।

भावयित्वाजलं ग्राह्यं देयं सर्वत्रकर्मसु ॥

अर्थ-एक पल विने फटके हुए चावललेकर उसमें आठपल जल डालके हाथोंसे मोडकर धोवे फिर उसपानीकी सर्व कर्ममें देवे ॥

अवलेहकल्पना ।

क्वाथादीनांपुनःपाकात्पनत्वंसारसक्रिया । सोवलेहश्चले-
हश्च प्राशइत्युच्यतेबुधैः । सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगु-
णोगुडः । द्रवंचतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्रनिश्चयः । सुपक्वेतन्तु-
मत्त्वंस्यादवलेहेऽप्सुमज्जनम् । स्थिरत्वंपीडितेमुद्रागंधवर्ण-
रसोद्भवः ॥ दुग्धमिक्षुरसंयूपंपंचमूलकपायजम् । वासाक्वाथं-
यथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥

अर्थ-औषधोंके फाटे तथा फांटादिकको फिर औटाकर चासनीके समान गाढीकरे उसको रस क्रिया कहते हैं । उसरसक्रियाके पर्याय शब्द अवलेह-लेह-और प्राश यें हैं । उस अवलेहके लेनेका प्रमाण एकपल कहाहै । तथा उसमें खांड क्वाथचूर्णसे चौगुने गुड चूर्ण से दुगना-और पानी-दूध-मूत्र-और दूसरे पतले पदार्थ चूर्णसे चौगुने लेने चाहिये ऐसा अवलेहमें सर्वत्र नियमहै । उस अवलेहके उत्तम पाककी परीक्षा कहते हैं कि पाकहोनेपर अवलेहमें तार निकलने लगता है तथा उस अवलेहकी घूंदकी पानीमें गरनेसे दूब जाता है । तथा अवलेहको फडछुलेमें लगानेसे चिपक जाता है तथा उस पाकका गंध वर्ण और रस ये अपूर्व होते हैं इसप्रकार क्वाथका उत्तम पाक होनेके लक्षण जानने । तथा उस अवलेहका अनुपान दूध ईखका रस-पंच मूलके फाटेकायूप-अइसेका फांटा इत्यादिक हैं घी रोगका तारतम्य देखकर वैद्य अपनी बुद्धिके साथ योजनाकरे ॥

चूर्णविधिः ।

अत्यंतशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।

तत्स्यात्तच्चूर्णं रजःक्षोदस्तन्मात्राकर्षसंमिता ॥

अर्थ-उत्तम सूखी औषधको लायकर कूटपीस घारीककरे उसको कप

१ तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता इति पाठान्तरम् । २ सारत्वमिति पाठांतरम् ।

डेमें छानलेवे उसे चूर्ण ऐसा कहते हैं तथा रज और क्षोद ऐसीभी कहते हैं उसचूर्णके भक्षणकी मात्रा १ तोलेकी है ॥

चूर्णमेंगुडादिडालनेकानियम ।

चूर्णगुडःसमोदेयःशर्कराद्विगुणाभवेत् । चूर्णेषुभर्जितांहिगुदे-
यनोत्क्रेदकारकम् । लिहेत् चूर्णद्रवैःसर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः
पिवेच्चतुर्गुणैरेवचूर्णमालोडितद्रवैः।चूर्णावलेहगुटिकाकल्का-
नामनुपानकम् । पित्तवातकफातङ्केत्रिद्वयकपलंहरेत् ॥

अर्थ—चूर्णमें गुडडालना होयतो चूर्णके बराबर डाले । खांडदूनी मिला वे । तथा हींग भुनीहुई डालनी तो वह विकार नहींकरे । घी-सहंत-और अन्य चिकनी वस्तुइसमें मिलानी होयतो वो चूर्णसे दुगनी मिलावे । दूध-गोमूत्र जल तथा अन्य पतलीवस्तु चूर्णसे चौगुनीले उसजलादिमें चूर्णको डाल मिलायके पीवे । चूर्ण अवलेह गुटिका तथा कल्क इनका अनुपान जो कहाहै वो पित्तरोग होयतो ३ पललेवे—वातरोग होयतो २ पल और कफरोग होयतो एकपलले इससे औषध उत्तमरीतिसे देहमें फैल जाती है ॥

यथातैलंजलेप्रातंक्षणेनैवप्रसर्पति ।

अनुपानवलादङ्गेतथासर्पतिभेषजम् ॥

अर्थ—इसविषयमें दृष्टांतहै जैसे पानीमें तेलकी बूंदक्षणमात्रमें फैल जाती है उसी प्रकार औषधी अनुपानके वलसे अंगमें शीघ्र फैल जातीहै

भावनाविधिः ।

द्रवेणयावतासम्यक्चूर्णसर्वभूतंभवेत् भावनायाःप्रमाणंतुचूर्णोप्रो-
क्तंभिषग्वरैः । भाव्यद्रव्यसमंकाथ्यंकाथ्यादष्टगुणंजलम् ॥ अ-
ष्टांशशेषितःकाथोभाव्यानतिनभावना ॥ दिवादिवातपेशुष्कं-
रात्रौरात्रौनिवासयेत् ॥ शुष्कंचूर्णाकृतंद्रव्यंसप्ताहंभावनाविधिः

अर्थ—चूर्णमें नीबूके रसकी—अथवा अन्य विजोरे आदिके रसकी पुटदे नी होयतो इतनारस डालेकिवो चूर्ण उसरसमें बूदजावेयह चूर्णमें भावना फा प्रमाण वैद्योंने कहाहै।जिस औषधीमें भावनादेनी है उसद्रव्यके समान

काय द्रव्य ले और उसमें अठ गुनाजल मिलावे फिर अग्निपर चठाय मंद २ आंचसे काढाकर जब जल अष्टमांस रहे तब उतार छानके उसरसकी भावना देवे दिनदिन भाषनादेके धूपमें सुखायदे और रात्रिमें उठायके धरदेवे इस प्रकार उस भावनाका सब रससुख जावे तब घूर्णकर धररक्खे इस प्रकार सातदिन भावनादेनी चाहिये ।

॥ इति भावनाविधिः ॥

उष्णोदकविधिः ।

अष्टमेनांशशेषेणचतुर्थेनार्द्धकेनवा । अथवाकथनेनैवसिद्धमुष्णोदकंभवेत् । श्लेष्मामवातमेदोघ्नवस्तिशोधनदीपनम् । कासश्वासज्वरान्हन्तिपीतमुष्णोदकंनिशि ।

अर्थ-जल अग्निपरगरम करके अष्टमांश (अष्टावशेष) चतुर्थांश अथवा अर्धांशवशेषकरे अथवा केवल भतोवालकरे तो उसको उष्णोदक कहते हैं । गरमजल कफ-आमवात-और मेदोरोग (मोटापन) इनको नाशकरे तथा अग्निको दीप्त करे-रात्रिकी सोते समय गरम जल पीवे तो खांसी-श्वास-और ज्वरको नाशकरे ॥

वटक (गोली)

वटकाश्वाथकथ्यन्तेतन्नामगुटिकावटी ॥ मोदकोवटिका पिंडीगुडोवर्त्तिस्तथोच्यते । लेहवत्साध्यतेवह्नौगुडोवाशर्कराथवा । गुग्गुलुर्वाक्षिपेत्तत्रघूर्णतन्निर्मितावटी ॥

अर्थ-अब वटका कहते हैं कि जिसका नाम गुटिका-वटी-मोदक वटिका पिंडी गुड और वर्त्ती है इसके बनानेकी विधि अबलेहके समान गुड अथवा खांडकापाककर उसमें गूगल वा चूर्ण मिलाय गोलीबनावे ॥

कुर्यादवह्निसिद्धेनक्वचिद्गुगुलुनावटीम् । द्रवणमधुनावापिगुटिकांकारयेद्बुधः । सिताचतुर्गुणादेयावटीषुद्विगुणोगुडः । चूर्णेचूर्णसमःकायौगुग्गुलुर्मधुसंयुतम् । द्रवंतुद्विगुणंदेयंमोदकेषुभिपग्वरैः । कर्षप्रमाणातन्मात्रावलंढद्वाप्रयुज्यते ॥

अर्थ-कहीं कहीं अग्निके पाकविना शुद्ध गूगलडाल चूर्ण मिलायके एक जीवकर गोली बनायलेवे-अथवा जल-सहत-दूध इत्यादिक पतली वस्तु मिलायके गोली बनाय लेवे । यदि खांडसे गोली बनानी होय

तो चूर्णसे चौगुनी खांडडालके गोली बनावे । और गुडके साथ बनानी होय तो दूना गुडडालके गोली बनावे । गूगल अथवा सहत इन दोसे गोली बनानी होवे तो ये चूर्णके समान भाग लेकर गोलीकरे । पानी-सहत इत्यादि पतली वस्तुसे गोली बनानी होय तो वो चूर्णसे दुगना लेकर उससे गोलीकरे । गोलीकी मात्रा १ तोलेकी है अथवा रोगीके शक्तपनुसार वैद्य मात्राकी कल्पनाकरे ।

चूर्णस्यपाकानिवेधमाह ।

प्रायोनपाकश्चूर्णानांभूरिचूर्णस्यतेनाहि ।

आसन्नपाकेप्रक्षेपस्वल्पस्यपाकमागते ॥

अर्थ-चूर्ण औषधका पाक करना उचित नहीं है इसका कारण यह है कि पाक करनेसे चूर्ण द्रव्यका वार्य नष्ट हो जाता है । किंतु चूर्णद्रव्यका परिमाण अत्यंत अधिक होय तो मोदक आदिके बनानेमें जबचासनी होनेपर आयजावे उस समय इसको उसचासनीमें डाल देना उचित है । अन्यथा समग्र चूर्णका उस पाकमें मिलना कठिन है । यदि चूर्ण थोडा होय तो जब चासनी लड्डुकी होकर उतारलीनी जावे और थोडी गरम रहे उससमय मिलावे तो गुणकरे अन्यथा नहीं ॥

अथानुवटिकाविधिः ।

धात्वादीनामुद्भिदावा चूर्णमुक्तैर्द्रवैःसृतम् ॥

अनुक्ततौययोगेनविमर्द्यविदधीतिच ॥

यवसर्पपगुंजादिप्रमाणां वटिकांभिपक् ॥

अनिर्दिष्टवटीसिद्धौप्रायोगुञ्जात्मिकामिति ॥

तत्सेवनंयथादोषमनुपानेनचेप्यते ॥

अर्थ-जडी बूटी अथवा धातु आदि सपूर्ण द्रव्यका बारीकचूर्ण यथोक्त द्रव पदार्थके साथ अथवा जहाँ न कहाहो वहाँ जलके साथ सरसो-जो अथवा रत्तीआदिके प्रमाण गोली बनानी चाहिये । जहाँ गोलीके विषयमें विशेष बख्त नहीं लिखा उस जगे रत्ती २ की गोली बनानी । इस प्रकार बनाई हुई गोलियोंको अनुवटिका अथवा सामान्य करके वटिका कहते हैं । ये दोष विशेषसे अनुपान-विशेष करके सेवन करना चाहिये ॥

रसचूर्णम् ।

रसराजयुतं वलिहेममुखं विधिनापुटितं मनुशैत्यगतम् ॥

उपनीयततःपरिमर्दयतां रसचूर्णमिदंकथितंमुनिभिः ॥

अर्थ-गंधक और स्वर्णादिक द्रव्यपारेके साथ खरलकर यथाविधि पुटपाक देकर जब स्वांगशीतलहो जावे तब चूर्णकर औषधार्थ प्रयोगों में वर्ते । इस प्रकारकी औषधको रसचूर्ण कहते हैं ॥

धन्वन्तरीकाभाग ।

अर्द्धसिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लेहस्यभागोऽष्टमः

संसिद्धाखिललोहचूर्णगुटिकादीनां तथा सप्तमः ॥

योदीयेतभिषग्वरायसरुजानिर्दिश्यधन्वन्तरिम् ।

देहारोग्यसुखाप्तयेनिगदितो भागःसधन्वन्तरिः ॥ १ ॥

अर्थ-सिद्धरस (पारदकी भस्म-चंद्रौदयादि) में वैद्यका आधाराग तैल घृत और अवलेह इनमें आठवां भाग तथा संपूर्ण लोहोंकी भस्म (सुवर्ण-चांदी तांमा-रांगा लोहकी-भस्म) चूर्ण-गोली, आदिशब्दसे पाक-अर्क इत्यादिकमें सप्तमभाग जो रोगी-धन्वन्तरिके उद्देश करके वैद्यके वास्ते देता है उसकी देहमें आरोग्यहो-और सुखकी प्राप्ति होती है ये भागधन्वन्तरिका कहलाता है इस वास्ते, अवश्य देना चाहिये ॥

क्रीतद्रव्यस्यभेषज्यभागश्चैकादशोहियः ॥

वाणिग्भ्योगृह्यते वैद्यै रुद्रभागः सकथ्यते ॥ २ ॥

अर्थ-खरीदी हुई औषधमें ग्यारहवां भागजो दुकानदारसे वैद्यलेता है वह रुद्रभाग कहलाता है-तात्पर्य यह है कि विकृती औषधमें वैद्य रोगीसे कुछ न लेवे किंतु बेचने वालेने जितनी औषध बेची है उसका ग्यारहवां भाग वैद्यको लेना चाहिये ये उसका हक है ॥

गृहीत्वाधिकमीशांशायोऽसमीचीनमौषधम्

दापयेत्तुधवद्वैद्यःसस्याद्विश्वासघातकः ॥

अर्थ-जो वैद्य ग्यारहवें भागसे अधिकलेता है-अथवा उस बेचनेवालेसे मिलकर आप कुछ अपने लिये हिस्सा ठहरायकर विक्रवाये वो लोभी वैद्य विश्वास घाती जानना-उसका न इस संसारमें भला होवे न पर लोकमें । प्रसंगवस यहाँ एकवात और लिखते हैं कि जिस्से मनुष्य जाली मनुष्यके फंदेमें न पड़े ॥

यहां मधुरा-दिल्ली-आगरामें सतिये लोग जो जातिके फायदे होते हैं और अकसर जराहीका वा नेत्रोंका इलाज किया करतेहै ये बाजारमें

एकांतमें बैठे रहते हैं जहां कोई गामका गमेरू मनुष्य अथवा परदेशी मनुष्य दीखा उसको इसारेसे अपने पास बुलाकर कुछ न कुछ ऐसा रोग बतावे कि जिस्से वो डरजावे, और उस्से कहते हैं कि इस रोगसे तुम्हारी बगलमें पसीने आते होंगे, और जब तुम सोकर सुबहको उठते होंगे तब बड़े जोरसे पेशाव उतरता होगा—यदि गरमी देखें तो कहते हैं कि तुम्हारे पैरोंके तलवा बहुत पसीजते होंगे—प्यास अधिक लगती होगी और आलकस जियादह आता होगा—वस ऐसी २ बात कहनेसे उस विचारे भोले भाले परदेशीको इनका विश्वास आजाता है—और उस्से बीचबीचमें यहभी कहते जाते हैं कि भाई यह तुम्हारा बुरा रोग देखके हमको तरस आगया यदि इसका इलाज न करोगे तो महीने दो महीनेमें मरजाओगे इस वास्ते हम खुदाकी राहपर तुम्हारा इलाज बताते हैं सो तुमको अल्लातालाके फजलसे बहुत जल्द तुमको आराम हो जावेगा । इस तरह उसको काबूमें कर जहां इसकी सट्ट लगी हुई होती है उसी दुकानपर चट्ट ले पहुंचते हैं—जाते खेम उस्से कहते है किफलां दवाई तेरेपास है वो कहे है अच्छानिकाल जब निकाले तब ये खरल लेकर बैठ जातेहैं और कहे ये छः मासे डाल-दूसरी तोलेभर डाल, इस तरह पहले दमही २ छदाम २ की दवाई बताए, फिर एक अनख टूटी नामलेकर दवाई मांगें वो पसारी कहे साहब वो बड़े मोलकी दवाई है तब ए कहे क्या मुजाका है निकालतो सही जब वो निकाल कर लावे तो पिसा हुआ गोंद होता है उसको कुछ अपनी जीभपर डाले और एक चुटकी भरके अपने माहकके मूंमें डलवावें जब वो चिपकने लगे तब कहे कि देखो जैसी ये मूंमें चपदेती है । ऐसी ही तुम्हारी धातको गाढीकर देवेगी—फिर पसारीसे पूछें ये क्या तोले देवेगा वो कहे एकरूपे तोले तब ए कहे नहींनहीं आठ आने तोले दे—आधिर को आठ आने दश आने पक्कीकर तुलाते हैं तब यह देखते हैं इस आदमीके पास कितना पैसा है उस वखत पसारीसे कहते हैं कि भाई इस दवाईको रुपया डालके तोलो हम और तरहसे नहीं माननेके पसारी सधा हुआ होताही है चट कहदेता है कि मेरे पास अभी रुपयानही आया नहीं तो मैं रूपयेसे तोलदेता उसवखत ये हकीमसाहब अपने मर्वाकिलसे कहते की आपके पास रुपया होय तो तोलनेके वास्ते देदी-जिये ज्योंही उसने रुपया निकाला और हकीम साहब ताडगए कि इसके पास इतनी जमाहै बसउसीके माफिक १ रु० की—दो रुपेकी ८ आनेकी या बारह आनेकी दवाई कुटाई और दामदिलए उसकी पुडिया बांध उसको सौंपदेते हैं और उसके साथ २ चलकर शहरवाहर निकाल आते

हैं कि जिस्सेकोई सख्स उसको भेकाए नहीं और उसको अपनी नेकी जताते हैं कि देखो तुम्हारे इसकाममें हमने कौडीभी नहीं खाई ईश्वरकी राहपर आपको दवाई बनवायदीनी है-इसतरह उसको शहरबाहरकर चट उसपंसारीके पास आनकर जैसा उसके ठहराव हो वैसा रुपयेमें धारहआने या दशआने लेकर फिर उसी मुकाम पर आन जमते हैं और दूसरी शिकारकी तलास करते हैं ॥

इसलिखनेसे हमारा यही प्रयोजनहै कि,सब भोले मनुष्योंको जाहिर होजावेकि ऐसे २ ठगिया-हकीम-जराह-ज्योतिषी-और मंत्रशास्त्री या जादूगरीके जालसे बचे ऐसाकोईसा सहर नहीं है जहाँये पामर (नीच) ठगियानहीं रहते इनकी मुख्य पहचानयही है कि ये बिना जानपहचानके आनकर खुसामदकी और लोभ की बात से आदमीके दिलको लुभाते हैं-बसउसी समय बुद्धिमान् जान ले कि ये बिनाकारण यहपरदेशीहमारी क्यों खुसामद करताहै-यह शिक्षा दत्तराम चौबेकीयादरह ॥

अथ स्नेहपाकस्यसाधारणोविधिः ।

तत्रादौतिलतैलमूर्च्छा ।

कृत्वातैलंकटाहेदृढतरविमलेमन्दमन्दानलैस्तत् तैलं
निष्फेनभावं गतमिहयदाशैत्ययुक्तंतदैव ॥ मंजिष्ठारा
त्रिलोभ्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः ॥ सूचीप
त्रांप्रिनीरैरुपहितमथितैः गंधधोगंजहाति ॥

अर्थ-तैलमूर्च्छाके नियम कहते हैं-लोहेके दृढकठावमें मंद २ अग्निसे तैलपाककरे-जब यहतैल सागरहित होय तब चूल्हसे उतारलेवे कुछशीतल होनेपर-पिसी हलदीकी जलमें धोरकरक्रमसे धीरे २ उसतेलमें डाले और औटाता जाय इसी प्रकार कुटी मजीठकी जलमें धोरके धीरे २ क्रमसे डाले-फिर लोध नागरमोधा-नलिका-आंवला-बहेडा हरड-केतकीकीजड-बडकीकीपल और नेत्रवाला इन सबको पीस जलमें मिलाय पृथक् २ तैलमें क्रमसे डाले-तथा इसतैलमें चौगुना जलमिलाय फिर पाककरे जब कुछजल बाकीरहे तब उतारके ७ दिनधरा रहनेदे तो तैलकी दुर्गंध दूरहोय । इसी हलदी और मजीठ आदि द्रव्यको मूर्च्छा द्रव्य कहते हैं ॥

तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपिमूर्च्छाविधौ ॥
येचान्येत्रिफलापयोदरजनीहीपेरलोध्रान्विताः ॥
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्रुपादांशिका ॥

दुर्गंधविनिहंतितैलमरुणंसौरभ्यमाकुर्वते ॥

अर्थ-अब इनके परिमाणका नियम कहते हैं कि जितना तेल होवे उसके षोडशांश मजीठ लेनी चाहिये और बाकी सब द्रव्य मजीठकी चतुर्थांश लेनी-जैसे तेल १६ सेर तो मजीठ १ सेर एवं हलदी-लोध-हरड-बहेडा-आमला-नागरमोथा-नेत्रवाला-इत्यादि द्रव्य सब पाव २ भर-लेनी चाहिये मूर्च्छाके करनेसे तेलकी दुर्गंध दूरहोती है और उत्तम सुगंध आने लगें हैं तथा उस तेलका लालवर्ण उत्पन्न होताहै ॥

कटुतैलमूर्च्छा ।

वयस्थारजनीमुस्तविल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजरिक
ह्रीवैरनलिकैः सविभीतकैः ॥ एतैः समांशैः प्रस्थेचकर्ष
मात्रंप्रयोजयेत् । अरुणोद्विपलंतत्र तोयंचाढकसंमितं
कटुतैलंपचेत्तेन आमदोषोपशान्तये ॥

अर्थ-कटुतैलके मूर्च्छाकी औषध ये हैं-आमला-हरदी-नागरमोथा-वेलकीछाल अनारकी छाल-केशर-कालाजीरा-नेत्रवाला-नलिका बहेडा-और मजीठ । मूर्च्छा करनेकी विधि पूर्ववत् जाननी । अर्थात् तेल निस्फेन होजावे तब उतारके हरदीजलमें घोरके तैलमें छिरके फिरमजीठको छिडके-फिरअन्य २ सब वस्तुओंको तेलमें डाले ४ सेर कटुजातेल-मजीठ २ पल-और २ द्रव्य प्रत्येक दोदो तोलालेवे और जल १६ सेरमिलायके पाककरे ॥

एरंडतैलमूर्च्छा ।

विकसामुस्तकंध्यान्यंत्रिफलावैजयन्तिका ॥ ह्रीवैरवन
खर्जूरवटशुंगानिशायुगम् । नलिकाभेपजंदेयंकेतकीच
समंसमम् । प्रस्थेदेयंशुक्तिमितंमूर्च्छनेदधिकांजिकम् ॥

अर्थ-एरंडतेलकी मूर्च्छा द्रव्य ये हैं-मजीठ-नागरमोथा-धनिया-त्रिफला अरनीके पत्ते नेत्रवाला-वनखजूर-बडकीकोपल-हरदी-दार-हलदी-नलिका-केतकीकीजड-दही-काँजी-प्रत्येक चार २ तोला, तेल अंडीका ४ सेर-पूर्वोक्तरीतिके अनुसार मजीठ आदिसे मूर्च्छा करे ॥

घृतमूर्च्छा ।

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुंगद्रवैश्चद्रव्यै

रैतैःसमस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन । आज्यं
प्रस्थंविफेनंपरिचपलगतंमूर्च्छयेद्वैद्यराजः तस्मादा-
मोपदोपंहरतिचसकलंवीर्यवत्सौख्यदायि ॥

अर्थ—हरड—आमले—बहेडा—नागरमोथा—हलदी और नींबूकारस
येसब वस्तु घृतकी मूर्च्छाद्रव्यहैं । प्रथमहलदी—पश्चात् नींबूका रस फिर
और २ द्रव्य संपूर्ण डालके पूर्ववत् मूर्च्छित करे—मूर्च्छाद्रव्य प्रत्येक एकर
पल लेवे घृत ४ सेरले और जलपाकार्य १६ सेर मिलावे ॥

वातहरतैलानांविशेषमूर्च्छाविधिः ।

आम्रजंबूकापित्थानांबीजपूरकविल्वयोः ॥

गन्धकर्मणिसर्वत्रपत्राणिपञ्चपल्लवम् ॥

पंचपल्लवतोयेनगंधानां क्षालनंमतम् ॥

अर्थ—वातघ्न (नारायणतैल—विषगर्भादि) तैलोंकी मूर्च्छामें पूर्वोक्त
साधारण नियमकरे । तथा पंचपल्लवजलमें फिरशोधनकरे । उसका
नियम यह है कि आम—जामुन—कैथ, विजोरा—और बेल इनसबके-
पत्ते तैलके अष्टमांस लेकर चौगुने जलमें काढाकरे, जबचतुर्थांश बाफी
रहे तबउतारके छानलेवे । फिरइसकाढे केसाथ उत्तममूर्च्छित तैलको
फिरपाककरे ॥

स्नेहपाकमेंकालकानियम ।

मूर्च्छास्यात्सप्तभिः सिद्धारात्रिभिर्बुधसंमता ॥ त्रीहि

प्राण्यंगयोःपाकःसद्यःसिध्यतिनान्यथा ॥ स्यात्पाकः

पयसोद्वाभ्यांस्वरसादेस्तुतिसृभिः ॥ दधिकाजिकत

क्राणांसिद्धोभवतिपञ्चभिः ॥ मूत्रादीनामेकयास्यात्ततः

कल्कस्यसप्तभिः ॥ गंधानांपंचभिर्ज्ञेयः स्नेहपाकेत्वयंक्रमः ॥

अर्थ—तेलादिककी मूर्च्छा ७ दिनमें होतीहै—अर्थात् मूर्च्छा द्रव्य संपूर्ण
पाकके अंतर ७ दिन तकउतारके डालते हैं । तत्पश्चात् मटरआदिका
काढा और उसके पीछे मांसादिक काढेके साथ तैलकापाक करना ।
इत्यादिकमें एकएक दिनलगता है, फिरदूधके साथ पाककरना इसमें दो-
दिन लगते हैं फिर स्वरस तथा क्वाथके साथपाककरनेमें तीनदिन लगते

हैं, फिर दही-काँजी और छांछ इनके साथ पाकमें पांच ५ दिन लगते हैं। तत्पश्चात् मूत्रादिकके साथ पाक करनेमें एक दिन लगता है। फिर कल्कपाक ७ दिनमें होता है—सबके पीछे गंधपाक अर्थात् गंधद्रव्य के साथ पाक ५ दिनमें होता है, तथा दूध-दही-इनके साथ पाक करनेमें एक एक दिन लगता है चतुर्विधस्नेह ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ॥

मज्जा च तं पिवेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदितैरवौ ॥

अर्थ—स्नेह (चिकनाई) चार प्रकार की है—जैसे—घी—तेल—वसा (मांसस्नेह) और मज्जा (हड्डी से निकलता तेल) ये चारों प्रकारके तेल किञ्चित् सूर्योदय होनेपर तथा नहोनेपर पीने चाहिये ॥

द्विविधस्नेह ।

स्थावरं जंगमं चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥

तिलतैलं स्थावरेषु जंगमेषु घृतं वरम् ॥

अर्थ—वो स्नेह दो प्रकारका है एक स्थावर और दूसरा जंगम ये दोही स्नेहकी योनि हैं, तिनमें स्थावर पदार्थके स्नेह बहुत हैं उनमें तिलका तैल उत्तम है। और जंगम पदार्थोंमें घी आदि शब्दसे वसादिक अनेक है उनमें घी श्रेष्ठ है इस प्रकार स्नेहके दो भेद जानने ॥

स्नेहके भेद ।

द्राभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ॥

अर्थ—घी और तेल दोनोंके मिलनेसे उसको यमक कहते हैं और घी—तेल—तथा वसा (चर्बी) ये तीन एकत्र होनेसे उसकी त्रिवृत संज्ञा है तथा घी—तेल—वसा—और मज्जा इन चारोंके एकत्र मिलने से उसकी महान् संज्ञा है इस प्रकार स्नेहके तीन भेद जानने ॥

स्नेहपाकविधिः ।

विशेषक्षेत्रपालौ वटुकमपिशुभे वासरे पूजयित्वा तैल ।

स्याज्यस्य किं वारचयतु निपुणः संस्कृतिं संप्रदायात् ॥

१ मांसादघृणं घृतं, अर्थात् मांसकी अपेक्षा घृत अठगुना अधिक है, इसी कारण प्रथम घृत लिखा है। २ मांससे घृतके समान तेल निकलता है अतएव उसको मांस स्नेह अथवा चर्बी कहते हैं। ३ जो नहीं चले (जैसे वृक्षादि उनको स्थावर) ४ और चलनेवाले (गो भैस—मनुष्य आदि) को जंगम कहते हैं।

आदौवाह्निप्रदद्यालघुरथज्ञानकैःफेनशब्दावधिःस्यात् ॥

पश्चान्मृत्पिण्डकैस्तदृशभिरलघुभिर्नातिपांनैर्विशोध्यम् ॥

अर्थ—श्रीगणपति—क्षेत्रपाल और बटुक इनका शुभदिनमें पूजनकर-फिर तेल—अथवा घीकी विधिको कुशल वैद्य गुरु संप्रदायानुसार प्रारंभ करे प्रथम तेलको लोह आदिके कटावमें चटाय बूहे पररखके मंद मंद अग्नि देवे कि जबतक तैलमें ज्ञागन आवे और घीमें शब्द न होवे—फिरक्रमसे अग्निको बढावे। पश्चात् मिट्टीके दशगोला कि जो न बहुत बडे और न बड, त छोटे हो ऐसे लेकरउनसे शोधनकरे ॥

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैलमेववा ॥

द्रव्येचतुर्गुणेषाध्यंतस्यमात्रापलोन्मिता ॥

अर्थ—कल्कसे चौगुना घीवा तैल लेवे उसको चतुर्गुण द्रव्यमें साधन करे जिसकी मात्रा एकपल (४ तोले) की है ॥

स्नेहसाधनमेंकाथ्यऔरजलादिकाप्रमाण ।

निक्षिप्यक्वाथयेत्तोयंक्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टं

गृहीत्वातुस्नेहस्तेनैवसाधयेत् ॥ चतुर्गुणंमृदुद्रव्यकाठि

नेऽष्टगुणंजलम् । मृदादिकाथ्यसंघातेदद्यादष्टगुणंपयः ॥

अत्यंतकाठिनेद्रव्येनीरंपोडशिकंमतम् ॥

अर्थ—अनेक स्थलमें काथके साथ घी वा तैलका पाककरते है इसीसे काथवनानेका नियम लिखतेहै । काथ्यद्रव्य (जिसकी काथकरीजावेगी) यदिनम्रहोवे तो चौगुनाजलडाले और यदिमध्यमहोय अर्थात् न बहुत करडी और न बहुत नरम तो अठगुना जलमिलावे, तथा जो द्रव्य अत्यंत कठोर होवे तो सोलह गुनाजलडालके काथ सिद्धकरे-जबचतुर्थांशपरहं तब उतारके छानलेवे । ऐसाकाटा स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये ॥

अन्यच्च ।

कर्पादितःपल्यावत्क्षिपेत्पोडशिकंजलम् ॥ तदूर्ध्वकुडवंया-
वद्भवेदष्टगुणंपयः ॥ प्रस्थादितःक्षिपेत्रीरंखारीयावच्चतुर्गुणम् ।

अर्थ—अन्यत्रभी लिखाहै कि काथवनानेमें काथ द्रव्यका परिमाण १ कर्पसे लेकर पलपर्यंत होनेसे सोलहगुनाजल डालना-और पलसे लेकर कुडव पर्यंत अठगुना जलडालना एव प्रस्थासे लेकरखारी पर्यंत द्रव्य होवेतो उसमें चौगुना जलडालना न्यूनाधिक नहीं डालना ॥

तुलाद्रव्येजलद्रोणोद्रोणेद्रव्यतुलामता ।

अर्थ-जहांजलका परिमाणकुछ नहीं कहा वहाँ १२॥ सेर द्रव्यमें ६४ सेर जलडालके काथकरे । एवं ६४ सेर जलमें काथ्यद्रव्य १२॥ सेर डालनी चाहिये ॥

अनिर्दिष्टप्रमाणानांस्नेहानांप्रस्थइष्यते ।

जलस्नेहौषधानांचप्रमाणंयत्रनोदितम् ॥

तत्रस्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥

स्नेहसिद्धौद्रव्येऽनुक्तेसर्वत्राम्भश्चतुर्गुणम् ॥

गन्धद्रव्याणिचेच्छन्तिकल्कस्याधौशिकानिच ॥

अर्थ-स्नेह पाकमें जहां विशेष कुछनहीं लिखा उसजगह स्नेह १ सेर लेना चाहिये, तथा जलस्नेह-और कल्कद्रव्यका परिमाण न लिखाहो तहां कल्कचौगुनालेना स्नेह और कल्कपाकार्थे जलका परिमाण स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये । स्नेह पाकमें द्रव्य पदार्थका जहां उल्लेख न होवे तहां चौगुना जलडालके पाक करना । तथा तैल पाकमें गंधद्रव्यका परिमाण कल्कके परिमाणसे आधा जानना चाहिये ॥

स्नेहपाकविधौयत्रक्षीरमेकंतुकथ्यते ।

तोयादीनामनिर्देशेक्षीरमेवचतुर्गुणम् ॥

द्रव्यान्तरेणयोगेतुक्षीरंस्नेहसमंविदुः ॥

अर्थ-स्नेह पाकमें यदि दुग्धके सिवाय और पदार्थ नहो अर्थात् केवल दूधसे ही पाककरना हीवे तो दूधस्नेहसे चौगुनालेना चाहिये । और यदि पाकमें जल अथवा अन्य द्रव्यका संयोग होवे तो दूधस्नेहके बराबरही लेना यह नियम है ।

वृन्देतु ।

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैर्पाकोयत्रैरितः काचित् ॥

जलंचतुर्गुणंतत्रवीर्याधानार्थमावपेत् ॥

नमुंचतिरसंद्रव्यंक्षीरादिभिरुपस्कृतम् ॥

सम्यक्पाकोनजायेततस्मात्तोयंचतुर्गुणम् ॥

अर्थ-वृन्दर्ग्रथमें लिखा है कि स्वरस-दूध-अथवा दही इनकरके पाक करना कहाहो वहां कहीं २ चौगुना जल मिलाकर पाक करते हैं ॥

इसका तात्पर्य यह है कि दूध आदिके गाढा होने पर कल्कादिद्रव्यका रस अच्छीतरह नही निकलता अतएव उत्तम पाकभी नही होवे—इसी कारण चौगुना जल डालनेसे पाक ठीकर होता है और द्रव्योंमें वीर्यकी प्राप्ति होती है इससे चौगुना जल डालना चाहिये ॥

पंचप्रभृतियत्रस्युर्द्रव्याणिस्नेहसंविधौ ।

तत्रस्नेहसमान्याहुरर्वाक्चस्याञ्चतुर्गुणम् ॥

अर्थ—स्नेहपाकमें पांच अथवा पांचसे अधिक द्रव्य होवेतो प्रत्येक द्रव्यका प्रमाणस्नेहके समानलेना चाहिये । यदि पांचसे न्यून (कम) होवे तो उनको स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये ॥

अम्बुक्काथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ।

कल्कस्यांशतत्रदद्याच्चतुर्थपष्टमष्टमम् ॥

अर्थ—जलद्वारा स्नेह पाककरना होवे तो एक द्रव्यका परिमाणस्नेहसे चतुर्थांशलेवे । काथके द्वारापाककरना होयतो कल्कका परिमाण स्नेहसे छठाभागलेवे । एवं स्वरस द्वारापाक करना होयतो स्नेहका अष्टमांश रसलेना चाहिये ॥

दुग्धेदधिरसेतक्रेकल्कोदेयोष्टमांशिकः ।

कल्काच्चसम्यक्पाकार्थतोयमत्रचतुर्गुणम् ॥

कल्कात्कल्कद्रव्याञ्चतुर्गुणतोयंपेपणार्थम् ॥

अर्थ—दूध—दही—स्वरस अथवा छाछद्वारा पाककरना होवेतो स्नेहका अष्टमांश कल्क और कल्कका चौगुनाजल डालना चाहिये । चौगुना जल कल्कके पीसनेके वास्ते लेते हैं ॥

काथेनकेवलेनैवपाकोयत्रोदितः काचित् ॥ काथ्यद्रव्यस्य-

कल्कोऽपितत्रस्नेहेप्रयुज्यते । कल्कहीनस्तुयःस्नेहः-

ससाध्यःकेवलेद्रवे । केवलेद्रवेकाथेतरस्मिन्स्वरसादिरूपे ॥

अर्थ—जहकिवल काथ द्वारा स्नेह साधन कहाहो तो उसजगे काथ्य द्रव्यका कल्कभी मिलापके पाककरे । जहां कल्कके बिना स्नेहपाक करनाहोय उसजगे काथके शदश अन्य द्रव पदार्थके साथ अर्थात् स्वरसादि के साथ पाककरना चाहिये ॥

पुष्पकल्कस्तुयः स्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम् ।

स्नेहात्स्नेहाष्टमांशश्चपुष्पकल्कःप्रयुज्यते ॥

अर्थ—कल्कद्रव्य यदि पुष्पहोय तो उसको स्नेहका अष्टमांश लेवे और पाकार्य स्नेहका चौगुना जल डालना चाहिये ॥

आदौकल्कःप्रदातव्योगंधद्रव्यंततःपरम् । तैलमुत्तार्यदा

तव्यंशिल्हकंकुड्मुमंनखम्।गंधचंदनकंपूरमेलवीजंलवंगम्॥

अर्थ—प्रथम कल्कपाककरे—फिर गंधद्रव्यका पाककरे—गंधद्रव्य समग्र कल्कके परिमाणसे आधी होनी चाहिये । तैलकादूनाजलदेकर गंधपाक करे गंध द्रव्यमें शिलारस, केशर, नख, सपेद चंदन, कपूर, छोटी इलायची और लोंग इनका पाक नहींकरना इनको पाकातमें तैल चूहेसे उतार शीतलकर उसमें ये द्रव्य पीसके डालदेवे और कौंचासे सबको मिलाय के एकजीव करदेना चाहिये ॥

गंधद्रव्याणि ।

एलाचंदनकुंकुमागरुमुराकंकोलमांसीशटी ॥

श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णेशशभृत्क्षौणीध्रजोशी

रकम् ॥ कस्तूरीनखपूतितैलजलमुद्दमेथीलवं

गादिकम् गंधद्रव्यमिदंप्रदेयमखिलंश्रीविष्णुतैलादिषु ॥

अर्थ—छोटी इलायची,—सफेदचंदन,—केशर,—अगर,—जटाभांसी,—कचूर,—सरलकाष्ठ,—तेजपत्र,—गठीला, कपूर,—शिलाजीत,—खस,—कस्तूरी, नख,—मुश्कविलाई, शिलारस, नागरमोथा, मेथी, लोंग, इत्यादि गंधद्रव्य कहाती हैं नारायण तैल आदिमें ये संपूर्ण गंधद्रव्य देनी चाहिये ॥

स्नेहपाकपरिज्ञानम् ।

वर्तित्वत्स्नेहकल्कःस्याद्यदाडुल्याविवर्तितः ॥

शद्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धोभवेत्तदा ॥

यदाफेनोद्गमस्तैलेफेनशांतिश्चसर्पिपि ॥

गंधवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धोभवेत्तदा ॥

अर्थ—स्नेह पाकमें जब कल्कको उंगलियोंके मीडनसे चतीसी होने लगे तथा अग्निमें उसको गरनेसे चट चटाहट शब्द नकरे तब जानना कि स्नेह, सिद्ध होगया । जिस समय तेलमें झाग आवे और धीमें झाग आना बंदहो जावे तथा उपयुक्त वर्ण गंध और रसकी उत्पत्ति होवे तब जानना कि पाक सिद्ध होजुका ॥

त्रिविधपाक ।

स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा । ईपत्स्वर
सकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥ मध्यपाकस्यसिद्धि
श्चकल्केनीरसकोमले । ईपत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाको
भवेत्खरः ॥ तदूर्ध्वदग्धपाकःस्यादाहकृत्निष्प्रयोजनः ।
आमपक्वश्चनिर्वीर्योवह्निमांशकरोगुरुः ॥

अर्थ—स्नेहपाक तीन प्रकारका है १ मृदु—२ मध्य—३ खर—तहाँ कल्कद्रव्यका कुछ थोडासा रस अंश बाकी रहनेसे मृदुपाक कहाताहै और जो कोमल होय तथा रस रहितहो उसको मध्यपाक कहतेहै। एवकुछ थोडा कठिन होनेसे खर-पाक कहाताहै। इसके उपरात कठिनपाक होनेसे दग्ध पाक कहाताहै। ऐसा स्नेह कार्य साधक नहीं होता—यह दाहको प्रगट करेहै तथा आमपक्व (कच्चे पाकका) स्नेह निर्वीर्य—मंदाग्नि करता और भारी होताहै ॥

नस्याथैस्यान्मृदुःपाकोमध्यमःसर्वकर्मसु ।

अभ्यंगार्थःखरःप्रोक्तोयुंज्यादेव्यथोचितम् ॥

अर्थ—नस्यके अर्थ मृदुपाकवाला स्नेह लेना और मालिशमें खरपाक लेना तथा मध्यपाक स्नेह सर्ष कार्योंपयोगी जानना ॥

घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे ।

प्रकुर्वत्युपिताह्येतेविशेषाङ्गणसंचयम् ॥

अर्थ—घृत—तैल और गुड आदिपाक एक दिनमें न साधन करे, इसका यह कारणहै कि, उपित(वासित)अर्थात् अधिकदिनमें सिद्धकराहुआ पाक विशेष गुणोंको फरताहै इसी कारण धीरे धीरे साधन करे ॥

अथस्नेहसेवनविधिः ।

गुरुशीतसरस्निग्धमंदसूक्ष्ममृदुद्रवम् । औषधंस्नेहनं
प्रायोविपरीतं विरूक्षणम् । सर्पिमंजावसातैलंस्नेहेषुप्रवरं
मतम् ॥ तत्रापिचोत्तमंसर्पिःसंस्कारस्यावनुत्तनात् । घृ
तातैलंगुरुवसातैलान्मजाततोऽपिच ॥

अर्थ—गुरु, शीत, सर, स्निग्ध, मंद, सूक्ष्म, मृदु और द्रव, गुणयुक्त द्रव्य समस्त स्नेहन जानना। इसके विपरीत अर्थात् लघु, उष्ण, स्थिर, रक्त, स्थूल,

कठिन और सांद्रगुण, विशेष द्रव्यमात्र प्रायः रूक्षण जानना । स्नेहपदार्थमें घृत, मज्जा, वसा और तैल ये चार प्रधान हैं । इस स्नेहचतुष्टयमेंभी घृत उत्तम है । कारण यह है कि, इस घृतका अन्य द्रव्यके साथ संस्कार होनेसे निजशक्ति और संस्कृत द्रव्यकी शक्तिको प्रकाश करै है । घृतसे तैल तैलसे भारी वसा है और वसासे भारी मज्जा जाननी ॥

स्नेहपानिकाक्रम ।

पिवेन्यहंचतुरहं पंचाहंपडहंतया ॥

अर्थ—पी तीन दिन पीवे और तैल चार दिन पीवे तथा मांस स्नेह पांच दिन पीवे और हड्डीका तैल ६ दिन पीना चाहियो । इस प्रकार क्रम करके घृतादि स्नेह पानिका क्रम जानना ॥

सप्तरात्रात्परंस्नेहःसात्मीभवतिसेवितः ॥

अर्थ—सात दिवसके अनंतर घृतादिक स्नेह पानिसे आहारके समान हो जाता है । फिर गुण अवगुण कुछ नहीं करता ॥

स्नेहपानमेंयुक्ति ।

दोषकालाम्निवयसांवलंष्टद्वाप्रयोजयेत् ।

हीनांचमध्यमांज्येष्टांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥

अर्थ—वातादिक दोष, काल, अग्नि, अवस्था इनका बलावल विचारके घृतादिक स्नेहोंकी सेवनकी मात्रा हीन (अल्प) और मध्य तथा ज्येष्ठ इनमेंसे शक्तिका तारतम्य देखकर देनी चाहिये ॥

अविधिस्नेहसेवनकेदोष ।

अमात्रयातथाकालेमिथ्याहारविहारतः ।

स्नेहःकरोतिशोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञितः ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेह पानिका प्रमाणकहा है उसकी अपेक्षा कम अथवा ज्यादा पानिसे, तथा पानिका काल छोड़कर अन्यकालमें पानिसे तथा घृतादिक स्नेह पी कर मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे उस स्नेहसे सूजन और बवा-सीर होती है तथा तंद्रा आनकर घोरनिद्रा आती है तथा संज्ञाका नाश होता है

१ स्नेह पानिमें । २ कर्पकी मात्रा हीन हैं तीन कर्पकी मात्रा मध्यम जाननी । ३ एक पल प्रमाणकी जो मात्रा है वो ज्येष्ठ (बड़ी) जाननी ।

स्नेहयोग्यमनुष्य ।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचितकाः ।

वृद्धबालबलकृशारूक्षक्षीणासुरेतसः ॥

वातार्तसंधितिमिरदारुणप्रतिबोधिः ॥

अर्थ—औषध करके जिसका पसिना काढाहो, रेचक औषध करके शुद्ध कराहुआ, मद्य पीनेवाला, स्त्रीपरिश्रमसे थकाहुआ, चिंताकरके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण, रुधिरवाला, धातुक्षीण, बादीकरके पीड़ित, तिमिररोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके योग्यहै ऐसा जानना ॥

स्नेहक्रियाअयोग्य ।

स्नेह्यानत्वतिमन्दाग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ।

उरुस्तंभातिसारामगलरोगगरोदरैः ॥

मूर्च्छाछर्द्यरुचिश्लेष्मत्वृष्णामद्यैश्चपीडिताः ।

अपप्रसूतायुक्तेचनस्येवस्तौविरेचने ॥

अर्थ—अत्यंत मंदाग्निवाला, अत्यंत तीक्ष्णाग्निवाला, अतिस्थूल, अत्यंतदुर्बल, एवं ऊरुस्तंभ, अतिसार, आम, गलरोग, विपरोग, उदररोगी, मूर्च्छा, वमन, अरुचि, कफ, तृषा और मदादाय्य रोगसे पीड़ित, अकाल प्रसूता नारी इत्यादि रोगी तथा नस्य, वस्ती और विरेचन करनुकाहो ऐसे मनुष्योंकी स्नेहन क्रिया करना निषेधहै ॥ घृतयोग्य ।

तत्रधीस्मृतिमेधाग्निकांक्षिणांशस्यतेघृतम् ॥

अर्थ—तहां बुद्धि, स्मृति (स्मरण) मेधा और अग्निवृद्धि इनके निमित्त स्नेह प्रयोग करनेवालोंको घृतप्रयोग उत्तमहै ॥

तैलयोग्य ।

अन्धनाडीक्रिमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥ तैललाघवदा-

ढर्चयैः क्रूरकोष्ठेषु देहिषु ॥ वातातपाध्वभापास्त्रीव्याया-

माक्षीणधातुषु ॥

अर्थ—गांठ, नाडीव्रण, कृमि, कफ, मेदा, वायुरोगसे पीड़ित, दूरकोठेवाला एवं हवा, धूप, मार्गचलना, अधिक पुकारना (पढना गाना आदि) स्त्रीमंभोग और दंड, कसरत, इत्यादि कारणोंसे क्षीण धातुनालोंके पक्षमें तथा हलकापन और दृढताके निमित्त तैलका प्रयोग अति उत्तमहै ॥

वसा और मज्जाके अधिकारी ।

रूक्षकृशक्षमात्यग्निवातावृतपथेषुच । शेषैवसातु-

अर्थ-रूक्षदेह, कृशका सहनेवाला, अत्यंत अग्निदीप्तवाला, इनको तथा वादी करके मार्गरुका हुआ ऐसे मनुष्योंको बाकीके दोस्नेह वसा और मज्जा हितकारी जानने ॥

. वसाकाप्रयोग ।

सन्ध्यस्थिमर्मकोष्ठरुजांसुच । तथादग्धाहतेभ्रष्टेयोनि
कर्णशिरोरुजि ॥

अर्थ-संधि, हड्डी, मर्म, कोष्ठ, कर्ण और मस्तककी पीडा, एवं दग्धयोनि, आहतयोनि और भ्रष्टयोनि ऐसी स्त्रियोंके पक्षमें वसा अत्यंत हितकारी है ॥

ऋतुपरत्वथृततेलादिकासेवन ।

तैलंप्रावृषिपर्पान्तेसर्पिरन्यौतुमाधवे । ऋतौसाधारणेस्ने
हःशस्तोऽह्निविमलेखौ ॥

अर्थ-प्रावृष्टकालमें तैल, शरदकालमें घृत, एवं वसंतकालमें वसा और मज्जा सेवन करने । साधारण ऋतुमें अर्थात् जिससमय शीत, गरमी और वर्षा इनकी प्राबल्यता न होवे उस समय दिनमें सूर्य निर्मल हो अर्थात् बादलादिक होय नहीं उससमय स्नेहप्रयोग करना उत्तम है ॥

तैलंत्वरयांशीतेपिधर्मेपिघृतंनिशि । निश्येवापित्तेप-
वनेसंसर्गपित्तवत्यपि । निश्यन्यथावातकफाद्रोगाःस्युः
पित्ततोदिवा ॥

अर्थ-अत्यंत आवश्यकतामें अर्थात् जिसरोगसे शीघ्रही चिगाड दीखे उस रोगमें शीतकालमेंभी तैलका प्रयोग करना किंतु दिनमें जब सूर्य निर्मल होवे तब करे इसी प्रकार गरमीमें घृतकी व्यवस्था जाननी, परंतु घृतको रात्रिमें देना चाहियोकेवल पित्त अथवा केवल वादीमें अथवा पित्तयुक्त संसर्गस्थलमें रात्रिके समय स्नेहपानकी व्यवस्था जाननी। अविधिसे रात्रिमें स्नेहप्रयोग करनेसे वात कफके रोग और अविधिसे दिनमें स्नेह प्रयोग करनेसे पैत्तिक रोग उत्पन्न होते हैं ॥ स्नेहपानकी मात्रा ।

देयादीप्ताग्नेमात्रास्नेहस्यपलसंमिता ।

मध्यमायत्रिकर्षास्याजघन्यायद्विकर्षिकी ॥

अर्थ—जिसमनुष्यकी दीप्ताग्नि होवे उसको घृतादिक स्नेहकी मात्रा १पल पिलानी चाहिये और जिसकी मध्यम अग्नि है उसमनुष्यको तीनकर्ष प्रमाणदेवेतथा जिसकी मंदअग्नि होवे उसको दोकर्षप्रमाणकी मात्रा देनी चाहिये।
प्रकारांतर ।

अथवास्नेहमात्राःस्युस्तिस्त्रोन्याःसर्वसंमताः ।

अहोरात्रेणमहतीजीर्यत्यद्वितुमध्यमा ।

जीर्यत्यल्पादिनाद्धैनसाविज्ञेयासुखावहा ॥

अर्थ—संपूर्ण ऋषियोंको मान्य ऐसी दूसरी घृतादिक स्नेह व्यवस्थापक मात्रा तीन प्रकारकी है उसको कहते हैं जो मात्रा आठप्रहरमें पचे उसको बड़ी मात्रा कहते हैं वो एक पलकी जाननी और जो मात्रा एकदिनमें पचे उसको मध्यम कहते हैं वो तीन कर्षकी है। तथा जो मात्रा दोप्रहरमें पचे उसको अल्पा (छोटी मात्रा) कहते हैं वो दोकर्षकी जाननी यह सुखदायक है अर्थात् यह सबको पचन होसकी है । अल्पादिकमात्राओंकिगुण ।

अल्पास्याद्दीपनीवृष्यास्वल्पदोषेषुपूजिता ।

मध्यमास्नेहनीज्ञेयावृंहणीभ्रमहारिणी ।

ज्येष्ठाकुष्ठविपोन्मादभ्रहापस्मारनाशिनी ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेकी जो दोकर्षकी अल्पमात्रा है वह जठराग्नि दीप्तकर स्त्रीसंगकी रुचि बढावे है, तथा घातादिक दोषोंके अल्पप्रकोपको दूरकरे है। तथा तीनकर्षकी जो मध्यममात्रा है वो देहको पुष्टकर धातुकी वृद्धिकरे है। तथा भ्रमको दूरकरे है। एवं १पलकी जो ज्येष्ठमात्रा है वो कुष्ठ, विष, भूतोन्माद और अपस्मार इनका नाशकरे ॥

दोषोंमेंअनुपानविशेष ।

केवलपित्तके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ।

देयं बहुकफेवापिव्योपक्षारसमन्वितम् ॥

अर्थ—केवल पित्तके कोषमें घी मिलावे और वायुके कोषमें घी और निमक मिलायके पिवावे । तथा कफके अत्यंत कोष होनेसे व्योष—तथा जवाखार इनके चूर्णके साथदेवे ॥

१ सांड, मिरच, पीपल, इन तीनोंके समुदायको व्योष कहते हैं ।

घृतयोग्य ।

रूक्षक्षतविपार्त्तानां वातपित्तविकारिणाम् ।
हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥

अर्थ—रूक्षमनुष्य उरक्षत और विपार्त्त मनुष्य—तथा वातपित्तके विकारी एवं बुद्धि स्मृति करके हीन हैं उनको घृतका पिलाना उत्तम है ॥

तैलयोग्य ।

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ।
पिवेयुस्तैलसाम्यायेतैलं दीप्ताग्नयस्तुये ॥

अर्थ—कृमि रोगी, उदरविकारी तथा वायुकरके व्याप्त है शरीर जिन्हों का तथा प्रवृद्धरूप हैं कफ और मेद जिनके ऐसे मनुष्योंको तैल पिलावे । तथा जिनकी प्रकृतिको तेल सुहाता हो एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी उन मनुष्योंको तैल पिलाना चाहिये ॥

चर्बीयोग्य ।

व्यायामकार्पिताः शुष्करेतोरक्तामहारुजः ।
महाग्निमारुतप्राणावसायोग्यानराः स्मृताः ॥

अर्थ—कुशती कशरत तथा धनुष्यादिकका खींचना इनकरके पीडित है शरीर जिसका तथा क्षीण है धातु और रक्त जिनका तथा देहमें घोरपीडा है जिनके एवं अग्नि और वायु हैं प्रबल जिसके ऐसे मनुष्योंको मांस स्नेह पिलाना चाहिये ॥ मज्जा (हड्डीका तेल) ।

क्रूराशयाः क्लेशसहावातार्तादीप्तवह्नयः ।
मज्जानंचपिवेयुस्तेसर्पिर्वासर्वतोहितम् ॥

अर्थ—दुष्ट है कोष्ठ जिन्होंका तथा दुःख सहन करनेवाले मनुष्य तथा जो मनुष्य वायुकरके पीडित हैं एवं प्रदीप्त हैं जठराग्नि जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंको हड्डीका तेल पिलाना अथवा घी पिलावे तो इसकारणसे शरीरको हित होता है

१ जिनमनुष्योंकी प्रदीप्त अग्नि है—तथा वायुका शरीरमें जैसा वर्त्ताव चाहिये ऐसा वर्त्ते तथा अशिके साथही अन्नको पचन करे इसीसे अग्नि और वायु ये शक्ति देनेवाले हैं तथा ये अनुकूल होते तो मांसका स्नेह पचन होय और ये अनुकूल न होंय तो नहीं पचे ।

२ आम २ अग्नि ३ पक्क ४ मूत्र ५ यकृत ६ ल्पहा ७ हृदय ८ उंडुका ९ और फुफ्फुस नौ स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं अर्थात् ये पदार्थ कोष्ठमें रहते हैं ।

स्नेहपानकाल ।

शीतकालेदिवास्नेहमुष्णकालेपिवेत्रिंशि ।

वातपित्ताधिकेरात्रौवातश्लेष्माधिकेदिवा ॥

अर्थ—शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे और गरमीमें वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे । तथा कफ वायु प्रबल होनेसे दिनमें पीवे इसप्रकार स्नेह पीनेका क्रमजानना ॥

स्नेहकीस्थलविशेषमेंयो जना ।

नस्याभ्यंजनगंडूपमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ।

तैलंघृतंवायुंजीतदृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ—नाकमें डालनेके विषयमें तथा अंगमें मालिश करना कुल्ले करना तथा मस्तक, कानऔर नेत्रोंकी तृप्तिके विषयमें वातादिकोंका बलाबल देख लेल अथवा घृतकी योजनाकरे ॥

स्नेहकेपृथक् २ अनुपान ।

घृतेकोष्णजलंपेयंतैलेयूपःप्रशस्यते ।

वसामज्ज्ञोःपिबेन्मंडमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ—घृतपीकर उसके ऊपर गरम जल पीवे तथा तैल पीके ऊपर न्योपे पीवे—मांस स्नेह अथवा हड्डीका तैल पीकर ऊपरसे मंड पीवे तो सुखकारी होय इस प्रकार स्नेहका अनुपान जानना ॥

भातकेसंगस्नेहदेनेयोग्य ।

स्नेहद्विपःशिशूनवृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ।

तृष्णातुरानुष्णकालेसहभक्तेनपाययेत् ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहसे जिनको द्वेष(नफरत)है, तथा बाल वृद्ध-सुकुमार मनुष्य और कृश तथा तृष्णा करके पीडित ऐसे मनुष्यको गरमीके दिनोंमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पिवावे ॥

यवागूकोसद्यःस्नेहकारित्व ।

सर्पिष्मतीबहुतिलायवागूःस्वल्पतंदुला ।

१ चावल गुल्थी इत्यादिक धान्य एक पल ले उसमें जल १ प्रस्थ डालके औंटावे और गाढीकरे उसको न्योष ऐसा कहते हैं । २ भातके पेनको मंड ऐसा कहते हैं ।

सुखोष्णासेव्यमानातुसद्यःस्नेहनकारिणी ॥

अर्थ-तिलोंको कूट उसमें थोड़े चावल मिलाय धी और पानी उनमें डालके चूल्हेपर चढायके औटावे मंदाभिसे पतली ल्हपसीसी बनावे उसकी यावगू कहते हैं । यह यवागू कुछ गरम २ सेवन करनेसे उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न होती है अर्थात् सद्यस्नेहनकारिणी है ॥

धारोष्णदुग्धसेतत्कालधातुवत्पन्नहोतीहै ।

शर्कराचूर्णसंमृष्टेदोहनस्थेघृतेतुगाम् ।

दुग्धवाक्षरिंपिवेदुष्णंसद्यःस्नेहनमुच्यते ॥

अर्थ-मिश्रीका चूरा धीमें डालके उस घीको चूल्हेपर चढाय थोड़ा गरमकर दूधदुहनेके पात्र(दोहनी)में डाले फिर उसपात्रमें गौका दूध उसी समय गरम २ होय उसको पीवे ऐसा करनेसे तत्काल स्नेहन होताहै अर्थात् उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न करता है ॥

मिथ्योपचारसेजिसकोस्नेह पचे उसका यत्न ।

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वायस्यस्नेहोनर्जीर्यति ।

विष्टभ्यवापिर्जीर्येतवारिणोष्णेनवामयेत् ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेके पश्चात् व्यायामादिक परिश्रम करनेसे वो स्नेह पचे नहीं अथवा बहुत पीनेसे नहीं पचा अथवा मलके अवरोध करके जीर्ण नहीं हुआ ऐसे स्नेहाजीर्ण मनुष्यको गरम २ जल पिलायकर उलटी करावे जिस्से स्नेहके अजीर्णका दोष दूरहोय ॥

दूसरायत्न ।

स्नेहस्याजीर्णशंकायांपिवेदुष्णोदकंनरः ।

ततोद्धारोभवेच्छुद्धोभक्तप्रीतिरुचिस्तथा ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेसे यदि अजीर्णहुआ ऐसी शंका होय तो गरमागरम जल पीवे जिस्से शुद्ध उत्तम डकार धाकर अन्नके ऊपर रुचि आवे आतेही अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जानना ॥

स्नेहनकरके पित्तकोष ही नृषा लगे उसका उपाय ।

स्नेहेनपैतिकस्याग्निर्यदातीक्ष्णतरीकृतः ।

तदास्योदीयतेवृष्णाविपमात्तस्यपाययेत् ॥

शीतजलवामयेच्चपिपासातेनशाम्यति ॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी आधी पित्तकी प्रकृति उसमें वो मनुष्य घृतादिक स्नेह पदार्थ पीवे तो उसकरके उसमनुष्यकी अग्नि अत्यंत तीक्ष्ण हो तृषाको बटावे उसतृषाके दूर करनेको उस मनुष्यको शीतलजल पिवावे तथा उलटी करवावे कि, जिस्से अत्यंत प्यासका लगना दूरहो ॥

वर्जितस्नेहीमनुष्य ।

अजीर्णावर्जयेत्स्नेहमुदरीतरुणज्वरी ।

दुर्बलोरोचकीस्थूलोमूर्च्छार्तोमदपीडितः ॥

दत्तवस्तिर्विरक्तश्रवांतितृष्णासमन्वितः ।

अकालप्रसवानारीद्रुर्दिनेचविवर्जयेत् ॥

अर्थ—अजीर्णका विकार उदररोगी, तरुणज्वरवाला, दुर्बलमनुष्य अरुचिवाला, अतिस्थूल, मूर्च्छारोगी, मद्यपनिसे पीडित एवं वस्तिकर्म कराहुआ—तथा जिसको दस्त होतेहो, उलटीकरताहो, प्याससे पीडित तथा अकालमें प्रसूता स्त्री इन सब रोगियोंको घृतादिक स्नेह पान नहींकरना चाहिये—तथा जिस दिन बद्दलसे आकाश घिररहाहो उस दिनभी स्नेहपान करना वर्जितहै ॥

उत्तमस्नेहकेलक्षण ।

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चःस्निग्धमसंहतम् ।

मृदुस्निग्धांगताग्लानिःस्नेहोवेगोथलाघवम् ।

विमलेन्द्रियतासम्यक्स्निग्धेरुक्षेविपर्ययः ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीकर अंगका रूखापन दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होनेसे उसके लक्षण दिखाते हैं कि, वायु देहमें उत्तम रीतिसे संचारकरे । तथा मल सचिक्कण होवे और अधिक उत्तरे तथा शरीर नम्र और सचिक्कण होवे—तथा ग्लानिरहितहो तथा घृतादिक स्नेहके सेवन करनेसे किसी प्रकारका उपद्रव न होय शरीर हलका होय तथा इन्द्री निर्मल होवे ये लक्षण उत्तमके हैं और रुक्ष मनुष्य जो होताहै उसके लक्षण इनलक्षणोंसे विपरीत होते हैं। तात्पर्य यहहै कि, देहमें यथार्थ स्नेहन(चिकनाई) न होनेसे जो ऊपर लक्षणकहे हैं उस्से विपरीत लक्षण होते हैं ॥

१ जिसका ज्वर परिपक्व न हुआ हो वो मनुष्य ।

२ गुदाके द्वारा तेल आदिकी पिचकारी मारनेका प्रयोग ।

आधिक स्नेहपानके उपद्रव ।

भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ।

तन्द्रातिसारः पाण्डुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य घृतादिक स्नेह अधिक पीता है उसके लक्षण ये हैं कि, अन्नसे ड्रेपकरे, मुखसे लार गिरे, गुदामें दाह होय, मल पतला उतरे नेत्रोंमें तन्द्रा हो, अतिसार होय तथा शरीर पीले रंगका होजावे ये अतिस्निग्धके लक्षण जानने ॥

रूक्षको स्निग्धकरना और स्निग्धको रूक्षकरनेका प्रकार ।

रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ।

श्यामा कचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥

अर्थ—रूक्ष मनुष्यको स्निग्धपदार्थ मक्खन निकाला हुआ तत्कालका मट्टा तथा तिलोंका कल्क तथा जोंका सत्व इत्यादिकरके स्निग्धकरे और स्निग्ध मनुष्यको रूक्ष पदार्थ जे सोंमखिया, पसाई, धान्य और चना इत्यादिक करके रूक्ष करना चाहिये ॥

स्नेहसेवनका फल ।

दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्जितेन्द्रियः ।

निर्जरो वलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहके सेवन करनेसे मनुष्यके लक्षण—जैसे कि, अग्नि दीप्त हो कोष्ठ शुद्ध होय, शरीरमें रसादिक धातु पुष्ट हो तथा वो मनुष्य जितेन्द्रिय होय तथा वृद्धावस्था रहित हो वल और कांति इनकरके युक्त होवे ये लक्षण होते हैं ।

स्नेहसेवनके नियम ।

उष्णोदकोपचारी स्याद्ब्रह्मचारी क्षपाशयः । नवेगरोधी

व्यायामक्रोधशोकहिमातपान् ॥ प्रवातयानपानाध्वभा-

प्याव्यासनसंस्थिता । नीचात्सुषोपधानाहः स्वप्नधूमर-

जांसिच । यान्यहानि पिवेत्तानि तावन्त्यन्यान्यपित्यजेत् ॥

अर्थ—घृतादि स्नेह सेवन करनेवाला गरमजल पीवे—शीतल नपीवे, ब्रह्मचर्यमें रहे, रात्रिमें शयनकरे, दिनमें न सोवे, मलमूत्रादिके वेगको रोकनहीं, उसी समय त्यागे, दंडकसरत, क्रोध, शोक, शरदी, धूप, अत्यंत हवाखाना घोडे आदिकी

सवारी, मद्य आदिका पान, मार्गका चलना, बहुत बोलना, अत्यंत बैठारहना, अत्यंत नीचा अथवा अत्यंत ऊंचा, मस्तकके नीचे तकिया धरके सोना, दिनमें सोना, घुआके घरमें रहना, उडती धूरमें जानाआना इत्यादिक सब कर्म त्यागदेवे ये संपूर्ण नियम जितने दिन स्नेहपान करे उतनेही दिन आगेतक पालनकरने चाहिये ॥

त्र्यहमच्छंमृदौकोष्ठेऋरेसप्तदिनंपिबेत् ।

सम्यक्स्निग्धोऽथवायावदतःसात्माभवेत्परम् ॥

अर्थ—मृदुकोष्ठवाला ३ दिन, ऋकोष्ठवाला ७ दिन, अच्छा स्नेहपानकरे, मध्यकोष्ठवाला पांच दिन सेवनकरे, तब इसस्नेहका फल दीखे । सामान्यताकरके यह नियम है किंतु जहांतक स्नेहपानके संपूर्ण लक्षण न मालूम हो तबतक स्नेहपानकरे तत्पश्चात् स्नेहपान सात्म्य अर्थात् अभ्यासमें आय जाता है ॥

स्नेहव्यापत्तीकायत्न ।

**तक्रारिष्टखडोद्दालयवश्यामाककोद्रवम् । पिप्पली
त्रिफलाक्षौद्रपथ्यागोमूत्रगुग्गुलु ॥ यथास्वंप्रतिरोगंच
स्नेहव्यापदिसाधनम् ॥**

अर्थ—स्नेहके उपद्रवसे यदि क्षुधा, तृषा जातीरहे वमन होय, पसीने आवे तो रूक्षपान, रूक्षअन्नका भोजन, रूक्षऔषधि तक्र, अरिष्ट, खड (कृतान्न विशेष) उद्दाल (धान्यविशेष) यव, सामखिया, कोदोधान्य, पीपल, त्रिफला, सहत, हरड, गोमूत्र, तथा गुग्गुलु इत्यादिकदेवे—तथा जिसरोगपर जैसी २ चिकित्सा लिखी है वो स्नेह व्यापत्ती रोगोंमें करनी चाहिये ॥

अथस्वेदविधिः ।

स्नेहपानके अनंतर पसीने काढनेकी विधि कहते है तहां प्रथम पसीनेके भेद दिखाते है ॥

स्वेदश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तापोष्मोस्वेदसंज्ञितौ ।

उपनाहोद्रवःस्वेदःसर्वेवातार्तिहारिणः ॥

अर्थ—पसीना निकालना चार प्रकारका है उसके नाम जैसे-ताप, उष्म, उपनाह और द्रव ये चार प्रकारके पसीने बादीकी पीडा दूर करने वाले है ॥

दोषकीतारतम्यतासेस्वेदविधिः ।

महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदोमहान्स्मृतः ।

दुर्वलेदुर्वलस्वेदोमध्येमध्यतमोमतः ॥

अर्थ—जिसके देहमें घोर वादीका रोग है उसके अंगोंसे अत्यंत पसीना काठना चाहिये तथा हलका रोग होय तो उसके अंगसे थोडा पसीना निकाले और मध्यमरोगीके देहसे मध्यम पसीने निकालने चाहिये ॥

रोगविशेषमेंस्वेदविधि ।

**बलासेरूक्षणःस्वेदोरूक्षःस्निग्धःकफानिले । कफमे-
दावृतेवातेकोष्णगेहरवेःकरान् ॥ नियुद्धंमार्गगमनंगुरु-
प्रावरणंध्रुवम् । चिंताव्यायामभारांश्चसेवेतामयमुक्तये ॥**

अर्थ—कफका रोग होनेसे रूक्ष पदार्थ जो बालुकादिक उस्से देहका पसीना निकालना और कफवायुका रोग होनेसे स्निग्ध और रूक्ष इनदोनों प्रकारके पदार्थोंसे पसीना निकालना चाहिये तथा कफ भेदोयुक्तवादीका रोग होनेसे घरमें जिस जगह गरमी हो उसजगे बैठ अंगको सहन होय ऐसी थोड़ीरगरमी लेनी चाहिये तथा सूर्यकी किरण अंगपर लेनी चाहिये तथा कुश्तीकरे एवं कुछ थोड़ी रस्ता चले कंबल, धुस्सा इत्यादि ओढे तथा चिंता युक्तहोना चाहिये परिश्रमकरे तथा कोई भारीवस्तु अंगोंपर धारण करनी इतने उपाय पसीने निकालनेके अर्थ करने चाहिये जिस्से कफमें दोपयुक्त जो वायुका रोग हो सो दूर होवे ॥

पसीनेकाठनेयोग्यमनुष्य ।

येपांस्यंविधातव्यंवस्तिश्चापिहिदेहिनाम् ।

शोधनीयाश्चयेकेचित्पूर्वस्वेद्याश्चतेमताः ॥

अर्थ—जो नस्यकर्मके योग्यहै तथा वस्तिकर्मके योग्य तथा विरेचन देनेके योग्य उन सब मनुष्योंके अंगका पसीना प्रथम काठकर फिर नस्यादि उपाय करना चाहिये ॥

स्वेद्याःपूर्वत्रयोपीहभगंदर्यंशंसीतथा ।

आश्मर्यांचातुरोर्जंतुःशमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥

अर्थ—भगंदररोगी, बवासीररोगी और पथरीरोगी इन तीनोंको प्रथम पसीने निकालके फिर शस्त्रकर्म कर रोगको शमन करना चाहिये ॥

पश्चात्स्वेदनीयमनुष्य ।

पश्चात्स्वेद्यागतेशल्येसूढगर्भगदेतथा ।

कालेप्रजाताकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंविनी ॥

अर्थ—जिसस्त्रीके पेटमें गर्भका शल होवे उसका पतन होने उपरांत तथा नौ महीनेके पश्चात् अथवा नौमहीनेके प्रथम प्रसूत होनेसे उसके देहका पसीना निकलवाना चाहिये ॥

स्वेदकर्मयोग्यदेशकाल ।

सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् ॥

अर्थ—ये चारों प्रकारके स्वेद मनुष्यका आहार पचन होनेके अनंतर जिसजगे हवा न आतीहो उसजगे काढने चाहिये ॥

पसीनेकाढनेपरकिसमार्गदोषदूरहोतेहैं ।

स्वेदाद्वातुस्थितादोषाःस्वेदःस्विन्नस्यदेहिनः ॥

द्रवत्वंप्राप्यकोष्ठांतर्गतायांतिविरेकताम् ॥

अर्थ—औषधादिक करके मनुष्यके अंगका पसीना काढनेके पश्चात् उसको तथा बड़े वासनमें तेल भरके उसमें मनुष्यको बैठानेसे उसके वातादिक दोषरसादि सप्तधातुमें रहनेवालेभी कोष्ठके मध्य जानेसे वो दोष पतले होकर गुदाके द्वारा दस्तके साथ निकलते हैं। प्रथम दोष पसीनेके द्वारा नम्रहो कर कोष्ठमें जाते हैं वहांसे दस्तोंके राह बाहर गिरते हैं यह इस श्लोकका तात्पर्य है ॥

स्वेदनमेंविधि ।

स्वेद्यमानशरीरस्यहृदयंशीतलैःस्पृशेत् ।

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥

अर्थ—मनुष्यके देहका पसीना काढनेसे उसयोगकरके पेटके भीतरके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा दस्तोंसे निकलतेहैं तब उसमनुष्यकी छाती में चंदनका लेपकरे जिससे प्रकृति स्वस्थ होय तथा जो मनुष्य तेलमें बैठा हुआ है उस योगसे उसके दोष पतले होकर गुदाके रस्तेसे दस्तोंके साथ निकलनेसे उसके नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतलता करनेके लिये लगाने चाहिये उस ठंडकके करनेसे ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होती है ॥

स्वेदकर्मवर्जितमनुष्य ।

अजीर्णादुर्बलोमेहीक्षितक्षीणपिपासितः ।

अतिसारीरक्तपित्तीपांडुरोगीतथोदरी ॥

मदात्तौर्गर्भिणीचैव न हि स्वेद्याविजानता ।

एतानपिमृदुस्वेदैःस्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको अजीर्णहो तथा दुर्बल मनुष्य तथा जिसको प्रेम-हृहो तथा उरःक्षत करके पीडित तथा जिसको अत्यंत प्यास लगरही हो वो तथा अतिसार, रक्तपित्त, पांडुरोगी, उदररोगी, मदारत ये रोग जिस मनुष्यको होय वो तथा गर्भिणीस्त्री इतने रोगीनका पसीना नहीं काटना चाहिये ये पसीनों काटनेमें अयोग्य हैं यदि इनरोगियोंके पसीना काटनेसेही रोग नष्टहोता दीखे तो हलके उपायसे थोडा पसीना काटना चाहिये ॥

अल्पपसीनेकाटनेयोग्यस्थल ।

मृदुस्वेदं प्रयंजीत तथा हृन्मुष्कट्टिषु ॥

अर्थ—हृदय और अंडकोश तथा नेत्र इनका पसीना काटना होवे तो हलका काट विशेष नहीं ॥

अत्यंतपसीनेनिकलनेकेदोष ।

अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्त्वृष्णाक्लमोभ्रमः ।

पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्रशतैरुपाचरेत् ॥

अर्थ—अंगोंसे बहुत पसीना निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा, तृषा, ग्लानि भ्रम रक्तपित्त ये उपद्रव होतेहैं तथा अंगमें मरोडी उत्पन्न होतीहै इनके शमन करनेको शीतल उपाय करना कि, जिस्से उपद्रव दूरहोवे ॥

उक्तचारप्रकारकेस्वेदोंमेंतापसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ॥

तेषुतापाभिधःस्वेदोवालुकावस्त्रपाणिभिः ।

कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यंप्रजायते ॥

अर्थ—चारप्रकारके पसीनोंमें ताप, इसनामकरके जो पसीनाहै इसको वालू वस्त्र, हाथ, खीपडा, कपड़ेकी गैद और अंगार इनकरके वालुकादिक आदि जिसमें जैसी र शक्ती है तैसा पसीना उत्पन्न होता है ये छःप्रकार कहैहैं इनकी क्रिया कैसे करे उसको कहतेहैं—खैरके अथवा कणखर लकड़ीके धूमरहित जलते हुए कायले करके उसके ऊपर वालूको तपायके उसवालूको अंडके पत्तोंमें धरके उसपत्तेकी पुडिया बनाय उसपुडियासे मनुष्यके अंगों को सेके जिस्से अंगका पसीना निकले यह एक प्रकार है तथा अंगारोंपर अपने हाथ गरम कर रोगीके अंगोंको सेके अथवा रूअड कपड़ेकी गैदसी

वनाय अंगारोंपर गरम करके उसमें से रोगिके अंग सिकावे तथा कपड़ेको गरम करके देहको सेके । अथवा अंगारोंको खीपरेमें भरके उस सुहाते २ खिपरेसे सेक करे ये सबउपाय पसीने निकालनेके कहे इनसे वैद्यको जिसउपायसे पसीने काढनेहो काहे ॥

उष्मसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ।

उष्मास्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिंडेष्टिकादिभिः । प्रतप्तैर-
म्लसिक्तैश्च काये रक्तकवेष्टिते । अथवावातनिर्णाशिद्र-
व्यक्ताथरसादिभिः । उष्णैर्वटंपूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं
निधाय च । विमुद्गचास्यं त्रिखंडा च धातुजां काष्ठवं-
शजाम् । पटंगुलास्यां गोपुच्छां नलीं युज्याद्विहस्तिकाम् ॥
सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् । हस्तिशुंडिकया
नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ पुरुपायाममात्रं वा भूमि-
मुत्कीर्यखादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्धातथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्या-
म्लवारिभिः ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ॥
एवं मापादिभिः स्विन्नैः शयानः स्वेदमाचरेत् ॥

अर्थ—उष्मा इसनाम करके जो स्वेद(पसीना)है उसकी क्रिया कहते हैं । लोहेके गोलाको अथवा ईटको अग्निमें तपायकर उसपर थोडा खट्टा पदार्थ छिड़क कर रोगिको कंबल उढाय उस गोले करके अथवा उस ईटकरके रोगीके देहको सेके, जिसे पसीने निकले यह एकप्रकार कहा। अथवा दशमूलादिक जो वातहरणकर्ता औषधी उनका काठा अथवा उन औषधियोंका रस गरमकर मिट्टीके घड़ेको भर उस घड़ेके मुखको बंदकर उसके एक बान्जूमें छेदकर धातुकी अथवा लकड़ीकी तथा वांसकी नली बनाय उसनलीमें तीन संधी करे तथा उसका मुख छः अंगुल लंबा और चौडा करे। अथवा गौके पुच्छके आकार करे, इस नलीका आकार हाथीकी सूंडके समान होताहै अतएव इस

१ छौंछ, काजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ जानने । २ सालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी, गोखर, वेल्गिरी, अरनी, टेट्टू, पाडर और गभारी, इनकी मूलको दशमूल कहते हैं । ३ उसघड़ेके मुखमें डाटदेकर दहकते हुए ढोलेनपर धरदेव-जिसे उस नलीके रास्ते वाफ अच्छीरितिसे निकले । ४ तांबे, पीतल, लोह आदि धातुकी नली चाहिये ।

को हस्तिशुंडिका नाडी कहते हैं। फिर वायुसे पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ वैद्यारके अंगमें धी अथवा तेल लेपकर उसको रिजाई अथवा कंबल उढाय उस नलीको उसके भीतर करदेवे कि, जिस्ते वाफ लगकर अंगसे पसीना निकले। अथवा मनुष्यके साडेतीन अथवा चारहाय लंबा जमीनमें गड़दा खोद उसमें खैरकी लकड़ी भर आमि जलायके कोलाकरे, फिर शीघ्र कोलान्को बाहर निकाल उसजमीनको दूध अथवा धान्यके पानी अथवा छाँछ तथा कांजीसे छिडककर उस जमीनपर वातहारक औषधोंके पत्ते बिछायकर उसपर रोगीको सुलायके उसके अंगसे पसीने निकाले । इसी प्रकार उट्ट लेकर उनको थोड़ी वाफदे अथकत्रे सिजाय उस तपेद्वर टौरमें बिछाय ऊपर सूती अंडके पत्ते आदि वातहारक औषधोंके पत्ते ढालके उसपर रोगीको सुलाय ऊपरसे कंबल उढाय उसके अंगका पसीना निकलवावे । इसप्रकार उष्मरुंज्ञः पसीनेके लक्षण जानने ॥

उपनाहसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ।

अथोपनाहस्वेद्यं च कुर्याद्वातहरोपधेः ।

प्रदिह्य देह वातार्त्तक्षीरमांसरसान्वितैः ॥

अम्लपिष्टैः सलवणैः सुसोष्णैः स्नेहसंगतैः ॥

लवणैरम्लसंयुतैः॥प्रसारण्यश्वगंधाभ्यां वलाभिर्दशमूलकैः॥
गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभंसमाहृतैः ॥ क्षुण्णैःस्विन्नश्च
वस्त्रेण बद्धैःसंस्वेदयेन्नरम् ॥ महाशाल्वणसंज्ञोययोगःस-
र्वानिलार्तिजित् ॥

अर्थ—ग्राम्यमांस, अनूपमांस, जीवनीयगणकी औषधी, तथा गौकादही, सौवीरं, सञ्जीखार, जवाखार, रेहकाखार, वीरतवादिगणकी औषधी और कुलथी, टडद, गेहूं, अलसी, सौफ, देवदारु, निर्युंठी, कलौजी, अंडकी जड, अंडके बीज, रास्ना, मूली, सैहेजना, छोटीसौफ, पीपल, वनतुलसी, पांचोनि-
मक, अनारदानाप्रसारणी, असगंध, खरेटीकी जड, दशमूलकी दश औषधी और गिलोय, कौचकेबीज ये सब औषध जो मिलसके उनको लेकर कूट थोडागरमकर कपडेमे पोटली बांधकर उससे रोगीका अंग सेके कि, जिस्से सपूर्ण वायुकी पीडा दूरहोवे । इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहतेहै । इसप्रकार उपनाहसज्ञक स्वेद (पसीने) की विधि जाननी ॥

द्रवसज्ञकस्वेदकेलक्षण ।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नद्रव्यकाथेन पूरिते । कटाहे कोष्ठके
वापि सूपविष्टोवगाहयेत् ॥ नाभेःपडंगुलं यावन्मग्नःका-
थम्य धारया । कोष्ठके स्कंधयोःसिक्तस्तिष्ठेत्स्निग्धत-
नुर्रः॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिपास्वेदयेन्नरम्॥एकान्तरे
द्रव्यंतरे वा स्नेहो युक्तोवगाहने ॥ शिरामुखै रोमकूपैर्ध-
मनीभिश्च तर्पयेत् । शरीरेबलमाधत्ते युक्तस्नेहावगाहने॥

१ मुरगा, बकराआदि केमांसको ग्राम्यमांस कहते है । २ चकवा—चववी—चतक जलमुरगा और मछलीआदि जलसंचारा जीवोंके मांसको अनूपमांस कहते है । ३ काकोली क्षीरका कोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, जीवती, मुलहठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी इन दशऔषधाके समुदायको जीवनायगण कहते है । ४ कचे जो अथवा भुने जौओको कूट पानीमे तीनदिन भिगानसे उस पानीको सौवार कहतेहै, इसी प्रकार गेहूका भी सौवीर होता है । ५ सधा, सचर, विड, समुद्र और रेहका निमक इन पांचोंको पचलवण कहते है तथा उपनाहसज्ञक स्वेदका दूसरा भेद महाशाल्वण प्रयोगहै ।

जलसिक्तस्य वर्द्धते यथामूलेङ्गुरास्तरोः । तथा धातु-
विवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्यजायते ॥ नातःपरतरःकश्चि-
दुपायो वातनाशनः । मुहूर्त्तैकं समाभ्य यावत्स्यात्त-
च्चतुष्टयम् । तावत्तदवगाहेतयावदारोग्यनिश्चयः ॥

अर्थ—द्रव या नामका स्वेद उसकी विधि लिखते हैं। दशमूलादि वायु-
हारक औषधका काटा कर रोगीके देहेमें घी अथवा तेल लगाय उसको फ-
टाईमें अथवा तामेके बड़े पात्रमें बैठारके पूर्वोक्त गरमागरम फाटेको अंगपर
और कंधेपर सहतीर धारडाले, इसीप्रकार तेलकी अथवा दूधकी अथवा
घीकी धारडाले परंतु जबतक वह फाटा डाले कि, नाभिके छःअंगुल ऊपर
तक न चढे । पश्चात् मनुष्यको धर्मयुक्त होना चाहिये। इसप्रकार एकर दिनके
अथवा दो २ दिन के अंतरसे करना चाहिये कि जिस्से शिराओंके मुखद्वारा
रोमांचोंके मुखमें होकर तथा नाडीनके द्वारा वो स्नेहादिक पदार्थ शरीरके
भीतर प्रवेश होकर शरीरको तृप्त करके बल उत्पन्न करे। इसमें दृष्टांत है कि, जैसे
वृक्षकी जड़में पानी देनेसे वृक्ष बढता है उसीप्रकार तैलादिकमें बैठनेसे मनु-
ष्यके रसादि सातधातु बढती हैं और वायुका नाश होता है इसउपायकी
अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहीं है यह उपाय पराकाष्ठाका है । एकमुह-
र्त्तसे लेकर चारमुहूर्त्त अर्थात् एकप्रहर होनेपर्यंत तेलके पात्रमें बैठना
चाहिये तथा जबतक आरोग्यता न दीखे तावत्कालपर्यंत यही विधिकरे ॥

स्वेदकी समाप्ति ।

शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ।

दीप्तिग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्भता ॥

अर्थ—अंगकी शरदी और शूल इनकी शांति होनेपर तथा अंगका स्तंभ
तथा जडपना ये दूरहोनेपर एवं अभिप्रदीप्त होनेपर तथा अंगमें मृदु
पना आनेपर रोगीके अंगसे पसीने न निकाले अर्थात् समाप्ति करदेवे ॥

पसीनेनिकालनेके अनंतर उपचार ।

सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिः शनैः ।

भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च विवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके अंगका पसीना फाटाहो उसको तपा अंगमें तेल ल-
गायाहो उसको हलके गरम जलसे स्नान करावे तथा कफकारक पदार्थ

भोजनमें न देवे तथा परिश्रम न करे, इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदमें करना चाहिये । अब आगे वमनकीविधि लिखी जाती है ॥

वमनमेंऋतुप्रधान ।

शरत्काले वसंते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।

वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—शरद् ऋतु, वसंत ऋतु, वर्षाऋतु इनमें मनुष्यको वमन और विरेचन ये कुशल वैद्यको कराने चाहिये [कुशलवैद्यके लिखनेसे यह प्रयोजन है कि, यह वमन विरेचनका देना अत्यंत सावधानीका काम है इससे मूर्ख वैद्यसे वमन विरेचन लेना सर्वथा त्याज्य है] ॥

वमनयोग्यमनुष्य ।

बलवंतं कफव्याप्तं हृष्टासार्तिनिपीडितम् । तथा वम-
नसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ विपदोपे स्तन्य रोगे
मन्देऽथौ श्लीपदेऽर्बुदेः हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥
विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु । अपस्मारज्व-
रोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु
कर्णस्रावे द्विजिह्वके । गलशुंड्यामतीसारं पित्तश्ले-
ष्मगदे तथा ॥ मेदोगदेरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ॥

अर्थ—बलवान् मनुष्य, कफसे व्याप्त, हृष्टाससे पीडित (अर्थात् जिसके मुखसे लारगिरती) हो, तथा जिसको वमनका महावरा हो और धीरचित्त हो इनको वमन करावे । तथा विपदोप, स्तनसंबंधी रोग, मंदापि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयरोगी, कोठी, विसर्परोगी, प्रमेही, अजीर्णा, भ्रमरोगी, विदारिका, अपची रोग, खाँसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, मृगीरोगी, ज्वर, उन्माद रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुंडी, अतीसार, पित्तकफके रोग, मेदोरोग, अरुचि, इनरोगोंमें तथा इसी प्रकारके जो अन्यरोग हैं उनमें वैद्य रोगीको वमन करावे ॥

वमनके अयोग्यमनुष्य ।

न वामनीयस्तिमिरी न शुल्मी नोदरी कृशः । ना

तिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलक्षतातुरः ॥ मदात्तोवा-
लको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः । उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती
च दुश्छर्दिःकेवलानिली ॥ पांडुरोगीकृमिव्याप्तःपठना-
त्स्वरधातकः । एतेप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विप-
पीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकाथप्रपानतः ।

अर्थ—तिमिररोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी तथा कृश, अतिवृद्ध, गर्भि-
णीस्त्री अत्यंतमोटा, उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक,
रूक्ष,क्षुधित,निरूहित कहिये गुदाद्वारा पिचकारी माराहुआ, तथा उदावर्त
रोगी,उर्ध्वरक्ती,तथा जिससे वमन न सही जावे जिसके केवल वादीका रोग
हो पांडुरोगी, कृमिरोगसे व्याप्त,वेदशास्त्रके अत्यंत पढने से जिसका कंठ बैठ-
गयाहो, इतने रोगियोंको वमन (उलटी करानेकी) औषध नहीं देनी चाहिये
यदि ये पूर्वोक्त रोगवाले अजीर्णसे अथवा विपदोष करके कफकरके व्याप्त
होवे तो इनको मुलहदीके अथवा मुहुआकी छालके काठको पिलायकर वमन
करानी चाहिये ॥ वमनअयोग्य ।

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत् ।

अर्थ—सुकुमार (नाजुकमनुष्य) कृशं, बालक वृद्ध डरपोक इनम-
नुष्योंको वमनकी औषधी नदेनी चाहिये ॥

रदकरनेमेंविहितपदार्थ ।

पीत्वा यवागूमाकंठं क्षरितक्रदधीनि च । असाभ्यैः
श्रेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्रियदेहिनः ॥ स्निग्धास्विन्नाय
वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्तते ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उलटी करानीहो उसको प्रथमपेटभरके यवागू
अथवा दूध,छांछ,दही,ये पेटभरके पिवावे,तथा प्रकृतिको जो न भाये वो
पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर मनुष्यकेदोषोंको उखाड़े,जिस्से

१ रक्तपित्तो रोष करते जिनके ऊपर मुसादिद्वारा रुधिरगिर उसको उखाड़नी जा-
नना । २ कृश और बालक तथा वृद्ध—इनको वमन न करावे इसमरार प्रथम यह
आपदे परंतु निश्चय करनेके बान्ते यहाँपर फिर कहाई । ३ नारलना नूरार उ-
समें छः भाग पानी मिलाये और, पतलीकरे इसको यवागू कहते हैं ।

मनुष्य अञ्छीतरह उलटीकरे तथा जिसमनुष्यने घृतपान करा है उसमनुष्यको एकदिनके पश्चात् वमनकरावे तो अञ्छीतरह वमन होवे ॥

वमनमेंहितकारीपदार्थ ।

वमनेषु च सर्वेषु सैधवं मधु वा हितम् ।

बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥

अर्थ—जितने वमनके प्रयोगहैं उनमें सैधानिमक अथवा शहत इनका मेलन कराना चाहिये तो हितकारी होताहै।अथवा बीभत्स वमनदेवे और विरेचन इस्से विपरीतदे अर्थात् दस्त देना होयतो घीके बिना देवे ॥

वमनमेंकाढेकाप्रमाण ।

क्वाथद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वाजलाढके ।

अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत् ॥

अर्थ—काढेकी औषधी १कुडव प्रमाण लेकर कूट उसमें एक आढक प्रमाण पानी डाले जब औटाकरआधारहे तबतक औटावे फिर उतार छानके पिवावे वमनमें काढापीनेका प्रमाण ।

क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठामात्रा प्रकीर्तिता ।

मध्यमापण्डिताप्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको वमनकराना होय उसको नौप्रस्थ काढा पिलाना बडीमात्राहै तथा छःप्रस्थ काढापीना मध्यममात्रा और तीनप्रस्थ काढा पीना हलकी मात्राजाननी ॥

वमनविषयमें कल्कादिकोंका प्रमाण ।

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपला श्रेष्ठमात्रया ।

मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥

अर्थ—कल्क, चूर्ण और अवलेहये तीन पल मनुष्यको देनेसे बडी मात्रा जाननी तथा दोपल देनेसे मध्यममात्रा और एक एक पलदेनेसे हीन मात्रा कहलातीहै । इसवास्ते वैद्यको यथायोग्य मात्रा देनी चाहिये ॥

वमनकेउत्तममध्यमकानिष्ठवेग ।

वमने चापि वेगाःस्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः ।

१ वमनकी औषधमें घी डालके वमनकरानेको बीभत्सवमन कहते है ।

पड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरामताः ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकी औषध देनेसे सातवेग पर्यंत संपूर्ण दोष पडके आठवें वेगमें पित्तपडनेसे उत्तमवेग जानना । उसी प्रकार पांच वेगपर्यंत दोष पडकर छठे वेगमें पित्तपडनेसे मध्यमवेग जानना । तथा तीन वेग पर्यंत दोष निकलके चौथे वेगमें पित्तपडे तो कनिष्ठवेग जानना । जैदफे रद्द होने उतने वेग जानने अर्थात् रद्दहोनेको ही वेग कहते हैं ॥

वमन विरेचन आदिमें प्रस्थका प्रमाण ।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ।

सार्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्थ—वमनहोनेमें तथा दस्त होनेके विषयमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेना कहा है तहां १३ ॥ साढे तेरह पलका प्रस्थ लेना तथा फस्तखोलनेमें एक प्रस्थ रुधिर कढाना जहाँ लिखा है वहाँ परभी साढे तेरह पलका प्रस्थ जानना ॥

कफपित्त और वातहारक औषधी ।

कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ।

सस्वादुलवणाम्लोष्णैःसंसृष्टं वायुना कफम् ॥

अर्थ—तीक्ष्ण औषध करके कफको जीते तथा मधुर और शीतल औषधों करके पित्तको जीते । एवं मधुर और खार तथा अम्ल और गरम इनकरके वायुसे मिले कफको जीते ॥

वातादिदोषोकेनिकालनेकोपृथक् २ औषधी ।

कृष्णराठफलैःसिंधुकफेकोष्णजलैःपिबेत् ।

पटोलवासानिवैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत् ॥

संश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् ।

अजीर्णं कोष्णपानीयं सिंधुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥

अर्थ—कफदोषमें पीपल और भैरवफल तथा संधानिमक इन सबके चूर्णको गरम पानीके साथ पीवे तो वमनके साथ कफ गिरे । तथा पित्तके दोषमें पटोलपत्र और अदसा तथा कटुपेनीमके पत्ते इनका चूर्णपर शीतलजल डालके पीवे तो उलटीके साथ पित्त निकले । एष कफवायुकी पीडामें भैरवफलका चूर्ण दूधमें मिलायके पीवे तो उलटीके साथ मनुष्यके कफ वायु निकल

कर पीडा दूरहो। तथा अजीर्णमें गरमजलमें सेंधानिमक डालके पीवे तो उलटी होनेसे मनुष्यका अजीर्ण दूर हो ॥

घमनकरतेसमयबाह्योपचार ।

वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासनेस्थितम् ।

कंठमेरंडनालेन स्पृशंतं वामयेद्भिपक् ॥

ललाटं वमतः पुंसः पाश्वो द्वौ च प्रबोधयेत् ॥

अर्थ—रोगीको वमन करनेकी औपध देकर पृथ्वीमें घोंदू टेककरके बराबर ऊंचे आसनपर चाहिये । अंडके पत्तेकी लंबी वारीक नाल लेकर मुखमें डालके हलके हाथसे धीरे २ कंठको स्पर्शकरे तो उसीसमय उलटी आवे इसप्रकार आगे पीछे उसको फिरायके वेद्य रोगीको उलटी करावे। तथा उस उलटी करनेवालेके कपालके दोनों भागोंको धीरे धीरे हलके हाथसे एक मनुष्य सिराता जावे ॥

दुष्ट वमन होनेके उपद्रव ।

प्रसेको हृद्ग्रहःकोठकंडुर्दुश्छादिताद्भवेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकी औपध देनेसे यदि उससे कोई विकार होय तो उसके मुखसे लारगिरे तथा हृदयमें पीडाहोवे तथा देहमें खुजली होती है ॥

अतिवमनहोनेके उपद्रव ।

अतिवांते भवेत्तृष्णा हिक्रोद्गारोविसंज्ञिता ।

जिह्वा निःसर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः ॥

रक्तश्छादिष्ठीवनं च कंठे पीडा च जायते ॥

अर्थ—मनुष्यके अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत प्यासलगे, हिचकी, टफार आवे और अंग जडहोवे तथा संज्ञाका नाशहो, जीभ बाहर निकल आवे, नेत्र जहाँके तहां ठैरजावें, वा चंचलहों तथा भ्रम होय, ठोडीका स्तंभ होय अथवा पीडाहो मुखकेरास्ते रुविर गिरे, बारंबार धूके और फंठमें पीडा होय ये लक्षण अत्यंत घमनके हैं ॥

अत्यंतवमनकायत्न ।

वमनस्यातियोगेन मृदुकुर्याद्विरेचनम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके अत्यंत उलटी होतीहो उसके बंद करनेकी मृदु जुलाब देवे ॥

उलटी करते २ जीभ भीतरचली गईहो उसका यत्न ।

वमनान्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः ।

स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥

फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽप्रतो नराः ॥

अर्थ—यदि उलटी करते २ मनुष्यकी जीभ भीतर चलीगई हो उसके मनको प्रसन्नकर्ता ऐसे खट्टे, तीखे, मिष्ट और खारी पदार्थ भातके साथ खानेको देवे तथा घृत और दूध भातके साथ देवे तथा उसरोगीके आगे दूसरा मनुष्य बैठकर नाँव अथवा नारंगी चूसकर खाय, ऐसा करनेसे मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आपके प्रकृतिस्य होयहै ॥

उलटी करते २ जीभ बाहरनिकलआईहो उसका यत्न ।

निसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कं लिप्त्वा प्रवेशयेत् ॥

अर्थ—यदि उलटी करते २ जीभ बाहर निकल आईहोवे तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभमें लेपकर वैद्य धीरे भीतर करदेवे वमनसेनेत्रोंमें विकारहोनेका यत्न ।

व्यावृत्ताक्षिण घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैःशनैः ॥

अर्थ—उलटी करते २ नेत्र फटजावे तो उसको वैद्य हाथोंमें धी चुपडकर नेत्रोंको सिरायकर ठिकानेपर स्थितकरे ॥

वमन करते २ ठोडी स्तंभित होगईहो उसका उपचार ।

हनुमोक्षे स्मृतःस्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत् ॥

अर्थ—वमन करते करते ठोडी स्तंभित होगई होवे तो उसके अंगका पसीना निकाले कफवायुनाशक नाकमें औषध डाले अर्थात् नस्य देय तो ठोडीका स्तंभितहोना जातारहे ॥

वमन करते २ रद्दमें रुधिर आनेलगे उसका उपचार ।

रक्तपित्तविधानेन रक्तश्छादिमुपाचरेत् ॥

अर्थ—यदि रद्द करते २ उलटीमें रुधिर गिरने लगे तो जो उपाय रक्त पित्तपर कहाहै वो उपाय करके रुधिरकी उलटीको दूरकरे ॥

अत्यंत वमनके होनेसे प्यासलगे उसका यत्न ।

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचन्दनवारिभिः ।

मथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥

शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्याः पीडाच्छर्दिसमुद्भवाः ॥

अर्थ—आंवले, रसोत, खस, चावलकी खील, लालचंदन, नेत्रवाला इन छः औषधोंका मथकरके उसमें घी और शहत तथा मिश्री डालके पिवादे तो उलटी करनेसे जो तृष्णादिक उपद्रव होतेहैं वो सब दूर होय ॥

उत्तमवमनहोनेकेलक्षण ।

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्नित्वंचलाघवम् ।

कफपित्तविनाशश्चसम्यग्वांतस्यचेष्टितम् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यको उत्तम उलटी होगईहो उसके लक्षण हृदय, कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोषहैं वो दूर होकर उसकी शुद्धिहो तथा अग्नि प्रदीप्त और अंग हलके होय तथा कफदोष और पित्तदोष ये दूर हों ॥

उत्तमवमनहोनेकेपश्चात् पथ्य ।

ततोपराह्णे दीप्ताग्निमुद्गपष्टिकशालिभिः ॥

हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूपं च भोजयेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको उत्तम उलटी होनेके अनन्तर तीसरे प्रहरमें अग्नि प्रदीप्त होवे ऐसा मूंग और सांठीचावल इनको मनके प्रियकारी ऐसे जंगली जीव हरिणादिकोंके मांसरसके यूपके साथ भोजन करे ॥

उत्तमवमनकाफल ।

तन्द्रा निद्रास्यदौर्गन्ध्यकण्डूश्च ग्रहणी विषम् ।

सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम प्रकारकी उलटी होगईहो उसके नेत्रोंमें तन्द्रा और निद्रा तथा मुखमें दुर्गंधी और खुजली तथा संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् नहीं होवे ॥

१ दाहलदीके काठमे बराबर बकरीका दूध मिलापके आटावे बष गाढा होजाये सुलापके जमापले उसको रसाग्न कहते है । २ मूंग और सांठीचावल एकपल लेंवे उसमें १ प्रस्थ पानीडालके आटावे कुछ गाढा कर पेजके समानकरे उसको यूप कहते है इसमकार हरिणादिकके मांसमे पानीडालके सिजावे पेजके समान करे उसको मांस रस कहतेहै तथा वोभी यूपहै ।

वमनकर्ममैनिषिद्धपदार्थ ।

अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ।

स्नेहाभ्यंगं प्रकोपञ्च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ।

अर्थ—भारीपदार्थ, शीतल जल, परिश्रम और मैथुन, देहमें तैलकी मालिश करना और क्रोधकरना इत्यादिक विषय जिसदिन वमनको औपध लेंवे उस दिन वर्जितहैं ॥

अथ रेचनाधिकारः ।

स्निग्धस्विन्नस्यवांतस्य दद्यात्सम्यक् विरेचनम् ।

अवांतस्य त्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥

मंदाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ।

अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत् ॥

अर्थ—अब वमनके अनंतर विरेचन (जुलाब) की विधि कहते हैं । प्रथम मनुष्यकी घृतादिक पिलायके स्निग्धकरे फिर उसको स्विन्नकरे अर्थात् उसके पसीने निकाले, फिर वमन करावे, वमनके अनंतर उत्तम प्रकार जुलाबकी दवाई देकर दस्तकरावे यदि बिना रद्दके कराये जो वैद्य दस्तकराता है तो उस रोगीका कफ अधोभागमें (नीचे) जायकर ग्रहणी (छठी पित्तधरा और अग्निधरा जो कला उसका) आच्छादन करेहै, कि, जिस्से अग्निमांद्य तथा गौरव कहिये अंगोंका भारीपना और प्रवाहिका रोग (आतिसारका भेद) इन रोगोंको उत्पन्न करेहै अथवा अधस्रस्त (नचिगण्डुए) कफ और आमको पाचन (शुष्कपरंडमूलादिक) करके (पाचयेत्) अर्थात् पाचावे ॥

हमको इस स्थलपर इतना लिखेबिना नहीं रहाजाता कि, हकीम लोग कहते हैं कि, हमारे यहां जैसा जुलाब देनेका उत्तम कायदा है ऐसा हिंदी वैद्यकमें स्वाव (स्वप्न)मेंभी नहीं मिलनेका, जैसा हमारे जुलाबसे विमारकी तबियत प्रसन्न रहती है और साफ होतीहै ऐसा वैद्य कभी नहीं करसकेगा, इसका कारण यही है कि, हमलोग प्रथम मरीजको

१ वमनके अनंतर दस्त क्यों करावे ऐसी शंका होनेसे कहते हैं कि, भेड, चरक, सुश्रुत और यागभट इत्यादिक ग्रंथोंका यह अभिप्रायहै कि, वमनदेकर छः दिनके पश्चात् तीनदिन स्निग्ध करे फिर तीनदिन अंगनेसे पसीने निकाले, फिर तीनदिन हलका भोजन देकर सोलहवें दिन रेचन (दस्त) करावे यह ग्रंथकारोंका अभिप्राय श्लेत्तमे "सम्यक्" पद धरनेसे जानाजाताहै ।

मुंजिश देकर मलको फुलाय मुलायम कर फिर दस्त कराते हैं तो बहुत जल्द और बहुत सफाईके साथ दस्त होते हैं और विमारभी खुशी रहता है ॥

परंतु इस तरह कहनेवाले हकीमोंको हम निरे वैशाखनंदन ही जानें हैं खैर मुसलमान हकीम कहें तो कहे, परंतु दो दिनसे पैर अडानेवाले कि, जिन्होंने अच्छीरीतिसे हिकमतके भी पूरे २ ग्रंथ नहीं देखे, फिर हमारे ग्रंथ देखना तो उनको मानो एक बड़ाभारी समुद्रका तैरना है। ऐसे हमारेही हिंदू हकीम हमारी और हमारे शाखोंकी निंदा करते हैं तो हमको उनकी बुद्धिपर अत्यंत शोक होता है कि, देखो जैसे कोई बालक अपने घरमें अमूल्य पदार्थ धरेहुएओंको अंधकारवश न दीखनेसे तुच्छ मोलके दूसरोंके पदार्थ लेकर अपने मनमें यह विचार करता है कि, ऐसे पदार्थ अमूल्य हमने नहीं देखे और उनकी वो अत्यंत इज्जत करता है। यदि उसका पिता आदि कोई बड़ा मनुष्य उसको दीपकका उजला दिखाकर घरके धरेहुए पदार्थोंको दिखलावे और उनका गुणभी बतलावे तो उस लडकेको कितनी खुशीहो और फिर वो दूसरेकी तुच्छ वस्तुओंकी तरफ देखेभी नहीं। क्यों देखे जिसके हाथमें चितामणी आगई वो कौड़ी पैसोंकी तरफ क्यों देखेगा ॥

इसी दृष्टांतके अनुसार हमारे हिंदूभाई जो हकीमी विद्याके जालमें पडके अपनी अमोल वैद्यविद्याका प्रभाव न जानके इसकी निंदा करते हैं वो उक्त बालकके बतौर हैं; यदि उनको उनके घरकी धरीहुई वस्तु दिखलाई जाय तो अवश्य फिर जो दुराग्रही और जाहिल नहीं हैं वो इसकी प्रशंसा करते २ थकजावेंगे और उनको यह निश्चय होजावेगा कि, हकीमी और डाक्टरी आदि विद्या हमारी ही उच्छिष्ट (जूठन) है ॥

उन भोलेभाले भाइयोंको हम इसजगे हिंदी जुलाबकी विधि दिखला कर कहते हैं कि, हमारे हिन्दी वैद्यकका कायदा ठीकहै कि, अन्य मुल्कके हकीमों का कायदा ? ॥

अब आप देखिये कि, हमारे पृथक् जिसको जुलाब लेनाहो वो प्रथम घृतआदिको पीवे कि, जिस्से देहकी रंग रंग और नाडीआदि कि जिन्में मवाद भराहै वो अत्यंत चिकनी होजावें। बाद इसके उसरोगीके पसीने निकाले, पसीने निकालनेका यही कारणहै कि, प्रथम घीके पीनेसे उसका देह चिकना होगया फिर जो स्वेदन करा तो जहांपर मवाद चिकट रहा था वो पसीनेके निकालतेही तत्काल सबदेहसे अलग होगया जैसा स्नेहन

(हैजा) कोठ कर्णरोग, नासारोग, मस्तकरोग, मुखरोग, शुदारोगी, लिंगमें उपदंशादिकरोग, कलेजेकारोगी, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, सोमरोग, क्षारजन्यविकार, वातरोग, शूलरोग और मूत्राघातरोग, इतने रोगोंसे व्याप्त मनुष्य दस्तकराने योग्य है अर्थात् इतने रोगवाले मनुष्योंको दस्तकराना चाहिये ।
दस्तदेनानिषेध ।

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः । शान्तस्तृपा-
र्तःस्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ नवप्रसूतानारी च मंदा-
ग्निश्च मदात्ययी ॥ शल्यार्दितश्च रूक्षश्च नविरेच्या विजानता ॥

अर्थ—बालक, अतिवृद्ध, अतिस्निग्धमनुष्य, उरःक्षतकरके क्षीणमनुष्य, भयकरके युक्त, श्रमित (जो मेहनत करनेसे थका) है, प्याससे बचराया हुआ, अत्यंत मोटा मनुष्य, गर्भिणी स्त्री, नवीनज्वरकरके पीडित, नवप्रसूता स्त्री, मंदाग्निवाला मनुष्य, मदात्यय रोगी, शल्यकरके पीडित तथा रूक्ष (निस्तेज) मनुष्य इनको चतुर वैद्य दस्त न करावे [जो करावे तो वो मूर्ख जानना]

मृदु मध्य और क्रूरकोष्ठ ।

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः । बहुवातः क्रूर-
कोष्ठो दुर्विरेच्यः सकथ्यते ॥ मृद्वी मात्रा मृदुकोष्ठे मध्यकोष्ठे
च मध्यमा । क्रूरे तीक्ष्णामता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका कोठा अत्यंत पित्तकरके व्याप्त है वो मनुष्य मृदुकोष्ठ (नरमकोठेवाला) जानना तथा जिसके कोठेमें अत्यंत कफहोवे वो मध्यमकोष्ठका जानना तथा जिसके कोठेमें अत्यंत वायुहोवे वो मनुष्य क्रूर (कठिन) कोठेका जानना । यह क्रूरकोठेवाला दस्त करानेमें दुखदाई है [अर्थात् इसको फरडीसेभी फरडी दवादेनेपरभी दस्त नहीं होते] और जिसका नरमकोठा है उसको मृदु (नरम) औषधकरके मृदु मात्रा देवे तथा जिसका कोठा मध्यम है उसको मध्यम औषध करके मध्यम मात्रा देनी । तथा जिसका कोठा क्रूर है उसको तीक्ष्ण औषध करके तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये । वो औषध आगेके श्लोकमें पहले हैं ॥

१ देखो हैजामें दस्त कराना स्पष्ट लिखा है, परन्तु यह लोकविरुद्ध होनेसे वैद्यको धर्जित है ।
२ तथा मंदाग्निवालेको भी वैद्य दस्त न करावे कारण कि, रईसकी जो जठराग्नि है, वोभी दस्त करानेमें क्षाति होगर्वा है । ३ चाच, काटा, सुई, नस, इत्यादिक शरीरमें रहनेसे जो दुःखी होता है उसे शल्यार्दित जानना ।

मृदुमध्यमादिकोष्ठोमें मृदुमध्यमादिक औषध ।
 मृदुद्राक्षापयश्चुतैरपिविरेच्यते ॥ मध्यकस्त्रिवृत्ताति
 त्ताराजवृक्षैर्विरेच्यते ॥ क्रुरःस्नुक्पयसाहेमक्षीरीदंती
 फलादिभिः ॥

अर्थ—जिसका नरम कोठाहै उसको कालीदाख और दूध अंडीके तेलसेही दस्त होतेहैं और जिसका मध्यम कोठाहै उनको निसोथ, कुटकी और अमलतासका गूदा इन तीन औषधोंकरके दस्तहोतेहैं अतएव यही औषध देवे । तथा जिसका क्रूरकोठाहै उसको धूहरका दूध, हेमक्षीरी (चौक) जमालगोटा, आदि शब्दसे जलफ इन्द्रायणकी जड सनाय आदि इन करके दस्त करावे, तो दस्तहोवे, परंतु वैद्यकी उचितहै कि, इसमें विपरीत न करे अर्थात् मृदुकोठेवालेको क्रूरकोठेकी औषध नदेय और क्रूरकोठेवालेको नम्रकोठेकी न देवे । दस्तोंकीहीनोत्तमादिमात्रा ।

मात्रोत्तमाविरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतिका ।

वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥

अर्थ—दस्तके वेग ३० होकर अंतके दस्तमें कफ गिरेतो उत्तम मात्रा जाननी तथा दस्तके २० वेगहोकर कफ निकलेतो मध्यम और दशवेग होनेके उपरांत यदि कफ गिरने लगेतो हीन मात्रा जाननी । यदि दस्त चाहिये जितने होंवें, परंतु जबतक कफ नहीं निकले तबतक जुलाव उत्तम नहीं कहलाता, आँव और कफके निकलनेपरही जुलावकी तारीफहै।

दस्तोंमेंकाढेआदिकीमात्राकाप्रमाण ।

द्विपलं श्रेष्ठमारुघ्यातं मध्यमं च पलं भवेत् ।

पलाद्धं च कपायाणां कनीयस्तु विरेचने ॥

अर्थ—दस्तहोनेमें दोपल काढादेनेसे उत्तम दस्त होतेहैं और एकपल देनेसे दस्त मध्यमहोते हैं तथा अर्द्धपल (दोतोळे) देनेसे दस्त कनिष्ठ होते हैं ॥

१ औंज ये नाभिके चारों तरफ लिपटी है और ऊपरसे बडाभारी मलका लपेटा लगाहुआ है जब यह प्राणी दस्तकी दवाई लेताहै तो ऊपरके मलके लपेटेमेंसे थोडाबहुतमल निकलताहै, परंतु जब आँव निकलनेकी होती है तब इसप्राणीके नाभिके चारोंतरफ थोडा बहुत मरोडा होने लगता है उस समय जानना कि, अब आम निकलेगी ।

दस्तोमेंकल्कादिकोंकाप्रमाण ।

कल्कमोदकचूर्णानां कर्षमध्वाज्यलेहतः ।

कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ॥

अर्थ—कल्क, -मोदक (लड्डू) और चूर्ण ये प्रत्येक सहत और घीमें मिलायके, कर्ष १ दस्तहोनेके अर्थ देवे अथवा अवस्था और रोग इनका तारतम्य विचारके दोकर्ष अथवा पलमात्र देने चाहिये ॥

वातपित्तकफमें औषधी ।

पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्वाथादिभिःपिवेत्।त्रिफलाक्वा-
थगोमूत्रैःपिवेद्योषं कफार्दितः ॥ त्रिवृत्सैधवशुंठीनां

चूर्णमम्लैःपिवेन्नरः।वातार्दितो विरेकाय जांगलानारसेन च ॥

अर्थ—पित्तकी अधिकतामें निसोयका चूर्ण कर दाखके काठमें मिलायके देवे, आदि शब्दकरके गुलकंद, गुलाबके फूल, सोंफ, सनाय इत्यादिकके काठसे देवे और कफके प्रकोप होनेसे त्रिफलाका काठा और गोमूत्र दोनोंको मिलाय उसमें सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण डालके देवे । तथा जो मनुष्य वायुके कोपसे पीडितहो उसको निसोय, सेंधानिमक और सोंठ इनका चूर्णकर नींबूके रससे देना चाहिये । अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ देवे तो दस्तहोय ॥

अन्यऔषधकरकेदस्तोंकाविधान ।

एरंडतैलं त्रिफला क्वाथेन द्विगुणेन च ।

युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा नाचिरेण विरिच्यते ॥

अर्थ—अंडीके तैलसे दूना त्रिफलेका काठा मिलाय दोनोंको एककरके पीवे अथवा उस अंडीके तैलको दूधमें मिलायके पीवेतो बहुत जल्दी दस्तहोवे ॥

ऋतुभेदकरकेदस्तकीविधि ।

त्रिवृतांकौटवीजं च पिप्पली विश्वभेषजम् ।

समृद्धीका रससौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोय, इन्द्रजीं, पीपल, सोंठ, दाखका रस और सहत इन औषधोंको दस्त होनेके वास्ते वर्षाकालमें देना चाहिये ॥

शरत्कालमेंविरेचन ।

त्रिवृद्धुरालभा मुस्ता शर्करादिव्यचंदनम् ।

द्राक्षांबुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये ॥

अर्थ-निसोय, धमासा, नागरमोथा, शकर, उत्तम सपेद चंदन और मुलहदी इनका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलाय शरदू कालमें पीवे, तो इस्से दस्तहोवे । ये दस्त शीतलहैं ऐसा जानना चाहिये ॥

हेमंतऋतुमेंविरेचन ।

त्रिवृतां चित्रकं पाठामजार्जासरलां वचाम् ।

हेमक्षीरी च हेमंते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत् ॥

अर्थ-निसोय, चित्रक, पाठकी जड़, जीरा, देवदारु, वच औरचोक. अथवा पीलेदूधका धूर इनका चूर्णकर गरमजलसे हेमंतऋतु (अगहन और पौषमास) में लेवे तो दस्तहोय ॥

शिशिर और वसंतमेंविरेचन ।

पिप्पली नागरं सिंधु इयामात्रिवृतया सह ।

लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसंते च विरेचनम् ॥

अर्थ-पीपर, सोंठ, संधानिमक, विधायरा और निसोय इन औष-
धोंका चूर्णकर सहतमें मिलायके शिशिरऋतु और वसंतऋतुमें लेवे तो इस्से
दस्त होय ॥

ग्रीष्मऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृताशर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥

अर्थ-निसोयका चूर्णकर उसमें मिश्री मिलायके दस्तहोनेके वास्ते
ग्रीष्म (गरमीकी) ऋतुमें सेवन करे तो दस्तहोय ॥

सुखसे दस्तहोनेके लिये अभयादि मोदक ।

अभया मरिचं शुंठी विडंगामलकानिच । पिप्पली पिप्प-
लीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च ॥ एतानि समभागानि दं-
ती च द्विगुणा भवेत् । त्रिवृदष्टगुणाज्ञेया पङ्गुणा चात्र
शर्करा ॥ मधुना मोदकं कृत्वा कर्पमात्रप्रमाणतः । ए-
कैकं भक्षयेत्प्रातःशीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ तावद्विरिच्यते
जंतुर्यावदुष्णं न सेव्यते ॥ पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यत्र-

णं सदा ॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥ विदा-
हप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् ॥ वातरोगं तथा
ध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीं।पृष्ठपाश्वोरुजघनकट्यूद-
ररुजं जयेत् ॥ सततं शीलनादेप पलितानिविनाशयेत् ।
अभयामोदकोह्येतद्रसायनवरास्मृता ॥

अर्थ—हरड, कालीमिरच, सोंठ, वायविडंग, आवले, पीपर पीपरा-
मूल, दालचीनी, पत्रज और नागरमोथा ये दश औषध समान भागले,
तथा दंतीकी जड तीनभागले, निसोथ आठभाग, मिश्री छःभाग इस
प्रमाण सब औषधोंके भागलेकर सबका चूर्णकर सहत डाल एकएक
तौलेकी गोली बनावे, इसमेंसे एकगोली प्रातःकाल दस्तहोनेके अर्थ
भक्षणकरे ऊपरसे थोड़ा शीतलजल पीवे और जबतक दस्तहोवे तब
तक गरम पदार्थोंका सेवन न करे तथा पान और भोजन तथा विहार
कहिये परिश्रमादिक इनको सदैव नियमित (परमाणका) करे कि,
जिस्से विषमज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खांसी, भगंदर, कुष्ठ, गुल्मरोग,
बवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, दाह, तिष्ठो, प्रमेह, राजायक्ष्मा,
नेत्ररोग, वातरोग, पेटकाफूलना, मूत्रकृच्छ्र, पयरीरोग और पीठ पस-
वाड़े-कमर-ठरु-जाँय-उदर की पीडा इन सबरोगोंको दूरकरे । इस मोद-
कको अभयादिमोदक कहते है । यह अभयादि मोदक निरंतर सेवन
करनेसे पलित (सपेदवालोंका होना) दूर होय और कालेवालहो यह अभ-
यादि मोदक उत्तम रसायनरूपहै ॥

दस्तोंकोसहायकरनेवालेपदार्थ ।

पीत्वा विरेचनं शीतजलैःसंसिच्य चक्षुषी ।

सुगंधं किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेन्नरः ॥

अर्थ—मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उसके नेत्रोंमें शीतल ज-
लसे छिडके और सुगंधित वस्तु (अंतर आदि अर्गजा आदि) सुंधावे
तथा बीडा चबावे इत्यादि विधिक करनेसे उत्तम प्रकारके दस्तहोते है ॥

दस्तहोनेपर रहनेकेनियम ।

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्ततः ।

शीतांबु न स्पृशेत्कापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ॥

अर्थ-दस्त होनेके अनंतर हवामे न बैठे, मल मूत्रका जब २ वेग आवे उसी वक्त त्यागे रोके नहीं, जबतक दस्तहोय तबतक सोवे नहीं [जुलावमें किसी २ को निद्रा अधिक आतीहै] शीतलजलका स्पर्श करे नहीं । दस्तोंमें गरमजल बीच २ में पीतारहे ऐसा करनेसे उत्तम दस्त होतेहैं ॥

दस्तोंमेंनिकलनेवाली वस्तु ।

बलासौषधपित्तानि वायुर्वाते यथा ब्रजेत् ।

रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो ब्रजेत् ॥

अर्थ-वमनकी औषध लेनेसे कफ तथा जो औषध लीनी है वो एवं पित्त और वायु ये पदार्थ जैसे वमनके साथ बाहर गिरते है। उसी प्रकार दस्तकी औषध लेनेसे मल-पित्त और जो औषध लीनी है वो एवं कफ ये पदार्थ गुदाके द्वारा बाहर गिरते हैं ॥

दुष्टविरेचनकेअवगुण ।

दुर्विरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता । पुरीष
वातसंगश्च कंडुमंडलगौरवाः । विदाहो रुचिराध्मानं भ्रम-
च्छर्दिश्च जायते ।

अर्थ-उत्तम दस्त न होनेसे इस प्राणीकी नाभिमें स्तब्धता, कूखमें शूल, मल और अधोवायु इनकी अपवृत्ति, शरीरमें खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्नहो तथा अंगोका जडपना, दाह, अरुचि, पेटका फूलना, भ्रम और वमन ये उपद्रव होते है ॥

जिसकेउत्तमदस्तनहुएहोउसकायत्न ।

तं पुनःपाचनैःस्नेहैःपक्वासंस्नेह्यरेचयेत् ।

तेनास्योपद्रवायांति दीप्तोऽग्निर्लघुताभवेत् ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी उत्तम जुलाव न हुआहो उसे आरग्वधादि पाचन काढा देकर आमकी पचन करावे, फिर उसकी स्नेहपान (घृत-पिलायके) उसके कोठेकी चिकना करके फिर दस्त करावे । ऐसा करनेसे संपूर्ण उपद्रव दूरहोकर जठरामि प्रदीप्तहोय और अंग हलका होयहै ॥

अत्यंतदस्तहोनेके उपद्रव ।

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छांशो गुदस्य च ।

शूलं कफातियोगःस्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥

मेदोनिभं जलाभासं रक्तंचापि विरिच्यते ॥

अर्थ—मनुष्यको बहुत दस्त होनेसे मूच्छा-गुदा (कांचका) निकल आना और गुदामें पीडा-उपद्रव होते हैं । तथा कफ अत्यंतगिरे और मांस धुले हुए पानीके समान तथा मद्यके समान अथवा चर्बीके समान तथा जलके समान गुदाके द्वारा जल और रुधिरभी गिरे हैं ॥

अत्यंतदस्तोंकाउपाय ।

तस्य शीतांबुभिःसिक्तं शरीरं तंदुलांबुभिः ।

मधुमिश्रैस्तथाशीतैःकारयेद्धमनं मृदु ॥

अर्थ—दस्त अत्यंत होनेसे मनुष्यके शरीरको शीतल जलकी वारसे भिगोवे तथा चावलके धोवनके जलमें सहत मिलायके पिवावे, तथा नरम वमन करावे तो ऐसा करनेसे अत्यंत दस्तोंकी शान्ति होय ॥

दस्तबदहोनेकाउपाय ।

• सहकारत्वचःकल्को दध्नासौवीरकेन वा ।

पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ॥

अर्थ—आमकी छालकी गौकी छाछमें अथवा सौधीरमें पीस कल्ककर नाभीके ऊपर लेपकरे तो अत्यंत दस्तहोना बंदहोय ॥

अजाक्षीरं पिबेद्वापि वैकिरंहारिणं तथा।शालिभिःपष्टिकैः

स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ शीतैः संग्राहिभिर्दिव्यैः

कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥

अर्थ—दस्त बंद होनेवास्ते बकरीका दूध पिवावे । अथवा विष्किर पक्षी

१ कच्चे जौ अथवा मुनेज्योंको रूट उसमें पाना डालने उस पानका मुख बंदकर तीनदिन घण रहनेदे तो सौंधार बनकर तप्यारहो इसीप्रकार गेटूका भी बनापलेना ।

टीकाकाराने दस्त बंद करनेका विषय होनेके कारण, सौंधार शब्दपरक वाजिलिना ऐसा कहाहै । उसकाजी बनानेकाविधि इस प्रकार है कि, एकमिट्टीका पात्रलापने उसमें भीतर सरसोंका तेल जुपहदेवे फिर उसमें निर्मल जल भरने राई, जीरा, सैधानिगर, हींग, साठ, हलदा, इन छ औषधोंका चूर्ण तथा भातसहित पैन, उलूकाकाकाडा और थोड़े वासक पत्ते ये सब वस्तु उसपात्रमें डाले तथा घीन तले हुये टहदक बड दम पात्र उसमें डाले, उसका मुख बंदकर तीनदिन घण रहाने ज' उसमें सटाईवी पास आने लगे तब जानेकी नाजी बनकर तयार होगई ।

लवाआदिका मांसरस तथा हरिणका मांसरस सेवन करे तथा सांठी वा शाली चावलोंका भात करके थोड़ा खाय अथवा मसूरको सिजायके थोड़ी खाय और भी अनार आदिशब्दकरके शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थ सेवनकरे कि, जिस्से दस्त बंदहोवे ॥

उत्तमजुलाबहोनेकेलक्षण ।

लाघवे मनसस्तुष्ट्या मनुलोमगतेनिले ।

सुविरक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥

अर्थ—उत्तम दस्तहोनेसे देह हलका होजावे, चित्तमें प्रसन्नता अथवा वायुका स्वस्थानमें गमन इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको दस्त उत्तमदुष्ट ऐसा जानना । उसको रात्रिके समय पाचन (सोंठ अंडिकीजड और धनियां, ये तीन औषधोंका काढा पाचनार्थ देवे) ॥

उत्तमजुलाबहोनेकाफल ।

इन्द्रियाणां बलं बुद्धेःप्रसादो वह्निदीप्तता ।

धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥

अर्थ—जुलाबके लेनेसे मनुष्यकी इन्द्रियोंमें बलआवे, बुद्धि प्रसन्नहो तथा जठरामि प्रदीप्त और धातु तथा अवस्था इनका स्थिरपना होयहे अर्थात् रसादिधातु और आयु बढकर बहुत दिनतक रहे ॥

जुलाबमेंअपथ्य ।

प्रवातसेवा जीताम्बु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ।

व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥

अर्थ—मनुष्य दस्तहोने उपरोक्त अत्यंत हवा नखाय तथा शीतल और तैलादिककी मालिस अजीर्णकारी पदार्थ भोजन परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ॥

जुलाबमेंपथ्य ।

शालिपट्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ।

जांगलैर्विष्किराणां वा रसैःशाल्योदनं हितम् ॥

अर्थ—दस्तहोनेके पश्चात् सांठीचावल और मूंग आदिशब्दसे अन्यधान्यकी यवागूं करके सेवनकरे तथा जंगली जीव (हरीण ससे आदि) का मांसरस अथवा विष्करजीव (लवा घंटेरआदि) पक्षियोंका और मुरगा इनके मांसरसके साथ चावलका भात सेवन करे ॥

नाराचरस ।

तुल्यं पारदटंकणं समरिचं गंधाश्मतुल्यं त्रिभिर्विश्वं च
त्रिगुणंततो नवगुणं जेपालबीजं क्षिपेत् । खल्वे दंडयु-
गं विमर्द्य विधिवत्संन्यस्य पर्णे ततःस्विन्नं गोमयवाह्निना
स तु भवेन्नाराचनामा रसः ॥ गुंजकप्रमितोरसोहिमजलैः
संसेवितो रेचयेद्यावत्कोष्णजलं भजेत्खलुनरो भोज्यं
तु दध्योदनम् ॥

अर्थ-शुद्धपारा-फुलायाहुआ सुहागा, कालीमिरच ये समान, भाग
ल्लेवे और शुद्धगंधक तीनोंके समान ल्लेवे तथा सोंठ तीनभाग, जमाल
गोटाके बीज नौ भाग इन सबकी दोप्रहर खरलकर पत्तेपर निकाल
आरने टपलोंकी अभिपर स्वेदन करे इस रसका नाम नाराचरस है
यह पकरती खांडके साथ देवे ऊपरसे शीतलजल पीवे तो दस्तहोपे और
गरमजल पीनेसे दस्तबंदहोते हैं इसके ऊपर दही भात खाना पथ्य है ॥

द्वितीयनाराचरसः ।

जेपालेन समैःसूतव्योपटंकणगंधकैः । नाराचःस्याद्रसो-
मापमात्रःसर्पिःसितायुतः ॥ हंतिसंग्रहमानाहमामशूलं
तथाज्वरम् । वेलाज्वरं विरेकेण शीतलांबुनिपेवणम् ॥

अर्थ-जमालगोटा, पारा, सोंठ, कालीमिरच, सुहागा, गंधक ये समा-
नभागलेकर एकत्र करके खरलकरे तो यह नाराचरस सिद्धहोवे इसमेंसे ६
रती रस खांड और धीके साथ देवे तथा ऊपर शीतल जल पिवावे तो मल-
संग्रह अनाहवायु (अफारा) आमशूल, वेलाज्वर इनका दस्तहोनेसे
नाश करे है ॥

इच्छाभेदीरसः ।

शुंठीतीक्ष्णरसेन्द्रटंकणवलिःप्रोक्तःसमंतात्रिधा कुंभीवी-
जयुतं विमर्द्य सभवेदिच्छाविभेदीरसः । वल्लेझर्करया
युतेन बुलुकं पुंसःमुखं रेचयेन्निःशेषं मलदोषमपविनिहं
त्युच्चैर्यथेभं हरिः ॥

अर्थ-सोंठ, कालीमिरच, पारा, सुहागा, गंधक ये समानभागले उसमें
जमालगोटा तिगुना डालके खरलकरे इसको इच्छाभेदी रस कहते हैं इस

रसको ३ रत्तीले खांडके साथ खाय ऊपरसे जितने चुड़ू शीतलजलके पीवे उतनेही दस्त इस प्राणीको होते हैं यह सुखजुलाव सबरोगोंको नाशकरे जैसे सिंह हाथीका नाश करता है ॥

द्वितीयइच्छाभेदीरसः ।

शंभोर्वीर्यं च टंकं बालमरिचयुतं गृग्वेरं च तुल्यं योज्यं
नैकुंभवीजं समशिखिसहितं मर्दितं याममेकम् ॥ धुक्तं गुं-
जाद्रिमात्रं शिशिरजलयुतं त्यक्ततल्पत्वमुच्येदिच्छा-
भेदी रसोऽयं प्रबलमलहरः सर्वरोगैकहर्ता ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ तोला, गंधक, कालीमिरच, सोंठ, जमालगोटके बीज, चित्रक ये सब औषध समानभाग लेकर एक प्रहर खरलकरे इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं यह प्रबलमलका नाशकर संपूर्णरोगोंको हरणकरे है ।

अथ वस्तिप्रकरणम् ।

वस्तिद्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् । यः स्नेहैर्दीय-
ते सस्यादनुवासननामकः ॥ कपायक्षीरतैलैर्यो निरूहः

स निगद्यते । वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ॥

अर्थ—अंडकोशादिक करके गुदामें जो पिचकारी मारते है उसको वस्ती कहते हैं वो वस्ति अनुवासन और निरूहण इस भेदसे दो प्रकारकी है उसमें तेल घी इत्यादि चिकनाईकी जो पिचकारी मारते हैं उसको अनुवासन और फाटे, दूध, तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूहवस्ती कहते हैं ।

प्रकारांतर ।

वातोल्यणेषु दोषेषु वातेवा वस्तिरिष्यते ।

उपक्रमाणां सर्वेषां सोयणीस्त्रिविधश्च सः ॥

निरूहोन्वासनो वस्तिरुत्तरः संप्रकीर्तितः ॥

अर्थ—वातोल्यणदोषोंमें अथवा केवल वातके दोषमें वस्तिकर्म करना चाहिये, यह संपूर्ण कर्मोंमें अग्रगण्य (मुख्य) है । सो तीन प्रकारकी है १ निरूहवस्ति, २ अनुवासनवस्ति और तीसरी ३ उत्तरवस्ती ॥

प्रथमअनुवासनवस्ति ।

तत्रानुवासनाख्योहि वस्तिर्यःसोऽत्र कथ्यते । पूर्वमेवत-
तोवस्तिनिरूहाख्योभविष्यति ॥ निरूहादुत्तरं चैव
वस्तिस्यादुत्तराभिधः । अनुवासनभेदश्च मात्रावस्तिरु-
दीरितः ॥ पलद्वयंतस्यमात्रा तस्मादर्धापिवाभवेत् ॥

अर्थ—तहां प्रथम अनुवासन नामक वस्तिको कहके फिर निरूहवस्ती
तथा उत्तरवस्ती कहेंगे । तथा उस अनुवासनवस्तिका भेद मात्रावस्ती
है, उस मात्रावस्तीमें जेहादिकोंकी मात्रा दोपलकी है । अथवा पलमा-
त्रकी जाननी इसप्रकार वस्तीके चार भेद जानने ॥

अनुवासवस्तीमेंयोग्यप्राणी ।

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ॥

अर्थ—रूक्ष (स्नेहपानरहित) और प्रदीप्तहै अग्नि जिसकी वो और
केवल वातरोगी ऐसे मनुष्योंको अनुवासनवस्तीके योग्य जानने ॥

अनुवासनअयोग्यपुरुष ।

नानुवास्यास्तु कुष्ठीस्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥नास्था-
प्यानानुवास्याःस्युरजीर्णोन्मादवृद्धयुताः ॥शाकमूर्च्छा-
रुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥

अर्थ—कुष्ठी, प्रमेही, स्थूलपुरुष, उदररोगी ये अनुवासनवस्तीके
योग्य नहीं हैं । तथा उन्माद (पागल) अजीर्ण, तृषा, शोक, मूर्च्छा,
अरुचि, भय, श्वास, खांसी और क्षय इनकरके पीडित जो मनुष्यहै
वो आस्थाप्य (निरूहवस्ती) में योजनाकरे " नानुवास्याः " अर्थात्
उनकी अनुवासन वस्तीमें योजना न करे ।

वस्तीका मुखस्थापन विषयमें सुवर्णादिकोंकीनली ।

नेत्रंकार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ।

नलैर्देतैर्विपाणाग्निमणिभिर्वाविधीयते ॥

अर्थ—नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेके लिये नली—वो सुवर्णादि धातु-
की अथवा चांसकी अथवा नरसलकी, हाथीदांतकी अथवा सींगके अथ तथा
विलौर अथवा सूर्यकांतादि(आतसीकाचआदिमणियोंकी करनी चाहिये) ॥

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाणकरे ।

एकवर्षात् पञ्चवर्षं यावन्मानं पङ्गुलम् ।

ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसंयुतम् ॥

ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नैत्रदीर्घता ॥

अर्थ—वस्तीकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्ष पर्यंत छः अंगुल प्रमाण तथा छः वर्षसे लेकर बारह वर्षपर्यंत आठ अंगुल प्रमाण लंबी तथा बारह वर्षके पश्चात् बारह अंगुलकी लंबी नली बनानी चाहिये ॥

नलीकां छिद्रका प्रमाण ।

मुद्गच्छिद्रं कालायामं छिद्रं कोलास्थिसान्निभम् । यथासं

ख्यं भवेत्त्रैत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसंनिभम् ॥ आतुरांगुष्ठमा

नेन मूलेस्थुलं विधीयते । कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च-

गुट्टिकामुखम् ॥ तन्मूलेकर्णिके द्वे च कार्ये भागचतुर्थ-

कात् । योजयेत्तत्र वस्तिं च बंधद्वयविधानतः ॥

अर्थ—जो छः अंगुलकी नली है उसका छिद्र मूंगके दानेके समान और जो आठ अंगुलकी नली है उसका छिद्र मटरके दानेके बराबर और जो बारह अंगुल लंबी नली है उसका छिद्र बैरका गुठलीके प्रमाण इस प्रकार क्रमकरके नलीका छिद्रकरे । और दो नली चिकनी होकर गौके पूंछके समान होनी चाहिये । तथा उस नलीका मूल रोगीके अंगूठाके बराबर मोटा और अग्रभागमें कनिष्ठिका उंगलीके प्रमाण मोटी करके उसका मुख गोलकरे तथा उस नलीके तीन भाग छोड़के चतुर्थभागके मूलमें दो कर्णिका कमलपत्रके समान बनाय हरिणादिकोंके अंडकी वस्ती उस जगह लगाय उस कर्णिकासे वस्तीके दोनों भाग बांधदेवे, कि, जिस्से संधि न रहने पावे ॥

वस्ती किसके आंठोकी बनावे सो कहते हैं ।

मृगाजसूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ।

मूत्रकोशस्य वस्तिस्तु तदभावेन चर्मजः ॥

कपायरक्तः सुमृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ।

१ वैसे गौकी पूंछ ऊपरसे पतली होती है बीचमें मोटी और नीचे फिर क्रमसे पतली होती चली गई है ऐसी बनावे ।

गुदे न्यसेत् । बध्वावस्तिमुखेसूत्रं वामहस्तेन धारयेत् ॥
पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः । जंभाकासक्षवार्दी-
श्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥

अर्थ—अनुवासन वस्तीके योग्य मनुष्योंके देहमें तेल लगाय गरमज-
लसे अंगमें हलका पसीना काढ उसको यथाशास्त्र लिखित भोजन कराय
थोडासा इधर उधरको फिराय यदि उसको मलमूत्र अधोवायु त्यागनेकी
इच्छा होयतो करायके फिर वस्तिकर्ममें योजना करे । और उसको वाई
करवट सुलाय बाएपैरको लंबा पसार दहने पैरको संकुचित करे और
गुदाको चिकनीकर वस्तीकी नली वस्तीके मुखमें डोरेसे बांध उस नलीको
गुदाके ऊपर धरे तथा कुशलवैद्य उस नलीको बाए हाथमें लेकर दहने
हाथसे मध्यमवेग करके दावे तथा वस्तीके समय जंभाईलेना खांसना
और छीकना इत्यादिक रोगीको न करनेदेवे (खांसी आदिके करनेसे
पिचकारीका तैल ऊपर चढ जाताहै अथवा नीचेही रहे ठीक स्थानपर
नही पडुचे इसीवास्ते जंभाई और खांसना आदि वर्जितहैं) ॥

पिचकारीलगानेमेंकाल ।

त्रिंशन्मात्रामितःकालःप्रोक्तोवस्तेस्तुपीडने ।

ततःप्रणिहितःस्नेहउत्तानोवाक्शतं भवेत् ॥

अर्थ—पिचकारी मारनेके समय तीसमात्रा पर्यंत काल जानना और
वो स्नेह भीतर जानेसे सौंवार (जितनीदेरमें सौंवार आंख भिचे) इनती
देरतक चित्त सोया करे उसमात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें फरते हैं ॥

मात्राकाप्रमाण ।

जानुमंडलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकयायुतम् ।

एकामात्रा भवत्येषा सर्वत्रैप विनिश्चयः ॥

अर्थ—घोटके चान्योंतरफ हाथ फेरके चुटकी वजावे इतने कालकी एक
मात्रा होती है । यह सर्वत्र विषय है तथा मात्राका प्रमाण अन्यत्रभी
ग्रंथोंमें लिखा है सो देखलेना ॥

वाङ्मात्राकाप्रमाण ।

निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या छोटिकाथवा ।

१ उसको चारलौनी पतली पेया करके दिखावे । २ गुदामें घी लगाकर ।

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृतावुधैः ॥

अर्थ-निमेषोन्मेषण (पलकोंका खोलना मूंदना) चुटकी घजाना, अथवा गुरुअक्षरके उच्चारण इनमें जितना समय लगता है उसको वाङ्मात्रा कहते हैं ॥

पिचकारीलगानेकेपश्चात्क्रिया ।

प्रसारितैःसर्वगात्रैर्यथावीर्यं प्रसर्पति ।

ताडयेत्तलयोरेनं त्रीन्वारांश्च शनैःशनैः ॥

स्फिजोश्चैवं ततः श्रोणिं शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः ।

जाते विधाने तु ततःकुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥

अर्थ-पिचकारी मारनेके पश्चात् रोगी हाथ पैर आदि सब देहको ढीला करके पसारदेवे कि, जिससे रसादिकथातु अपने २ स्थानपरजायें । तथा रोगीके हाथपैरके तलको तीनवार हलकी (धीरे २) तीन २ ताल देवे उसीप्रकार स्फिज (कूला) और श्रोणी (कटिपश्चात्भाग) में तीन २ बार ताल मारे । फिर उसको शय्या (पलंगपर) बैठावे । इसप्रकार वस्तीविधि होनेके अनंतर रोगीको सुखपूर्वक सुलायदे ॥

उत्तमवस्तिकर्महोनेकेगुण ।

सानिलःसपुरीपश्च स्नेहःप्रत्येति यस्य तु ।

उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥

अर्थ-गुदाके भीतर गयाइया जो स्नेह वो वायु तथा मल इनकेसाथ उपद्रवके विना तत्काल बाहर आनेसे उस मनुष्यको वस्तीकर्म उत्तम हुआ ऐसा जानना ॥

स्नेहकाविकारदूरहोनेमेंउपाय

जीर्णान्नमथसायाद्धे स्नेहे प्रत्यागते पुनः । लघ्वन्नं भोज

येत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरोचदि॥अनुवासिताय देयंस्यादित

रेद्विसुखोदकम्।धान्यशुंठीकपायो वास्नेहव्यापत्तिनाशनम्॥

अर्थ-गुदाके रास्ते स्नेहनिःशेष(संपूर्ण)बाहर आनेसे और यदि मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होवे तो उसकी सायंकालमें पुराने अन्न किंचित् नित्यके

आहारकी अपेक्षा कम पध्यमें देवे और अनुवासित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक देवे अर्थात् गरमजल पनिको देवे अथवा धनियां और सोंठ, इनका काढा करके देय तो स्नेहका विकार दूरहोय ॥

वातादिदोषोंमें पिचकारी मारनेका प्रमाण ।

अनेन विधिना षड्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा ।

विधेया वस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तविधिकरके वातादिक दोषोंमें छःवार अथवा आठवार अथवा नौवार पिचकारी मारे उस पिचकारियोंके अंतमें निरूह वस्ति योजना करे ॥

वस्तीके गुण ।

दत्तस्तु प्रथमो वस्तिःस्नेहयेद्वस्तिवंक्षणौ । सम्यक्दत्तो
द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत् ॥ बलं वर्णं च जनयेत्-
तीयस्तु प्रयोजितः । चतुर्थपंचमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसा-
सृजी ॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एवच । अष्टमो
नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥ एवं शुक्रगतान्दो-
षान् द्विगुणःसाधुसाधयेत्।अष्टादशाष्टादशकान्वस्तीनां
यो निषेवते ॥ सकुंजरबलोश्चस्य रमेत्तुल्योमरप्रभः ॥

अर्थ—प्रथम वस्ति (पिचकारी) मारनेसे वह वस्ती वंक्षण (अंड सांधि) द्वारा शरीरमें स्नेहन करे है अर्थात् धातु बढ़ावे है । दूसरी पिचकारी मारनेसे मस्तककी वायुको दूरकरे । तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल, कांति आवे । चौथी और पांचवी पिचकारो मारनेसे रस और रक्त इनकी वृद्धि होय । छटी और सातवी पिचकारी मारनेसे मांस और मेदमें स्निग्धता आती है । आठवीं और नवम पिचकारी मारनेसे मज्जामें और श्लोकमें जो चकारहै इस्से शुक्रधातुमें स्निग्धता आती है । इस प्रकार द्विगुण (१८) पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोषहै उनका नाश होय तथा जो मनुष्य ३६ पिचकारियोंका सेवनकरे उसमें हाथीके समान बल और वेगमें घींढेके समान होय एवं देवस्वरूप कांतिहोपहै ॥

अनुवासनवस्ती और निरूहनवस्तियेकिसकां देनी इसका प्रमाण ।

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिं दिने दिने । दद्याद्विद्यस्त
थान्येषामन्यांवाधामपाहरत् ॥ स्नेहोल्पमात्रो रूक्षाणां

दीर्घकालमनात्ययः । तथा निरूहस्निग्धानामल्पमा
त्रः प्रशस्यते ॥

अर्थ—रूक्ष होकर जो अत्यंत घायुसे पीडित मनुष्य उसको वैद्य दिन
२ में स्नेहवस्ती देवे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी नित्य मारे । उसी प्रकार
“ अन्येषां ” कहिये स्निग्ध और स्थूलादिक मनुष्य उनके “ अन्या ”
कहिये निरूहण वस्ती दिन२में देवेतो “ वाधा ” कहिये रोग दूरहोय ।
तथा रूक्ष मनुष्य उनके स्नेहवस्ती अल्पदेवे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी
हलकी मारे । परंतु रोगी बहुत दिनका बचाहुआ होय तो स्निग्ध
मनुष्य उसके निरूहवस्ती अल्पदेवे ॥

तत्कालस्नेहबाह्रनिकलेउसकाउपाय ।

अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ।

तस्यान्योऽन्यतरो देयो नहि स्निग्धस्य तिष्ठति ॥

अर्थ—स्निग्ध मनुष्यकी गुदामें पिचकारी मारनेसे उसी वखत चिक-
नाई बाहर निकल आती है उहरे नहीं है इसीसे स्नेहवस्ती देकर उसी
समय निरूहवस्ती देवे, इसप्रकार पलटकर दोनों प्रकारकी वस्तीदेवे ॥

स्नेहबाह्र न निकले उसके उपद्रव और उपाय ।

अशुद्धस्य पलोन्मिश्रःस्नेहो नैतियदा पुनः । तदा शैथि-
ल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते । पक्काशयो गुरुत्वं च
तत्र दद्यान्निरूहणम् । तीक्ष्णं तीक्ष्णापधियुता फलव-
र्त्तिहिता तथा ॥ यथानुलोमनोवायुर्मलस्नेहश्च जायते ।
तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ॥

अर्थ—वमन और विरेचन इत्यादिक करके जिसकी शुद्धी नहीं करी
उसकी गुदासे यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर आवे नहीं तो उसके देहमें
शिविलता और अफरा (पेटका फूलना) शूल, श्वास और पक्काशयमें भारी-
पना, ये उपद्रव होते है । इनके दूरहोनेके वास्ते तीक्ष्णनिरूहण वस्ति
देनी चाहिये। इसीप्रकार तीक्ष्ण औषध करके युक्त ऐसी फलवर्त्तिदि जिसे
वायु अधोगामी होकर मल मिश्रित स्नेह गुदाके रास्ते बाहर आवे,
तथा उसीप्रकार तीक्ष्णजुलाब और तीक्ष्णनस्य ये देने चाहिये ॥

स्नेह वस्ती जिसको उपद्रव करे नहीं उसका विधान ।

यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवस्तिरानिःसृता ।

सर्वोल्पो व्यावृते रौक्ष्यादुपेक्ष्यः सविजानता ॥

अर्थ—स्नेहवस्ती (स्नेहकी पिचकारी) गुदामें मारनेके अनंतर गुदाका संपूर्णभाग व्यावृत (व्याप्त) होनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षपनेके कारण गुदाके एकदेशमें व्याप्तहोके रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे । तो पिचकारी (स्नेहवस्ती) उसीप्रकार गुदामें धरी रहनेदे ॥

अहोरात्रिमें भी स्नेह बाहर न आवे तो उसका उपाय ।

अनायाते त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ।

स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥

अर्थ—स्नेहकी पिचकारी मारनेसे जो स्नेह बाहर नहीं आवे उसके दोवार पिचकारी मारके स्नेह बाहर आवे ऐसा यत्न करे । अथवा जो स्नेह अहोरात्र (दिनरात्रि) में बाहर न आवे उसको जुलाव देकर तेलको बाहर निकाले ॥

अनुवासनतैल ।

गुडूच्येरंडपूतीकभार्गावृपकरोहितम् । शतावरी सहचरं
काकनासा पलोन्मितम् ॥ यवमापातसर्कोलकुलित्था
न् प्रसृतोन्मितान् । चतुर्द्रीणांभसा पक्का द्रोणशेषेण
तेन च ॥ पचेत्तैलाढके पेण्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ—गिलोय, अंडकी जड़, कंजाकी छाल, भारंगी, अडूसा, रोहि-
पट्टण, शतावर, पियावासा, काकतुंडी, ये नौ औषध पत्र २ पललेवे ।
जौ, उडद, अलसी, वेरकी गुठली और कुलथी, ये पांच औषध दो
दो पलले, इन सबको कूट पानी ४ द्रोण डालके एकद्रोण जल चाकी
रहने पर्यंत औटावे, उसमें तिलका तेल एक आठक डालके और जीव-
नीय गणकी औषधी एक २ पल कूट चूर्णकरके मिलावे, फिर उसको
औटावे जब फाटा जलके तेलमात्र शेष रहे तब नीचे उतारके तेलछान
लेवे। इसको अनुवासन तेल कहते हैं। यह तेल सपूर्ण वायुके रोगों को दूर करता है।

शब्दादितैलम् ।

शटीपुष्करकृष्णाह्वामदनामरदारुभिः । शताह्वाकुष्ट-
यष्ट्याह्वचाविल्वहुताशनेः ॥ सुपिष्टैर्द्विगुणं क्षीरतैलं

तोयं चतुर्गुणम्।पक्त्वा वस्तौ विधातव्यं मूढवातानुलो
मनम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहं विषमज्वरम्॥कट्यू
रुपृष्ठकोष्ठस्थान्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥

अर्थ-तिलतैल ४ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके वास्ते कचूर, पुहकरमूल,
पीपल, मैनफल, देवदारु, सौंफ, कूट, मुलहदी, वच, बेलगिरी और
चीतेकी छाल ये सब मिलायके सेरभर लेंवाजल १६सेरले,सबको मिलाय
तेलकी विधिसे सिद्धकरे । यह वस्तिक्रियामें प्रयोग करनेसे कुपित
वायुको अनुलोम करे । तथा ववासीर,ग्रहणीदोष,अफरा, विषमज्वर और
जांघ, कमर और पीठके वातरोगको दूरकरे। इसे शट्यादि तैल कहते हैं॥

वचादितैलम् ।

वचापुष्करकुष्ठैला मदनामरसिधुजैः । कांकोलीद्वयय
ष्ट्याह्व मेदोयुग्मनराधिपैः॥ पाठाजीवकजीवती भांगीचं
दनकट्फलैः।सरलागरुबिल्वाम्बुवाजिगंधाग्निवृद्धिभिः ॥
विडंगारग्वध्यामात्रिवृन्मागधिकर्द्धिभिः । पिष्टैस्तैलं
पचेत्क्षीरं पञ्चमूलरसान्वितम्॥गुल्मानाहाग्निपंगाशोग्रह
णीमूत्रसंगिनाम्।अन्वासनविधौयुक्तंशस्यतेऽनिलरोगिणाम्।

अर्थ-तिलतैल ४ सेर, छोटा पंचमूलका काढा १६ सेर, दूध १६ सेर,
कल्कके वास्ते वच, पुहरकरमूल, कूट, इलायची, मैनफल, देवदार, संधानि-
मक, कांकोली, क्षीरकांकोली, मुलहदी, मेदा, महामेदा, अमलतास, पाठ, जी-
वक, जीवतीशाक, भारंगी, लालचंदन, कायफल, सरलकाष्ठ, अगर, बेलगिरी
नेत्रवाला, असगंध, चीता, वृद्धि, वायविडंग, कीरवारेकीगिरी, सारिवा-
निसोथ, पीपर, वृद्धि यह सब औषध १ सेर ले । जल १६ सेर, तैलकी
विधिसे सिद्धकरे, यह तैल गोला, अफरा, मंदाभि, ववासीर, संग्रहणी, मूत्ररो-
ग और वातरोग इन समस्त रोगोंमें अनुवासन प्रयोगमें देवे ॥

चित्रकादितैलम् ।

चित्रकादिविपापाठा दन्तीबिल्ववचामिपैः।सरलांशुमती
राष्णा नीलिनीचतुरंगुलैः ॥ चव्याजमोदकांकोलीमेदा

युग्मसुरद्रुमैः । जीवकर्पभवर्षाभ्रवस्तगंधशताह्वयैः ॥ रेन्व
श्वगंधामंजिष्ठा शटीपुष्करतस्करैः ! सक्षीरं विपचेत्तैलं
मारुताभयनाशनम् ॥ गृध्रसीखंजकुब्जाब्जमूत्रोदावर्तरो
गिणाम् । शस्यतेऽल्पबलाग्नीनां वस्तावाशुनियोजितम् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर, दूध १६ सेर, कल्कके वास्ते चीतिकी छाल, अतीस, पाठा, दंती, वेलगिरी, वच, सौंफ, निसोत, सालपर्णी, रास्ना, नीली, अमलतास, चव्य, अजवायन, फांकोली, भेदा, महामेदा, देवदारु, जीवक, ऋषभक, सांठी, अजमोद, सौंफ, रेणुक, असगंध, मजीठ, कचूर, पुहकरमूल, चौरकाचरी, यहसव १ सेर ले । जल १६ सेर, तेलपाककी विधिसे बनावे । यह गृध्रसी, खंजता, कुवडापना, मूत्राधिक्य और उदावर्तरो-ग, बलहीन तथा मंदाग्नि इत्यादि रोगमें इस तैलका अनुवासन कर्म उत्तम है ।

भूतिकादितैलम् ।

भूतिकैरंडवर्षाभूरास्त्रावृषकरोहिषैः । दशमूलसहाभां
र्षाण्डग्रंथामरदारुभिः ॥ बलानागबलामूर्वा वाजिगंधाम्
ताह्वयैः । सहाचरवरीविश्वा काकनासाविदारिभिः । यव
माषातसीकोल कुलत्थैः कथितैः शृतम् । जीवनीयप्रती
वापं तैलं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ जंचोरुत्रिकपार्श्वीशवाहुमन्या
शिरःस्थिताम् ॥ हन्याद्वातविकारांस्तु वस्तियोगैर्निपेवितम् ॥

अर्थ—तिलतैल ४ सेर काथके वास्ते अजवायन, अंडकी जड, सांठ, रास्ना, अहूसा, रोहिपत्तण, दशमूल, मुद्गपर्णी, भारंगी, वच, देवदारु, खैरंदी, गगेरन, मूर्वा, असगंध, गिलोय, पिपावांसा, सतावर, सांठ, फाषडोडी, विदारीकंद, जौ, उदद, अलसी, नेर, कुलथी ये सब २॥ सेर ले जल ६४ सेर लेके फाटाकरे, जब १६ सेर रहे तब उतारके छानलेय फिर जीवनीय गणका कल्क, दूध १६ सेर सबको एकत्र कर तैलकी विधिसे सिद्धकरे । इस तैलको अनुवासन द्वारा प्रयोग करेता जंपा, कुरु, त्रिक, पसवाडे, कंधे, भुजा, मन्यानाडी और मस्तकगत वातरोग यह नष्ट होवे ॥

जीवन्त्यादितैलम् ।

जीवन्त्यातिबलाभेदाकांकोलीद्वयजीरकैः । ऋपभाति-
विपाकृष्णाकाकनासावचामरैः ॥ रास्नामदनयष्ट्याह्वस-
रलाभीरुचन्दनैः । स्वयंगुप्ताशठीशृंगीकलशीसारिवाह्व
यैः ॥ पिष्टैस्तैलघृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेनतु । तच्चानुवासने
देयं शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ॥ बृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहर
परम् । नस्ये पाने च संयुक्तं मूर्द्धजन्तुगदापहम् ॥

अर्थ-तिलतेल ४ सेर । घृत १ सेर । जीवती, अतिबला, भेदा, महामेदा,
कांकोली, क्षीरकांकोली, जीवक, ऋपभक, अतीस, पीपल, काकडोडी, वच,
देवदारु, रास्ना, भैनफल, मुलहठी, सरल, सतावर, रक्तचन्दन, कौल्लेकीज,
फचूर, काकडासिंगी, पिठवन, सारिवा ये सब औषधी १ सेरले । दूध ४०
सेर लेके विधिपूर्वक तैल सिद्धकरे । इसका अनुवासन करनेसे शुक्र, अग्नि
और बलकी वृद्धिकरे, देहको पुष्टकरे, वायु और पित्तकी शांति, एवं गोला
और अफरारोगको नष्टकरे । नस्य तथा पानमे इसका व्यवहार करेतो
उर्ध्वजन्तुगत रोगोंका नाशकरे । इसे जीवन्त्यादि तैल कहते है ॥

मधुकादितैलम् ।

मधुकोशीरकाश्मर्यकटुकोत्पलचन्दनैः । श्यामापद्मक-
जीमूतशक्राह्वातिविपांबुभिः ॥ तैलपादं पचेत्सर्पिःपय-
साष्टगुणेन च । न्यग्रोधादिगणकाथयुक्तं वास्तिषु योजि-
तम् ॥ दाहासृग्दरवीसर्पवातशोणितविद्रधिन् । पित्तर-
क्तज्वराद्यांश्च हन्यात्पित्तकृतान् गदान् ॥

अर्थ-तिलतेल ४ सेर । घृत १ सेर । न्यग्रोधादिगणकी काय २० सेर ।
दूध ४० सेर । कल्कके वास्ते मुलहठी, खस, कभारी, कुटकी, कमलगट्टा,
रक्तचन्दन, अनंतमूल, पद्मास, नागरमोथा, इन्द्रजौ, नेत्रवाला, अतीस ये
सब १ सेरलेवे । सबको तेलकी विधिस औटापके तेल सिद्ध करलेवे, उस
का अनुवासन करनेसे दाह, मदर, विसर्प, वातरक्त, विद्रधि तथा पित्तकृ
त अनेक प्रकारके रोग दूरकरे ॥

मृणालादितैलम् ।

मृणालोत्पलशालूकसारिवाद्द्वयकेशरैः । चंदनद्वयभूनिव
पद्मबीजकसेरुकैः ॥ पटोलकटुकारक्तागुंद्रापपटवासकैः ।
पिष्टैस्तैलमिदं पक्वं तृणमूलरसेन च ॥ क्षीरद्विगुणसंयु-
क्तं वस्तिकर्माणं योजितम् । नस्येऽभ्यंजनपाने वा
हन्यात्पित्तगदान् बहून् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर, तृणपंचमूलका काठा १६ सेर, दूध ८ सेर । कल्क-
के वास्ते कमल, नीलकर्मल, नीलकमलकी जड़, सारिवा, अनंतमूल, केश-
र, रक्तचंदन, सपेदचंदन, चिरायता, कमलगट्टा, कसेरु, पटोलपत्र,
कुटकी, मजीठ, भद्रमोथा, पित्तपापडा, अदूसा ये सब १ सेरले । सबका
यथाविधि तैल सिद्धकरे । इस तैलकी नस्य मालिस पीना और वस्ति
क्रियामें प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारके पित्तरोगोंको निवारण करे ॥

त्रिफलाद्यंतैलम् ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः । निवारग्वधपद्-
ग्रंथासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ गुडूचीन्द्रसुराकृष्णा कुटसर्प-
पनागरैः । तैलमेभिःसमैःपक्वं सुरसादिरसाद्भुतम् ॥
पानाभ्यंजनगंडूपनस्यवस्तिषु योजितम् । स्थूलताल-
स्यकंद्यादीज्येत्कफकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर । सुरसादिगणका स्वरस १६ सेर । कल्कके लिये
त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निंशोथ, चीतिकी छाल, अदूसा, नीमकी छाल,
अमलताशके पत्ते, वच, सतौनाकी छाल, हलदी, दारुहलदी, गिलोय,
सह्यालु, पीपल, कूट, सरसों और सोंठ, सब १ सेरलेवे । तैलसिद्धकरे
इसतैलके पीनेसे मालिससे कुरला, नस्य और वस्तीकर्म करनेसे स्थूलता,
आलस्य और खुजलीआदि कफके विविधविकार दूरहों । यह
त्रिफलादि तैलहै । पाठाद्यंतैलम् ।

पाठाजमोदाशाङ्गष्टा पिप्पलीद्वयनागरैः । सरलागरुका-
लीयभार्गीचव्यामरद्रुमैः ॥ गरिचैलाभयाकटीशटीग्रंथि-
ककटफलैः । तैलमेरंडतैलंवा पक्वमेभिःसमायुतम् ॥

वल्लीकंटकमूलाभ्यांकाथेन द्विगुणेन च । हन्यादन्वा-
सनैर्दत्तं सर्वान् कफकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीका तेल ४ सेर, वल्लीपंचमूलका काढा ८ सेर, कंटक पंचमूलका काढा ८ सेर, कल्ककेवास्ते पाठ, अजमोद, महाकरंज, पीपल, गजपीपल, सोंठ, सरल, अगर, कालीयकाष्ठ, भारंगी, चव्य, देवदारु, कालीमिरच, इलायची, हरड, कुटकी, कचूर, पीपरामूल और कायफल सब १ सेरलेवे । इनसे तेलको विधिपूर्वक सिद्धकरे इसका अनुवासन कफकृत समस्त रोगोंको निवारणकरे । इसे पाठादितैल कहतेहैं ॥
विडंगाद्यतैलम् ।

विडंगोदीच्यासिंधूत्थशटीपुष्करचित्रकैः । कट्फला
तिविपाभार्गी वचाकुष्ठसुराह्वयैः ॥ मेदोमदनयष्ट्याह
श्यामानिचुलनागरैः । शताह्वानीलिनीराण्णा कदली
वृषरेणुभिः ॥ विल्वाजमोदकृष्णाह्लादंतीचव्यनरा-
धिपैः । तैलमेरंडतैलं वा मुष्ककादिरसाद्भुतम् ॥ घ्नी-
होदावर्तवातासृग्गुल्मानाहकफामयान् । प्रमेहशर्करा
शोसि हन्यादाश्वनुवासनात् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीकातेल ४ सेर, मुष्ककादिगणका रस १६ सेर, कल्कके वास्ते वायावेडग, नेत्रवाला, संधानिमक, कचूर, पुहकरमूल, चीतिकी छाल, कायफर, अतीस, भारंगी, वच, कूट, देवदारु, मेदा, मैनफल, मुलहठी, अनंतमूल, हिअलके बीज, सोंठ, सोंफ, नीलकी जड, रास्रा, केलाकी जड, अडूसा, रेणुक, वेलगिरी, अजमोद, पीपल, दंती, चव्य और अमलतासके पत्ते सब १ सेरलेवे । विधिपूर्वक तैलसिद्धकरे इसतेलके अनुवासनवस्ती करनेसे घ्नीह, उदावर्त, वातरक्त, गोला, अफरा, कफकी अनेक व्याधि, प्रमेह, शर्करा और बवासीर, रोगको दूरकरे । यह विडंगादितैलहै ये पूर्वोक्त संपूर्णतेल सुश्रतके वस्तीअधिकारमें लिखेहैं ॥

अनुवासनवस्तिमें विपरीत होनेसे रोगहोतेहैं उनको कहतेहैं ।

पट्सप्ततिव्यापदस्तु जायंते वस्तिकर्मणः ।

१ संपूर्ण औषधोंके गण (जेस मुष्ककादिगण—सुरपादिगण) ये आगे कहेंगे ।

दूषितात्समुपायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥

अर्थ—वस्तीकर्ममें दोषरूपकुलभी विपरीतता होनेसे ७६प्रकारकी व्यापत्ती (रोग) उत्पन्न होतेहैं । उसकी चिकित्सा सुश्रुतग्रंथमें लिखी है वो करनी चाहिये ॥

वास्तिकर्ममेंपथ्य ।

पानाहारविहाशश्च परिहारश्च कृत्स्नज्ञः ।

स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥

अर्थ—अन्न, पान और विहार आहारादिक इनके आचरण जैसा स्नेह पानमें कहाहै उसीप्रकार इसजगे वस्तीकर्ममें करे इस विषयमें विचार नकरे

निरूहवस्तीकीविधि ।

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणांतरैः ।

तैरेव तस्य नामानि कृत्तानि मुनिपुंगवैः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती कारणभेदकरके अनेकप्रकारकी होतीहैं और जैसे २ कारण होतेहैं उसी २ प्रकारका उसका नामहोताहै । उदाहरण उत्केशन वस्ति, दोषहरवस्ति, दोषशमनवस्ति इत्यादिक नाम जानने ॥

निरूहवस्तीकेदूसरेनाम ।

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।

स्वस्थानस्थापनादोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥

अर्थ—निरूहवस्तीका दूसरा नाम आस्थापनहै उसकी व्युत्पत्ती, दोष और रसादिक धातु इनको अपने २ स्थानपर बैठा लेहै, इसीसे इसको आस्थापन वस्ति कहतेहैं । तथा वातादिक दोष अपवा रोग इनको दूर करेहै इसीसे उसको तिरूह ऐसा कहतेहैं ॥

निरूहवस्तीमें काठेआदिका प्रमाण ।

निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थपादोत्तरंमतम् ।

मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनस्य कुडवास्त्रयः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती देनेमें काठे आदिका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम है और एक प्रस्थ मध्यम तथा तनिकुडव फनिष्ट जानना ॥

निरूहवस्तीअयोग्य ।

अतिस्निग्धो क्लिष्टदोषो क्षतोरस्कः कृशस्तथा । आ
ध्मानछर्दिहिकार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ गुदशोफाति
सारार्तो विपूचीकुष्ठसंयुतः । गर्भिणीमधुमेहीच नास्था
प्यश्च जलोदरी ॥

अर्थ-अत्यंतस्निग्ध मनुष्य तथा जिसके ऊर्ध्वगामीदोष हुएहो वो,
तथा उरःक्षत करके पीडित, कृश, अफराका रोगवाला, छर्दिरोगी,
हिचकी, बवासीर, खांसी, श्वास इन करके पीडित जो मनुष्य होवे वह,
गुदामें पीडा, सृजन, अतिसार, विपूचि, फोड, गर्भवतीस्त्री, मधुमेह-
रोगी और जलंधरका रोगवाला इतने रोगी निरूहवस्तीमें अयोग्य
अर्थात् इन रोगियोंके निरूहवस्ती न करे ॥

निरूहवस्तीयोग्यमनुष्य ।

वातव्याधायुदावर्ते वातासृक्विषमज्वरे । मूर्च्छातृष्णोद
रानाह मूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ वृद्धचसृगुदरमंदाग्निप्रमेहे
पु निरूहणम् । शूलेऽम्लपित्तेहृद्रोगे योजयेद्विधिवहुधः ॥

अर्थ-वातव्याधिरोगी, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास,
उदर, अफरारोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग, बहुतदिनोंका असृग्दर (प्रदरा)
मंदाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त, हृदयरोग, इतने रोगी निरूहवस्तीके
विषयमें योग्यहैं अर्थात् इनरोगियोंके निरूहवस्ती करे ॥

निरूहवस्तीदेनेकाप्रकार ।

उत्सृष्टानिलविषमूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजितम् । मध्या
ह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ॥ स्नेहवस्तिवि
धानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम् । जाते निरूहे च ततो भवे
दुत्कटकासनः ॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रं च निरूहागमनेच्छ
या । अनायातं मुहूर्तेतु निरूहं शोधनेर्हरेत् ॥

अर्थ-निरूहवस्ती जिसमनुष्यको देनीहोवे वह मलमूत्र त्याग चुकाहो

अर्थात् उसरोगीसे कह देवे कि, जब तक ये वस्तिकर्म होवेगा तबतक तुमको मल मूत्र त्यागना न होगा, यदि भीतरसे अधोवायु निकले तो उसको निकाल कोठा शुद्धकर उसके देहमें स्नेहपदार्थ लगाय, थोड़े देहसे पसीने निकाल उसको भोजन न देकर मध्याह्नके समय घरमें जिस प्रकार जिसरोगपर बस्तीदेना लिखाहै उसप्रकार स्नेहवस्तीका विधान कर तैलादिककी पिचकारी गुदामें मारनी । और निरूहवस्तीके फर्म, होनेके अनंतर वह निरूह बाहर आनेके वास्ते दो घड़ी पर्यंत उँकरू बैठा रहे । यदि दोघड़ीमें निरूहकी औषधी गुदामेंसे न निकले तो उसको शोधन करके बाहर आनेका यत्नकरे सो आगे लिखते हैं ॥

निरूहकोबाहरलानेवालीऔषध ।

निरूहैरेवमतिमान् क्षारमूत्राम्लसैधवैः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती गुदासे बाहर न आनेपर जवाखार और गोमूत्र नीचूका रस अथवा जंभीरीका रस और संधानिमक ये चार औषधी एकत्रकर गुदामें फिर निरूहण करे कि, जिस्से पहला दिया हुआ निरूह बाहर निकले ॥

निरूहवस्ती उत्तम होनेके लक्षण ।

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ।

लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके निरूह वस्ती देनेसे उसके मल तथा पित्त एवं कफ और अधोवायु ये क्रमकरके गुदाके रास्ते बाहर निकलनेपर शरीरमें हलकापना होवे तो निरूहणवस्तीका कर्म उत्तम हुआ ऐसा जानना ॥

जिसकोउत्तमनहुईहोउसकेलक्षण ।

यस्य स्याद्द्रस्तिरल्पाल्पवेगोर्हानमलानिलः ।

मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूहं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जिसको निरूहवस्ती देनेसे उसका बाहर आनेका वेग अल्प आनेपर मल और अधोवायु ये जितने बाहर आने चाहिये इतने न आवे, अर्थात् थोड़े आवे और मूत्र करनेमें पीडा तथा शरीरमें जडपना, अरुचि ये सब लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूहवस्ती उत्तम नहीं हुई, ऐसा वैद्यको जानना चाहिये ॥

निरूहवास्ति और स्नेहवस्ति उत्तमदेनेकाफल ।

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ।

आस्थापनस्नेहवस्त्योः सम्यक्दाने तु लक्षणम् ॥

अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं वस्तिदानवित् ॥

अर्थ—रोगीके अंगमें हलकापना, मनका संतोष, अंगमें पसीने आना, तथा रोगोंका नाश ये आस्थापन (निरूहवस्ति) तथा स्नेहवस्ती इनके उत्तम देनेके लक्षण जानने । और पूर्वोक्त (जो वस्ती देनेका कर्म कहा है) उस कर्मके जानने वाले वैद्यको निरूहवस्ती देनी चाहिये [और जो वस्तिकर्म न जानताहो उस वैद्यसे कदाचित् वस्तीकर्म न करावे] ॥

निरूहवस्तिदेनेमें समयका प्रमाण ।

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् । सस्नेहए
कःपवने पित्ते द्वौ पयसासह ॥ कपायकटुरूक्षाद्याःकफे
कोष्णास्त्रयोमताः । पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूपरसैः
क्रमात् ॥ निरूहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरूहवस्ती दोवार अथवा तीनवार अथवा चारवार जैसा दोष होवे उसीके अनुसार देनी तथा वातरोग होनेसे स्नेहयुक्त निरूह वस्ती एकवार देवे तथा पित्तरोग होनेसे दूधके साथ दोवार देवे, एवं कफरोग होनेसे कपाय और कटु तथा रूक्ष इत्यादि पदार्थ एकत्रकर तथा कुछ गरम करके तीनवार निरूहवस्ती देवे, अर्थात् इस औषधकी तीनवार पिचकारी मारनी चाहिये। अथवा कफ और पित्तवायु इन करके मनुष्य पीड़ित होनेसे दूध और घृष तथा रस (मांसरस) इनके क्रमकरके गुदादिकमें वस्तीदेवे फिर अनुवासनवस्ती देय अर्थात् स्नेहकी पिचकारी मारे ॥

सुकुमारादि मनुष्योंके निरूहवस्तिकी योजना ।

सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ।

वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां इन्माद्वलायुपी ॥

अर्थ—सुकुमार (नाजुक) और वृद्ध तथा बालक इनके हलकी पिचकारी मारनी क्योंकि, सुकुमारादिकोंके दारुण वस्ती देनेसे इनके बल और आयुका नाश होता है ॥

आदि, मध्य और अंत्य इनमें वस्तीकी योजना ।

दद्यादुत्केशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ।

पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्द्वस्तिं विचक्षणः ॥

अर्थ-प्रथम दोषोंके उत्क्लेद (उखाडने) को उत्क्लेदकारी औषधोंकी वस्ती देवे । तथा बीचमें दोषनाशक औषधोंकी वस्ती देवे तथा अंतमें अपने २ स्थानपर दोष वैठजावे ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारनी चाहिये ॥

उत्क्लेशनवस्ती ।

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सेंधवं वचा ।

हवुपाफलवल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥

अर्थ-अंडीके बीज, महुआकी छाल, पीपल, सेंधानिमक, वच, हौउवेर ये छः औषध समान भाग लेकर पीसके कल्ककरे, इसको दोषोंके उखाडनेके वास्ते देवे इसे उत्क्लेशन वस्ती कहते है ॥

दोषहरवस्ती ।

शताह्वा मधुकं विल्वं कौटजं फलमेव च ।

सर्काजिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥

अर्थ-शतावर, सुलहटी, बेलग्री, इन्द्रजों ये चार औषध समान भाग ले कांजीमें चारीक पीस तथा इसमें गोमूत्र मिलाय गुदामें पिचकारी मारे कि, जिस्से वातादिक दोषोंका शमनहो इसको दोषहर वस्ती कहतेहै ॥

शोधनवस्ती ।

शोधनद्रव्यनिकाथस्तत्कल्कैः स्नेहसैंधवैः ।

युक्त्या खजेन मथिता वस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥

अर्थ-निशोथ आदि जो शोधनद्रव्यहै उनका फाटाफर उसमें इन्ही औषधों का कल्क और सेंधानिमक मिलाय कलछीसे मथनकर दोषोंके शोधन विषयमें पिचकारी मारे, इसको शोधन वस्ती कहतेहै ॥

दोषशमनवस्ती ।

प्रियंगुर्मधुक्रोमुस्ता तथैव च रसांजनम् ।

सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणांशमने स्मृतः ॥

अर्थ-फलप्रियंगु अथवा राल, महुआकी छाल, नागरमोषा, रसोत ये चार औषध समान भाग लेकर दूधमें चारीक पीस दोषशमन होनेसे इसकी पिचकारी मारे, इसे दोषशमन वस्ती कहते है ॥

लेखनवस्ति ।

त्रिफलाकाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ।

ऊपकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाःस्मृताः ॥

अर्थ-त्रिफलेका काठा करके उसमें गोमूत्र, सहत, जवाखार डालके तथा ऊपकादिगणकी औषधीका चूर्ण उसमें मिलायके मेदरोगादिकमें कुश करनेको वस्ती देवे, इसे लेखन वस्ती कहते हैं ॥

बृंहणवस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिकाथःकल्कैर्मधुरकैर्युतः ।

सर्पिर्मांसरसोपेतवस्तयो बृंहणा मताः ॥

अर्थ-मूसली, गोखरू, कौंचके बीज इत्यादिक जो धातुवर्द्धक द्रव्य उनका काठा कर उसमें महुआकी छाल और दाख तथा अनार इत्यादिक मधुरद्रव्य और कल्कतथा घी और मांसरस ये सब औषध डालके पुष्टहोनेके अर्थ वस्ती देवे, इसको बृंहणवस्ति कहते हैं ॥

पिच्छलवस्ति ।

वदर्यैरावतीसेलुशाल्मलीधन्वनागराः । क्षीरसिद्धाःक्षौ-

द्रयुक्ता नाम्ना पिच्छलसंज्ञिताः॥अजोरणैरुधिरैर्युक्ता-

देया विचक्षणैः । मात्रापिच्छलवस्तीनांपलैर्द्वादशभिर्मताः ॥

अर्थ-वेरकी छाल, नारंगी, बहुआरकी छाल, सेमरकी छाल, धमासो, सोंठ ये छः औषध समान भाग लेकर दूधमें पीस सहत मिलाय उसमें बकरा और मेंढा तथा हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोपोंके पतले करनेको वस्तीदेवे इसको पिच्छल वस्ती कहते हैं । इस वस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पल जानना ॥

निरूहणमात्राकीविधि ।

दत्वादौ सैधवस्याक्षं मधुनःप्रसृतिद्वयम्।विनिर्मथ्यततो

दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ एकीभूते ततःस्नेहे कल्क-

स्य प्रसृतिं क्षिपेत्।संमूर्च्छितकपाये तु चतुःप्रसृतिसंमितम् ॥

क्षित्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलोभिपक्वाते चतुः

पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्यपट्टपलम् ॥ पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्नेहस्यच पलत्रयम् । कफे पट्टपलकं क्षौद्रं स्नेहस्यैव चतुःपलम् ॥

अर्थ—प्रथम सैंधानिमक १ कर्ष, तथा सहत ४ पल इन दोनोंको एकत्र मर्दनकर फिर उसमें घी अथवा तेल छःपल डालके एक जगे मिलाय उसमें कल्ककी जो औषध कही है उनका कल्ककरके उसमें स्नेहमिलायदे अथवा उस कल्कका काढा करके उस स्नेहमें मिलावे । फिर कुशलवैद्य गुदामें पिचकारी मारे, यह निरूहवस्तीको साधारण विधि जाननी । विशेषविधि वातरोगमें सहत चारपल और स्नेह तीनपल दोनोंको एकत्रकर वस्तीदेवे तथा पित्तके रोगमें सहत ४ पल और स्नेह ३ पल मिलाय वस्तीदे । एवं कफरोग होयतो सहत छःपल और स्नेह चारपल लेवे दोनोंको एकत्रकर वस्ती देनी चाहिये ॥

मधुतैलवस्ति ।

एरंडकाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम् । शतपुष्पापलाद्धेन सैंधवार्षेन संयुतम् ॥ मधुतैलकसंज्ञोयं वस्तिः खजविलोडितः । मेदो गुल्मकृमिष्ठीहमलोदावर्त्तनाशनः ॥ बलवर्णकरश्चैव वृष्यो वृंहणदीपनः ॥

अर्थ—अंडकी जडका काढा ८ पल, सहत और तेल ये चार २ पल, सौंफ और सैंधानिमक आधे २ पल लेके सबको एकजगे एकत्रकर गडमड कर लेवे, इसको मधुतैलक वस्ती कहतेहैं, यह गुदामें देनेसे भेदोरोगको, गलेके रोगको, कृमिरोगको, ष्ठीह और उदावर्त्त इनको नाशकरे । और यह वस्ती बल तथा क्वांति और स्त्रीसंगमें प्रीति, धातुकी वृद्धि देय है और अग्निको प्रदीप्तकरे हैं ॥

दीपनवस्ति ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रमृतिं प्रमृतिं भवेत् ।

हपुषा सैंधवाक्षांशौ वस्तिः स्यादीपनः परः ॥

अर्थ—सहत, घी, दूध, प्रत्येक दो दो पल तथा हाटघेर और सैंधानिमक दोनों कर्षभरलेय, बारीक पीस उस सहत, घी और दूधमें मिलायके जठराग्नि प्रदीप्त होनेके वास्ते वस्ती देवे । इसे दीपनवस्ती कहते हैं ॥

युक्तरथवस्ति ।

एरंडमूलनिःक्वाथो मधुतैलं ससैंधवम् ।

एष युक्तरथो वस्तिःसवचापिप्पलीफलः ॥

अर्थ—अंडकीजडका काढा करके उसमें सहत और तेल डालके सैंधानिमक वच, पीपल और भैंनफल ये चार औषध समान भागले चूर्णकर उस काठिमें मिलायके गुदामें वस्ती (पिचकारी) मारे इसको युक्तरथवस्ती कहते हैं यह वस्ती सर्व रोगोंपर है ॥

सिद्धवस्ति ।

पंचमूलस्यनिःक्वाथस्तैलंमागधिकामधु ।

ससैंधवःसमधुकःसिद्धवस्तिरितिस्मृतः ॥

अर्थ—पंचमूलका काढा करके तेल, पीपलकानूर्ण, सैंधानिमक और महुआकीछाल अथवा गुलहटी ये सब उस काठिमें डालके वस्ती देनी चाहिये । इसको सिद्धवस्ती कहते हैं । यह वस्ती सर्व रोगोंपर है ॥

वस्तीमें सेव्य पदार्थ और निषिद्ध पदार्थ ।

स्नानमुष्णोदकैःकुर्याद्दिवास्वप्नप्रमर्जीर्णताम् ।

वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवित् ॥

अर्थ—पिचकारी लगनेवाला मनुष्य गरम पानीसे स्नानकरे । दिनमें सोवे नहीं तथा अजीर्ण होने दे नहीं तथा दूसरे सब आचरण स्नेहवस्तीके समान करने चाहिये ॥

उत्तरवस्तिकीविधि ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । निरूहादुत्तरो
यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञितः ॥ द्वादशांगुलकं नेत्रमध्ये च
कृतकर्णिकम् । मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्पनिर्गमम् ॥

अर्थ—अब इसके उपरांत मैं उत्तर वस्तीका प्रमाण कहता हूँ । निरूहवस्तीके उत्तर होनेसे इसको उत्तरवस्ती कहते हैं। इसकी बारह अंगुलकी लंबी नली होकर उस नलीका मध्यभाग कमलपत्तेके कर्णिकाके समान

करे । और वो नली मालतीफूलके बराबर मोटी होकर उसमें सरसों चली जाय इतना बड़ा छिद्र करना चाहिये ॥

वयोनुमानकरके मात्राका प्रमाण ।

पंचविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ।

तदूर्ध्वं पलमानंच स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः ॥

अर्थ—मनुष्यकी पचीस वर्षकी अवस्था होने पर्यंत वस्ती विषयमें स्नेहकी मात्रा दोकर्ष प्रमाण विचक्षण वैद्य देवे । तथा पचीसवर्षके उपरांत १ पलकी मात्रा देनी चाहिये ॥

उत्तरवस्तीकी योजना कैसे करावे उसे कहते हैं ।

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः । स्थितस्य
जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया ॥ स्निग्धया मेढूमार्गे
च ततो नेत्रं नियोजयेत् । शनैःशनैर्घृताभ्यक्तं मेढूरंध्रे-
द्बुलानि पट् ॥ ततोवपीडयेद्दस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत् ।
ततःप्रत्यागते स्नेहेस्नेहवस्तिक्रमोहितः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती करके शुद्धहृष्ट तथा स्नान और भोजन इन करके तृप्त हुए ऐसे मनुष्यको आसनपर घोटू टेकके बैठाने फिर यथायोग्य सलाई सचिकणहो उस सलाईकी नलीमें घी लगायके शिस्नमार्ग (लिंगके छिद्र) में प्रवेश करे, तथा उस नलीको लिंगके भीतर धीरे २ छः अंगुल प्रवेश कर पिचकारीमारे फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे, जब भीतरका स्नेह बाहर आय जाय तो उत्तम वस्तिकर्म होता है । इसी प्रकार स्नेहवस्ती क्रम जानना ॥

स्त्रियोंके वस्तिदेनेका प्रमाण ।

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् । मुद्गप्रवेशं
योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलम् ॥ द्व्यंगुलं मूत्रमार्गेच सूक्ष्मं
नेत्रं नियोजयेत् ॥

अर्थ—स्त्रियोंके वस्ती देनेमें उस वस्तीकी नली छोटी अंगुलीके समान मोटी और दस अंगुल लंबीहो, तथा उसका छिद्र इतना बड़ा होवे कि,

जिस में मूंग चली जाय । तथा उस नलीके योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । परंतु स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बारीक नली प्रवेशकरे तो उस नलीका दो अंगुल प्रवेश होनेपर पिचकारी मारनी चाहिये बालकोंके वस्तिदेनेके विषयमें प्रमाण ।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।

शनैर्निकंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रविचक्षणैः ॥

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्र विकारमें वैद्य जैसे हाथ नहिले ऐसे धीरे २ बारीक नलीको उसकी इंद्रियोंमें १ अंगुल प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥

स्त्री और बालकोंके वस्तिदेनेमें स्नेहकी मात्रा ।

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालकी । मूत्र-
मार्गं पलोन्माना बालानां च द्विकार्पिकी ॥ उत्ता-
नायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः । अप्रत्यागच्छ-
ति भिषक् वस्तावुत्तरसंज्ञिके ॥

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमें वस्तीकर्म करनेमें स्नेहकी मात्रा दोपल जाननी तथा स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें वस्ती देनी होय तो स्नेहकी मात्रा १पलकी जाननी तथा बालकोंके दो कर्पकी मात्रा जाननी । और उत्तर संज्ञक वस्तीमें कुशलवैद्य उस स्त्रीको सीधी चित्त लिटाय कर उसके घोटू ऊपरको धर फिर वो स्नेह ऐसे बाहर न आवे ऐसी पिचकारी मारे ॥

शोधनद्रव्यकरके वस्तीका विधान ।

भूयोवस्ति निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गणैः । फलवर्तानि
दध्याद्वा योनिमार्गं दृढं भिषक् ॥ सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां
शोधनद्रव्यसंयुताम् । दद्यात्तथा वस्तौ दद्याद्द्विस्त वि-
चक्षणः ॥ क्षीरवृक्षकपायेण पयसाशीतलेन च ॥ वस्ति
शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ॥ हन्यादुत्तरवस्ति
स्तु नोचिता मोहिनां क्वचित् ॥

अर्थ—मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंमें शोधनद्रव्य (अंडीका तेल आदि) जो औषधी उनके समुदायोंकरके योनिके मार्गमें पिचकारी मारे अथवा अंडीके बीज आदि औषधोंकी दृढ वस्ती बनाय अथवा सूतकीवस्ती बनाय

उसवत्तीमें एरंड वीजादिक औषधी चुपडके उसको योनिमें प्रवेश करनी चाहिये । यदि उसवत्तीके अधोभागमें वस्तिस्थानहै वो विगडजावे अर्थात् उसमें दाहादिक होवेतो गूलर, बड इत्यादि क्षीरवृक्षहै उनका काढा करके वस्ती देवे । अथवा शीतल दूधकी वस्तिदेवे तो वस्तिस्थान शुद्धहो । और यह वस्ती शुक्रघातु संबंधी जिस पुरुषके पीडाहोती हो उसके तथा स्त्रियोंके आर्त्तव संबंधी पीडा होतीहोवे उनको दूर करती है । तथा जिस मनुष्यके प्रमेहहै उसके उत्तरवस्ती कभी उपयोगी नहीं होवे ऐसा जानना ॥

उत्तमउत्तरवस्तिहोनेके लक्षण ।

सम्यक्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रमएव च ।

वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य श्मनं स्नेहवस्तिना ॥

अर्थ—उत्तरवस्ती स्नेहवस्ती करके उत्तम प्रकार योजना करीहुई उसके लक्षण क्रमकरके येहै शुक्रघातु संबंधी जो प्रमेहादिक पीडा वह दूर होती है

गुदामें फलवर्तीकी योजना ।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णस्वांगुष्ठसंनिभा ।

मलप्रवर्तिनीवर्तिःफलवर्तिश्चसास्मृता ॥

अर्थ—गुदामें घी लगायके रोगीके अंगूठेके प्रमाण उत्तम दृढवत्ती बनाय मलहोनेके वास्ते अंडीके बीज आदि जो रेचक औषध उनका उस वत्तीमें लेप कर उसको गुदामें धरे तो मल निकले, इस वत्तीको फलवर्ती कहते है ॥

नस्यविधिः ।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासा ग्राह्यं यदोषधम् ।

नावनं नस्यकमेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥

अर्थ जो औषध नाकमें डाली जावे उसको नस्य कहते है उस नस्यके नाम नावन और नस्यकर्म ऐसे दोजानने ॥

नस्यकेभेद ।

नस्यभेदो द्विधाप्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ।

रेचनं कर्पणं प्रोक्तं स्नेहनं वृंहणं मतम् ॥

अर्थ-इस नस्यके दो भेदहैं-एक रेचन और एक स्नेहन, इनमें जो नस्य रेचन है उसको कर्षणसंज्ञक जाननी अर्थात् वातादि दोषोंको उच्छेद करता है एवं जो स्नेहन नस्य है उसको बृंहण जाननी ये धातुवृद्धिकरनेवाली है.

नस्यकाकाल ।

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्नके ।

दिनस्य गृह्यते नित्यं रात्रौ वाप्युत्कटे गदे ॥

अर्थ-कफके नाशकरनेको नस्य प्रातःकालमें ले, पित्तके नाशको दोपहरमें ले, वादीके नाशकरने को औषधी नासिकामें सायंकालमें डालनी, यदि रोगका अत्यंत बल होयतो रात्रिमेंभी डालना कहा है ॥

नस्यकानिषेध ।

नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पणे ॥ तथा नवप्र-
तिश्यायी गर्भिणी गरदूपितः ॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च
पीतस्नेहोदकासवः । क्रुद्धःशोकाभिभूतश्च तृपातो
वृद्धबालकौ ॥ वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥

अर्थ-नाकमें नस्य डालना होय तो भोजनके अंतमें जिसदिन, बदल होय उसदिन और अपतर्पण तथा लंपनकराहो इनमें नस्य न देवे । जिसके नवीन पीनसरोग हुआहो, गर्भिणीस्त्री तथा विषदोषकरके तथा अजीर्णकरके पीडित मनुष्य तथा जिसके वस्तिप्रयोग कराहै तथा घृत, तेल इत्यादिक स्नेह और पानी तथा मद्य इनका सेवन करेद्वय मनुष्यके, क्रोधी, शोक करे तथा तृपाकरके पीडित, वृद्ध, बालक, घात मूत्र इनका निरोध करनेवाला मनुष्य तथा स्नानकराहुआ तथा स्नान करनेको जो तयार हो इन सब मनुष्योंको नस्य न देवे ॥

नस्यकर्ममेंयोग्यअयोग्यमनुष्य ।

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्मसमाचरेत् ।

अशीतिवर्षाद्बर्ध्वचनावननैवदीयते ॥

अर्थ-आठवर्षके बालके नाकमें औषधी डाले और अस्सी वर्षके उपरांत अवस्था बालके नाकमें औषधी नहीं डालनी चाहिये ॥

रेचकनस्यकाविधान ।

अथवैरेचकं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ।

तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः काथै रसैस्तथा ॥

अर्थ—जो रेचन नस्य नाममें डालनीवो अजवायन, सरसों इत्यादिकोंके तीक्ष्णतेल निकालके नाममें डाले अथवा तीक्ष्ण औषध डालके स्नेह सिद्धकरे अथवा तीक्ष्ण औषधका काठा अथवा रस इनसे स्नेह सिद्ध करके नाममें डाले ॥

रेचननस्यप्रकार ।

नासिकारंध्रयोरष्टौ पट्टचत्वारश्च विदवः ।

प्रत्येकं रेचने योज्यामुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥

अर्थ—रेचनके वास्ते नाकके दोनो छिद्रोंमें औषधकी आठ विट्टु डालना यह उत्तम मात्राहै, छः विट्टु डालनेसे मध्य मात्रा जाननी और चारबूंद डालनेसे कनिष्ठमात्रा जाननी चाहिये ॥

नस्यकर्ममें औषधीका प्रमाण ।

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् । हिगुस्या-
द्यवमात्रं तु मापैकं सैधवं मतम् ॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं
स्यात्पानीयं च त्रिकार्पिकम् । कार्पिकं मधुरं द्रव्यं
नस्यकर्मणि योजयेत् ॥

अर्थ—नस्यकर्ममें जो तीक्ष्ण औषधी होय वो एक शाण प्रमाण डाले । तथा हर्ष एक यव प्रमाण, सैधानिमक १ मासे, दूध आठ शाण, पानी तीनकर्ष और खांड, अनार इत्यादिक मधुरद्रव्य जो है वो प्रत्येक कर्षलेवे, इस प्रकार इनकी योजनाकरे ॥

विरेचननस्यकेदूसरेदोभेद ।

अवपीडःप्रथमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ।

शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ॥

अर्थ—उस विरेचन नस्यके दो भेदहै एक अवपीडन तथा दूसरा प्रथमन, ऐसे जानना इन दोनोंकी मस्तकके विरेचनमें देना चाहिये ॥

अवपीडन और प्रथमनकेलक्षण ।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः । सोवपीडः

समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः॥पडंगुलाद्विवक्राया नाडी-
चूर्णं तथा धमेत्॥तीक्ष्णकोलमितं वक्रवातैःप्रथमनं हितत् ॥

अर्थ—अब उन दोनोंके लक्षण कहते हैं—तीक्ष्ण औपधकी पीस उसका कल्ककर निचोडनेसे जो रस निकलताहै उसको अवपीड कहतेहैं । तथा लःअंगुल प्रमाण लंबी और सीधी ऐसी नली करके उसमें तीक्ष्ण चूर्ण १ कोल प्रमाण डालके मुखकी हवासे नाकमें फूकदेना उसको प्रथमन कहतेहैं॥

रेचन और स्नेहननस्यकेयोग्य ।

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये।अरोचके प्रतिश्या-
ये शिरःशूले च पीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वै
रेचनं हितम् । भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन दीयते ॥

अर्थ—ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, कफ संबंधी स्वरभंग, अरुचि सरेकमां, मस्तक-
शूल, पीनस, सूजन, अपस्मार, कुष्ठ इनरोगोंमें रेचक नस्य हितकारी
जाननी—डरपा हुआ मनुष्य, कृश मनुष्य तथा बालक और स्त्री इनको
स्नेहयुक्त नस्य देवे ॥

अवपीडननस्ययोग्य ।

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ।

मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ॥

अर्थ—गलरोग, संनिपात, अत्यंत निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार
और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देय ॥

प्रथमननस्यकेयोग्य ।

अत्यंतोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ।

चूर्णं प्रथमनं धीरैस्ताद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥

अर्थ—मूर्च्छा, अपस्मारादिक, संज्ञा नष्टहोय जिससे ऐसे संन्यासादि-
करोग—इनमें अत्यंत तीक्ष्ण ऐसे प्रथमनसंज्ञक चूर्णकी नस्य देवे ॥

रेचनसंज्ञकनस्य ।

नस्यं स्याद्बहुशुंठीभ्यां पिप्पलीसैधवेन च ।

जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥

हनुमन्यागलोद्भूता नश्यति भुजपृष्ठजाः ॥

अर्थ—सोंठको गरमपानीमें औंढाय उसमें गुडडालके नस्य देवे । पीपल और सैंधानिमक इनको गरमपानीमें औंढाय नाकमें डाले तो इस्से नेत्र, कान, मस्तक, ठोड़ी, मन्यानाडी, भुजा और पीठ इनमें जो पीडाहोती है सो दूरहोय ॥

रेचननस्यकी दूसरीविधि ।

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचा मरिचसैधवैः ।

नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥

अपस्मारितथोन्मादेसंनिपातेपतंत्रके ॥

अर्थ—महुआकी लफ्डीकी भीतरका गूदा, पीपल, वच, कालीभिरच और सैंधानिमक ये औषध गरम जलमें पीसके नस्य देवे तो मृगा, उन्माद, संनिपात और अपतंत्रक वायु इत्यादि जिनसे चेष्टा ज्ञान ये नष्ट होते हैं वो दूरहोकर मनुष्य शीघ्र सावधान होवे इसप्रकार जानना ॥

रेचननस्यकातीसराप्रकार ।

सैधवं श्वेतमरिचं सर्पपा कुष्ठमेव च ।

वस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥

अर्थ—सैंधानिमक, सपेदमिरच, पीलीसरसों और कूट इन औषधोंको बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो नेत्रोंमें तंद्रा आती है वो दूरहो । तथा पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग दूरहों ॥

प्रधमनसंज्ञकनस्य ।

रोहितमत्स्यपित्तेन भावितं सैधवं वचा । मरिचं पिप्प-
ली गुंठी कंकोलं लशुनं पुरम् ॥ कटफलं चेति तच्चूर्णं
देयं प्रधमनं बुधेः ॥

अर्थ—सैंधानिमक, वच, कालीभिरच, पीपल, सोंठ, कंकोल, लहसन, गूगल और कायफल इनका चूर्ण कर रोहित (रोहू) संज्ञक मछलीके पित्तके चूर्णमें पुटदेवे, फिर पूर्वप्रधमनके लक्षणमें नलीका मान वह आर्षं उसरीतिसे नलीले उसमें यह चूर्णभरके नाकमें फूंकदेवे । इस करके पूर्वोक्त अपतत्रादिक रोग दूर होते हैं । इस चूर्णको प्रधमन एसा कहते हैं ॥

बृंहणनस्यकी कल्पना ।

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पनाकथ्यतेऽधुना । मर्ज्ञश्च प्रति-

मर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ मर्शस्य तर्पणीमात्रा मुख्या
 शाणैः स्मृताष्टभिः । मध्यमा च चतुःशाणैर्हीनाशाणमिता
 स्मृता ॥ एकैकस्मिन्स्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः । मर्शस्य
 द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषवलावलम् ॥ एकांतरं द्रव्यंतरं वा
 नस्यंदद्याद्विचक्षणः । अहःपंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितः ॥

अर्थ—अब वृंहण नस्य (धातुवृद्धि करनेवाली तथा नाकमें औषध
 डालनेवाली ऐसी नस्य) कल्पना कहताहूँ, उस वृंहण नस्यके दो भेद
 हैं १ मर्श और २ प्रतिमर्श ये दोनों स्नेहन विषयमें योग्य हैं । इनमें
 मर्शनस्यकी तर्पणी मात्रा जाननी, वो आठ शाणकी मुख्य मात्रा है ।
 तथा चार शाणकी मध्यम मात्रा है । और एकशाणकी हीनमात्रा जाननी
 ये मात्रादोषोंका बलावल देखके मनुष्यको वस्त्रादिकसे ढककर एक एक
 नाकके पुटमें दो दो बार अथवा तीन तीन बार अथवा एकदिन बीचमें
 देकर तथा दोदिन बीचमें देकर अथवा तीन दिन बीचमें अथवा पांचवे
 या सातवे दिन नस्य देनी चाहिये ॥

मर्शसंज्ञक नस्य तथा विरेचनसंज्ञक नस्य इनके आधिक्य
 होनेसे जो रोग होते हैं उनका उपाय ।

मर्शोऽशिराविकारे च व्यापदो विविधाः स्मृताः । दोषो
 त्केशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ दोषोत्केश
 निमित्तासुयुंज्याद्ब्रमनशोधनम् । अथ क्षयनिमित्तासु
 यथास्वंवृंहणं मतम् ॥

अर्थ—मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकोंकी वृद्धिकरनेवाली है । उसके
 आधिक्य होनेसे तथा दोषोंकी वृद्धि होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें
 विरेचनसंज्ञक नस्यकी मात्रा अधिक होकर मस्तकके भीतरके मेदादिकों
 का क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है जिस दोषके उत्कर्ष निमित्त
 जो पीडा होय उसके दूर होनेको ब्रमन तथा विरेचन औषध देवे ।
 तथा क्षय निमित्तसे जो पीडा होती है उसके दूर करनेको धातुवृद्धि
 करनेवाली औषध नाकमें अथवा पेटमें खानेके वास्ते देवे ॥

जो वृंहण नस्यमें योग्य है ।

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्थिभेदके । दंतरोगे बले

हीने मन्यावाहंसजे गदे ॥ सुखशोपे कर्णनादे वात-
पित्तगदे तथा । अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ।
युज्यते वृंहणं नस्यं स्नेहैर्वामधुरद्रवैः ॥

अर्थ—मस्तकरोग, नास्यारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्तरोग, आधासीसी, दंतरोग, दुर्बलमनुष्य, मन्यानाडी, भुजा, कंधा इनमें जिसके पीटा होती हो तथा सुख-शोप, कर्णनादरोग, वातपित्तसंबंधी विकार, विनासमयके वालोंका सपेदहो ना सो पलित कहाताहै, मस्तकके बाल, डाढीके बाल उखड २ के गिरे वोतथा इन्द्रलुत्तरोग इन सब रोगोंमें घृतआदि स्निग्ध पदार्थ करके तथा मिश्री आदि जो मधुरपदार्थ हैं इन करके नस्य देना चाहिये ॥

पक्षावातादि रोगोंपर नस्य ।

मापात्सुगुप्पारात्त्राभिर्बमाऋभुकरोहिषैः । कृतोश्वगंधया
क्वाथो हिगुसैधवसंयुतः ॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं
सकंपनम् । जयेदार्दितवातं च मन्यास्तंभापवाहुकम् ॥

अर्थ—उडद, कौंचके धीज, रास्ना, बलाकीजड, बंडकीजड, सुगंधतृण, असगंध इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भुंजीर्हांग और सैधानि-मक डालके गरम गरम उस काढेकी नस्य देवे, जिससे कंप सहित पक्षाघात वायु, अर्दितवायु, मन्यास्तंभवायु तथा अपवाहुकवायु ये दूरहोय ॥

प्रतिमर्शनस्यकी दो विंदुरूपमात्रा ।

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विविंदुमिता मता ।

प्रत्येकशोनस्तकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥

अर्थ—घृतआदि करके जो स्निग्धपदार्थ उनके दो श्लुंद् एक २ नासि-काके पुष्टमें डालनेसे वह प्रतिमर्शनस्यकी दोविंदु मात्रा जाननी ॥

विंदुसंज्ञकमात्रा ।

स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः। तर्जनीयं स्रवेत्
विन्दुः सा मात्रा विन्दुसंज्ञिता ॥ एवंविधैर्विन्दुसंज्ञैरष्टभिः
ज्ञाण उच्यते। सदेयो मर्शनस्येतु प्रतिमर्शो द्विविन्दुकः ॥

अर्थ—धी तेल आदिसे जो स्नेहपदार्थ तिनमें तर्जनी टंगलीके दो

पोरुआ बूडजावे ऐसी तर्जनीको निकालके उस पोरुआसे जो बूंद टपकाई जावे उसको विंदुमात्रा कहतेहैं। इसप्रकार विंदुसंज्ञक आठ मात्राओंकी एक शाण संज्ञक तोल होतीहै । वो शाणमात्रा मर्शनस्यमें देवे । और प्रतिमर्शनस्यमें दो बूंदकीदेय, इतनाही मर्शनस्य और प्रतिमर्श इनमें विशेषताहै ॥

प्रतिमर्शनस्यकासमय ।

समयाःप्रतिमर्शस्य बुधैःप्रोक्ताश्चतुर्दश । प्रभाते दंतका-
ष्टान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥ व्यायामाध्वव्यवायांतेविष्मू-
त्रान्तेजने कृते । कवलान्ते भोजनान्ते दिवास्वप्रोत्थि-
ते तथा ॥ वमनांते तथासायं प्रतिमर्शःप्रयुज्यते ॥

अर्थ—प्रतिमर्शनस्यके १४ समयहैं, जैसे १ प्रातःकाल २ मुख धोनेके समय ३ घरसे बाहर निकलनेके समय ४ परिश्रमके अंतमें ५ रस्ताचलकर अनिपर ६ मैथुनके अंतमें ७ मल और ८ मूत्रकरनेके अंतमें ९ नेत्रोंमें अंजन करनेके उपरांत १० आसके तथा ११ भोजन तथा १२ दिवसमें सोयकर, उठनेके समय १३ वमनके अंतमें १४ सायंकाल इतने समय प्रतिमर्शसंज्ञक नस्यदेवे ॥

प्रतिमर्शद्वारातृप्तहुएकेलक्षण ।

ईपदुच्छिकनात्स्नेहो यदा वक्रं प्रपद्यते ।

नस्ये निपित्तं तं दद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥

उच्छिदं न पिबेच्चैतन्निष्टीवेन्मुखमागतम् ॥

अर्थ—नस्यदेनेपर थोड़ी छींक आनकर वो स्नेह मुखमें उतरजावे तो उसमनुष्यको प्रतिमर्श नस्यकरके तृप्तहुआ जानना तथा मुखमें जो उतर-आया स्नेह उसको निगले नहीं किंतु थूकके बाहर पटक देवे ॥

प्रतिमर्शकेयोग्य ।

क्षीणे तृष्णास्यशोपातं बाले वृद्धे च युज्यते ।

प्रतिमर्शेन शाम्भंति रोगाश्चैवोर्ध्वचञ्जुजाः ॥

बलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् ॥

अर्थ—धातुक्षीणमनुष्य, बालक, वृद्ध तथा और मुखशोष इन करके पीडित मनुष्योंके प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देना चाहिये, तो उक्तरोग दूरहो

तथा नाडके ऊपरके जो रोगहै वो तथा त्वचाका सिथिलपना, कुसमय सपेद वालोंका होना उसको बलीपलित कहते हैं ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्श-संज्ञक नस्यसे दूरहो तथा तेजादिक इन्द्रियोंमें बलबढे ॥

कुसमयसपेदबालहोनेपरनस्य ।

विभीतनिंबकंभारी शिवा शेलुश्च काकिनी ।

एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥

अर्थ—बहेडा, नीमकी छाल, कंभारी, हरड, बहुवार, काकडोडी इनके बीजके भीतरकी मिमीका तेल पृथक् २ निकाल कर एक एक न्यारी २ नस्य देवे तो मनुष्यके बिना समय जो बाल सपेद हुएहैं वो तरुणावस्थाके समान काले होय निश्चय ॥

नस्यकीविधि ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे । देशे वातरजो मुक्ते कृतदन्तनिर्धर्षणम् ॥ विशुद्धं धूमपानेन स्वित्रमाल- गलं तथा । उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलंबशिरसनरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् । समुन्न- मितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ कोष्णमच्छिन्नधा- रं च हेमतारादिशुक्तिभिः । शुक्त्या वा यंत्रयुक्त्यावा प्लुतैर्वानस्यमाचरेत् ॥

अर्थ—नस्य देनेके वास्ते नस्यकी विधि कहते हैं—जिस स्थानमें वायु अथ- वा धूल न होवे वहाँ मनुष्य दांतुन और धूमपान करके कपाल और गले- को शुद्ध कर पसीने युक्त करावे, फिर सीधा (चित्त) सुलाय मस्तकको लंबा और कुछ नीचेकी तरफ झुकता कर हाथपैरोंको लंबे पसारदे फिर कपडेसे नेत्रोंको ढाँके वैद्य अपने हाथसे मनुष्यकी नाकको ऊँचीकर जो नस्य डालनेकी वस्तु है उसकुछ २ गरमको एकसी धारसे तथा उस नस्यको सुवर्ण, चाँदी इनके पात्र करके अथवा सीप करके तथा कौंडी वा फोहसे नाकमें निचोडदेवे, दोनों नथनोंमें समान निचोडे ॥

नस्यग्रहणमेंआज्ञा ।

नस्येष्वसिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकंपयेत् । नकुप्येन्नप्रभा-

पेत नोच्छिद्येन्न हसेत्तथा ॥ एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः
संप्रपद्यते । ततःकासप्रतिश्याय शिरोक्षिगदसंभवः ॥

अर्थ—मनुष्य नस्यलेते वखत मस्तकको कंपावे नहीं तथा क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, किसी तिनका आदिको तोडे नहीं, न हसे यदि इसप्रकार न करेगा तो वो नस्य पदार्थ मस्तकके भीतर अच्छे प्रकार प्रवेशनहीं करनेका और खांसी, सरकमा और मस्तक, नेत्र इनमें पीडा आदि उपद्रव होने लगते हैं ॥ अतएव बड़ी सावधानीके साथ नस्य ग्रहण करना चाहिये ॥

नस्यसधारणकाप्रकार ।

शृंगाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्नगलद्रवम् । पंचसप्तदशैव-
स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे ॥ उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासाव-
वक्रगतं द्रवम् । वामदक्षिणपार्श्वभ्यांनिष्ठीवेत्सन्मुखे नहि ॥

अर्थ—मनुष्यको नस्य देकर नासावंशके आगे भ्रूमध्य देशमें चतुष्पथ (चौराहेके समान) है उसको उस नस्यके स्नेहसे भिगोय उस नस्यको धरदेवे । उसका धारण ५।७ मात्रा अथवा दशमात्रा कालपर्यंत करे, फिर बैठारहे और नाकमें तथा मुखमें डतरा जो पानी वा कफ उसको दहनी तरफ अथवा बाई तरफ धूकता जावे साहजने न धूके ॥

नस्यकर्मकरनेमेवाजितवस्तु ।

नस्ये नति मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् । शयीत
निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानो वाक्शतं नरः ॥ तथैवरेचनस्यां-
ते धूमो वा कवलो हितः ॥

अर्थ—नस्यकर्म होनेके उपरांत मनमें संताप न आने दे, जहां धूर उड-
तीहो तहां बैठे नहीं तथा क्रोध न करे, जैसे नींद न आवे इसप्रकार
सौवाक् (सोवार पलक खुले मुँदे इतने समय) पर्यंत सीधा सुलावे ।
इसीप्रकार धिरेचन नस्यके अंतमें धूम और ग्रास ये न देवे ॥

नस्यमेंशुद्धादिभेद ।

• नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः ।
शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रार्चितकैः ॥

अर्थ-नस्यमे शुद्धिलक्षण तथा हीनयोगलक्षण तथा अतियोगलक्षण ये तीन ही लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञ वैद्योंने कहे हैं उन लक्षणोंको आगे संक्षेपसे कहते हैं ॥

उत्तमशुद्धीकेलक्षण ।

लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ।

चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तकभी उत्तमशुद्धि होनेसे शरीर हलकाहो, मन शुद्धहो तथा मुख, नाक, कान गुदा इत्यादि बाहिर्द्वारवाले मार्ग उनका शोधन होनाहै । तथा शिरारोगादिक दूरहो, अंतःकरण और नेत्रादिषु इन्द्री ये प्रसन्न रहतीहै ॥

हीनशुद्धिकेलक्षण ।

कंडूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंज्ञवः ।

मूर्ध्निहीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अल्पशुद्धि होनेसे देहमें खुजली तथा भारीपणा ये लक्षण होतेहैं तथा मुख नासिकादिक बाहिर्द्वार है उनसे कफका स्राव होता है ॥

अतिशुद्धिके लक्षण ।

मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ।

शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्निगाढं विरेचिते ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अत्यंत शुद्धिहोनेसे मस्तकके भीतरजो तरल पदार्थ रहताहै उसका नाकसे स्राव होने लगे तथा वायुकी वृद्धि होय, इन्द्रियोंका विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आती है ॥

हीनशुद्ध्यादिमेचिकित्सा ।

हीनातिशुद्धे शिरसि कफचातप्रमाचरेत् ।

सम्यक्शुद्धे शिरसि सर्पिनस्ये निषेचयेत् ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अल्पशुद्धि अथवा अत्यंत शुद्धिहोनेसे कफ वायु हारक ऐसी नस्य देवे तथा उत्तमशुद्धि होनेसे नाकमें पीका नासदेवे ॥

आतिस्निग्धकेलक्षण ।

कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ।

लक्षणं तदतिस्निग्धरूक्षं तत्र प्रदापयेत् ॥

अर्थ-नस्य करके मनुष्यका मस्तक अति स्निग्धहोनेसे कफका स्राव, मस्तकका भारीपना, इन्द्रियोकी भ्रांति ये लक्षण होते हैं । इस कारण इस अत्यंत सिग्धताके दूर करनेको रूक्षपदार्थकी नस्य देवे ॥

नस्यमेंपथ्य ।

भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचरितमादिशेत् ॥

अर्थ-नस्यलेनेवाला मनुष्य अभिष्यदी पदार्थ अर्थात् भैसका दही आदि कफकारी पदार्थ भक्षण न करे और नस्यमें जैसे शिष्टजन आचरण करते हैं उसप्रकार आचरण करे । ये नस्यकर्ममें पथ्य है ।

पंचकर्मांकीसख्या ।

वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम् ।

एतानि पंचकर्माणि कथितानिमुनीश्वरैः ॥

अर्थ-वमन, रेचन, नस्य, निरूहवस्ती और अनुवासनवस्ती इन पाँचोंको पंचकर्म कहते हैं ॥

धूमपानविधिः ॥

धूमस्तु पङ्क्तिः प्रोक्तः शमनो वृंहणस्तथा ।

रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥

अर्थ-धूमपान छःप्रकारका है उनके नाम-शमन, १ वृंहण, २ रेचन, ३ कासप्र, ४ वामन ५ और व्रणधूपन ६ इसप्रकार छःप्रकार जानने ॥

शमनादिकधूमोंकेपर्यायशब्द ।

शमनस्यतुपर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ।

वृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेवच ॥

रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥

अर्थ-तहां शमनधूमके पर्यायवाचक शब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो हैं तथा वृंहणधूमके पर्यायशब्द स्नेह और मृदु जानने । तथा रेचन धूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ॥

धूमसेवनके अयोग्य ।

अधूमार्हाश्च खल्वेते शांतो भीरुश्च दुःखितः । दत्तव-

स्तिर्विरक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासितश्च
दाहार्तस्तालुशोपी तथोदरी । शिरोभितापी तिमिरी
छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पांडुरोगी
च गर्भिणी । रूक्षःक्षीणोभ्यवहृतः क्षीरक्षौद्रघृतासवैः ॥
भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा । अकाले
चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥

अर्थ—भ्रमितमनुष्य, डरपाहुआ, दुःखसे पीडितमनुष्य, जिसके वस्ती-
प्रयोग करा, जिसका कोठा दस्तकरके रीताहो वह, रात्रिमें जागने वाला,
तृषा करके पीडित तथा दाह करके पीडित, तालुशोपी, उदररोगी, शिरो-
भितापकरके पीडित, तिमिररोगी, वमन, वादीसे पेटफूलाहुआ, उरक्षत-
रोग, प्रमेह, पांडुरोग इनकरके पीडित मनुष्य, गर्भिणीस्त्री, रुक्ष तथा
क्षीणमनुष्य, दूध, घी और आसव (मद्य) अन्न, दही और मछली इनका
भक्षणकरनेवाला मनुष्य तथा बालक और दुर्बलमनुष्य ये धूमपानमें
अयोग्यहैं । यदि कुसमयमें अत्यंत धूमपानकरे तो वह घोर उपद्रवोंको करे
हैं । अतएव उक्त मनुष्यों को तथा कुसमय धूमपान करना त्यागदेवे ॥

धूमपानके उपद्रवोंका यत्न ।

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनांजनतर्पणम् । सर्पिरिक्षुरसं
द्राक्षा पयो वा शर्करांबु वा ॥ मधुराम्लौ रसौ वापि
शमनाय प्रदापयेत् ॥

अर्थ—धूमपानसे यदि उपद्रव होवे तो उस मनुष्यको घी पिवावे । नासि-
काभं नस्य देवे तथा नेत्रोंमें अंजन तथा तर्पण अर्थात् देहमें तृप्ति करनेवाला
ऐसा द्राक्षादि मंड देवे । तथा घी, ईखका रस और दाख, दूध, सरवत
अथवा मिर्ची, पानी अथवा मधुपदार्थ और खट्टेपदार्थ भोजनको देवे,
तो धूमपानसंबंधी उपद्रव दूरहो ॥

धूमपानका काल और उसके गुण ।

धूमश्च द्वादशाद्र्पाद्बृहत्तेशीतिकान्न च ।
कालश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ।
वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्भूमःसुयोजितः ॥

अर्थ—धूमपान चारहवर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षपर्यंत करे फिर न करे और उस धूमपानको उत्तम योजना होने से श्वास, सांसी, छे-प्पा, मन्यानाडी, ठोडी और मस्तकमें जो पीडा होतीहै उसको तथा वातकफ संबंधी विकार ये संपूर्ण रोग दूरहोवे ॥

धूमोपयोगहंनिपरगुण ।

धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनः ।

दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगंधिवदनो भवेत् ॥

अर्थ—धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादिक इन्द्री तथा वाणी, अंतःकरण इन करके प्रसन्न रहताहै और केश तथा दांत और डड्डी इनमें बल आताहै तथा मुख सुगंधित रहता है ॥

धूममेंनलीकाविधान ।

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखंडा च त्रिपर्विका । कनिष्ठिकाप
रीणाहा राजमापागमान्तरा ॥ धूमनाडी भवेदीर्घाशमने
रोगिणोगुलैः । चत्वारिंशन्मितैस्तद्द्वात्रिंशद्भिर्मृ
दौ स्मृता ॥ तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासत्रेपोडशो
न्मितैः । दशांगुलैर्वा मनीये तथा स्याद्गणनाडिका ॥
कलायमंडलस्थूला कुलित्यागमरंध्रिका ॥

अर्थ—धूमपानके विषयमें नली तीन टुकड़ेकी और तीन गांठी करे तथा कनिष्ठिका (छोटी अंगुली) के समान मोटीकरे तथा उसमें चौराका दाना भीतर चला जाय ऐसा चौड़ा छिद्र करे । इस प्रकारकी नली सामान्य धूमपानमें होनी चाहिये । यह नली रोगीके चालीस अंगुल लंबीहो । तथा मृदुसंज्ञक जो धूमहै उसके सेवनमें बत्तीसे अंगुलीकी लंबी लेय । तथा काससंज्ञक धूम उसके सेवनमें सोलह अंगुलीकी ले । तथा वामनीय संज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुललंबी लेनी । उसीप्रकार ग्रणके धूनी देनेको जो नली ले. वो दश अंगुलीकी ले तथा वो ग्रणके धूनी चाली नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी और उसमें छिद्र कुलधीका दाना भीतर चला जावे इतना बारीक करे । इस प्रकारकी बंधो बनानी चाहिये ॥

धूमपानार्थ ईपिकाका विधान ।

अथेपिकां प्रलिपेच्च तु श्लक्ष्णां द्वादशाङ्गुलाम् । धूमद्र
व्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टाङ्गुलःस्मृतः ॥ कल्ककर्ममितं
लित्वा छायाशुष्कं च कारयेत् । ईपिकामपनीयाथ स्ने-
हाक्तां वर्त्तिमादरात् ॥ अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य
रंध्रके । वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥ नासिका
भ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः । शरावसंपुटेक्षि-
त्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥ छिद्रे नेत्रं सुवेश्याथ व्रणं
तेनैव धूपयेत् ॥

अर्थ—ईपिका (सरकंडेका टुकड़ा) चारह अंगुलका चिकना लेवे,
उसपर धूँआँ लेनेकी वस्तुओंके कल्कका लेप ८ अंगुलपर्यंत करे कल्क
द्रव्यका परिमाण २ तोले होना चाहिये । फिर उसकल्कके लेपको छा-
यामें सुखाय लेवे, जब वो कल्क सुखजाय तब युक्तिके साथ उसमेंसे
सरकंडेके टुकड़ेको निकास लेवे, कि, वो कल्ककी लंबी नलीसी रह-
जावे, उसके छिद्रमें दूसरी स्नेहकी बत्ती धरके उसको अंगारोंसे जला-
यके पूर्वोक्तनलीके छिद्रमें धरे फिर उसनलीको मुखमें रखके धूँआ ईंचे
और मुखके द्वाराही उस धूपको छोडदेवे । तथा नाकके छिद्रसे धूँआँको
खाँचकर मुखसे छोडदे । एवं सरावसंपुटेके ऊपरले सरावमें छिद्रकर
उसमें अंगारे भरके उनमें व्रणकी धूनीको जो कि, कल्ककराहुआ तयारहै
उसे डालदे जब धूँआँ ठठने लग तब उसके उस छिद्रके द्वारपर नलीका
छिद्र लगाय व्रणकी धूनीदेवे ॥

कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूममें देवे ।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसमृदौ । रेचने तीक्ष्ण
कल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोपणम् ॥ वामने स्नायुचर्माद्यं दद्या
द्धूमस्य पानकम् । व्रणे निववचाद्यं च धूपनं संप्रचक्षते ॥

अर्थ—शमन संज्ञक धूनी उसमें एलादिक औषधोंका गणहै उनका
कल्ककरके देय तथा मृदुसंज्ञक धूममें घृतादिक, स्नेह पदार्थोंमें राल डालके
कल्क करके देय । तथा रेचनसंज्ञक धूममें सरसों राई इत्यादि औषधोंका

कल्क करदेवे तथा कासघ्न धूमसे कटेरी और कालीमिरच इत्यादिक औषधोंका कल्क करके देय । तथा वामनधूम (वमन करानेवाली धूम) में स्नायु और चर्मादिकोंका कल्ककरके पान करनेको देवे तथा ब्रणमे नीम और वच इत्यादिकोंका कल्क करके धूम देवे ॥

बालग्रहादिदूरकरनेकोधूनी ।

अन्याहि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशांतये ॥ तद्यथा-मयूर-
रपिच्छं निवस्य पत्राणि बृहतीफलम् । मरिचं हिंशुमांसी
च बीजं कार्पाससंभवम् ॥ छागरोमाहिनिर्मोकं विष्टावै-
डालिकी तथा । गजदंतश्च तच्चूर्णं किंचिद्धृतविभिश्चि-
तम् ॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहाञ्जयेत् । पि-
शाचान् राक्षसान् जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत् । एष माहेश्व-
रो नाम्ना धूपः शिवमुखोद्गतः ॥

अर्थ—बालग्रहमे रोगशांतिके अर्थ घरमें धूनीदेनी तहां मयूरपिच्छादि धूनी कहते है—मोरके पंख १ नीमकेपत्ते २ कटेरीके फल ३ कालीमिरच ४ हिंशु ५ जटामांसी ६ कपासके बीज ७ वकरेके बाल ८ सापकी कुँ चली ९ बिल्लीकी विष्टा १० हाथीका दांत ११ इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण- कर और थोडासा इसमें घी भिलाय घरमें इस चूर्णकी धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह (शकुनी, घृतना, नैगमेयादि) तथा पिशाच, राक्षस इनके उपद्रव दूरहोय तथा सर्वप्रकारके ज्वर दूरहोवे । यह मयूरपिच्छादि धूनीहै इसी प्रकार माहेश्वरादि धूनी जानो ॥

धूममेंपरिहार ।

परिहारस्तु खंडेषु कार्यो रेचननस्यवत् ।

नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यापि ॥

अर्थ—रेचन सज्ञक नस्यमें रोगोंके परिहारके विषयमें जो उपाय कहाहै वोही उपाय इस धूमसे करावे । तथा नलीका मुख सुवर्णादी धातुका अथवा नरसल तथा वांस इत्यादिकोंका करावे ॥

धूमपीनेकायंत्र ।

चतुर्विंशत्यंगुलानि त्रीणि युक्तानि युक्तितः ।

योजिता या त्रिसंडेयं नलिका नेत्रसंज्ञिता ॥

अर्थ—चौधीस अंगुल लंबी तीन नली लेके युक्तीसे जोडे ये त्रिखंड नलिका इसीकी नेत्रसंज्ञाहै ॥

धूमपानकेगुण ।

मनस्तापं रजः क्रोधं धूमपाने निवारयेत् ॥

अर्थ—धूमपान करनेसे मनका संताप, रजोगुण क्रोध ये दूरहोते हैं ॥

गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

चतुर्विधः स्याद्गंडूषः स्नेहिकः शमनस्तथा ।

शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ॥

अर्थ—गंडूष (कुरलाकरना) चार प्रकारकाहै १ स्नेहिक, २ शमन, ३ शोधन और चौथा शोधन । तथा कवल (गस्सा—कौर) भी चार प्रकारकाहै ॥

स्नेहिकादिगंडूषोंकीदोषभेदकरकेयोजना ।

स्निग्धोष्णैः स्नेहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ।

पित्तकट्वम्ललवणरूपैः संशोधनः कफे ॥

कपायतिक्तमधुरैः कटुष्णै रोपणे व्रणे ।

चतुःप्रकारो गंडूषः कवलश्चापि कीर्तितः ॥

अर्थ—स्निग्ध और गरम पदार्थोंकरके जो कुरलेकरने उसको स्नेहिक गंडूष जानना । इसको वादीके रोगोंमें योजना करे । तथा मधुर और शीतल पदार्थके कुल्ले प्रसादन (शमनगंडूष) जानने उनको पित्तमें योजना करे । तथा तीक्ष्ण, खट्टे, खारी और गरम पदार्थके कुल्ले शोधन गंडूष कहाते हैं उनको कफके विषयमें योजना करना । तथा कपले, कटुष्ण और मधुर पदार्थ करके रोपण गंडूष जानना, इसको कुल्ल गरम करके व्रणमें योजना करे । इसीप्रकार कवलभी चार प्रकारका कहाहै ॥

गंडूषऔरकवलइनमेंभेद ।

असंचारी मुखे पूर्णे गंडूषः कवलश्चरः ।

तत्र द्रवेण गंडूषः कल्केन कवलः स्मृतः ॥

अर्थ—काटे आदिशब्दसे जो द्रवपदार्थ उनसे मुखको भरके उसको इधर उधर मुतमें चलायमान न करे थोड़ी देर रखके कुरलाकरदेवे उसको

तथा कल्कादिक पदार्थोंको मुखमें भरके इधर उधर फिरावे इसप्रकार रखनेको कवल कहते हैं ॥

गंडूपऔरकवलकी औषधका प्रमाण ।

दद्याद्द्रव्येषु चूर्णं च गंडूपे कोलमात्रिकम् ।

कर्पप्रमाणःकल्कश्च दीयते कवले बुधैः ॥

अर्थ-गंडूपमें काठे आदि द्रव (पतली) द्रव्य उनमें चूर्ण एक कोलके प्रमाण मिलाना चाहिये । तथा कवलमें कल्क कर्प प्रमाण जानना ॥

किस अवस्थामें गंडूपकरे और कैसेकरे ।

धार्यते पंचमाद्र्पांद्र्गंडूपकवलादयः । गंडूपान्मुस्थितः
कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ मनुष्यस्त्रीस्तथापंच सप्त
वा दोषनाशनात् ॥

अर्थ-गंडूप अथवा कवलादिक पांचवर्षकी अवस्थाके पश्चात् कराने चाहिये । तथा मनुष्यको स्वस्थचित्त कर बैठाने, फिर रोग दूर होनेके अर्थ कपाल और गला तथा आदि शब्दकरके मुख इनमें थोडा २ पसीना आधे तवतक तीन अथवा पांच अथवा सात कुरले करावे अथवा दोष दूरहोने पर्यंत कराने चाहिये ॥

प्रमाणान्तर ।

कफपूर्णास्यतां यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ।

नेत्रघ्राणश्रुतिर्यावत्तावद्गंडूपधारणम् ॥

अर्थ-कफकरके मुख भराआधे तवतक अथवा दोषोच्छेदन होय तहां-तक तथा नेत्र और नाक इनमें छाव छूटे तवतक गंडूप धारण करे ॥

वातरोगमेंचिकनाईकेकुरले ।

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नेहिके हितः ॥

अर्थ-तिलोंका कल्क, पानी, दूध, तेल आदिशब्दकरके स्नेहपदार्थ ये स्नेहिक गंडूपमें देवे ॥

पित्तरोगमेंशमनसज्ञकगंडूप ।

तिलानीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च ।

सशौद्रो हनुवक्रस्यो गंडूपो दाहनाशनः ॥

अर्थ—तिल, नीलकमल, घी, मिश्री और दूध ये पदार्थ एकत्र कर इसमें सहत डालके कुरले करे—तो पित्तसंबंधी, ठोडी और मुख इनमें जो दाह होता है वह दूर होवे ॥

व्रणादिरोगोंपरमधुगंडूष ।

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणात् ।

दाहवृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ॥

अर्थ—सहतके कुरले करनेसे मुखके छाले घाव, तथा दाह, तृषा ये रोग दूरहोकर मुखमें स्वच्छता आती है ॥

गंडूषधारणकगुण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिवैशद्यं वक्रलाघवम् ।

इन्द्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे विधृते भवेत् ॥

हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषं पाकं व्रणं तृषाम् ।

दंतचालं च गंडूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥

अर्थ—कुरले करनेसे व्याधिका नाश, तुष्टी, स्वच्छता, मुखमें हलकापना, सर्वेन्द्री प्रसन्न हो तथा मुखकी अरुचि, शोष, मुखके छाले, व्रण, प्यास, दातोंका हिलना इतने रोगोंका नाशकर सब शरीरको निर्मलकरेहै ॥

कवलधारणकगुण ।

वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे । अर्द्धं निक्षि-

प्य संचर्य निष्ठीवेत्कवले विधिः ॥ कवलः कुरुते

कांक्षां भक्षेपु हरते कफम् । तृषां शोषं च वैरस्यं दं-

तचालं च नाशयेत् ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ इनके नाशकर्ता औषधोंका कवल (प्रास) मुखमें लेकर आधा चचापके धुक देवे । तो अन्नभक्षण करनेकी इच्छा हों तथा कफका नाशकरे । एवं शोष, प्यास और अरुचि इनका नाश करके हलतेद्वय दातोंके उसी समय जमाय देवे ॥

प्रतिसारणम् (मंजन)

दंतजिह्वामुखानां च चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्षपंगमंगु

ल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ वैरस्यं मुत्तुर्गं मुत्तुर्गं मुत्तुर्गं तथा

तृषाम् । अरुचिं दंतपीडां च निहन्यात्प्रतिसारणम् ॥

अर्थ-दांत, जीभ, मुख इनको चूर्ण, कल्क और अवलेह ऐसे तीन प्रकारकी औषधसे धीरे धीरे उंगलीसे रगड़े उसको प्रतिसारण (मंजन) कहते हैं ये प्रतिसारण करनेसे मुखका कड़ुआपना, दुर्गंध, मुखका सूखना, प्यास, अरुचि और दांतोंकी पीडा इन सबको नाश करे है ॥

गंडूप कवल और प्रतिसारणकी विधि ॥

क्षीरस्नेहकपायादिद्रव्यैः संपूर्णमाननम् । आपूर्य स्थीयते
तावद्विधिर्गंडूपधारणे ॥

अर्थ-दूध तथा घृतादि स्निग्धपदार्थ तथा फाढा आदिशब्दसे पतली औषधको मुखमें भरके थोड़ी देर रहनेदे फिर उसको कुरला (कुल्ला) करदेवे, यह गंडूप लेनेकी विधी जाननी ॥

विपादिमेंगंडूप ।

विपक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्य पयोधवा ॥

अर्थ-विपदोष-(संखियाभादि) और क्षारादिजन्य विकार तथा अमिदग्धजन्यविकार इनसे घी अथवा दूध इनके कुल्ले करे ॥

दंतचालनमेंगंडूप ।

तैलसैधवगंडूपो दंतचाले प्रशस्यते ॥

अर्थ-तिलका तेल और सैधानिमक, दोनोंको मिलाय कुल्ले करे तो दांत हिलते हुए जमजावे ॥

मुखशोषपरगंडूप ।

वैरस्यं मुखशोषं च गंडूपः कांजिको जयेत् ॥

अर्थ-मुखशोष तथा मुखकी चिरसताको कांजीके कुल्ले नाश करते हैं ॥

कफपरगंडूप ।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेणकफेहितः ॥

अर्थ-सैधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और राई इनका चूर्णकर अदरक मिलायके कुल्ले करे तो कफदोष दूरहोय ॥

कफतथारक्तपित्तपरगंडूप ।

त्रिफलामधुगंडूपः कफासृक्पित्तनाशनः ॥

अर्थ-त्रिफलका चूर्ण सहतमें सानके उसके कुल्ले करे तो कफ और रक्त पित्त नष्टहो ॥

मुखपाकपरगंडूष ॥

दार्वी गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवाः ।

यवासश्चेति तत्काथःपष्टांशःक्षौद्रसंयुतः ॥

शीतो सुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम् ॥

अर्थ-दारुहलदा, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते, जवासा इन औषधोंको समान भाग ले काटा करे तथा कोठेका छटांभाग सहत मिलाय काठेको शीतल करके कुल्ले करेतो त्रिदोषजन्य मुखके छाले दूरहोवे ॥

यस्यौषधस्य गंडूपस्तथैव प्रतिसारणम् ।

कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः ॥

अर्थ-जिन औषधोंका गंडूप उसीका प्रतिसारण करना तथा कवलभी उन्हीं औषधोंका होता है ऐसा कुशलवैद्योंको जानना चाहिये ॥

कवलकाप्रकार ।

केशरं मातुलिङ्गस्य सैधवं व्योपसंयुतम् ।

हन्यात्कवलतो जाड्यमरुचिं कफवातजाम् ॥

अर्थ-विजैरेकी केशर, सैधानिमक तथा सोंठ, मिरच, पीपल इन औषधोंको एकत्र कर इनका कल्ककर कवल करेतो मुखकी जडता तथा कफवातकी अरुचि रोग दूरहोवे ॥

प्रतिसारणकाभेद ।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधप्रतिसारणम् ।

अंगुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥

अर्थ-कल्क, अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका है । इनमें मनुष्यको जैसी दोषकी तारतम्यताहो उसके सदृश लंगलीके अग्र-भागसे लेकर जीभमें लगा और संपूर्ण मुखको रगडे ॥

प्रतिसारणचूर्ण ।

कुष्टं दार्विसमंगा च पाठा तिक्ता च पीतिका ।

तेजनी मुस्तलोध्रं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥

रक्तस्रुति दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत् ॥

अर्थ—कूट, दारुहलदी, धायके फूल, पाठ, कुटकी, हलदी, तेजवल, नगरमोया और लोध ये नौ औषधोंका चूर्ण करके जीभ तथा सव मुखमें उंगलीके अग्रभागसे लेकर रगड़े, तो दांतोंके मसूढ़ोंसे जो रुधिर गिरे वह, दांतोंकी पीडा, सूजन, दाह ये संपूर्णरोग दूर होवे । इस चूर्णको प्रतिसारण (मंजन) कहते हैं ॥

गंडूपादिकोंकेहीनयोगहोनेकेलक्षण ।

हीनयोगात्कफोत्केशो रसाज्ञानाऽरुची तथा ।

अतियोगान्मुखे पाकः शोपस्तृष्णा क्रमो भवेत् ॥

अर्थ—गंडूपादिका हीनयोग होनेसे कफकी आधिक्यता होतीहै । तथा मधुरादिक रसोंका यथार्थ स्वाद मालूम नहींहो । तथा अत्रादिकमें अरुचि होय । तथा गंडूपादिका अतियोग होनेसे । मुखपाकके समान मुख उपड आवे तथा शोप और प्यास ये लक्षण होतेहैं ॥

शुद्धगंडूपकेलक्षण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्विशद्यं वक्रलाघवम् ।

इंद्रियाणां प्रसादश्च गंडूपे शुद्धिलक्षणम् ॥

अर्थ—गंडूपादिकका उत्तमयोग होनेसे मुखसंबन्धी व्याधिका नाश अंतःकरणमें संतोष, मुखमें निर्मलता और हलकापना तथा रसनादि इन्द्रियोंमें प्रसन्नता ये लक्षण होतेहैं । ये शुद्धगंडूप होनेके लक्षण जानने ॥

इतिगंडूपादिविधिः समाप्तः ।

अथनेत्ररोगचिकित्साविधिः ।

नेत्रअच्छेहोनेकेउपचार ।

सेक आश्रोतनं पिंडी विडालस्तर्पणं तथा ।

पुटपाकौजनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥

अर्थ—सेक, आश्रोतन, पिंडी, विडाल, तर्पण, पुटपाक और अंजन ये सातप्रकार नेत्ररोगमें कहेहैं इनका फल्क करके जिस प्रकार नेत्ररोगमें उपचार करनेका कहाहै उसप्रकार करना चाहिये ॥

सेककेलक्षण ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वास्मिन्नयने हितः ।

मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेहश्चतुरंगुलात् ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रबंदकर दूध, घी, रस इत्यादिकोका सार, नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसे वारिक धार देवे इसे सेक कहतेहै ॥

सेककेभेद ।

सचापि स्नेहने वाते रक्ते पित्ते च रोपणः ।

लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राऽधुनोच्यते ॥

अर्थ—वातरोगमे स्नेहन सेक करे, रक्तपित्तके कोपमे रोपण सेक करे तथा कफरोगमे लेखन सेक करना चाहिये ॥

सेककीमात्रा ।

षड्वाक्शतैःस्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे ।

वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेके लेखनकर्मणि ॥

अर्थ—स्नेहनकर्ममें छ सोवाक् होनेपर्यंत नेत्रोंपर तरडा जिस औषधका देना कहा वो देवे। रोपणकर्ममें चारसौ वाक्पर्यंत धार देनी। तथा लेखनकर्ममें तीनसौ वाक्पर्यंत धार देनी चाहिये ॥

सेककर्मकाकाल ।

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे ॥

अर्थ—यदि नेत्रमें सेक करना होयतो दिनहीमें करे, कदाचिद् रोगकी आधिक्यता होयतो रात्रीमें भी करे, ऐसी शास्त्रकी आज्ञाहै ॥

वाताभिष्यंदादिरोगपरसेक ।

एरंडत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम् ।

सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—सुरतीअंडकी छाल, पत्ते, जड इनसवको बफरीके दूधमें ओटायके फिर सुहातेरगरमदूधकी धार वाताभिष्यंदरोग दूरकरनेकेवास्तेनेत्रोंमें देय

तथादूसराक्रम ।

परिपेके हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससेधवम् ।

रजनीदारुसिद्धं वा सैधवेन समन्वितम् ॥

वाताभिष्यंदशमनंहितं मारुतपर्यये ।

शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं तथा ॥

अर्थ-बकरीकेदूधमें सैधानिमक डाल गरमकर सहन होय ऐसा गरम र धार नेत्रोंपर गेरे अथवा हलदी, देवदार, सैधानिमक इनका चूर्णकर उसको दूधमें डाल गरमकर सुहातार गरम नेत्रोंपर धार देय तो वाताभिष्यंदरोग और वातविषयय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूरहोय ॥

पित्त, रक्त और अभिघातपरसेक ।

सावरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ।

छागक्षारे घृतं सेकात् पित्तरक्ताभिघातजित् ॥

अर्थ-पठानीलोध और मुलहठी इन दोनों औषधोंको समान भागले घीमें भून चूर्णकर बकरीके दूधमें डालके उस दूधकी सुहाती गरम र धार नेत्रोंपर डाले तो पित्तविकार, रक्तविकार और अभिघातजन्य विकार ये सब दूरहोवे ॥

रक्ताभिष्यंद ।

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः ।

पिष्टैः शीतांबुनासेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ-हरड, बहेडा, आमला, लोध, मुलहठी, खांड, नागरमोथाका भेद, भद्रमोथा ये सब औषध समान भागले शीतल जलमें पीस उसपानीकी नेत्रोंपर धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद दूरहोय ॥

तथादूसरा ।

लाक्षामधुकमंजिष्ठा लोध्रकालानुसारिवा ।

पुंडरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ-लाख, मुलहठी, मजीठ, लोध, सारिवा और सपेदकमल इन औषधोंको पानीमें पीस उस पानीकी नेत्रोंमें धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद (रुधिरके कोपसे आंख दूखने आईहो) सो दूरहो ॥

नेत्रशूलमेंसेक ।

श्वेतलोध्रं घृतेभृष्टं चूर्णितं पटविद्युतम् ।

उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमंबके ॥

अर्थ—पठानी लोधको घीमें भून कूटकर कपडलान चूर्णकर गरम जलमें पीस उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रका दरद दूरहो कोई इसकी पीटली बनाय गरमपानीमें भिगोयके नेत्रको सेकतेहैं जिस्से नेत्रपीडा जाती रहती है ॥

आश्रोतनकेलक्षण ।

अथ आश्रोतनं कार्यं निशायां न कथंचन ।

उन्मीलितेक्षिण दृङ्मध्ये विंदुभिद्वयं गुलाद्धितम् ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रमें दोअंगुलपर्यंत दूध काठा इत्यादिकी बूंद डाले इसको आश्रोतन कहतेहैं यह आश्रोतनकर्म रात्रिमें न करे ॥

अथआश्रोतनविधिः ।

काथक्षौद्रासवस्नेहविंदूनां यत्तु पातनम् ।

यद्व्यंगुलोन्मिते नेत्रे प्रोक्तमाश्रोतनं हि तत् ॥

अर्थ—दूखते नेत्रको दोअंगुल प्रमाण धोलके उसमें काठा, सहत, आसव तथा स्नेह पदार्थ की बूंद डाले उसको आश्रोतन क्रिया कहते हैं ॥

लेखनादिकआश्रोतनमें कितनी बूंदडाले ।

विन्दवोष्टौ लेखनेषु स्नेहने दशविन्दवः । रोपणे द्वा-
दशप्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥ उष्णे च शीत-
रूपाः स्युः सर्वत्रैप विनिश्चयः ॥

अर्थ—लेखनकर्ममें नेत्रमें आठबूंद डाले स्नेहनकर्म होयतो दशविंदु डाले रोपणकर्म होनेसे चारह विंदु डाले वोबूंद शीतल और नेत्रोंको सुहाती २ गरम २ डालनी चाहिये और यदि गरमीके दिन होयतो शीतल २ बूंद डाले ॥

वातादिकमेंआश्रोतन ।

वाते तित्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।

तित्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्रोतनं हितम् ॥

अर्थ—वादीके रोगमें कट्टू और चिकना ऐसा आश्रोतन करो। पित्तरोग होय तो मधुर और शीतल ऐसा करे । कफरोग होयतो कट्टु गरम, रुक्ष ऐसा आश्रोतन करना चाहिये इसप्रकार आश्रोतनकर्म करना हितकारी है ॥

आश्रोतनकी मात्राकाक्रम ।

आश्रोतनानां सर्वेषां मात्रास्याद्वाक्शतं हितम् ।

निमेपोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृताबुधैः ॥

अर्थ—मनुष्यके आंखोंके पलक मूँदना और खुलना अथवा चुटकी बजाना अथवा गुरु (दीर्घ) अक्षरका उच्चारण करना इनमें जितनी देरी लगती है उसकाल (देरी) को एक वाङ्मात्रा कहते हैं, ऐसी सी वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्रोतनोंमें हितकारक जाननी । अर्थात् सौवाक् पर्यंत उक्त औषधोंकी बूंद नेत्रोंमें धारण करनी ॥

वाताभिष्यंदपरआश्रोतन ।

विल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरंडशिष्टाभिः ।

क्वाथआश्रोतने कोष्णो वाताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—बेलहै आदिमें जिनके ऐसी पांच औषधोंके मूल, कंटेरी, अंडकीजड, सहेंजनेके जडकी छाल इन सब औषधोंका काटाकरके जैसा २ सहन होय ऐसी गरम बूंद नेत्रमें डाले, तो वाताभिष्यंद रोग दूरहो ॥

वायुजन्यवातरक्तापित्तजन्यअभिष्यंदपरआश्रोतन ।

अंबुपिष्टैर्निबुपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत् ।

प्रतापवह्निनापिष्ट्वा तद्रसो नेत्रप्ररणात् ॥

वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यंदं विनाशयेत् ॥

अर्थ—कडुए नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोध्रकी छाल पर लेपकरे, फिर उस छालकी अग्निमें तपावे पीछे पीसके उसका रस निकाल नेत्रोंमें कुछ गरम २ बूंद डाले तो वातजन्य, रक्तपित्तजन्यअभिष्यंद दूर हो ॥

सर्वअभिष्यंदोंपरआश्रोतन ।

त्रिफलाश्रोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—त्रिफलेके काटेकी गरम २ सुहाती बूंद नेत्रोंमें डाले तो सर्वप्रकारके अभिष्यंद दूरहों ॥

१ बेल, अरनी, टेढ़, पाटल, कभारी ये विल्वादि पंचमूल जानना इसीसे बृहत्यन-मूल कहते हैं ।

रक्तपित्तजन्यअभिप्यंदपरआश्रोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्रोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित् ।

क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ॥

अर्थ—स्त्रीके दुधके बूंदको नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त और वायु इनकी पीडाको दूरकरे । उसी प्रकार दूधके ऊपरकी मलाई और घी इनकी बूंद अथवा फाये नेत्रोंमें बांधे तो वातरक्त संबंधी पीडादूरहो ॥

पिंडिकाकेलक्षण ।

पिंडी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः ।

नेत्राभिप्यंदयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते ॥

अर्थ—नेत्ररोगनाशक औषधको पीस टिकिया करके नेत्रोंपर धरके कपड़ेकी पट्टीसे उसको बांधदेवे, इसको पिंडी अथवा कवलिका कहते हैं यह पिंडी नेत्राभिप्यंदरोगके योग्यहै। तथा व्रणकेरूपपरभी बांधनाकहहि ॥

स्निग्धोष्णा पिंडिका वाते पित्ते सा शीतला मता ।

रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधेरयम् ॥

अर्थ—वातव्याधिपर चिकनी और गरम, पित्तपर शीतल तथा कफपर रूखी और गरम ऐसी पिंडी बांधनेकी विधि कही है ॥

नेत्राभिप्यंदमेंशिशोर्विरेचन ।

अभिप्यंदेऽधिमथे च संजाते श्लेष्मसंभवे ।

स्निग्धस्विन्नोत्तमार्गस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥

अर्थ—कफसंबंधी अभिप्यंद तथा अधिमंथ रोगीके मस्तकमें तेल चुपड़ पसीने निकाले फिर मस्तक शोधन करनेको तीक्ष्ण औषध करके नाकमें नस्य देवे ॥

उपायांतर ।

अधिमंथेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम् ।

अज्ञाते सर्वथा मंथे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत् ॥

अर्थ—संपूर्ण अधिमंथमें (नेत्रदूखनेमें) मस्तककी शिरा वेधे (फस्त खोले) तो नेत्रदूखना शांतिहो । यदि सब उपाय करनेपरभी आंख दूखनेसे न रहे तो भ्रुकुटी (भौंह) में दाग देवे ॥

वाताभिष्यंदकायत्न ।

वाताभिष्यंदशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिंडिका भवेत् ॥

अर्थ—संपूर्ण अभिष्यंदरोगमें नेत्रोंकी पीडा दूर करनेको औषध कही है उनकी टिकिया करके बाधातथा वाताभिष्यंदमें चिकनी और गरम टिकिया बांधनी ॥

वाततथापित्ताभिष्यंदकायत्न ।

एरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी ।

पित्ताभिष्यंदनाशाय धात्रीपिंडी सुखावहा ॥

अर्थ—अंडके पत्ते, छाल, जड इन सबको एकत्र पीस टिकिया बनाय वाताभिष्यंद दूर करनेको नेत्रोंपर बांधनी। पित्ताभिष्यंद दूर करनेका आमलोंको पीस टिकिया करके नेत्रोंपर बांधे तो नेत्रपीडा दूरहोवे ॥

पित्ताभिष्यंदपरदूसरीपिंडी ।

महानिंबफलोद्भूता पिंडी पित्तविनाशिनी ॥

अर्थ—वकायनके फलको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यंद रोगवालेके नेत्रोंपर बांधे तो पीडा दूरहो ॥

श्लेष्माभिष्यंदपरपिंडी ।

शिशुपत्रकृतापिंडी श्लेष्माभिष्यंदनाशिनी ।

अर्थ—सहेंजनेके पत्तोंकी टिकिया बनायके बांधे तो कफसे नेत्रदूखना दूर होय ।

कफपित्ताभिष्यंदपरपिंडी ।

निंबपत्रकृता पिंडी श्लेष्मपित्तहरा भवेत् ।

त्रिफला पिंडिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः ॥

अर्थ—नीमके पत्तोंकी टिकिया बनायके रोगीके नेत्रोंपर बांधितो कफपित्ताभिष्यंदको पीडा दूरहो। तथा त्रिफलेकी टिकिया बांधितो कफ-पित्ताभिष्यंद नाशहो ॥

रक्ताभिष्यंदपरपिंडी ।

पिद्धा कांजिकतोयेन घृतभृष्टिं च पिंडिका ।

लोध्रःप्रहरति क्षिप्रमभिष्यंदमसृद्धरम् ॥

अर्थ—लोध्रको कांजीसे पीसके टिकिया बनाय घीमें सेकके नेत्रोंपर बांधे तो रक्ताभिष्यंद (रुधिरकी दुष्टतासे जो नेत्र दूखनेको आते हैं वो) दूरहो ॥

सूजनऔरखुजलीआदिपरपिंडी ।

शुंठीनिवदलैःपिंडी मुखोष्णा स्वल्पसैंधवा ।

धार्या चक्षुपि संयोगाच्छोथकंदूव्यथापहा ॥

अर्थ-सोंठ और नीमके पत्तोंको पीस उसमें थोड़ा सैंधानिमक डाल टिकिया बनाय गरमकरके नेत्रोंपर बांधे तो नेत्रोंका सूजना नेत्रोंकी खुजलीकी पीडाको दूरकरे ॥

विडालककेलक्षण ।

विडालको वहिलेंपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ।

तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ॥

अर्थ-नेत्रके पलकोंको मूंदके ऊपर सर्वत्र लेप करनेको विडालक कहते हैं । इस लेपकी मात्रा मुखलेपकी विधिके माफिक जाननी, अर्थात् जैसे मुखलेप करनेमें जो मात्रा लेनी लिखी है वही मात्रा इस विडालककी लेवे ॥

सर्वनेत्ररोगोंमेंलेप ।

यष्टीगैरिकसिंधूत्थदावांताक्ष्यैःसमांशिकैः ।

जलपिष्टैर्वहिलेंपःसर्वनेत्रामयापहः ॥

अर्थ-मुलहृदी, गेरू, सैंधानिमक, दाहहलदी और खपरिया ये पांच औषध बराबरले पानीसे पीस नेत्रोंके बाहर २ लेपकरे तो सर्व अभिष्यंद (नेत्रोंका दूखना) दूरहो ॥

तथादूसरालेप ।

रसांजनेन वा लेपःपृथ्याविश्वदलैरपि । कुमारिका

त्रिपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि ॥ वचा हरिद्रा विश्वैर्वा तथा

नागरगैरिकैः ॥

अर्थ-रसोतको जलसे पीस लेप करे। उसीप्रकार हरड, सोंठ, तमालपत्र इन तीनों औषधोंको जलसे पीस लेपकरे। अथवा घीगुवार और चीतेके पत्तोंको एकत्र जलसे पीस लेपकरे। अथवा अनारके पत्तोंको पीस लेपकरे अथवा वच, हलदी और सोंठ इन तीन औषधोंको जलसे पीस लेपकरे उसीप्रकार सोंठ और गेरू इनको जलमें पीसके नेत्रके बाहरले भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूरहो । ये छःलेप पृथक् २ कहे हैं ॥

तथातीसरालेप ।

दग्ध्वाग्नौ सेंधवं लोभ्रं मधूच्छिष्टयुते घृते ।

पिष्टमंजनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥

अर्थ—सैंधानिमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें भून मोम और घी एकत्र कर उसमें वो औषध पीसके नेत्रोंमें अंजन करे और पूर्वोक्त औषधोका नेत्रके बाहर लेपकरे तो नेत्रसंबंधी पीडा तत्काल दूरहोय चतुर्थलेप ।

लोहस्य पात्रे सेंघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः ।

किंचिद्वनो वहिलेपात्रेत्रवाधां व्यपोहति ॥

अर्थ—लोहेके पात्रमें नींबूके रसको घोंटे जब गाढा होजावे तब नेत्रके वहिर्भागमें लेप करे तो नेत्रसंबंधी सर्वपीडा दूरहो ॥

अर्मरोगपरलेप ।

संचूर्ण्य मरिचं केशराजं स्वरसमर्दनात् ।

लेपनादर्मणानाशंकरोत्येपप्रयोगराट् ॥

अर्थ—काली मिरचोंको भांगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे, तो शुक्लार्म और आधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगोंमें जो अर्मरोग है वो दूरहो अंजननामिकापरप्रतिसारण ।

स्वित्रां भित्वा विनिष्पीड्य भिन्नामंजननामिकाम् ॥

शिलैकानतसिंधूत्यैःसक्षौद्रैःप्रतिसारणम् ॥

अर्थ—नेत्रोंकी-पलकोंमें अंजननामिका नामकी फुसी होतीहै उसको आजनी कहतेहै, उस फुसीका वफारेसे पसीने निकालके चीरडाले फिर उसका मवाद निकाल पश्चात् मनसिल, इलायची, तगर, सैंधानिमक इन चार दवाइयोंका चूर्णकर सहतमें मिलाय उस फुसीमें प्रतिसारण करे अर्थात् ये औषध उस फुसीपर चुपढदेवे तो आजनी फुसी दूरहो ॥

नेत्ररोगमेंतर्पण ।

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम् । यद्दृक्षं परिशुष्कं

च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रो-

न्मीलनसंयुतम् । तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यंदाधिमंथ-

कैः ॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः । तत्रे-
त्रतर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥

अर्थ-नेत्रमें तृप्तिकरता ऐसा तर्पण कहते हैं; जिन नेत्रोंमें सूखापना, शुष्कता, टेढ़ापना और गदलाहटपना है ऐसे नेत्र तथा जिसके पलकोंके बाल गिर गएहो, शिरोघात, कृच्छ्रोन्मीलन, (फठिनसेनेत्रमुंदे) तिमिर, अर्जुन, शुक्र, (भोतिपाविद) अभिष्यंद, अधिमंथ, शुक्राक्षिपाक, सूजन और वातविपर्यय इन रोगसे व्याप्त नेत्ररोगीके तर्पण करे अर्थात् तृप्ति करता औषधीकी योजना करे ॥

हीनाधिकतर्पणमें उपचार ।

पूर्णं चापांगतः स्नेहं स्रावयित्वाक्षिशोधयेत् ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ॥

यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं तर्पणं चरेत् ॥

अर्थ-नेत्र पूर्णहोनेके पश्चात् अपांग (नेत्रकोण) के द्वारा स्नेह बाहर निकालके नेत्रका शोधन करे । फिर स्नेहवीर्यसे दुष्टनेत्रोंका जोके चूनको भिगो वाफदेकर अर्थात् कुछ गरम करके नेत्रोंके ऊपर बांधे अथवा धूमपान करके उसके कफको निकाले, इस प्रकार एक अथवा तीन अथवा पांचदिन तर्पण करे ।

तर्पणकानिषेध ।

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिंतायासभ्रमेषु च ।

अशांतोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥

अर्थ-जिसदिन आकाश बदलोंसे घिरा हुआहो, अत्यंत शरदी या गरमीहो, शरीरमें चिंताहो, परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंबंधी शूलादिक उपद्रव शांत न हुए होंवे तो तर्पण न करे ॥

तर्पणका विधान ।

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः । आधारीमाप-

चूर्णेन क्लिन्नेन परिमंडलौ ॥ समौ दृढावसंवाधौ कर्तव्यौ

नेत्रकोशयोः । पूरयेद्घृतमंडेन विलीनेन सुखोदकैः ॥

अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा । निमग्ना-

न्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ पूरयेन्मीलिते
नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनेः ॥

अर्थ—पवन, धूप, धूल ये जिसजगे न हो उसस्थानमें मनुष्यको चित्त सुलायके नेत्र कीशोमें भीगे उडदोंके चूनका गोल थामलासा बनावे फिर नेत्रोंको बंदकर उनके ऊपर पतला घी अथवा मंड (पेया) अथवा गरम जल अथवा सौवारका धुला हुआ घी अथवा दूध येपदार्थ जबतकनेत्रोंके पलककी वरुनी न डूबे तबतक नेत्रोंमें डाले, फिर धीरे-धीरेनेत्रोंको उघाड़े, इसप्रकार करने को तर्पण कहते हैं इसे नेत्र तृप्तहोते हैं ॥

तर्पणकी मात्राका प्रमाण ।

धारयेद्वर्तमरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधाः । स्वच्छे कफे
संधिरोगे मात्रा पंचशतं हितम् ॥ शुक्ले च पट्शतं कृष्ण-
रोगे सप्तशतं मतम् । दृष्टरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सहस्र-
कम् । सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवंहि तर्पणम् ॥

अर्थ—नेत्रसंबंधी पलकोंके रोगमें १०० सौ वाङ्मात्र तर्पणरूप औषधको नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफका रोग होय अथवा नेत्रकी संधिगत रोग होनेसे ५०० पांचसौ वाङ्पर्यंत, नेत्रके सपेद भागमें रोग होनेसे ६०० छः सौ तथा काले भागमें रोग होनेसे ७०० सातसौ दृष्टिरोग होयतो ८०० आठसौ। अधिमंथ रोग होयतो १००० एक हजार। वातका रोग होयतो १००० एक हजार वाङ्मात्र होने पर्यंत औषधको नेत्रोंपर धारण करे । इसप्रकार तर्पणके धारण का प्रमाण कहा ॥

तर्पणसे स्नेहके अधिकयोगद्वारा कफाधिक्य होनेका उपाय ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ।

यथास्वं धूमपानेन कफपस्य विशोधयेत् ॥

अर्थ—तर्पणके स्नेहवीर्य करके उत्पन्न हुआ जो कफ(नेत्रोंमें कीचड़)उ-
सको भीगे जौओंको पीस उससे तथा धूमपान करके शोधन करना चाहिये ॥

तर्पणकी मर्यादा ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेप्यते परम् ॥

अर्थ—नेत्रमें तर्पण प्रयोग करना होयतो एकदिन अथवा तीनदिन
अथवा पांचदिन पर्यंत करे, यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ॥

तर्पणकरकेतृतकेलक्षण ।

तर्पणे तृप्तिर्लिंगानि नेत्रस्येमानि भावयेत् । सुखस्वप्ना
वबोधत्वदेशद्यं वर्णपाटवम्निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रिया-
लाववमेव च ॥

अर्थ-सुखपूर्वक निद्रा आवे, सुखपूर्वक जागे, नेत्रोंमें निर्मलता होय, नेत्रोंकी
कांति उत्तमहोय, नजर साफ होवे, रोगका नाशहोय और नेत्रोंके खोलने मूँद-
नेमें हलकापना आवे ये लक्षण तर्पण करके नेत्रतृप्त हुए प्राणीके होते हैं ॥

तर्पणअत्यंतहोनेकेलक्षण ।

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकंदूपदेहवत् ।

वर्षतोद्युतं नेत्रमतिर्तर्पितमादिशेत् ॥

अर्थ-भारी, गदले, अतिचिकने, आंख, रुजली, कीचडसे चिकटे हुए,
घर्षण, पीडा ये लक्षण अतिर्तर्पित नेत्रवाले प्राणीके जानने ॥

हीनतर्पणकेलक्षण ।

आस्रावशोफरागाढ्यमुपदेहसमाकुलम् ।

रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥

अर्थ-पानी गिरना, रुजन, लाली, चिकटेहुए, रुखे, रक्त, गदले और
पीडायुक्त ये लक्षण जिसके नेत्रोंमें होय रसको हीनतर्पित जानना ।
अर्थात् ठीक तर्पण नहीं हुआ ॥

तर्पणसेहीनाधिक्यस्निग्धकायत्र ।

अनयोर्दोषवाहुल्यात्प्रयतेत चिकित्सिते ।

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥

अर्थ-अधिकतृप्त और हीनतृप्त हुए रोगी वैद्य रुक्ष स्निग्ध उपचार करके
चिकित्साकरे अर्थात् अधिकतृप्तकी रुक्ष और हीन तृप्तकी स्निग्ध चिकित्सा
करनी चाहिये ॥

पुटपाक !

अतर्द्ध्वप्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनमादौ विल्वमात्रे

मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेपितौ ॥ द्रव्याणां विल्वमात्रं
तु द्रवाणां कुडवो मतः । तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः
सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेन तत्पक्त्वागृहीयात्तद्रसंबुधः ।
तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ॥

अर्थ-अब इसके उपरांत हम पुटपाक साधन (बनाना) कहेंगे, हरिणादि-
कोंका मांस दो विल्व लेके उसको घृतादि स्नेह पदार्थमें मिलाय बारीक
पीसे, तथा सूखी औषध जो कही है वो एक विल्व प्रमाण ले तथा सहत, पानी
इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडव प्रमाण ले, इस सबको उस पूर्वोक्त मांसमें
मिलायके गोला बनावे, फिर जामुन अथवा आम इत्यादिके पत्ते उस
गोलेके चारों तरफ लपेट देवे फिर उसपर मिट्टीकालेप करे, पश्चात् पुट-
पाककी रीतिसे गोलाको अभिमें भूनके बाहर निकाले मिट्टी पत्ते दूरकर
उस गोलेको निचोड़ कर रस निकाल लेवे, इस रसको तर्पणकी विधिसे
ऊपर कहे प्रमाण नेत्रोंमें डाले तो यह सर्वनेत्र विकारोंको दूरकरे ॥

पुटपाकसंबंधीरसनेत्रमेंडालनेकीविधि ।

दृष्टिमध्ये निपेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।

स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति सत्रिधा ॥

अर्थ-वह पुटपाक संबंधी रस स्नेहन, लेखन और रोपण इन भेदोंकर-
के तीन प्रकारका है । इस मनुष्यको सीधा चित्त लिटायकर नेत्रोंमें
दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डालना चाहिये ॥

स्नेहनादिभेदसेपुटपाककीयोजना ।

हितः स्निग्धोतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापिहि लेखनः ।

दृष्टेर्वलार्थमितरः पित्तासृक्व्रणवातनुत् ॥

अर्थ-रूखे नेत्रवालेको स्निग्धपुटपाक, स्निग्ध नेत्रवालेको लेखनपुट-
पाक तथा दृष्टिमें बल आनेके वास्ते रोपणपुटपाक की योजना करे जो
पुटपाक नेत्रसंबंधी दृष्टदूर जे पित्त रक्त व्रण और वायु इनको दूरकरे
इस पुटपाककी विधि आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

स्नेहपुटपाक ।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदस्वाद्द्रौपधैः कृतः ।

स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वेवाक्शते दशोः ॥

अर्थ—घी, हरिणादिकोंके मांस, मज्जा और मदये सब घीमें मिलाय के पीसे और कांकोल्यादि गणकी औषधोंका नूर्ण कर उस मांसादिकमें मिलाय देवे फिर एक गोला बनाय जाय, आम इत्यादिकोंके पत्तोंमें लपेट मिट्टी चढाय पुटपाककी विधिसे अभि देवे फिर उस गोलको आग्निसे निकाल मिट्टी और पत्ते दूरकरके निचोड रस निकाल लेवे, इस रसको नेत्रोंमें डाले और २०० वाड् मात्र पर्यंत धारणकरे । इसको स्नेहन-पुटपाक कहते हैं आगे लेखनपुटपाक कहते हैं ॥

लेखनपुटपाक ।

जांगलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतेः ।

कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविट्टुमांसिधुजैः ॥

समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिमस्तुभिः ।

लेखने वाक्शतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ॥

अर्थ—हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस, लोहचूर्ण (ताम्रचूर्ण) शंख, मूंगा, सैधानिमक, समुद्रफेन, कसीस, सुरमा और बकरीके दहीकी छाँछ डालके पीस गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे पचाय रस निकाल नेत्रोंमें डाले और सौ १०० मात्रा होनेपर्यंत धारणकरे इसको लेखनपुटपाक कहते हैं ॥

रोपणपुटपाक ।

स्तन्यजांगलमध्वाज्यतित्तकद्रव्यपाचितः । लेसनात्रि

गुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ वितरेत्तर्पणोक्तांतु

क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥

अर्थ—स्त्रीका दूध, हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस, सहत और घी, कुटकी ये सब उसमांसमें मिलाय पीसके गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे परिपक कर बाहरनिहाले तथा मिट्टी और पत्ते दूरकरके निचोड रस निकालले इसको नेत्रोंमें डाल तीनसौ ३०० वाड्पर्यंत धारणकरे, इसको रोपणपुटपाक कहते हैं । यदि पुटपाकके आधिक्य अथवा न्यूनताके कारण भारीपना तथा निस्तेजता आदि उपद्रव होवे तो तर्पणमें जैसी क्रिया कहजायैह उसके माफिक यत्न करना चाहिये ॥

दोषपक्वहोनेसेअंजनऔरअंजनकासाधारणविधान ।

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् । हेमन्ते शिशिरे
चैव मध्याह्नेजनमिष्यते ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णेच ग्रीष्मे
शरदिचेप्यते । वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसन्तेचसदैवाहि ।

अर्थ—जिसके दोष परिपक्व हो उसप्राणीके अंजन लगाना होय तो पांचदिनके पश्चात् लगावे, अंजनकी साधारणविधि—हेमन्तऋतु और शिशिरऋतु इनमें दोपहर दिनचढे अंजन लगावे, ग्रीष्मऋतु और शरदूऋतु इनमें प्रातःकाल अथवा सायंकालमें अंजन लगावे, वर्षामें और अत्यंत गरमीमें अंजन न लगावे । एवं वसन्त ऋतुमें सकालमें अंजन (आँजना) उत्तम है ॥

अंजनकेभेद ।

लेखनं रोपणं चैव तथा तत्स्नेहनांजनम् । लेखनं क्षार
तीक्ष्णाम्लरसैरंजनमिष्यते ॥ कपायतिक्रसयुक् सस्ने
हं रोपणं मतम् । मधुरस्नेहसंपन्नमंजनं च प्रसादनम् ॥

अर्थ—लेखन, रोपण और स्नेहन इनभेदोंसे अंजन तीन प्रकारकाहै । तिनमें खार, तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें है उसको लेखनांजन कहतेहैं तथा कपेला, कड़ुआ ये दो रस फरके युक्त जो अंजन है तथा स्नेहयुक्तहो उसको रोपणांजन कहते है और जो मधुररससंपन्न तथा स्नेहयुक्त हो उसको स्नेहनांजन जानना ॥

अंजनकेगुटिकादितीनभेद ।

गुटिका रसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि च ।

कुर्याच्छलाकयांगुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥

अर्थ—गोली, रस और चूर्ण इन भेदोंसे अंजन तीन प्रकारका है । इन अंजनोंमें गुटिकांजनकी अपेक्षा रसगुणवाला न्यून है और रसरूप अंजनकी अपेक्षा चूर्णरूप जो अंजनहै, सो गुणोंमें न्यून है ऐसे उत्तरोत्तर गुणोंमें हलके जानने । इन अंजनोंको सलाईसे अथवा टंगली फरके नेत्रोंमें लगावे तहां बत्ती चंद्रोदयादिक जाननी, रगढा आदि रसांजनहै और सुरमा आदि चूर्णांजन जानने चाहिये ॥

अंजनकेअयोग्य ।

श्रांते प्ररुदिते भीते पीतमध्ये नवज्वरे ।

अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रचक्षते ॥

अर्थ-परिश्रमसे थका, रुदित, डरपाहुआ, मद्य (दारू) पानकर बुकाहो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णमें, मलमूत्रकी बाधा रोकनेवाला इतने मनुष्योंके अंजन नहीं लगाना ॥

अंजनमेंबत्तीकाप्रमाण ।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वार्तितीक्ष्णांजने भिष्क ।

प्रमाणं मध्यमेऽध्यधे द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥

अर्थ-तीक्ष्ण अंजनमें हरेणुबीज (मटर) के समान गोली लंबी बत्तीके समान बनावे, अर्थात् मटरके समान उसका मुटापा होय । उसीप्रकार मध्यम अंजनमें मटरसे डबोढी बत्ती बनावे तथा मृदु अंजनमें हरेणुबीज (मटर) दोफी बराबर अर्थात् दुनी गोल बत्ती बनावे ॥

अंजनमेंरसकाप्रमाण ।

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्रिविडंगमिताहिता ।

मध्यमा द्विविडंगं स्याद्धीनात्वेकविडंगकम् ॥

अर्थ-द्रवरूप अंजनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें सलाईसे लगावे यह उत्तम रसक्रिया है । दो वायविडंगके प्रमाण लगाना मध्यम रसक्रिया जाननी और एक वायविडंगके बराबर मात्रा कनिष्ठ अर्थात् छोटी है ॥

विरेचनअंजनमेंचूर्णकाप्रमाण ।

विरेचनिकचूर्णं तद्विशलाके विधीयते ।

मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रःसैहिकेजने ॥

अर्थ-विरेचनिक चूर्णको सलाईमें दोवार लगाय दोवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । मृदु अंजनमें औषधका चूर्ण तीनवार सलाईमें लगावे और तीनवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । तथा पृतआदि जो स्नेहपदार्थ तिनफेरके युक्त जो अंजनहै उनको सलाईमें चारवार लगावे और चारवारही नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय यह अंजन लगानेका प्रमाण कहाहै ॥

सलाई बनानेकी युक्ति ।

मुखयोःकुंठिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलोन्मिता ।

अश्मजाधातुजा वा स्यात्कलायपरिमंडला ॥

अर्थ—अब सलाईके लक्षण कहते है कि, जो पापाणकी अथवा सुवर्णादि धातुओंकी सलाई आठ अंगुलीकी बनावे उसके दोनों आगेके भाग गोलकरे तथा उसको बहुत पतली न करे तथा मटरके दानेके समान सुंदर गोल बनावे ॥

लेखनादिमेंशलाईकाप्रमाण ।

ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता ।

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहनेमता ॥

अंगुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः ॥

अर्थ—लेखन अंजनमें ताँबेकी अथवा लोहकी वा पत्थरकी सलाई लेनी, स्नेहांजनमें सोनेकी अथवा चाँदीकी शलाईले, अंगुलीमें मृदु (नरम) ताँबे अतएव रोपणअंजनमें अंगुलियोंसे नेत्रोंमें अंजन आंजना चाहिये, सलाईसे नहीं ॥

अंजनमेंसमयकानिश्चय ।

सायंप्रातर्वांजनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत् ।

नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते ॥

कृष्णभागादधःकुर्यादपांगं यावदंजनम् ॥

अर्थ—सायंकाल और प्रातःकालमें अंजन लगावे, सर्वकालमें अंजन नहीं लगाना । अत्यंत शरदी, अत्यंत गरमी, अत्यंत हवा तथा जिसदिन आकाश बादलोंसे घिराहो इनमें अंजन नहीं करना । नेत्रोंके कालेभागके नीचे अर्थात् सपेद भागमें अंजन करना चाहिये ॥

चन्द्रोदयवर्ती ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जापथ्यामनःशिला । पिप्पली

मरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकम् ॥ छागीक्षारिपण संपि-

प्य वर्ति कुर्याद्यवोन्मिताम् । हरेणुमात्रां संपृष्यजलैः

कुर्यादथांजनम् ॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च कालं पटलम-

र्जुदम् । रात्र्यधं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥

अर्थ-शंखकीनाभि, बहेडेके फलके भीतरकी मिगी, हरड, मनसिल, पीपर, कालीमिरच, कूट, वचये औपध समान भागले बकरीके दूधमें वारीक पीस जाके बराबर गोल बत्तीके सदृश बनावे । इसको चंदोदयावर्ती कहते हैं । फिर इस गोलीमेंसे छोटी मटरके प्रमाण जलमें घिसके अंजन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, कांचांबुदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतांध तथा एकवर्षका फूला ये संपूर्णरोग दूरहो ॥

फूलाछरइत्यादिकरोगोंपरलेखनीवर्ती ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशःपरिभाविता ।

करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥

अर्थ-कंजके बीजोंका चूर्ण कर, केसूलाके फूलोंके स्वरसकी अनेक भावना देकर वारीककर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे फिर इस गोलीको पानीमें पीस नेत्रोंमें लगावे तो शुक्र कहिये फूलेको, मांसवृद्धि, छर इत्यादि सकलरोगोंको शस्त्रसे काटनेके समान दूरकरे ॥

दूसरीविधि ।

समुद्रफेनसिंधूत्थशंखदक्षाडवल्कलैः ।

शिमुबीजयुतैर्वर्तैःशुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥

अर्थ-समुद्रफेन, सैधानिमक, शंख, सुरगोंके अंडेके ऊपरकी सपेदी, सहें-जनेके बीज इन पांच औपधोंको बराबरले पानीमें पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला, छड इत्यादिक रोगोंको शस्त्रसे काटनेके समान दूरकरेहै ॥

लेखनीदंतवर्ती ।

दंतैर्दतिवराहोऽग्नोहयाजखरोद्भवैः ॥

शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैःसर्वैर्विचूर्णितैः ।

दंतवर्तैःकृताशुक्ष्णा शुक्राणां नाशिनीपरा ॥

अर्थ-हाथी, सुअर, बैल, घोडा, बकरा और गधा इनके दांत, शंख, मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्णकर पानीमें वारीक पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इस गोलीको दंतवर्ती कहते हैं । इसको जलसे घिसके अंजन करे तो फूला दूरहोय और अनेकनेत्रके विकारोंको दूरकरेहै ॥

तद्रानाशकलेखनवर्त्ती ।

नीलोत्पलं शिशुर्वाजनागकेशरकं तथा ।

एतत्कलकैःकृतावर्तिरतितन्द्रां विनाशयेत् ॥

अर्थ—नीलाकमल, सहेंजनेके बीज, नागकेशर इन तीनोंको समान ले पानीसे पीसके लंबीर वत्तीके आकार गोली बनावे इसको जलमें पिसके लगाये तो तंद्राको दूर करे है ॥

रोपणीकुसुमितावर्त्ती ।

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः पष्टिसंख्याकणाकणाः । जाती

कुसुमपंचाशन्मरिचानि च षोडश ॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले

वर्त्तिः कृताकुसुमिकाभिधा । तिमिरार्जुनशुक्राणां

नाशनी मांसवृद्धिहृत् ॥ एतस्याश्वांजनेमात्रा प्रोक्तासार्ध

हरेणुका ॥

अर्थ—तिलके फूल ८०, पीपलके भीतरके दाने ६०, चमेलीके फूल ५०, कालीमिरच १६ इन सबका चूर्णकर पानीसे पीस वत्तीके समान गोली बनावे इसको कुसुमिकावत्ती कहते है यह गोली डेढ मटरके समान जलमें पीसके नेत्रोंमें अंजनकरे तो तिमिर, अर्जुन, फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूरहोय ॥

नक्ताध्यनाशिनीवर्त्ती ।

रसांजनं हरिद्रेद्रे मालतीनिवपल्लवाः ।

गोशकृद्रससंयुक्ता वर्तिर्नक्ताध्यनाशिनी ॥

अर्थ—रसोत्त, हलदी, दारुहलदी, चमेलीकेपत्ते, नींबूके पत्ते ये पांच वस्तु समान लेके गौंके गोबरके रसमें चारीक पीस गोली बनावे, जलमें पिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो रतांध (जिसको रातमें न दीखे वह रोग) दूरहोवे ॥

नेत्रस्त्रावनाशकवर्त्ती ।

धान्यक्षपथ्याधीजानि एकद्वित्रिगुणानि च ।

पिष्ट्वावर्त्ति जलेः कुर्यादंजनं द्विहरेणुकम् ॥

नेत्रस्त्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजंतथा ॥

अर्थ—आपलेके भीतरका धीज १ भाग, घडेडेके भीतरकी मिर्गी २ भाग,

हरडके भीतरकी मिगी २ भाग, सब बीजोंको एकत्र कर पानीसे वारीक पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे, फिर उस गोलीमेंसे दो रेणुकाबीजकी बराबर पानीमें पिसके अंजन करे तो नेत्रोंसे जलका स्राव होनेको तत्काल दूरकरे तथा वातरक्त सर्वंधी पीडा दूरहोवे ॥

रसक्रिया ।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थसिताशंखमनःशिलाः । गैरिको
दधिफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ संयोज्य मधुना कु-
र्यादंजनार्थं रसक्रियाम् । वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशु-
क्रहरांपराम् ॥

अर्थ—नीलाथोया, सुवर्णमाक्षिक, सेंधानिमक, मिश्री, शंख, मनसिल, गेरू, समुद्रफेन और कालीमिरच इन सबको, समान भागले वारीक चूर्णकर सहतमें मिलाय अंजनकरे तो पलकोंका रोग, अर्मरोग, तिमिर, कांच और शुक्ररोग इनको हरणकरे ॥

फूलादूरहोनेकीरसक्रिया ।

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कपूरजः कणः ।
क्षिप्रमंजनतो हंति कुसुमं च द्विमासकम् ॥

अर्थ—वटके दूधमें कपूरको पिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो दोमहीनेका फूला शीघ्र दूरहो ॥

अतिनिद्रादूरहोनेकोलेखनीरसक्रिया ।

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नैत्रमंजयेत् ।
आतिनिद्राशमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥

अर्थ—सहत और घोंडेकी लार इन दोनोंको एकत्र कर इसमें कालीमिरच को पीस अंजन करे तो अत्यंत निद्राका आना दूरहो। जैसे सूर्योदय होनेसे अंधकार नष्टहोताहै इस प्रकार इस औषधके लगानेसे नींद तत्काल जातीहै तंद्रानाशिनीरसक्रिया ।

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा ।
सैधवं वस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमंजनम् ॥

अर्थ—चमेलीके फूल, मूंगा, कालीमिरच, कुटकी, वच और सेंधानिमक ये औषध समान भागले, बकरके मूत्रमें पीसके अंजन करे तो तंद्रा दूरहो ॥

सन्निपातमैलेखनीरसक्रिया ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैधवैः ।

अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥

अर्थ—सिरसके बीज, पीपल, कालीमिरच, सैधानिमक, लहसन, मनसिल और वच ये सब समानले गोमूत्रमें बारीक पीसके अंजन करे तो संनिपातजन्य संज्ञानष्टताको दूरकर मनुष्यको चैतन्यकरे ॥

तिमिरादिरोगोंमेंरोपणीरसक्रिया ।

गुडूचीस्वरसैः कर्पःक्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम्सैधवंक्षौद्र-
तुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ अंजयेन्नयनं तेन पिष्टार्म-
तिमिरं जयेत् । काचं कंडूं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णागतान्
गदान् ॥

अर्थ—गिलोयका स्वरस—१ कर्पले उसमें सहत और सैधानिमक ये एक २ मासे डालके अच्छी रीतिसे खरलकरे, इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो पिष्टार्म, तिमिर, काच, खुजली, लिङ्गनाश, नेत्रोंके सपेदभागमें और काले भागमें होने वाले संपूर्ण नेत्ररोग दूरहो ॥

पुनर्नवाकेअनुपान ।

दूग्धेन कंडूं क्षौद्रेण नेत्रस्त्रावं च सर्पिषा ।

पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशांघताम् ॥

पुनर्नवाजयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा ।

अर्थ—पुनर्नवा (सांठकीजड) को दूधमें पीस नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्रोंकी खुजली दूरहो। सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रसे पानीका गिरना दूरहो । घीमें घिसके लगावे तो फूलाको दूरकरे । तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर दूरहो। कांजीमें घिसके लगावे तो रतांध दूरहो। जैसे सूर्य अंधकारको शीघ्र नष्ट करे है इस प्रकार पुनर्नवा अनुपान भेदकरके सर्व रोगोंको दूरकरे किसी ग्रंथमें इसपाठसे कुछ २ फरक लिखा है ॥

नेत्रस्त्रावमेंरोपणीरसक्रिया ।

बबूलदलनिःकाथो लेहीभूतस्तदंजनात् ।

१ घृतेन पुष्पं मधुनाश्रुपातं तैलेन कांडं तिमिरं जलेन ।

रात्र्यंधतो वा सहकांजिकेन पुनर्नवा नेत्रपुनर्नवाकरी ॥

नेत्रास्त्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥

अर्थ—चबूरेके पत्तोंका काथ गाढा होनेपर्यंत औटावे, फिर उसमें थोडा सहत डाल नेत्रोंमें अंजनकरे तो नेत्रोंके जल गिरनेको अवश्य दूरकरे ॥

दूसराप्रकार ।

हिजलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनात् ।

नेत्रास्त्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥

अर्थ—हिजलके फलको पानीसे पीस सहत डाल नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे पानी गिरना दूरहोवे ॥

नेत्रप्रसादन ।

कतकस्यफलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ।

ईपत्कपूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥

अर्थ—निर्मलीके फलको सहतमें घिस और उसमें थोडासा कपूर मिलाय नेत्रोंमें लगावे तो नेत्र स्वच्छहो ॥

शिरोत्पातरोगमेंअंजन ।

सर्पिःक्षौद्रं चांजनं स्याच्छिरोत्पातस्य शांतये ।

अर्थ—घी और सहत दोनोंको एकत्र कर इसको नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्र-रोगमें जो शिरोत्पात रोगहै वो दूर होवे ॥

अंधापनदूरहोनेकीरसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसाशंस्रः कतकाफलमंजनम् ।

रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥

अर्थ—काले सांपकी चर्बी,शंस्र और निर्मलीके बीज इनको एकत्र चारों क पीस नेत्रोंमें अंजनकरे तो यह रसक्रिया अंधे मनुष्यको शीघ्र दीखनेलगे ऐसा करतीहै ॥

अंजनयोग ।

दक्षांडत्वक्शिलाकाचैः शंस्रचंदनगौरिकैः ।

द्रवैरंजनयोगोऽयं पुष्पामादिविलेखनः ॥

अर्थ—मुरगेके अंडेकी सपेदी,मनसिल,सपेद कांच,शंस्र,सपेद चंदन,गेरु

इन छः वस्तुओंको समानभागले वारीक चूर्ण कर नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला और मांसार्मादिक रोग नष्टहोवे ॥

रतौंध दूरहोनेकोलेखनचूर्णांजन ।

कणा छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेपिता ।

अचिराद्भंति नक्तांघ्यं तद्रत्सक्षौद्रमूपणम् ॥

अर्थ—बकरेके फलेजेके मांसमें पीपल भरके अंगारोंपर पाक करे, फिर उस मांसका रस निचोड उस रसमें उस पीपलको पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो रतौंध बहुत जल्दी दूरकरे ॥

कंडूकाचादिपरलेखनचूर्णांजन ।

शाणार्द्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ।

शाणार्द्धं सैधवं शाणानवसौवीरकांजनम् ॥

पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम् ।

कंडूकाचकफार्त्तानां मलानां च विशोधनम् ॥

अर्थ—कालीमिरच आधे शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोदो शाण लेवे, सैधानिमक आधे शाण, सुर्मा नौ शाण इन सब औषधोंको जिस-दिन चित्रा नक्षत्रहोय उसदिन उत्तमप्रकार पीसके चूर्णकरे; फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली, फांच ये दूरहोवे । तथा कफकरके पीडित नेत्रोंके मलको शोधन करे है ॥

सर्वनेत्रकेरोगमेंअंजन ।

शिलायारसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा । गृहीया-

त्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ शुष्कं च तज्जलं

सर्वं पर्पटीसंनिभं भवेत् । विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवे-

लं त्रिफलारसैः ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेननिःक्षि-

पेत् । अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हि तत् ॥ सर्व-

रोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुसकारि च ॥

अर्थ—खपरियाको स्पामूसाके खरलमें उत्तम रीतिसे पीस वारीक चूर्ण करे, फिर उस चूर्णको पानीमें डाल देवे और उस पानीको हाथोंसे धुव हिलाय देवे और तत्काल दूसरे पात्रमें कर ले पहले पात्रमें जो

बड़े २ टुकड़े निकले उनको फेंकदेवे । फिर उसको थोड़ीदेर धरा रहनेदे इस प्रकार करनेसे वो खपरियाका सब चूर्ण पानीके तले जम जावेगा उसको दूरसे पात्रमें सुखाय लेवे तो उसकी पपड़ी जम जावेगी उस पपड़ीका चूर्ण कर उस चूर्णमें त्रिफलेके काटेकी तीन पुट देवे, फिर उस चूर्णका दशवाँ भाग कपूरमिलावे, सबको एक जीव कर इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्वदोष और नेत्रके सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख होवे ॥

सर्वनेत्ररोगोंपरसौवीरांजन ।

अग्निप्रसं च सौवीरं निषिंचे त्रिफलारसैः । सप्तवेलं
तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ अंजयेन्नयने
तेन प्रत्यहं चक्षुषे हितम् । सर्वानक्षिविकारांस्तुह्न्या-
देतन्न संशयः ॥

अर्थ—सुरभाको अग्निपर तपाय २ के त्रिफलेके काटेमें बुझायदे जब शीतल होजावे तब फिर गरम करे और बुझावे इसप्रकार सातवार बुझावे, इसी प्रकारस्त्रीके दूधमें सातवार बुझावे फिर उसको शीतलकर वारीक चूर्ण कर नेत्रमें अंजनकरे, यह अंजन नेत्रोंको परमहितकारी है । इससे सर्व नेत्रके विकार दूरहोते हैं इसमें संशय नहीं है ॥

शीशेकीसलाईवनानेकाक्रम ।

त्रिफलाभृंगशुंठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिणा । गोमूत्रमध्व-
जाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ तच्छलाका भवत्येव
सर्वान्नेत्रभवाच्च गदान् ॥ नाशयेदितिशेषः ॥

अर्थ—शीशेको गलाय २ के त्रिफलेका काटा, भांगरेका रस, सोंठका काटा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध इन प्रत्येकमेंसात २ बार बुझावे, फिर उसकी सलाई बनावे; इस सलाईको नेत्रोंमें फेराकरे तो नेत्रके सर्वविकार दूरहोवे ॥

प्रत्यंजनकरनेकाविधान ।

गतदोषमपेताशु संपश्यन्सम्यगंभसि ।

प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ॥

अर्थ—उस शीशेकी सलाईसे नेत्रोंमें अंजन करे, जब दोष दूरहोकर नेत्रोंसे पानी गिरजावे तब रोगी एकक्षण शीतलपानीको देखे

फिर उस रोगीके नेत्रोंको जलसे धोयके दोषोंके अनुसार फिर नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे, उस प्रत्यंजनको आगे कहतेहैं ॥

सदोषनेत्रमेंनिषेध ।

न वा निर्गतदोषेक्षिण धावनं संप्रयोजयेत् ।

प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः ॥

अर्थ—नेत्रोंसे दोषोंके न निकलने पर नेत्रोंको जलसे धोवे नहीं और तीक्ष्ण अंजन करके नेत्र संतप्त होनेपर उनमें प्रत्यंजन चूर्णकरे सो आगेके श्लोकोंमें कहा है । अथवा प्रसादनचूर्णकरे ॥

प्रत्यंजनचूर्ण ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्ये शुद्धं सूतं विनिःक्षिपेत् । कृष्णांजनं
तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ दशमांशेन कर्पूरं त-
स्मिञ्चूर्णे प्रदापयेत् । एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥

अर्थ—शुद्धशीशेको तपावे जब गलजावे तब उसमें बराबरका शुद्ध पारा मिलायदे फिर इन दोनोंके समान सुरमा मिलायके एककर सबका बारीक चूर्णकरे तथा सब चूर्णका दशवां भाग भीमसेनी कपूर मिलावे, इसको प्रत्यंजन चूर्ण कहते हैं । इसके लगानेसे संपूर्ण नेत्ररोग दूरहो तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान सुखकारी है ॥

सर्पविषनाशकअंजन ।

जयपालस्य मजां च भावयेन्निबुकद्रवैः । एकविंशतिवेलं
तत्ततो वार्त्तिं प्रकल्पयेत् ॥ मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो
नेत्रे तयांजयेत् । सर्पदण्डविषं जित्वा संजीवयति मानवम् ॥

अर्थ—जमालगोटके भीतरकी मिमी लेकर चूर्णकरे फिर इसमें नींबूके रसकी २१ इसकी पुट देवे, पीछे इसकी लंबी बत्ती बनावे, इस गोलीको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमें आंजे यह सांप कांटे हुए प्राणीके विषको दूरकर जिवाता है अर्थात् सावधान करताहै ॥

नेत्ररोगनाशनसुगमोपाय ।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यादि दीयते ।

जातरोगा विनश्यन्ति तिमिराणि तथैव च ॥

अर्थ-भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धोवे फिर वोही गीले हाथोंकी हथेलीको आपसमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो उत्पन्नहुए नेत्ररोग तथा तिमिररोग आदि संपूर्ण नेत्ररोग दूरहोवे ॥

तथाउपायांतर ।

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वि-
तयं जलेन । आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदाक्षिरोगव्य-
थाविधुरतां भजते मनुष्यः ॥

अर्थ-नित्य दिन दिनमें तीनवार शीतलजलसे मुखको भरके और दूसरे शीतलजलसे नेत्रोंके तीनवार छींटा मारे तो अति दुखदायक नेत्ररोगसंबंधी पीडा कदाचित् नहीं होय । यह उपाय बहुतही सहजका और अत्यंत गुणदायकहै सब मनुष्योंको उचित है कि, इसको अवश्य किया करे इतनी दत्तरामचौबे की प्रार्थना है ॥

अथ संधानविधिः ।

द्रवेषुचिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत् ।

आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥१॥

अर्थ-उपयुक्त जलादि द्रव पदार्थोंमें औषध डालके फिर पात्रके मुखको बांध मुद्रादेकर बहुत काल (मास, पक्ष) पर्यंत धरा रहनेदे, फिर उससे उत्सेक (दारू निकालनेकी क्रिया) द्वारा एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होवे उस क्रियाको संधान क्रिया कहते हैं तथा उस औषधोचित संधान को आसव और अरिष्ट ऐसे दो भेदों करके कहते हैं ॥

आसवारिष्टयोर्लक्षणम् ।

यदपक्वौषधांबुभ्यां सिद्धं मद्यं सं आसवः ।

अरिष्टः काथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥२॥

अर्थ-अपक्व औषध और जलद्वारा संपादित (वनाएडुए) मद्य (दारू) को आसव कहते हैं और काथसे वनेडुए मद्यको अरिष्ट कहते हैं, इन दोनोंकी मात्रा ४ तोले है ॥

आप्लाव्य सुरया सम्यग्द्रव्याणि विविधानि च ।

सप्ताहान्ते परिस्राव्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ३ ॥

एषोऽरिष्टाभिधानेन भिषग्भिः परिकीर्तितः ।

अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया वीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ ४ ॥

अर्थ—दारूमें संपूर्ण द्रव्य भिगोयके सात दिन पर्यंत धरी रहनेदे पश्चात् इसका भवकेके द्वारा रस चुवावे उसको कपडेमें छानके बोतल आदिमें भरके धरदेवे, इसको अरिष्ट कहते हैं । जिस २ द्रव्यको भिगोयके अरिष्ट बनाया जाता है उसी २ द्रव्यके गुण वो अरिष्ट करता है ॥

सामान्यतोऽरिष्टविधिः ।

अनुक्तमासारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडातुलाम् ।

क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अरिष्ट साधनमें जहां किसी वस्तुका मान न कहाहो वहां नीचे लिखी विधिके अनुसार वर्तना चाहिये । जैसे ६४ सेर प्रमाण जल आदि द्रव द्रव्यमें गुड १०० पलले और सहत गुडसे आधा लेवे, अर्थात् ५० पचास पलले तथा प्रक्षेप वस्तु गुडके दशमांश (दशमांशिस्सा) अर्थात् १० पल डाले, सबको एकत्र कर यथाविधि अरिष्टको बनाना चाहिये ॥

द्विविधसीधुमाह ।

ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः ।

सिद्धः पक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः ॥ ६ ॥

अर्थ—अब सीधुकी विधि कहते हैं, तहां सीधु दो प्रकारकाहै जैसे-शीतरस सीधु बनताहै । अर्थात् ईख आदि अपक्व रसको घासित करनेसे (धरास्वनेसे) शीतरस सीधु बनताहै । अर्थात् ईखकारस अथवा और कोई मधुर रसको पात्रमें भर धरदेवे फिर सातदिनके बाद रस नितारलेवे । इसीप्रकार पके हुए ईखके रसके द्वारा उत्पन्न सीधुको पक्व-रससीधु कहते हैं सीधुको भाषामें सिर्का कहते हैं । इसका प्रचार प्रायः पूर्वंके देश (काशी, पटना, आदि प्रांतोंमें) अधिकहै ॥

सुरादिलक्षणम् ।

दिनानि कतिचित्क्लिन्नं गुडादौ स्यापयेद्विपक्वम् ।

ततो विक्लित्तिमापन्नं यंत्रैश्च नाडिकादिभिः ॥ ७ ॥

विधिवत्प्रावयेच्चास्मादन्यपात्रे सूतं रसम् ।

गृह्णीयात्सासुरा ख्याता तीक्ष्णोष्णवीर्यशालिनी ॥ ८ ॥

अर्थ—सुरोपादानद्रव्य (दारू बनानेकी दवाई) उन सब गुडादि-
कको पात्रमें डालके कुछदिन उसी प्रकार धराराखे, जब सब द्रव्य
गलजावे और वो जल उठ आवे अर्थात् गंधदेने लगे तब उसको नाडि-
कादि यंत्रद्वारा जुवायके रस निकाल लेवे । इस निकाले हुए द्रवपदार्थको
सुरा कहते हैं यह तीक्ष्णवीर्य तथा उष्णवीर्य वाली है ॥

सुरा प्रसन्नादि मद्योंके भेद ।

परिपक्वान्नसंधानात्समुत्पन्नासुराजगुः ।

सुरामंडःप्रसन्ना स्यात्ततःकादंबरी घना ॥ ९ ॥

तदधो जगलोज्ञेयो मेदको जगलाद्धनः ।

वक्त्रसो हृतसारःस्यात्सुरावीजं च किण्वकम् ॥ १० ॥

अर्थ—तंडुलादिक धान्यको सिजाय अधिक संयोग करके यंत्रद्वारा
जो मद्य उत्पन्न करते हैं उसको सुरा कहते हैं उस सुराके फेन (झाग)
को प्रसन्ना कहते हैं । उस प्रसन्नाके मध्यमें जो घन (गाढा) भाग है
उसको कादंबरी कहते हैं । उस सुराके अधोभागमें जो द्रव्य भाग है
उसको जगल कहते हैं और उस जगलसे भी गाढे भागको मेदक-उस
मेदको पक करके उसमेंसे सार काढके शेष रहे हुए पदार्थको सुरावीज
अथवा किण्व कहते हैं ॥

वारुणी ।

यत्तालखजूरसैः संधिता साहि वारुणी ।

अर्थ—ताडकारस अथवा खजूरके रससे संधानक्रिया द्वारा वारुणी
उत्पन्न हो, अर्थात् ताड अथवा खजूरके रससे अधिक संयोगकरके यंत्र-
द्वारा जो पदार्थ उत्पन्न करते हैं उसको वारुणी कहते हैं, इस वारुणी मद्यको
भापामें ताडी कहते हैं ॥

शूक्त ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ ११ ॥

यत्रद्रवेऽभिपूर्यते तच्छूक्तमभिधीयते ॥

अर्थ—अनेक प्रकारके कंद, मूल, फलादि, स्नेह और संधानिमक

इनको पानी आदि द्रवपदार्थमें डालके कुछदिन धरारहनेदे जब उठआवे तब काममें लावे उसको शूक्त कहते है । भाषामे शूक्तको अचार, वा अधाना वा संधाना, कहते है जैसे आमका नीबूका अचार ॥

विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवैः ॥ १२ ॥

विनष्टः संधितो यस्तु तच्छूक्तमभिधीयते ॥

अर्थ—मद्य विनष्टहोकर खटाई आयजावे अथवा कोई मीठी द्रव्यको पात्रमें बंदकर मुद्रा देकर महिना या पक्षपर्यंत धरा रहनेदे जब सिद्धहोय उस मद्यको शूक्त (शुक्त) कहते है ॥

गुडशूक्त ।

गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ॥ १३ ॥

संधितश्चाम्लतां यातं गुडशूक्तं तदुच्यते ॥

अर्थ—गुड, पानी, तैल, कंद, मूल, फल, साक इन सबको किसी पात्रमें भरके मुखबंद कर १ महिने या पद्रह दिन धरा रहनेदे जब खटाई आयजावे तब कार्यमें लावे इसे गुडशूक्त कहते है ॥

एवमेवहि शूक्तं स्यान्मृद्धीका संभवस्तथा ॥ १४ ॥

अर्थ—इसीप्रकार ईखका तथा दाखका शूक्तभी बनताहै ॥

तुषांबुऔरसौवीर ।

तुषाम्बुसंधितं ज्ञेयमामेर्विदलितैर्यवैः ।

यवैस्तुनिस्तुपैःपक्वैःसौवीरं साधितं भवेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—निस्तुप कच्चे जौ कूट उसमे पानी डाल किसीपात्रमें भरके थोड़े-दिन धरा रहनेसे जब खटाई आयजावे उसको तुषांबु कहते है । और भुनेहुए अथवा सीजे हुए जौ कूट पानीडाल खटाई आने पर्यंत धरारहनेदे उसको सौवीर कहते है ॥

ग्रंथांतरे ।

सौवीरस्तु यवैरामैःपक्वैर्वा निस्तुपाकृतैः ।

गोधूमेरपि सौवीरमाचार्याःकेचिद्विचिरे ॥ १६ ॥

अर्थ—अपक अथवा पक निस्तुप जौको संधित (पूर्वोक्तक्रिया) करनेसे सौवीर बनताहै । किसी २ वैद्यके मतसे गेहूँ द्वाराभी सौवीर (पूर्वोक्त क्रियासे बनताहै) ॥

आरनाल ।

आरनालस्तुगोधूमैरामैः स्यान्निस्तुपीकृतैः ।

पक्वैर्वा संहितं तत्तु सौवरिसदृशं गुणैः ॥ १७ ॥

अर्थ—कच्चे अथवा पक्के निस्तुप गेहूं लेकर संहित (साधित) करनेसे आरनाल उत्पन्न होता है, इसके गुण सौवीरके समान जानने ॥

कांजिक ।

संधितंधान्यमण्डादि कांजिकं कथ्यते जनैः ।

अर्थ—धान्य के मंडादिसे साधितको कांजी कहते हैं ॥

सांडाकी ।

सांडाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्पपादिभिः ॥ १८ ॥

अर्थ—और मूली तथा सरसों आदिका बना रस उसमें पानी डाल हलदी, हींग, राई, सेंधानिमक, जीरा, सोंठ इत्यादिका चूर्ण डालके पात्रका मुख बंदकर तीन चार दिन धरा रहनेदे इसको सांडाकी कहते हैं ॥

धान्याम्लम् ।

प्रस्थं पष्टिकधान्यस्य नीरप्रस्थद्वयं क्षिपेत् । आधार-
भांडं संरुद्धय भूमेर्गर्भे निधापयेत् ॥ १९ ॥ पक्षाद्य-
समुद्धृत्य वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ ततो जातरसं योज्यं
धान्याम्लं सर्वकर्मसु ॥ २० ॥ धान्याम्लं शालिचूर्णा-
च्चकोद्रवादि कृतं भवेत् ।

अर्थ—तुषयुक्त सोठी धान्य १सेरको कूटके उसमें २सेर डालके भिगोयदे अथवा चारसेर जलमें भिगोयदे फिर उस पात्रके मुखमें डाढ लगाय धरतीमें गाडदेवे २५ दिनके बाद निकालके कपडेसे छानलेवे इस रसको धान्याम्लक कहतेहैं इसको सब कर्मोंमें देवे । इसी प्रकार शाली चावलके चुर्णसे और कोदों आदिके चूर्णसेभी धान्याम्ल बनताहै ॥

कांजिकसाधन ।

तुलामितं पष्टिकर्तदुलं च प्रगृह्य चात्रं विधिवद्वि-
धाय । द्रोणेऽभसि क्षिप्तमथ त्रियामांस्तत्सत्तरक्षे-

त्पिहितं प्रयत्नात् ॥ ततस्तु कल्कं सकलं निरस्येत्
त्कांजिकं कथ्यत आरनालम् । तद्भेदितीक्ष्णं लघुपा-
चनं च दाहज्वरघ्नं कफवातनाशि ॥

अर्थ-१२॥साडे बारह सेर स्वच्छ सांठी चांवल लेवे,उनको ६४सेर ज-
लमें भिगोय देवे,इस प्रकार उनको रक्षापूर्वक सात दिन भीगनेदे,बाद सात-
दिनके उसको छानके पानी नितारले,इस कल्ककी आरनाल अथवा कांजी
कहते हैं, यह दस्तकरानेवाली, तीक्ष्णगुणयुक्त,हलकी और पाचनहै तथा
दाह,ज्वर और कफवातको नाशकरती है।परंतु हमारे देशमें इसको कांजी
नहीं कहते, हमारे राईके पानीमें उडदके बडा भीगनेसे जो बनती है
उसको कांजी कहते हैं ॥

यद्यपि भूमिपरीक्षा देशपरीक्षामें लिखआये हैं परंतु यहांपर यह पूर्वपरी-
क्षासे भिन्नहै सो नीचेके अर्थमें दिखाये हैं यह सुश्रुतसे लिखते हैं ॥

अथातोभूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम भूमिप्रविभाग विज्ञानीयाध्यायका वर्णन करेंगे अर्थात्
भूमिका जो उत्तम भाग उसके अर्थका विज्ञान जिस अध्यायमें उसकी
व्याख्या करेंगे । यद्यपि आतुरोपक्रमणीयाध्यायके देशवर्णनमें भूमिपरी-
क्षा कही है, परंतु वह परीक्षा भूतोंके कार्य (शीतोष्णवर्षादिकों) करके
तथा पर्वतवृक्षादिकोंकरके करी है । और इस भूमिप्रविभागविज्ञानीया-
ध्यायमें खास भूतगणोंकरके परीक्षा करीहै यहभेदही।षो पृथ्वीका विभाग
दोप्रकारका है, एकसामान्य और दूसरा विशिष्ट तहां प्रथम सामान्य
भूमिप्रविभागको कहतेहैं ॥

सामान्यभूमिप्रविभागकावर्णन ।

श्वभ्रशर्कराश्मविपमवल्मीकश्मशानाऽद्यतनदेवतायतन
सिकताभिरनुपहतामनूपरामभंगुरामदूरोदकांस्त्रिग्धां

१ भूतशब्दसे पृथ्वी जल आदि पंचभूत जानने इनके शीतल उष्णता आदि कार्य
जानने । २ भूतगुण अर्थात् पृथ्वी जल आदिके गुण वाले पीले कठोर मृद आदि जानने।

प्ररोहवर्ती मृद्धी स्थिरां समां कृष्णां गौरीं लोहितां वा
भूमिमौषधार्थं परीक्षेत तस्यां जातमपिकृमिविषशङ्खा-
तपपवनदहनतोयसम्बाधमार्गैरनुपहतमेकरसं पुष्टं पृथ्व-
वगाढमूलमुदीच्यां चौषधमाददात्तेत्यौषधमूमिपरीक्षा
विशेषः सामान्यः ॥

अर्थ—जो पृथ्वी सर्प मूसे आदिके विले, शर्करा, पत्थर, आदिसे विषम अ-
र्थात् ऊँची नीची न हो तथा बाँबी, ईमशान, वधस्थान, देवस्थान और
वालू रेत आदिसे दूषित न हो, ऊषर न हो, रेखावाली न हो, जिसमें बहुत
नीचापानी न हो, चिकनी, बीजमें अंकुरोत्पादक, कोमल, स्थिर (पानी
और हवासे जिसको मिट्टी न जाय) समान अर्थात् एकसी, काली, गौरी
(सुवर्णके समान वर्णवाली) लोहित (लाल रंगकी) इत्यादि गुणवाली
पृथ्वी की परीक्षा औषधग्रहण (औषधलानेके) अर्थकरे ॥

अब कहते हैं कि, केवल पृथ्वीके गुणोंकेही औषधोंको ग्रहण न करे
किंतु औषधोंके दोष गुणकोभी विचार करके औषधलेनी यह दिखाते हैं ॥

तहां उक्तपृथ्वीमें भी उत्पन्नहुई, जो कृमि (कीड़ा) विष, शस्त्र घूप,
हवा, अमि, संकट और मार्ग (रस्ता) इत्यादि करके दूषित (विगडी
हुई) न हो, जिसमें एकरस (उत्कृष्टरस) हो, देखनेमें पुष्ट हो तथा जिस-
की पृथ्वीके भीतर दूरतक जड चलीगई हो (चकारसे वो जडभी उत्तमहो
दूषित न हो) इत्यादि गुणविशिष्ट औषधको वैद्य उत्तरामुख करके उखाड़े
यह औषध भूमिकी परीक्षा सामान्यता करकेकही है ॥

इस प्रकार सामान्य पृथ्वीके गुणोंको कहकर अब विशेषगुण प्रत्येक
भूतोंको दिखाते हैं ॥

स्वगुणभूयिष्ठपृथ्वीके गुण ।

विशेषतस्तु । तत्राश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृष्णा
वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा ॥

१ आगे रसायनके प्रकरणमें कपोती नामकी रुखडीकी बाड़ीपरसे लाना लिखाहै फिर
निषेध क्यों करा? तहां कहते हैं कि, दिव्यौषधियोंका बीयें सर्पोदि विषसे नष्ट नहीं होता
अथवा वो उसी बोग ऊगनेसे अधिक बाँयवाली होती है । २ जहां मुँदें जलए जातेहैं।

अर्थ—अब विशेषता दिखाते हैं कि, जो पृथ्वी पत्थरवाली, (पथरीली-ककरीली,) कठोर, भारी, कालेरंगकी, अथवा स्याम रंगकी हो तथा जिसमें बड़े २ पुष्टवृक्ष-(दरखत) और लंबी २ घास आदि तृणहो, वो, पृथ्वी (जमीन) स्वगुणभूयिष्ठ अर्थात् पृथ्वीगुणभूयिष्ठ जाननी ॥

जलगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

स्निग्धा शीतलासन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृक्ष-
प्राया शुष्काम्बुगुणभूयिष्ठा ।

अर्थ—जो पृथ्वी चिकनी, शीतल, जलप्राय, अर्थात् जिसमें समीपही जलहो तथा जिसमें सचिकण, छोटी २ और बड़ी घास (दूब आदितृण) हो, कोमलवृक्ष और प्रायः सर्वत्र गीलीहो वो जमीन जलगुणभूयिष्ठ जाननी अर्थात् इसमें जलका भाग अधिक रहता है ॥

अग्निगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविलाल्पपाण्डुवृक्षप्ररोहा-
ऽग्निगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी अनेकवर्णकी, हलकी पथरीली, कहींकहीं थोड़े और पीले वृक्षादिकहों वो जमीन अग्निगुणभूयिष्ठ जाननी, अर्थात् इसमें अमिका गुण अधिक जानना ॥

पवनगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

रूक्षाभस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोठरालपरसवृक्ष-
प्रायाऽनिलगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी रूखी, भस्म (खाक) और गद्वेके वर्णसमान खाकी रंगकी हो तथा जिसे छोटे २ रूखे, पीले, थोड़े रसवाले ऐसे वृक्षहों वो जमीन पवनगुणभूयिष्ठ जाननी । अर्थात् इसमें पवनका गुण अधिक है ॥

आकाशगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

मृद्धी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षा
महापर्वतवृक्षप्राया श्यामाचाकाशगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी नरम, समान, गड्ढेवाली हो तथा जिसमें रसहीन

१ इसमें पृथ्वीका अंश अधिक रहता है ।

(मलमलेस्वादको) जलहो, सारहीनवृक्ष, बडे २ पर्वत और बडे २ वृक्ष जिसमें सर्वत्रहों तथा रंगमें श्यामहो वो जमीन आकाशगुणभूयिष्ठ जाननी अर्थात् इसमें आकाशका गुण अधिक है ॥

पंचभूतोंके गुणकहनेसे यह प्रयोजन है कि, प्रत्येक वमन विरेचनादिमें अपने २ गुणभूयिष्ठ दवाई लेनी, जैसे वमनकी औषध आकाशगुणभूयिष्ठ होती है तो उनको आकाशगुणभूयिष्ठ जमीनसे लेनी इसी प्रकार जुलाबमें जलगुणभूयिष्ठ होनेवाली औषधी जलगुणभूयिष्ठ पृथ्वीसे वैद्य लेवे, कारण यह कि, स्वगुणभूयिष्ठ औषधी बलवान् होती है ॥

औषधग्रहणमें मतभेद ।

तत्र केचिदाहुराचार्याः । प्रावृद्धवर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मेषु यथासंख्यं मूलपत्रत्वक्क्षीरसारफलान्याददीतिति, तत्तु न सम्यक् कस्मात् सौम्याग्नेयत्वाजगतः । सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृत्तुष्वददीताग्नेयान्याग्नेयेष्वेवमव्यापन्नगुणानि भवन्ति । सौम्यान्यौषधानि सौम्येषु ऋतुषु गृहीतानि सौम्यगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायन्ते । एतेन शेषं व्याख्यातम् ।

अर्थ—तहां कोई २ आचार्य कहते हैं कि, प्रावृद्ध, वर्षा, शरद, हेमन्त-वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओंमें यथाक्रम जड़, पत्ते, त्वचा, दूध और औषधोंके फल लेने चाहिये ॥ परंतु यह मत उत्तम नहीं है, क्योंकि यह जगत सौम्य और आग्नेयके भेदसे दोही प्रकारका है, जब दो प्रकार जगह तब सौम्य (शीतल) औषधोंको सौम्यऋतु (शरद, हेमन्तादि) में लेवे और आग्नेय (गरम) औषध गरमऋतु (ग्रीष्मआहि) में लेवे, तो ये निर्दोष गुणवाली होती है । सौम्य औषध सौम्यऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा सौम्य गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न हुई वो अत्यंत मधुर सिग्ध और शीतल होती है । इसीप्रकार आग्नेय औषधी आग्नेय ऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा आग्नेय-गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहुई वो अत्यंत तीक्ष्ण और रूक्ष और गरमहोती है ॥

विरेचनादिद्रव्यकिसपृथ्वीकीलेनी ।

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरे-

चन्द्रव्याण्याददीताभ्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायां वम-
नद्रव्याणि । उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतोभागानि ।

आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनान्येवं बलवत्तराणि भवन्ति ॥

अर्थ—तहां पृथ्वी और अंबु (जल) गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होने वाली ऐसी विरेचन अर्थात् दस्तकारी औषधोंको वैद्य लेवे और आकाश पवन गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहो ऐसी वमन करानेवाली औषधोंको वैद्य लेवे । एवं दोनोंगुण अर्थात् आकाश और पृथ्वीमें तथा जल और पवनगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमेंसे वमन विरेचन दोनों कराने वाली औषधोंको वैद्य लेवे । एवं आकाशगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली औषधी संशमन संज्ञक औषध होती है उनको उसी स्थानसे लेवे ॥

सर्वाण्येवचाभिनवान्यन्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविड-
ङ्गेभ्यः । सर्वाण्येवंसक्षीराणि वीर्यवन्ति तेषामसम्पत्ताव-
नतिक्रान्तसंवत्सरान्याददीतेति ॥

अर्थ—वैद्यको उचितहै कि, जितनी औषधले सब नवीन ले, परंतु सहत घी, गुड, पीपल और वायविडंग ये पुरानेही लेना [तथा दोषर्वाजित अर्थात् कृमिविपादि दोषरहित औषधी लेना] एवं सब क्षीर [दूधवाली वा रसवान] ले कारण कि, रस औषध वीर्यवान् होती है कदाचित् कहे हुए लक्षण वाली औषध न मिले तो फिर कैसाकरे तहां कहते हैं कि, यदि पूर्वोक्त गुणवान् औषध न मिले अर्थात् सहत घृत आदि पुराने तथा औषधी आदि नवीन न मिले तो जिनको लाए वर्षदिन न हुआहो ऐसी औषध लेवे ॥

औषधजाननेकाउपाय ।

भवन्ति चात्र ।

गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः ।

मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते ॥

अर्थ—गोपाल, (गौ, भैस, बकरी, आदिके पालन करनेवाले चरवाहे) तपास्वि, (जटाधारी, स्पंडिलशापी आदि) व्याध, (सिकारी, अहेरिया आदि) वनचारी, (भील, चुआड, गौण, माली, फाछी, बंजारे, नाथ

१ जो द्रव्य न वमन करावे न दस्त करावे किंतु रोगके साथमें एकीभूतहो उस व्याधिको शमन करे उसको संशमन संज्ञक औषधी कहते है ।

कालवेलिया इत्यादि) तथा मूल, फल, कंद, भक्षणकर्ता तपस्वि इनसे औष-
धका स्वरूप और नाम मालूमहो सकताहै । अर्थात् उक्तप्राणी नित्य वनमें
रहा करते हैं अतएव इनको सब वनस्पती, वृंटी, आदिकी पहचान होतीहै
वैद्यको उचित है कि, इनके सकाससे औषधोंको जाने ॥

सर्वावयवसाध्येषु पलाशलवणादिषु ।

व्यवस्थितो न कालोऽस्ति तत्र सर्वो विधीयते ॥

अर्थ—संपूर्ण मूलादि अवयव ग्राह्य ऐसे पलाश लवण अर्थात् पत्रलव-
णादि योगोंमें जहां कालकी मर्यादा नहीं कही वहां पर संपूर्ण (प्रावृडा-
दि) काल जानना

गन्धवर्णरसोपेता षड्विधा भूमिरिष्यते ।

तस्माद्भूमिस्वभावेन बीजिनः षड्रसायुताः ॥

अर्थ—वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्द और सर्व लक्षणा ऐसे छः प्रकारकी
पृथ्वी है अतएव इस पृथ्वी के स्वभावसेही वृक्षादिकभी षड्रस करके युक्त
है अथवा ये छः रस भूमि के स्वभावसे मिलकर वृक्षादिरूपसे प्रगट होतेहैं ॥

अब कहते हैं कि, द्रव्योंके परिणाम विशेषकरके मधुरादि रस होते हैं फिर
आप'आप्योरसः' अर्थात् रस है सो आप्य है ऐसा क्यों कहते हैं तहांकहते हैं ॥

अव्यक्तः किल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः ।

रस एव स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत् ॥

अर्थ—जलका रस (मधुरादि भावकरके) अप्रकट है यह प्रमाण निश्चय
है अर्थात् जलमें रसतो है, परंतु मोठा वा खारी है यह निश्चय नहीं है, तहां
वही अप्रकट रस भूमिक रससे प्रगट होता है ॥

भूमिद्रव्यकाकारणकहतेहैं ।

सर्वलक्षणसम्पन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ।

द्रव्याणि यत्र तत्रैव तद्गणानि विशेषतः ॥

अर्थ—सर्वलक्षण (पृथिव्यादि पंच महाभूत लक्षणों करके) युक्त पृथ्वी
साधारण कही है ऐसी साधारण पृथ्वीकी द्रव्य (औषधी) विशेषकरके
साधारण गुणवाली जाननी ॥

नवीनवापुरानीकैसीद्रव्यलेनी ।

विदग्धे नापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः ।

नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ-जो औषधी विरोधी गंध करके स्पर्श न करी गई हो (अर्थात् जिसमें जोसुगंध आया करे उससे विपरीत गंध न आवे जैसे गुलाबमें प्याजकीगंध) और रसादि करके क्षीण न हो अर्थात् रसादि संपन्नहो, ऐसी नवीन अथवा प्राचीन लेनी चाहिये ॥

विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम् ।

शेषमन्यत्त्वभिनवं गृह्णीयादोषवर्जितम् ॥ ४ ॥

अर्थ-तहां वायुविडंग, पीपल, सहत, और घी ये पुराने लेवे इससे अन्य औषधी सब नवीन और पूर्वोक्त विषादि दोष रहित लेनी चाहिये ॥ इसप्रकार स्थावरोंको कहकर अब जंगमों को कहते हैं ॥

जंगमानां वयःस्थानां रक्तरोमनखादिकम् ।

क्षिरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत् ॥

अर्थ-तहां वयस्थ जंगम (अर्थात्) तरुण प्राणियोंके रुधिर, रोम और नखादिक लेवे और यदि इनके क्षीर, मूत्र, गोबर, लीद आदि लेने होयतो जब इनका आहार पचजावे तब लेवे, अजीर्णविस्थाका नलेय ॥

औषधरत्ननेकाउपाय ।

प्लुतमृद्राण्डफलकशंकुविन्यस्तभेषजम् ।

प्रशस्तायांदिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते ॥ ५ ॥

अर्थ-इन औषधोंको कपड़ेके टुकड़ोंमें, मिट्टीके वासन (इमरतवान

१ जंगम शब्दसे सजीव चलने फिरनेवाले मनुष्य, घोडा, हाथी, शेर, बकरी, भेडा, हरिण, मुरगा आदि जानने । जंगम प्राणी जो जवान होते हैं उनके मांस, रुधिरादिभी अधिक बीयेवाले होते हैं । और बच्चे, तथा बुढ़े निबंली और हीनवीर्य होते हैं । इस वास्ते इस जंग (वयस्य) ऐसा पद धरा है ।

२ जो दानेदार औषधें उनको कपड़ेमें बांधके धरे, जो मूर्ण आदि हैं उनको मिट्टीके पात्र तथा शीशी आदिमें धरे परंतु उनके ऊपर नाम लिखदेवे कि, जिस्से भूलन हो । जो लंबी और भारी वस्तु है उनको तक्ते आदिपर धरे और जो रुखड़ी जड़ी

हांडी, चीनीके प्याले, सकोरा, गागर, मांड, तथा शीशीआदि) फलक, (तक्का, पट्टी) और शंकु (कील, मेख,) इनमें धरी है औपधी जिसमें ऐसा औषधालय पूरव अथवा उत्तरदिशा और पवित्र स्थानमें होना चाहिये पिछाडी वस्ती प्रकरणमें लिख आए हैं कि, औषधोंके गण आगे कहेंगे, इसवास्ते अब द्रव्यसंग्रहणीयाध्यायकरके औषधोंके ३७ गण कहते हैं॥

अथातो द्रव्यसंग्रहणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम द्रव्यसंग्रहणीय अध्यायका वर्णन करेंगे, तहां संग्रह शब्दसे संक्षेपार्थ लेना अर्थात् द्रव्योंका संक्षेप मुख्यकरके करी अध्याय उसका हम व्याख्या करेंगे, द्रव्योंका विस्तारसे वर्णन आगे चिकित्सा खंडमें कराजायगा जैसे इसी अध्यायके अंतमें लिखेंगे 'समासेन गणा ह्येते प्रोक्तास्तेषां तु विस्तरम् । चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषवलाघ लम्' जैसे इस सुश्रुतमें ३७ गणकहे हैं उसीप्रकार वाग्भटके शोधनादि-गणसंग्रहाध्यायमें ३३ ही औषधोंके गण कहे हैं ।

तहां अध्यायकापिंडार्थ ।

समासेन सप्तत्रिंशद्द्रव्यगणा भवन्ति तद्यथा ।

आदि है उनको डोरसे बांधके कील, सूटी, मेख आदिमें लटकाय देंगे । तेल घृत आदि को कुप्पी, चिकने वासन आदिमें वैद्य एक मुडोल रीतिसे अपने औषधालयमें धरे कि, जिससे मकानभी सजजाय और औषधभी न बिगड़े तथा वस्तुपर शीघ्र मिलजावे ।

१ पवित्रस्थान कहनेका यह प्रयोजन है कि, जो सपेदी आदिसे स्वच्छ तथा नीचे कूड़े आदिसे रहित, जिसमें उत्तम ऊंचे २ द्वारा हों जिससे पवनका संचार अच्छे प्रकार हो और उज्वल चादनी आदि कपड़े बिछे हो तथा ऊपरभी ऐसेही तने हों, तथा उस मकानके और पास दुर्गंध न हो, इत्यादिक सामिग्रीसे पवित्रहो, ऐसा न होवे कि, कहीं कुछ रूखडी पडी है, कहीं कूड़ेका ढेर लगा है, पासही दूटे फटे नूतेंके जोड़े पड़े हैं, पुराना धुराना कुछ बिछैया बिछा है, मकानकी छत और भीतोंस मिट्टीकी वर्षा होरही है मक्खनी भिन भिनाती है, दुर्गंधआती है दूटे फूटे वासनासे कुछ दवाई धरतीमें फैल रही है, कुछ उस पात्रमें है । पोथा पत्तरे अस्तव्यस्त पड़े है कुरूप और मलीन ऐसे औषध बनानेके पात्र वही पड़े है इत्यादि अनेक कारणोंसे अपवित्रता होती है । उससे वैद्यको सदैव सावधान रहना चाहिये ॥

यह वैद्य अन्यरोगी आदिको स्वच्छ रहनेकी आज्ञा देता है फिर दांपकके नीचे अधकारहो तो रोगिजन क्या कहेंगे । देखो डाक्टर लोग कैसे अस्पताल और अपने मकानकी स्वच्छता रखते हैं खैर उनहीका अनुकरण सीखो ॥

अर्थ-संक्षेपसे द्रव्योंके सैंतीस गण होते हैं, जैसे-आगे लिखते हैं ॥

विदारिगंधादिगण ।

विदारिगन्धा विदारी सहदेवा विश्वदेवा श्वदंष्ट्रा पृथक्-
पर्णी शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकर्पभकौ
महासहा क्षुद्रसहाबृहत्यौ पुनर्नवैरण्डौ हंसपादीवृश्चि-
काल्यूपभीचेति ।

विदारिगन्धादिरयं गणःपित्तानिलापहः ।

शोपगुल्माङ्गमर्द्दौर्द्धश्वासकासविनाशनः ॥ ३ ॥

अर्थ-विदारिगंधा, (शालपर्णी) विदारीकंद, सहदेवा, (सहदेई)
विश्वेदेवा, (गगेरन गुडसकरिनामसे प्रसिद्ध) श्वदंष्ट्रा, (गोखरू) पृथ-
क्पर्णी, (पिठवन) शतावर, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवक, ऋपभक,
महासहा, (मासपर्णी) क्षुद्रसहा, (मुद्गरपर्णी) बृहती, (छोटैफलकी और
बड़े फलकी दोनों फटेरी) पुनर्नवा, (सांठ) अंड, हंसपर्दी, वृश्चिकाली
(मेढासिंगीकाभेद) और ऋपभी (कौंच, फिवाच)

ये ऊपर लिखीहुई संपूर्ण औषध विदारिगंधादिगण जानना । यह
पित्त, वादी, शोष, (राजयक्ष्मा) अंगमर्द, (अंगोंका टूटना) उर्द्धश्वास
और सांसीको दूरकरे है ॥

वातपित्त हरण करनेसे इस गणको दोपनाशक और शोषादि हरण करने

१ विदारिकंद कोहला (पेंठ) के समान लाल फलका होताहै । इसके दो भेद हैं-
पहला लंबाकंद और बहुत दूधवाला, दूसरा क्षार्थिके परेके समान बहुतथोड़ा दूधवाला
होता है । ये पूरके देशोंमें बहुत मिलते हैं । सारिवा जामुनके पत्तेसमान पत्तेवाली दूध-
वालीबेल इसी नामसे प्रसिद्धहै । कृष्णसारिवा छोटैटाके समान पत्तेवाली और
उसमें चदनकी सुगंध आती है, भाषामे कालीबेल बढ़ते हैं । ४ इसपर्दीइसके पत्ते इनके
परके सदृश होते है, और पीलाफूल-तथा जल सूख गयाहो उस पृथ्वीमें होताहै लोहमें
ईसराग बढ़ते हैं परंतु इसराग यह नहीं है । इसकी परीक्षा और रूप हम इसी पृष्ठावि-
षंटरत्नानरके निघंटुभागमें लिखेंगे । ५ वृश्चिकाली रूसडी फटिवाली मेढाके सांगके
समान ऊँचे फलवाली होती है । कोई फटता है कि, फटनेसे पत्ते-कुछ २ रुआं वाली
सपेद फलकी दक्षिणावर्त बेल मेढासिंगीका भेद होताहै ॥

पागूमटमें देवदारू तथा जीवनीयगणको इसीगणमें लिखाहै ॥

से इस गणको व्याधिनाशक अर्थात् व्याधियोंका शत्रु जानना । दोषों-पर कहकर व्याधियोंके ऊपर कहनेसे इस गणको अवस्था, काल और देशादि भेदकरके संपूर्ण अथवा आधाजो मिले उतना लेकर काढा, फाँट, स्वरस, कल्क, चूर्ण और गुटिकाआदि वनायकर रसक्रिया, लेप, नस्य, परिषेक और स्नान तथा घृत तैलादिक यथायोग्य योजित करने चाहिये । इसीप्रकार अन्य गणोंमें भी जानना ।

तथा जीवकऋषभकआदि द्रव्योंका अन्नपानादिकमें गुण नहीं कहे-उनको संपूर्ण गणके गुणाभिधान करके पृथक् द्रव्यगुण जानने चाहिये॥

आरग्वधादिगण ।

आरग्वधमदनगोपघोण्टाकुटजपाठाकण्टकीपाटलामूर्वे-
न्द्रयवसप्तपर्णनिम्बकुरुण्टकदासीकुरुण्टकगुडूचीचित्रक-
शाङ्गष्टाकरञ्जद्वयपटोलकिराततिक्तकानिसुपवीचेति ।

आरग्वधादिरित्येपगणःश्लेष्मविपापहः ।

मेहकुष्ठज्वरवर्मा कण्डूघ्नो व्रणशोधनः ॥ २ ॥

अर्थ-आरग्वध, (अमलतास) मदन, (मैतफल) गोपघोंटा, (कक-
डीकाभेद) कूडाकावृक्ष, पाठ, विकंकत, (काँटेवालावृक्ष कटेरीनामसे
प्रसिद्ध) पाठल, मूर्वा, इन्द्रजों, सैतवन, नीम, कुरुण्टक (कटसरैया,
पीलेफूलका पीयावांसा) दासीकुरुण्टक, (नीलेफूलका पीयावांसा) गिलोय,
चीता, शाङ्गष्टा (काकजंघा, विकसवनी करके प्रसिद्ध) करंज, (कंजा)
और पूतीकरंज, पटोलपत्र, किरात तिक्तक, (चिरायता) कारवी
(कलौजी अथवा काकडासिंगी) ॥

यह आरग्वधादिगण कफ, विष, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, घमन, खुजली
इनको दूर करे तथा (पुष्ट) धावको भरने वाला है ॥

वरुणादिगण ।

वरुणार्तगलशिशु मधुशिशु तर्कारीमेपशृङ्गीपूतीकनक्त-

१ कोई गोपघोंटाको भेद बताते हैं । और कोई सुपारीका भेद कहते हैं । २ सतोन्या
यह वृक्ष शरदि ऋतुमें खिलता है और हार्थके मदकीसी इसमें गंध आती है । ३. कोई
शाङ्गष्टाको काकमान्ची-और कोई काकतिका कहते हैं ।

मालमोरटाग्निमन्थसैरीयकद्वयविम्बीवसुकवसिर चित्र-
कशतावरीबिल्वाजशृङ्गीदर्भा वृहतीद्वयञ्चेति ।

वरुणादिर्गणोद्येपकफमेदोनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ-वरुणा (वरुणा इसवृक्षके पत्तोंका कडुआ साग होता है) आर्तगल (कोह.) शिष्ट (सहेंजना) मधुशिष्ट (लालसहेंजना) तर्कारी (अरनी) मेपशृंगी (मेढासिंगी) पूतिक (कंजा) नक्तमाल (बडाकरंज) मोरट (मूर्वा) अग्निमन्थ (अगेथू पूरवदेशप्रसिद्ध अरनीका भेद) सैरीयकद्वय (दो प्रकारकी फटसरैया, लालफूलवाली जिसको कुरवक कहते हैं और पालिपुष्प का पियावांसा) विंबी (कंदूरी) वसुक (वकपुष्प), अथवा वसुक (आफ) वसिर (मकंटापिप्पली, आंगानामसेप्रसिद्ध) चीता, शतावर, बेल, अजशृंगी (मेढासिंगीका भेद) कुश, और छोटीबडी फटेरी ॥

यह वरुणादिगण कफ, मेदा, मस्तकशूल, गोला और भीतरकी विद्रधि इनको दूरकरता है ॥

वीरतर्वादिगण ।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाश्म-
भेदकाग्निमन्थमोरटावसुकवसिरभङ्गककुरुण्टकेन्दीवर-
कपोतकङ्काश्वदंष्ट्राञ्चेति ॥

वीरतर्वादिरित्येप गणो वातविकारनुत् ।

अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रघातरुजापहः ॥ ४ ॥

अर्थ-वीरतरु (बिल्वंतर) दोनोंफटसरैया, दर्भ (डाभ) वृक्षादनी (वंदाक, वांदा प्रसिद्ध) गुन्द्रा (गोदर) नल (नरसल) कुशा, काश, अश्मभेदक (पापानभेद) अरनी, मोरट (मूर्वा) वसुक (वकपुष्प) वसिर (आंगा) भङ्गक (स्थोनाक) कुरुण्ट (सिरवालिका) इन्दीवरी (नीलाकमल) कपोत-
कंका (हुलहुल) औरगोखरू ॥

यह वीरतर्वादिगण वातके विकारोंको तथा पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र आदिकी पीडा इन सबको दूरकरे ॥

सालसारादिगण ।

सालसाराजकर्णखदिरकदरकालस्कन्धक्रमुकभूर्जमेपशृ-

ङ्गीतिनिशचन्दनकुचन्दनशिशपाशिरीषासनधवार्जुन-
तालशाकनक्तमालपूतिकाश्वकर्णागुरूणि कालीयकञ्चेति ।

सालसारादिरित्येष गणः कुप्लविनाशनः ।

मेहपाण्ड्यामयहरः कफमेदोविशोपणः ॥ ५ ॥

अर्थ—सालसारं (राल) अजकर्ण (सालवृक्षकाभेद.) खैर (काथा) क-
दर (सपेद खैर सारके समानपदार्थ) कालस्कंध (तेन्दू) क्लृक (सुपारी) भो-
जपत्र, भेटासिंगी, तिनिश (सादन) चंदन, कुचंदन (लालचंदन) शिशपा
(सीसों) सिरप, असन (विजसार इस नामसे पूरवदेशमें प्रसिद्ध) धव
(धों) अर्जुन (कोह.) ताल (ताड) शाक (वरदारू.) (सागवन इति
प्रसिद्ध) कंजा और बडा कंजा, अश्वकर्ण (कुशिक) अगर और
कालीयक (पीलाचंदन)

यह सालसारादिगण कुष्ठ, प्रमेह, पांडु, इन रोगोंको दूरकरे तथा कफ
और भेदको सुखाता है ॥

रोध्रादिगण ।

रोध्रसावररोध्रपलाशकुट्ट्रटाशोकफंजीकट्फलैलावालु-
कसल्लकीजिङ्गिनीकदम्बसालाः कदली चेति ।

एष रोध्रादिरित्युक्तो मेदःकफहरो गणः ।

योनिदोषहरस्तम्भी व्रणयो विषविनाशनः ॥ ६ ॥

अर्थ—लोध्र, सावररोध्र (पठानीलोध्र) पलाश (टाक) कुट्टनट (स्योनाक)
अशोक, फंजी (भारंगी) कायफल, एलावालुक (सुवासिक द्रव्य, हरिवालुक
करके प्रसिद्ध) सल्लकी (सालकाभेद) जिंगनी (मजीठ) कदंब, साल
और कला ये लोध्रादिगण हैं ॥

यह मेद, कफ, योनिदोष इनको हरणकरे है तथा अतिसार आदि रोगोंको
स्तम्भन करे है, व्रणको हितकारी और विषदोष नाशक है ॥

अर्कादिगण ।

अर्कालर्ककरञ्जद्वयनागदन्तीमयूरकभांर्गारास्त्रेन्द्रपुष्पीक्षुद्र-
श्वेतामहाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति ।

अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषापहः ।

कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्ब्रणशोधनः ॥ ७ ॥

अर्थ-अर्क, (लालफूलकाआक) अलर्क, (सपेदफूलकाआक) कंजा, दंती, आंगा, (चिरचिटा) भारंगी, रास्ना, इन्द्रपुष्पी, (कटेरी) क्षुद्रश्वेता, (फेसंद) महाश्वेता, (नीलपुष्पसकंद) वृश्चिकाली, (भेटासिंगीकाभेद) अलवणा, (मालकांगनी,) काकमर्दनिका और इंगुदीवृक्ष, (गोंदीवा हिंगोट वृक्ष) ये अर्कादि गण है ॥

यह कफ, भेद, विप, कृमि, कुष्ठ इनको दूरकरे और ब्रणको शोधन करे है ॥

सुरसादिगण ।

सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुख
कालमालकासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसी-
निर्गुण्डीकुलाहलन्दुरुकार्णिकाफञ्जीप्राचीवलकाकमा-
च्यो विपमुष्टिकश्चेति ।

सुरसादिर्गणो ह्येप कफहृत् कृमिसूदनः ।

प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो ब्रणशोधनः ॥ ८ ॥

अर्थ-सुरसा, (सपेदतुलसी) और कालीतुलसी, फणिज्झक, (मरुआ) अर्जक, (सपेद आजवला) भूस्तृण, (गुंदाक रोहिसतृण) सुगंधक, (बडा-सुगंधतृण) सुमुख, (राई, वां वर्वरी) कालमाल, (कारीचमेली) कासमर्द, (कसौदी) क्षवक, (जिन्हारिपाक इसप्रकार पारियात्र पर्वतमें प्रसिद्ध) खरपुष्प, (क्षवकका भेदहै) वायविडंग, कायफल, सुरसी, (विल्वनासी) निर्गुण्डी, कुलाहल, (मुंडिका) टंदुरकर्णी, (मूसाकर्णी) भारंगी, प्राचीवल (मछेछी) काकमाची (मकोप अथवा गुडफला) विपमुष्टिक, (राजनिव) ये सुरसादि गणहैं ॥

यह कफरोग, कृमिरोग, पीनस, अरुचि, श्वास, खांसो इनको नाश-करे तथा ब्रणको शोधन करे है ॥

मुष्ककादिगण ।

मुष्ककंपलाशधवाचित्रकमदनवृक्षाशिशपावत्रवृक्षास्त्रि-
फलाचेति ।

मुष्ककादिर्गणो ह्येप भेदोघ्नः शुक्रदोषहृत् ।

मेहार्शःपाण्डुरोगघ्नः शर्कराश्मारिनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ—मुष्कक, (मोख वा मोक्षवृक्ष) पलास, (टाक) धव, (धों) चित्रक, (चीता) मैनफलका वृक्ष, सीसो, धूहर और त्रिफला (हरड-बहेडा-आमला) ये मुष्ककादिगणहै ॥

यह मेद, शुक्र(वीर्य)के दोष, प्रमेह, पांडुरोग, शर्करा, पथरी इनको दूरकरेहै पिप्पल्यादिगण ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमारिचहस्तिपि-
प्पलीहरेणकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकर्पपमहा
निम्बफलहिङ्गभांर्गीमधुरसातिविषावचाविडङ्गानि
कटुरोहिणी चेति ।

पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः ।

निहन्यादीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥ १० ॥

अर्थ—पीपर, पीपरामूल, चव्य, चीता, अदरक, कालीमिरच, गजपीपल, हरेणुक, (रेणुकाद्रव्य) इलायचीछोटी, अजमोद, इन्द्रजों, पाठ, जीरा, सरसों, वकायन, हींग, भारंगी, मूवा, अतीस, वच, वायाविडंग और कुटकी यह पिप्पल्यादिगणहै ॥

यह कफको तथा पीनस, वादी, अरुचि, गोला, शूल और आमवात रोगको हरणकरे तथा अग्निको दीपनकरे है ॥

एलादिगण ।

एलातगरकुप्टमांसीघ्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियङ्गुहरे-
णुकाव्याघ्रनखशुक्तिचण्डास्थौण्यकश्रीवेष्टकचो
चचोरकवालकगुग्गुलुसर्जरसतुरुष्ककुन्दुरुकाऽगुरु-
स्पृक्कोशीरभद्रदारुकुङ्कुमानिपुत्रागकेशरञ्चेति ।

एलादिको वातकफो निहन्याद्विपमेवच ।

वर्णप्रसादनः कण्डूपिडकाकोठनाशनः ॥ ११ ॥

अर्थ—छोटीइलायची, तगर, कूट, जटाभांसी, रोहिपतृण, तज, पत्रज, नागकेशर, प्रियंगु, रेणुका द्रव्य, बृहन्नख, शुक्ति (उसीव्याघ्रनखकाभेद) चंडा, स्थौण्यक, (युनेर) श्रीवेष्ट, (सरलवृक्ष) चोच (तजकाभेद) चोरक (ग्रंथिपर्णाकाभेद) वालक, (नेत्रवाला) गुग्गुल, राल, सिन्धुक, सल्लकी,

अगर, पृष्ठा (सुगंधिद्रव्य उत्तरमें प्रसिद्ध) उशीर (खस) भद्रदारु(देवदारु) कुंकुम (केशर) पुन्नाग और कमलका केशर ये एलादिगणहैं ॥

यह वात, कफ, विषविकार, खुजली, पिडका, (फुंसी) रुधिर विकारके काले काले चकते इन सबको नाशकरे । तथा देहके रंगको स्वच्छ (गौरा) करे ॥

वचाहरिद्रादिगण ।

वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारुणि नागकेशरञ्चेति ।

हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकंचेति ॥

एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ ।

आमातीसारशमनौ विशेषादोपपाचनौ ॥ १२ ॥

अर्थ—वच, मोथा, अतीस, हरड, देवदारु, नागकेशर, ये वचादि गण हैं । हलदी, दारुहलदी, पृष्टपर्णा, इन्द्रजों और महुआ ये हरिद्रादि गणहैं ॥

यह दोनों गण स्त्रीके स्तनसंबंधी दूधको शोधन करे तथा आमातिसारको शमनकरे तथा विशेषकरके वातादि दोषोंको पाचन करे है ॥

श्यामादिगण ।

श्यामामहाश्यामातृवृद्धन्तीशंखिनीतिल्वककम्पिल्ल-
करन्भकक्रमुकपुत्रश्रेणीगवाक्षीराजवृक्षकरञ्जद्वयगुडू-
र्चासप्तलाच्छगलान्त्रीसुधाःसुवर्णक्षीरी चेति ॥

उक्तः श्यामादिरित्येष गणो गुल्मविषापहः ।

आनाहोदरविट्भेदी तथोदावर्त्तनाशतः ॥ १३ ॥

अर्थ—श्यामा (सपेद निसोथ) महाश्यामा (विषायरो) वृष्ट (लाल जडकी निशोथनामसे प्रसिद्ध) दन्तीशंखिनी (यवतिकाकाभेद) तिल्वक (लोथ) कंपिल्लक (कधीला) रम्यक (बकायन) क्रमुक (सुपारी) पुत्रश्रेणी (संघरी) गवाक्षी (इन्द्रायण) राजवृक्ष (अमलतास) करंज, पूतीकरंज, गिलोय, पूहर, छगलात्री (बृहदारककाभेद) सुधा (सेड्ड) स्वर्णक्षीरी (चोक) ये श्यामादिगणहैं ॥

यह गोला, विषविकार, अफरा, उदररोगइनको दूरकरे मलको भेदक है अर्थात् दस्ताघरहे और उदावर्त्तका नाशक है ॥

बृहत्यादिगण ।

बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठा मधुकञ्चेति ।

पाचनीयो बृहत्यादिर्गणः पित्तानिलापहः ।

कफारोचकहृल्लासमूत्रकृच्छ्ररूजापहः ॥ १४ ॥

अर्थ-बड़ीकटेरी, छोटीकटेरी, इन्द्रजों पाठ और महुआ यह बृहत्यादि गण हैं । यह पाचन है तथा पित्त वादीका और कफ, अरुचि, हृल्लास, मूत्रकृच्छ्र इत्यादि रोगोंको नष्ट करे है ॥

पटोलादिगण ।

पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी-
चेति । पटोलादिर्गणः पित्तकफारोचकनाशनः । ज्वरोप-
शमनो व्रण्यश्छार्दिकण्डूविपापहः ॥ १५ ॥

अर्थ-पटोलपत्र, चंदन, लालचंदन, मूर्वा, गिलोय, पाठ और कुटकी यह पटोलादि गण हैं ॥

यह ज्वर, पित्त, कफ, अरुचि, छार्दि, खुजली, विष इनको दूरकरे तथा घावको हितकरी है ॥

काकोल्यादिगण ।

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्पभमुद्गपर्णीमापपर्णीमे-
दामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौ-
ण्डरीकाद्धिवृद्धिमृद्धीकाजीवन्त्यो मधुकञ्चेति ॥ का-
कोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः । जीवनोबृ-
हणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ-काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभ, मूंगोन, मापपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकडासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, कमल, ऋद्धि, वृद्धि, दाख, डोडी और मुलहटी यह काकोल्यादि गण ॥

यह पित्त, रुधिर, वादी इनको नाशकरे तथा जीवन बृंहण (शरिरको पुष्टकारी) वृष्य, स्तनोंमें दूधका बढानेवाला और कफकारी हैं ॥

उपकादिगण ।

उपकसैन्धवशिलाजतुकासीसद्रयहिङ्गानि तुत्थकञ्चेति ॥

उपकादिः कफं हन्ति गणो मेदोविशोपनः । अश्मरीश-
र्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ १५ ॥

अर्थ—उपक (क्षारमृत्तिका यह काशीके पास बडहर देशमें अधिक होती है) सैधानिमक, शिलाजीत, कक्षीस, पुष्पकसीस, हींग और नीलायोथा ये उपकादि गण है ॥

यह कफ, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, गोला इनको नष्टकरे तथा मेद (चर्बी) को शोषण करे ॥

सारिवादिगण ।

सारिवामधुकचन्दनकुचन्दनपद्मककाश्मरीफलमधुक-
पुष्पाण्युशीरञ्चेति । सारिवादिः पिपासाघ्नो रक्तपित्त-
हरो गणः । पित्तज्वरप्रशमनो विशेषादाहनाशनः ॥

अर्थ—सारिवा (सरिवनगौरी सर) मुलहटी, चंदन, लालचंदन, पत्राख, कंभारी, महुआके फूल और खस ये सारिवादि गण है ॥

यह, प्यास, रक्तपित्त, पित्तज्वर और विशेषकरके दाहको हरण करे है ॥

अंजनादिगण ।

अञ्जनरसाञ्जनागपुष्पप्रियंगु नीलोत्पलनलदललिनके
शराणिमधुकञ्चेति ।

अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिवर्हणः ।

विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—सूरमा, रसोत्त, नागकेशर, प्रियंगु, नीलाकमल, जटामांसी, कमलकेशर और महुआ ये अंजनादि गण हैं ॥

यह रक्तपित्तको दूरकरे, विषदोषको शमनकरे, भीतरके दाहको नष्ट करे है ॥

परूपकादिगण ।

परूपकद्राक्षाकटूफलदाडिमराजादनकतकफलशाकफ
लानि त्रिफला चेति ।

परूपकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः ।

मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाघ्नो रुचिप्रदः ॥

अर्थ—फालसे, दाख, कायफल, अनार, खीरनी, कतकफल (निर्मली) शाकवृक्षका फल और त्रिफला ये परूपकादि गण हैं ॥

यह वादीके दोष, मूत्रके विकार और प्यास इनको हरण करे तथा हृदयके हितकारी तथा रुचि उत्पन्न कर्ता है ॥

प्रियंगु और अंबष्ठादिगण ।

प्रियङ्गु समङ्गाधातकी पुत्रागरक्तचन्दनकुचन्दनमोचरसरसाञ्जनकुम्भीकस्रोतोऽञ्जनपद्मकेशरयोजनवल्लयोदीर्घमूलाचेति ॥ १७ ॥

अम्बष्ठाधातकी कुसुमसमङ्गाकदुङ्गमधुकविल्वपेशिका-रोध्रसावररोध्रपलाशनन्दीवृक्षपद्मकेशराणि चेति !

गणौ प्रियङ्गवम्बष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ ।

सन्धानौ यौ हितौ पित्ते व्रणानाञ्चापि रोपणौ ॥

अर्थ—प्रियंगु, लजालु, धायके फूल, पुत्राग, लालचंदन, चंदन, मोचरस, रसोत, कुंभीनामा वृक्ष (जिसकी छाल वस्त्रके आकार होती है) सुरमा, कमलकेशर, मजीठ और धमासा ये प्रियंगुवादि गण हैं ॥

अंबष्ठा (कुरंड) धायके फूल, लजालु, रेणुक, मुलहठी, वेलगिरी, लोध, पटानीलोध, पलाश (टाक) नंदीवृक्ष (कादमरी) और पद्मकेशर ये अंबष्ठादिगण हैं ॥

ये दोनों (प्रियंगुवादि और अंबष्ठादि गण) पक्वातिसारको नष्ट करते हैं इटी हड्डीको जोड़ने वाले, पित्तमें परम हितकारी और व्रणोंको रोपण करे हैं ।

न्यग्रोधादिगण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपुक्षमधुककपीतनककुभात्रकोशा-
म्रचोरकपत्रजम्बुद्रयप्रियालमधुकरोहिणी वञ्जुलकद-
म्भवदरातिन्दुकसिल्लकीरोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा-
नन्दीवृक्षश्चेति । न्यग्रोधादिर्गणोत्रण्यः संग्राही भग्नसाध-
कः । रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत् ॥

अर्थ—बड, गूलर, पीपल, पाखर, महुआ, अंबाड़ा, फोह, आम, कोशात्र, चौरकपत्र, (लाखकावृक्ष) छोटीजामुन (काकजामुन)

बडीजामुन (राजजामुन) खिरनी, मुलहटी, कायफर, घेत, कदंब, वेर, तेंदु, सालवृक्ष, लोध, पठानीलोध, भिलावाँ, ढाक और नंदीवृक्ष ये न्यग्रोधादि गण हैं ॥

यह ग्रणको हितकारी, ग्राही, दूटेहाडआदिको जोडने वाला, रक्तपित्त, दाह, भेद और योनिके दोष इनको नाश करे है ॥

गुडूच्यादिगण ।

गुडूचीनिम्बकुस्तुम्बुरुचन्दनानि पद्मकञ्चेति ।

एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ।

हृल्लासारोचकवमीपिपासादाहनाशनः ॥

अर्थ-गिलोय, नीम, धनियाँ, लालचंदन और सफेद चंदन तथा पद्मास ये गुडूच्यादि गणहैं । यह सर्वज्वरोंका नाशकरे और जठराग्निको दीपन करे है । तथा हृल्लास, अरुचि, वमन, प्यास, दाह इनको नष्टकरे ॥

उत्पलादिगण ।

उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकाणि
मधुकञ्चेति । उत्पलादिरयं दाहपित्तरक्तविनाशनः ।

पिपासाविपहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरोगणः ॥

अर्थ-नीला कमल, लालकमल, कमोदनी (वधौला, नीलोफर) सौगन्धिक (नीलकमलके आकार सुगंधवाला) कुवलय (कुडनील और सपेदीयुक्त कमल) पुंडरीक (सपेद कमल) और मुलहटी ये उत्पलादि गण हैं ॥

यह दाह, रक्तपित्त, प्यास, विपदोष, हृदयकेरोग, वमन और मूर्च्छा इनको हरण करे है ॥

मुस्तादिगण ।

मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्यामलकविभीतककुष्ठहै-
मवतीवचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गप्रातिविपाद्राविडीभल्ला-
तकानि चित्रकञ्चेति । एष मुस्तादिको नाम्ना गणः श्लेष्म-
निपूदनः। योनिदोषहरःस्तन्यशोधनःपाचनस्तथा ॥

अर्थ-मोषा, हलदी, दारुहलदी, हरड, आमला, घहेडा, कुष्ठ (कूट)

सपेदवच, वच, पाठ, कुटकी, यवतित्ता, अतीस, छोटीइलायची, भिलावाँ और चीता ये मुस्तकादि गण हैं ॥

यह कफको दूरकरे, योनिदोषको हरण करे, स्तनसंबंधी दूधको शुद्धकरे और पाचन है ॥

त्रिफलागण ।

हरितक्यामलकविभीतकानि त्रिफला (?) ।

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी ।

चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशिनी ॥

अर्थ—हरड, बहेडा और आमला यह त्रिफला है यह कफ, पित्त, प्रमेह, कुष्ठ और विषमज्वर इनको नाशकरे नेत्रोंको परमहितकारी और अमिको दीपन करे है ।

त्रिकटुगण ।

पिप्पलीमरिचशृंगवेराणि त्रिकटुकम् ।

त्र्यूपणं कफमेदीघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान् ।

निहन्यादीपनं गुल्मपीनसाश्रयल्पतामपि ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच और पीपल ये त्रिकटुकगण हैं इसको त्र्यूपण कहते हैं यह कफ, मेदा, प्रमेह, कौठ, त्वचाके रोगोंको, गोला, पीनस और मंदाभि इन सबको दूरकरे और अमिको दीपन करे है ॥

आमलक्यादिगण ।

आमलकीहरीतकीपिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ।

आमलक्यादिरित्येष गणःसर्वज्वरापहः ।

चक्षुष्यो दीपनो वृष्यःकफारोचकनाशनः ॥

अर्थ—आमला, हरड, पीपल और चीतेकी छाल ये आमलक्यादि गण हैं यह सर्व ज्वरोंको और कफ तथा अरुचिको नाश करे, नेत्रोंको हितावह, दीपन और वृष्य है ॥

त्र्यप्वादिगण ।

त्र्युप्सीसताम्ररजतकृष्णलोहसुवर्णानि लोहमलश्चेति ।

गणस्त्र्यप्वादिरित्येष गरक्तिमिहरःपरः ।

पिपासाविपहृद्गोपाण्डुमेहहरस्तथा ॥

अर्थ—रांग, सीसा, ताम्बाँ, चाँदी, खेडीलोह, सुवर्ण (सोना) और लोह-मल (लोहकीटी) ये त्रिष्वदि गण कृत्रिम विषदोष, कृमि रोग, प्यास, विषदोष, हृदयरोग, पांडुरोग और प्रमेह रोग इनको हरण करे ॥

लाक्षादिगण ।

लाक्षारेवतकुटजाऽश्वमारकद्रुफलहरिद्राद्वयनिम्बसप्त-
च्छदमालत्यस्त्रायमाणा चेति ।

कपायस्तिक्तमधुरःकफपित्तातिनाशनः ।

कुष्ठक्रिमिहरश्चैव दुष्टव्रणविशोधनः ॥

अर्थ—लाख, आरेवत (अमलतास) इन्द्रजौं, कनेर, कायफल, हरदी, दारुहरदी, नीम, सतोना, मालती और त्रायमाण, यह लाक्षादिगण कपेला, कडुआ, मिष्ट ऐसा है । तथा कृमिकुष्ठको नाशकरे तथा दुष्टनासुर आदि फोडोंको शोधन करे है ॥

लघुपंचमूलगण ।

पञ्च पञ्चमूलान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः । तत्र त्रिकण्टकवृ-
हतीद्वयपृथक्पर्णी विदारिगन्धा चेति कनीयः ।

कपायतिक्तमधुरं कनीयः पञ्चमूलकम् ।

वातघ्नं पित्तशमनं बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—अब पांच पंचमूलोंको कहते हैं। तहां गोखरू, छोटीकटेरी, बड़ीकटेरी, पृष्टपर्णी और शालपर्णी यह छोटा पंचमूल है । यह कपेला, कडुआ और मीठा है तथा वात और पित्तको शमन करे, बृंहण और बलको बढ़ाता है ॥

बृहत्पंचमूल ।

विल्वाग्निमन्थदुंदुकपाटलाकाशमय्यश्चेति महत् ।

सतिक्तं कफवातघ्नं पाके लघ्वग्निदीपनम् ।

मधुरानुरसश्चैव पञ्चमूलं महत्स्मृतम् ॥

अर्थ—बेलगिरी, अरनी, स्योनाक, पाठल और कंभारी ये बृहत्पंचमूल है यह कडुआ है लिये मीठा है, कफ वादी इनको नष्टकरे, पचने पर हलका और आग्निको दीपन करे है ॥

दशमूल ।

अनयोर्दशमूलमुच्यते ।

गणःश्वासहरो ह्येष कफपित्तानिलापहः ।

आमस्य पाचनञ्चैव सर्वज्वरविनाशनः ॥

अर्थ-छोटे और बड़े दोनों पंचमूलोंके मिलानेसे दशमूल होता है । यह दशमूलगण श्वासरोग, कफ, पित्त और वादी तथा ज्वरको नाशकरे और आमको पाचन करे है ॥

वल्लीपंचक तथा कंटकपंचक ।

विदारीसारिवारजनीगुडूच्योऽजशृङ्गी चेति वल्ली-
संज्ञः । करमर्दत्रिकण्टकसैरीयकशतावरीगृध्रन-
ख्य इति कण्टकसंज्ञः ॥

रक्तपित्तहरौ ह्येतौ शोफत्रयविनाशनौ ।

सर्वमेहहरौ चैव शुक्रदोषविनाशनौ ॥

अर्थ-विदारीकंद, सरिवन, हलदी, गिलोय और मेढासिंगी ये वल्लीपंचक हैं । करोंदा, गोखरू, कटसैरैया, सतावर, गृध्रनखी ये कंटकपंचमूल हैं ॥

वल्ली पंचक और कंटक पंचक, दोनोंगण रक्तपित्तको हरणकरे, त्रिविध शोथरोगको नाशकरे तथा सर्वमेह और शुक्रके दोषको हरणकरे है ॥

तृणपंचक ।

कुशकाशनलदर्भकाण्डेशुक इति तृणसंज्ञकः ।

मूत्रदोषविकारश्च रक्तपित्तं तथैव च ।

अन्त्यःप्रयुक्तःक्षीरेण शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥

अर्थ-कुश, काश, नरसल, डभा (डाम) और कांडेशुक (सरपता) ये तृणपंचक हैं । यह मूत्रदोष तथा मूत्रके विकारोंको रक्तपित्तको शीघ्र दूरकरे है पाचोंकेगुणएकश्लोकसेकहते हैं ।

एषां वातहरावाद्यावन्त्यःपित्तविनाशनः ।

पञ्चकौ श्लेष्मशमनावितरौ परिकीर्तितौ ॥

अर्थ-इन पाचों पंचकोंमें आदिके दोषपंचक (लघुपंचमूल और

बृहत्पंचमूल) बादीको हरण करते हैं और अंत्यपंचक (तृणपंचमूल) पित्तको शमन करे है । और बीचके (वल्लीसंज्ञक और कंटकसंज्ञक पंचमूल) कफको शमन करे है ॥

त्रिवृतादिकमन्यत्रोपदेक्ष्यामः ।

अर्थ-त्रिवृतादिकगण अन्यत्र कहिये आगे संशोधन संशमनीयाध्यायमें कहेंगे ॥

इनकोसंक्षेपत्वदिखातेहैं ।

समासेन गणाह्येते प्रोक्तास्तेपान्तु विस्तरम् ।

चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलावलम् ॥

अर्थ-ये संक्षेपसे (औषधोंके) गण कहे हैं दोषोंका बलावल विचारके आगे चिकित्सास्थानमें इनको विस्तारसे वर्णन करेंगे दोषोंका बलावल कहनेसे संपूर्ण परीक्षाओंका ग्रहण जानना ॥

इन गणोंका क्याकरे इसवास्ते कहतेहैं ।

एभिलैपान् कपायांश्च तैलं सर्पिपि पानकान् ।

प्रविभज्य यथान्यायं कुर्वीत मतिमान् भिषक् ॥

अर्थ-कुशलवैद्य इन औषधोंका यथाक्रम विभाग करके लेप, कपाय (शृतशीत, स्वरस, फांट, कल्क, आदि पांच कपाय) तैल, घृत और मंडादिकोंकी कल्पना करे ॥

औषधरक्षणकीविधि ।

धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वचतुष्वनभिद्रुते ।

ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधसंग्रहम् ॥

अर्थ-विविध औषधसंग्रहको लेकर धूआ, वर्षा, हवा और क्लेदोंसे सर्व ऋतुमें न विगडने पावे ऐसे उत्तम मकानमें औषधोंकी रखनी चाहिये ॥

इस द्रव्यगणकी कैसेयोजनाकरे सो कहतेहैं ।

समीक्ष्य दोषभेदांश्च गणान् भिन्नान् प्रयोजयेत् ।

पृथङ्मिश्रान् समस्तान् वा गणं वा व्यस्तसंहतम् ॥

अर्थ-वैद्य दोषोंको पृथक् २ देखके अमिश्रित गणोंकी योजना करे

तथा द्विदोष मिले देखके मिश्रित गणोंको देवे और संपूर्ण मिले दोष देखके तीनों गणोंको मिलायके देवे ॥

इति द्रव्यसंग्रहणीयाध्याय समाप्त ।

पहलीअध्यायमें लिखआये हैं कि, "त्रिवृतादिमन्यत्रोपदेक्ष्यामः" अर्थात् त्रिवृतादिगण आगे (संशोधन संशमनीयाध्यायमें) कहेंगे अतएव हमसंशोधनसंशमनीयाध्यायको कहते हैं ॥

अथातः संशोधनसंशमनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब संशोधन और संशमनीयअध्यायकी व्याख्या करते हे । पूर्व द्रव्य संग्रहणीयाध्यायमें व्याधिके नाशक द्रव्योंके गण कहे और इस संशोधनसंशमनीयाध्यायमें दोषोंके प्रायः नाशकरी पचकर्मोंपयोगी शोधन द्रव्यसंग्रहणोंको तथा वातादि शमनद्रव्य गणोंको कहेंगे । तहां संशोधन दो प्रकारका है, जैसे—वमन और विरेचन, तहां विरेचनके पूर्व वमन कराते है इस कारण वमनद्रव्यगणको कहते हे ॥

वमनद्रव्यगण ।

मदनकुटजजीमूतकेक्षाकुधामार्गवकृतवेधनसर्पपवि
डङ्गपिप्पलीकरञ्जप्रपुत्राटकोविदारकर्बुदरारिष्टा
श्वगन्धाविदुलबन्धुजीवकश्वेतासणपुष्पीविम्बीव
चामृगेर्वारुचित्रा चेत्युर्ध्वभागहराणि । तत्र कोवि-
दारपूर्वाणां फलानि । कोविदारदीनां मूलानि ॥

अर्थ—मैनफल, इन्द्रजों, बंदाल, कडुईतूची, धामार्गव (पीले फूलकीतो-
रई) कृतवेधन (सपेद फूलकीतोरई) सपेदसरसो, घायविडग, पीपल,
कजा, पवार, कोविदार (कचनारकाभेद) कर्बुदार (लिसोडे, लेहसुआ)
नीम, असगंध, वेत, मझनियाकापुष्प, सपेदवच, सनडुली, कंदूरी, लाल-
वच, इन्द्रायण, चित्राडजा (जिसका फल परबलके आफारका होताई)
ये ऊर्ध्वभाग हरण कर्त्ता गण है अर्थात् वमनकारी है । तहां बंदालसे

पूर्व मैनफलादिकके फल लेने और कोविदार आदिकी जडलेनी चाहिये । यह औषध कोईतो अकेलीही उलटी लाती है और कोई वमनकारी द्रव्यके साथ मिलानेसे वमन (उलटी)लाती है ॥

विरेचनद्रव्यगण ।

त्रिवृता श्यामा दन्ती द्रवन्ती सप्तला शङ्खिनी विपाणि-
का गवाक्षी छगलान्त्री स्नुक्सुवर्णक्षीरी चित्रककिणि-
ही कुशकाशतिल्वककम्पिल्लकरम्भकपाटलापूगहरीत-
क्यामलकविभीतकनीलीचतुरङ्गुलैरण्डपूतीकमहावृक्ष-
सप्तच्छदाकैज्योतिष्मतीचेत्यधोभागहराणि ॥

तत्र तिल्वकपूर्वाणां मूलानि । तिल्वकादीनां पाटला-
न्तानां त्वचः । कम्पिल्लकफलरजः । पूगादीनामेरण्डा-
न्तानां फलानि।पूतीकारग्वधयोःपत्राणि।शेषाणां क्षीराणीति

अर्थ—लालजडकी निसोथ, सपेदनिसोथ, दंती (दांतन) द्रवन्ती (दंतीकाभेद जिसको बरी कहतेहैं) यूहर, शंखिनी, भेटासिंगी, सपेद-
फूलकी इन्द्रायण, विधायरा, सेड्ड, चोक, चीता, कटभी, कुश, काश, तिल्वक (छोटीलोथ) कवीला, पटोलकीजड, पाटल, सुपारी, हरड, आमला, बहेडा, नीली, अमलतास,अंड, कंजा, महावृक्ष (यूहरकाभेद) सताना और मालकांगनी यह संपूर्ण औषधी अधोभाग 'हरहैं' अर्थात् दस्त लाती हैं । इनमें तिल्वकसे पूर्व अर्थात् निसोथ आदि जितने द्रव्यहैं उनको जड लेनी, तिल्वकसे लेकर पाटल पर्यंतकी त्वचा (छाल) लेनी । कवीले आदिके फलका चूर्णले और सुपारीसे लेकर अंड पर्यंतके फल लेने, कंजा और अमलतासके पत्ते, बाकी जो रहीं उनका दूध लेना चाहिये ॥

वमनविरेचनकर्त्ताद्रव्यगण ।

कोशातकी सप्तला शंखिनी देवदाली कारवेळिकाचेत्यु-
भयतोभागहराणि । एषां स्वरसा इति ॥

अर्थ—तोरई (कडवी तुरैयां) यूहर, शंखिनी, घंदाळ और करेळा

यह दोनों भागसे हरणकर्त्ता है । अर्थात् वमन और विरेचन दोनों कराते हैं इनका स्वरसलेना ।

शिरोविरेचन ।

पिप्पलीविडङ्गपामार्गशिशुसिद्धार्थकशिरीषमरिचकर-
वीरविम्बीगिरिकर्णिकाकिणिहविचाज्यातिष्पतीकरञ्जा-
कार्कलकलशुनातिविपाशुङ्गवेरतालीशतमालसुरसार्जके-
डुदीमेपशृङ्गीमातुलुङ्गीमुरुङ्गीपीलुजातीशालतालमधु-
कलाक्षाहिङ्गुलवणमद्यगोशुकृद्रसमूत्राणीतिशिरोविरेचनानि
तत्र करवीरपूर्वाणां फलानि । करवीरादीनामकान्तानां
मृत्तानि । तालीशपूर्वाणां कन्दाः । तालीशादीनामर्ज-
कान्तानां पत्राणि । इडुदीमेपशृङ्गीत्वचौ । मातुलुङ्गीमु-
रुङ्गीपीलुजातीनां पुष्पाणि । शालतालमधुकानां साराः ।
हिङ्गुलाक्षे निर्य्यासौ । लवणानि पार्थिवविशेषाः । म-
द्यान्यासवसंयोगाः । गोमूत्रशुकृद्रसौ मलाविति ॥

अर्थ-पीपर, वायविडंग, आंगा, सहेंनना, सरसों, सिरस, कालीमि
रच, कनेर, कंदूरी, सेफन्द, कटभी, वच, मालकांगनी, कंजा, आक,
सपेदआक, लहसन, अतीस, अदरख, तालीसपत्र, तमालपत्र, तुलसी,
कुठेरक, हिगोट, भेटासिंगी, विजौरा, अरण्यबीज, पीलू, चमेली, शाल,
ताल. महुआ, लाख, हींग, निमक, मद्य, गोवरकारस और गौका मूत्र,
यह मस्तफके, विरेचक हैं । कनेरके, जो, प्रथम हैं उनके फल लेवे,
कनेरसे आदिले आकपर्यतकी जडले, तालीससे जो प्रथम हैं उनके
कंद लेवे, तालीससे लेकर कुठेरक तकके पत्ते लेवे । हिगोट और भेटा-
सिंगी इनकी छालले, विजौरा अरण्यबीज और पीलू इनके फूलले, शाल,
ताल, महुआ इनका सारले हींग, लाख, इनका गोंदले, पृथ्वीका विकार
निमक, आसव आदिके संयोगसे मद्य जानने गोवर और गोमूत्र आदि
मल ये सब प्रसिद्धी हैं अतएव इनकी स्वरूपसे ही ग्रहण करे ॥

संशमनान्यत ऊर्ध्वं चक्ष्यामः ।

अर्थ-संशोधनको कहकर अब संशमन वर्गोंको कहतेहैं, उत्तम रीतिसे

दुष्ट दोषोंको विना निकालेही शमन करे और जो दोषदूषित नहीं हैं उनको बढ़ावे नहीं अर्थात् जो देहमें व्याधि है उसको संशमन करे अर्थात् दूर करे और जो व्याधि होनेवाली है उसको प्रगट न करे, उस औषधको संशमन कहते हैं । जैसे प्रमाण है "नशोधयति यदोषान् समात्रो-दीरयत्यपि॥समीकरोति च कुडान् तत्संशमनमुच्यते"दोषशब्द इस जगें दोषोंमें दोषोंके कारणोंमें और रोगमें भी कहा है ।

वातसंशमनोवर्गः ।

तत्र भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेपशृंगीवलातिबलार्त्तगल
कच्छुरासल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचराग्रिमन्थवत्साद
न्येरण्डाश्मभेदकालर्ककेशतावरीपुनर्नवावसुकवसिर
कांचनकभांगीकार्पासीवृश्चिकालीधत्तूर बदरयवकोलकु
लत्थप्रभृतीनि विदारिगन्धादिश्च द्वे चाद्येपंचमूल्यौ स-
मासेन वातसंशमनोवर्गः ॥

अर्थ—देवदारु, कूट, हलदी, वरना, भेटासिंगी, बला (खिरेटी) अति-बला (फंगही) फौह, फौल, साल, काष्ठपाठर, वीरतरु, कटसरेया, अरनी, गिलौय, अंडपापानभेद, सपेदआक, आक, सतावर, सांठ, वक-पुष्प, आंगा, धत्ता, भारंगी, वनकपास, वृश्चिकपाक, पतंग, वेर, जों, वेर, कुलथी, विदारिगन्धादिगण और दोनोंपंचमूल, यह संक्षेपसे वात संशमन अर्थात् वातनाशक वर्ग है । (प्रभृति) शब्द ग्रहणसे उडद, तिल, और आलसी आदिका ग्रहण है ॥

पित्तसंशमनोवर्गः ।

चन्दनकुचन्दनहीविरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारीशताव
रीगुन्द्राशैवालकल्हारकुमुदोत्पलकदलीकन्दलीदूर्वामू
र्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिन्यग्रोधादिस्तृणपंचमूलमिति
समासेनपित्तसंशमनो वर्गः ॥

अर्थ—चंदन, पतंग वा लालचंदन, नेत्रवाला, खस, मजीठ, क्षीरका-फोली, विदारीकंद, शतावर, सुगंधितृण, शिवार (काई) लालकमल,

कमोदनी, नीलकमल, केला, कंदली [नवीन अंकुर] दूवां, मूर्वा, आदि काकोल्यादिगण, न्यग्रोधादिगण, तृणपंचमूल ये संक्षेपसे पित्तसंशमन वर्ग हैं आदिशब्दसे मधुर, कटुए और कषेले पदार्थोंका ग्रहण है ॥

कफसंशमनवर्ग ।

कालेयकागुरुतिलपर्णीकुप्टहरिद्राशीतशिवशतपुष्पासर
लारास्नाप्रकीर्योदकीर्यैगुदीसुमनःकाकादनीलाङ्गुली
हस्तिकर्णसुजातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकण्टकपंचमू
ल्यौपिप्ल्यादिर्वृहत्यादिमुष्ककादिर्वचादिः सुरसादि
रारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः ॥

अर्थ—कालेयक (चंदनविशेष) अगर, डुलडुल, कूट, हलदी, कपूर, सोंफ निसोथ, रास्ना, फटेरी, कंजा, हिंगोट, चमेला, काकडोडी, फल-यारी, भूपलास, सुजातक, लामज्जक (खसकाभेद) इत्यादि तथा, वल्ली-पंचक, कंटकपंचक, दशमूल, पिपल्यादिगण, बृहत्यादिगण, मुष्ककादि-गण, वचादिगण, सुरसादिगण और आरग्वधादिगण ये संक्षेपसे कफ संशमनवर्ग हैं ॥

संशमनऔरसंशोधनद्रव्योंकीमात्रा ।

तत्र सर्वाण्येवौषधानि व्याध्यग्निपुरुपवलान्यभिसमी
क्ष्य विदध्यात् ॥

अर्थ—तहां संपूर्ण संशोधन संशमन औषधोंको रोगीके रोगको अग्नि और उसके बल (शक्ति) को देखके अल्प मात्रा या बृहन् मात्रा देवे ॥

व्याधिमेंबलाधिक्यऔषधकेअवगुण ।

तत्रव्याधिवलादधिकमौषधमुपयुक्तंतमुपशमय्यव्याधिं
व्याधिमन्यमावहति । अग्निबलादधिकमजीर्णं विष्टभ्य
वा पच्यते। पुरुपवलादधिकं ग्लानिमूर्च्छामदानावहति ॥

अर्थ—तहां व्याधिके बलसे अधिक औषध देनेसे वह औषध उस रोग-को शमनकर दूसरी व्याधिकी प्रगटकर । इसीप्रकार जठराग्निकी शक्तिसे अधिक औषध देनेसे वह व्याधि देरमें पचे, अथवा विष्टब्ध होकर पचे । इसीप्रकार पुरुपके बलसे अधिक औषध देनेसे ग्लानि, मूर्च्छा और मत्तावस्थाकी करे है ॥

संशोधनकेदोष ।

संशमनमेवं संशोधनमतिपातयति ।

अर्थ—इसीप्रकार संशमन और इस्से अधिक संशोधन दोषोंको करे हे अर्थात् रोगीके बलको नष्ट करे ॥

औषधकीहीनमात्रादेनेमेंदोष ।

हीनमेभ्यो दत्तमकिञ्चित्करं भवति ॥

अर्थ—रोगके बलसे हीनमात्रा रोगीको देनेसे वो व्यर्थ जाती है उस्से कुछ फायर नहीं होता ॥

सिद्धीहेतुउपाधियोंकोदिखातेहैं ।

तस्मात् सममेव विदध्यात् ॥

अर्थ—तस्मात् कहिये वही न्यूनाधिक देनेसे रोगीको हित नहीं पडे इसीसे रोगके अनुसार यथार्थ मात्रा वैद्यको देनी चाहिये ॥

(दुर्बलकोतीक्ष्णवमनविरेचनदेनानिपेध) भवन्तिचात्र ।

रोगे शोधनसाध्ये तु यो भवेद्दोषदुर्बलः ।

तस्मै दद्याद्भिषक् प्राज्ञो दोषप्रच्यावनं मृदु ॥

अर्थ—जो प्राणी शोधनसाध्य रोगमें दोषोंकरके दुर्बलहो (किंतु उपवासादि करके दुर्बल न हो) उसको बुद्धिमान् वैद्य दोषोंका निकालनेवाला नम्र विरेचन देवे ।

अवस्थाविशेषकरकेव्याधिदुर्बलकोभीशोधनकरे ।

चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बलं नृणाम् ।

अव्याधिदुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत् ॥

अर्थ—दोषोंके अपने स्थानसे चलायमान होनेपर—तथा नम्रकोष्ठवालेका (आम अवस्थामें) बलाबल न देखे, उपवासादिसे दुर्बल भी हो तथापि उसका शोधन करना चाहिये ॥

मध्यबलीतथामध्यअग्निवालेमनुष्यकोकितनी-

मात्रादेयहकहतेहैं ।

व्याध्यादिषु तु मध्येषु कायस्याञ्जलिरिष्यते ।

विडालपदकं चूर्णं देयः कल्कोऽक्षसंमितः ॥

अर्थ—व्याधिआदिके मध्यबल होनेसे काथ और शृतशीत आदिकी मात्रा चारपलकी देवे और चूर्ण १ तोलेदेवे, तथा कल्ककी मात्रा भी एक तोले मात्र कहिये ॥

स्वयं प्रवृत्तदोषस्य मृदुकोष्ठस्य शोधनम् ।
भवेदल्पबलस्यापि प्रयुक्तं व्याधिनाशनम् ॥

अर्थ—यदि दोषस्वय निकलतेहो तथा मृदुकोष्ठ एवं हीनबली पुरुषको शोधन व्याधिनाशकहै ।

इति सशोधनसशमनीयाध्याय समाप्त ।

अथातो द्रव्यविशेषविज्ञानीयमध्यायं
व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब द्रव्यविशेष विज्ञानीयाध्यायकी व्याख्या करतेहै ।

पृथिव्यतेजोवाय्वाकाशानांसमुदायाद्द्रव्याभिनिर्वृत्तिरु-
त्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं
तेजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति ।

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनके एकत्र होनेसे द्रव्यो-
की उत्पत्ति, वृद्धि और अभिव्यापकता (मसिद्धी) होतीहै। जैसे यह द्रव्य
पार्थिव (पृथ्वी संबंधी) है, यह आप्य (जलसंबंधी) है, यह तेजस
(अग्निसंबंधी) है यह वायुसंबंधी और यह आकाश संबंधी द्रव्य है ॥

उत्कर्ष उपाधिभेदको दिखातेहै ।

तत्र स्थूलसारसान्द्रमन्दास्थिरस्वरगुरुकठिनगन्धबहुलमी-
पत्कपायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवं तत् स्थैर्यबल-
संघातोपचयकरं विशेषतश्चाधोगतिस्वभावमिति ।

अर्थ—तहां स्थूलसार (मोटापणा) सान्द्र (भराहुआ) मद्, स्थिर, स्वर

(तीक्ष्ण) गुरु (भारी) कठिन, अधिक गंधयुक्त, कुछ केषला और प्रायः मधुर, जो पदार्थ है उसको पार्थिव जानना अर्थात् यह पूर्वोक्त गुणयुक्त पदार्थको पृथ्वीसंबंधी जानना ॥

पार्थिवगुणवत्त्व कहकर उसीकी क्रियावत्त्व कहते हैं कि, वह स्थिर (अचलता) बलसंघात (दृढबल) और उपचय (वृंहण) को करे है । विशेष करके इस पार्थिव द्रव्यका अधोगमनशील स्वभावहै अर्थात् यह नीचेको जाती है ॥

जलद्रव्यकीउत्कर्षउपाधि ।

शीतस्तिमितस्निग्धमन्दगुरुसरसान्द्रमृदुपिच्छिलर-
सबहुलमीपत्कपायाम्ललवणं मधुररसप्रायमाप्यं तत्
स्नेहनप्रहादनक्लेदनबंधनविप्यन्दनकरमिति ॥

अर्थ-शीत, स्तिमित (आर्द्रता) स्निग्ध (चिकना) मंद, गुरु, सरस, सान्द्र, मृदु (नरम) पिच्छिल (लहसदार) रसबहुल (बहुतरसवाला) ईपत्कपाय (कुछकपेला) खट्टा, निमकीन और मधुर रसप्राय ऐसा आप्य (जल) पदार्थ होताहै ॥

वह स्नेहन (चिकनाई करनेवाला) मल्हादन (सुखोत्पादन) क्लेदन (आर्द्रकरता) बंधन और विप्यन्दनकर (क्षरने वाला) इत्यादि गुणोंको यह आप्य द्रव्यकरे है ॥

तैजसद्रव्यकेगुण और स्वभाव ।

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मरूक्षखरलघुविशदं रूपगुणबहुलमीप
दम्ललवणं कटुकरसप्रायं विशेषतश्चोर्द्धगतिस्वभाव-
मितितैजसं तद्दहनपचनदारणतापनप्रकाशनप्रभाव-
र्णकरमिति ॥

अर्थ-उष्ण, तीक्ष्ण (तीखा चरपरा) सूक्ष्म (छिद्रोंमें प्रवेशकरता) रूक्ष (रूखा) खर (पेंनां) लघु (हलका) विशद (फैलनेवाला) रूप-गुणबहुल (इसमेंरूपगुण अधिक रहता) है, कुछ खट्टा, निमकीन, और कटुरसप्रायहै तथा इसका स्वभाव ऊर्ध्वगति (ऊपरको जानेवाला) है ये तैजस पदार्थका स्वभाव है ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि, ये दहन (दाह) पचन (पाचक)

दारण (चीरना) तापन (संतापकारी) प्रकाशन (उज्जलाकरने वाला)
तथा प्रभा, तेज और वर्ण गौर (सपेद) इत्यादि गुणोंको करे है ॥

वायवीयद्रव्यके गुणस्वभाव ।

सूक्ष्मरूक्षखरशिशिरलघुविशदं स्पर्शबहुलभीषत्तं
विशेषतः कपायमिति वायवीयं तद्वैशद्यलाघवग्लप-
नविरूक्षणविचारणकरमिति ॥

अर्थ—सूक्ष्म, रूक्ष, खर, शिशिर (शीतल) लघु, विशद, स्पर्शबहुल
(इसमें छूनेका गुण अधिकहै) कुल कहुआ और विशेषकरके कपेला
इत्यादिगुणवान् वायवीय अर्थात् वायुसंबंधी द्रव्य होता है ॥ -

अब इसके गुण कहते हैं कि, यह वैशद्य (फैलना) लाघव (हलकापना)
ग्लपन (वृण्यताके विरुद्ध) विरूक्षण (रूक्षताकारक) और विचारणकर
(मनमें अनेक विचार करता) इत्यादि पवन द्रव्यके गुण जानने ॥

आकाशीयद्रव्यके गुणस्वभाव ।

शुक्षणसूक्ष्ममृदुव्यवायिविविक्तमव्यक्तरसम् । शब्दबहुल-
माकाशीयं तन्मार्दवशौषिर्यलाघवकरमिति ॥

अर्थ—शुक्षण (गिलगिला) सूक्ष्म, मृदु, व्यवायी (प्रथम सब देहमें
व्याप्त होकर पकने वाला) विविक्त (पृथक् हुआ अर्थात् अवयवद्वारा
करके शून्य) अव्यक्तरस (जिसमें मधुरादि रसकी प्रतीत नही) तथा
शब्दबहुल (इसमें शब्दका गुण अधिकहै) कुल कहुआ और विशेष
करके कपेला इत्यादि गुणविशिष्ट आकाशीय अर्थात् आकाश संबंधी
द्रव्य जानना ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि, यह मार्दव (मृदुता) शौषिर्य (छिद्र-
भाववाला) और हलका करनेवाला आकाशसंबंधी द्रव्य जानना ॥

सब औषधोंको पांचभौतिकत्व ।

अनेन निदर्शनेन नानौपधीभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्य-
मस्तीति कृत्वा तं तं युक्तिविशेषमर्थं वाभिसमीक्ष्य
स्ववीर्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कर्मकराणि भवन्ति ॥

अर्थ—इस पूर्वोक्त पांचभौतिक द्रव्योंके कहनेसे यह दिताया कि, इस
स्वावर जंगमात्मक जगत्में कोईसी द्रव्य अनौपधिभूत (जो औषध

न कहलाती हो) नहीं है (अर्थात् जितनी ससारमें वस्तुहे वो सब औषधरूपहै) इसीसे उनकी पृथक् २ युक्ति विशेष और अर्थ विशेषकी विचार स्ववैर्यगुणयुक्त द्रव्य देनेसे वो कर्मके करनेवाली होती हे ॥

तानि यदा कुर्वन्ति स कालः यत्कुर्वन्ति तत् कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वैर्यं, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं, यथाकुर्वन्ति स उपायः यन्निष्पादयति तत्फलमिति ॥ ३ ॥

अर्थ—वो द्रव्य जिस कालमें क्रियाकरे है वो काल जानना और जो कार्य करे वो कर्म है, तथा जिस करके करे वो वैर्य है, जिसमें करे वो अधिकरणहै, जैसे करे वो उपायहै, एव उस क्रियाद्वारा जो रोग अथवा आरोग्य प्रगट होवे उसका फल कहते हे ॥

औषधज्ञानमे अनुमानकी योजना ।

तत्र विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठानि पृथिव्यापो गुर्व्यां गुरुत्वादधोगच्छन्ति तस्माद्विरेचनमधोगुणभूयिष्ठमनुमानात् ।

अर्थ—तहाँ विरेचन द्रव्य (निसोथ, जमालगोटा आदि) पृथ्वी और अबुगुणभूयिष्ठ है, तो अब जानना चाहिये कि, पृथ्वी और जल यह दोनों भारी है भारीहोनेसे दोनो नीचेको जाते है, अतएव जितनी विरेचन द्रव्यहै अर्थात् जुलाब लाबेवाली औषधी है सो अधोगुणभूयिष्ठ कहिये अधिक

१ युक्ति विशेष करके जल, अग्नि, संस्कार भावना, मात्रा और काल आदिकी योजना विशेष जानना । २ अर्थ करके अनेक व्याधि नाशरूप प्रयाननका ग्रहण है । ३ काल करके इतीतोम्पदवर्णनस्य संवत्सरस्यक रोगनि आनुकूल्यस्य ग्रहण हे । ४ कर्म-जन्मसे शोषनादि द्रव्योंका व्यापार जानना । ५ शक्तिहै । ६ अधिकरणजन्मसे पंच-महाभूताने बनेहुय इस मनुष्यदेहका ग्रहणहै । ७ उपाय इस जन्मसे, स्वरस, क्लृप्त, शृतशीत, पात्र, धृत, तैल लघु, मोदकादि प्रकार जानना । ८ इस जग भारी और हलकापेना निशोषआदि और मैनफल आदि द्रव्य प्रभावविशेष करके मिश्रित लेना केवल गुरु लघुत्व मात्रही करन नहा लेना, क्याकि यदि गुरु लघुत्व मात्रसेही दस्त के होती है देसा मानोग तो मलनी, पित्त आत्म और ममर आदि भारी है इनके खानस दस्त जाने चाहिये ।

करके नीचेको जानेवाली है । यह अनुमान (अटकल) से जाना जाता है ।
[उदाहरण जैसे-पत्थर ईंट, जल, तेल आदि जानने] ॥

वमनद्रव्याण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठान्यग्निवायू हि लवूलघु
त्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति तस्माद्रमनमप्यूर्ध्वगुणभूयिष्ठमुक्तम् ॥

अर्थ-इसीप्रकार संपूर्ण वमनद्रव्य (कै लानीवाली औषधी) अग्नि और पवन गुणभूयिष्ठ है तो अब विचारना चाहिये कि, अग्नि और वायुं ये दोनों हलके है हलके होनेसे यह दोनों ऊपरको जाते हैं इसी कारण वमनद्रव्य ऊर्ध्वगुणभूयिष्ठ ऐसा कहा है अर्थात् अनुमानसे जाना जाता है [उदाहरण जैसे धूआँ और अग्निकीज्वाला आदि जानने] ॥

उभयगुणभूयिष्ठमुभयतोभागम् ।

अर्थ-इसी प्रकार उभय गुणभूयिष्ठ द्रव्य अर्थात् जिसमें पृथ्वी और अग्नि इस प्रकार दो तत्वोंके गुण मिले हों तो अब विचारना चाहिये कि, पृथ्वी भारी है और अग्नि हलकी है तो ऐसी उभयगुणवाली औषधी दोनों तरफ गमन करती है अर्थात् दस्त और रद दोनों कराती है ऐसा अनुमानसे जाना जाता है ॥

आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनं । संग्राहकमनिलगुणभूयिष्ठ-
मनिलस्यशोपणात्मकत्वात् । दीपनमग्निगुणभूयिष्ठम् ।
लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम् । बृंहणं प्रथिव्यम्बुगुण-
भूयिष्ठम् । एवमौषधकर्माण्यनुमानात्साधयेत् ॥

अर्थ-आकाशगुण भूयिष्ठ द्रव्यसंशमन है (जैसे आकाश निश्चल और सर्वत्र व्यापक है उसीप्रकार संशमन औषधी है) जिसमें पवन गुणभूयिष्ठ है वो द्रव्य संग्राहक (शोषक) है, (जैसे पवन शोषण करता है) इसी प्रकार संग्राही द्रव्य (आर्द्रता शोषण करे है) अग्नि दीप्त गुणवाला होनेसे अग्निगुणभूयिष्ठ द्रव्यभी दीपन जानना तथा पवन और अग्निगुणभूयिष्ठ द्रव्य लेखन अर्थात् कफ भेदाको पतला करने-वाला जानना । पृथ्वी और जलगुणभूयिष्ठ द्रव्य बृंहण (पुष्टकारी) जाननी) इसी प्रकार औषधोंके कर्मोंको अनुमानद्वारा धैद्य साधनकरे ॥

१ तथा संपद तीतर और ल्या पक्षियाचामाम इत्यादि तो इनमें भी रद इत्यादि चाहिये । परंतु ऐसा नही होता तो यही सिद्धिआ कि, प्रभाषविशिष्ट भारी इत्यादि औषधसे दस्त और रद होती है ॥

भवन्ति चात्र ।

भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः ।

भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम् ॥

खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम् ।

अर्थ—तहा पृथ्वी, तेज और जलगुणभूयिष्ठ द्रव्यसे बादी शमन होती है । पृथ्वी जल और वायुगुणभूयिष्ठ द्रव्यसे पित्त तत्काल शांति होता है । एवं आकाश, अग्नि और पवनगुण बहुलद्रव्यसे मनुष्योंका कफ शांति होता है ॥

वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः ॥

आग्नेयमेव यद्द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते ।

वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्द्धते ॥

एवमेतद्गुणाधिक्यं द्रव्ये द्रव्ये विनिश्चितम् ।

द्विशो वा बहुशो वापि ज्ञात्वा दोषेष्वचारयेत् ॥

अर्थ—तथा आकाशपवनजन्य औषधोसे बादी बढती है, अग्निगुण संबन्धी द्रव्यसे पित्त बढता है और पृथ्वीजलजन्य औषधोसे कफकी वृद्धि होती है । इसप्रकार प्रत्येक द्रव्यमें गुणाधिक्य जानना, उन दो दो गुणोसे तथा तीन २ गुणोंसे उत्पन्न द्रव्योंकी दो दो दोषोंमें अथवा बहु-तसे दोषोंमें विचार करके देवे ॥

तत्र यइमे गुणा वीर्यसंज्ञकाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदु-

तीक्ष्णपिच्छिलविशदास्तेषां तीक्ष्णोष्णावाग्नेयो । शीत-

पिच्छिलावम्बुगुणभूयिष्ठौ । पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठःस्नेहः ।

तोयाकाशगुणभूयिष्ठंमृदुत्वं । वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम्

क्षितिसमीरणगुणभूयिष्ठंवेशद्यम् ।

अर्थ—तहां शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल, विशद, ये जो वीर्यसंज्ञक गुण हैं इनमें तीक्ष्ण और उष्ण ये अग्निसंबन्धी गुण हैं । शीत और पिच्छिल अंबुगुणभूयिष्ठ हैं अर्थात् जल संबन्धी हैं । पृथ्वी और अंबुगुण-भूयिष्ठ स्नेहगुण हैं । जल और आकाशगुणभूयिष्ठ मृदुगुण हैं । रूक्षगुण पवनभूयिष्ठ हैं पृथ्वी और पवनगुणभूयिष्ठ विशद गुण हैं ॥

गुरुलघुविपाकावुक्तगुणौ । तत्रोष्णस्निग्धौ वातघ्नौ ।

शीतमृदुपिच्छिलाः पित्तघ्नाः । तीक्ष्णरूक्षविशदाः

श्लेष्मघ्नाः । गुरुपाको वातपित्तघ्नः । लघुपाकः श्लेष्मघ्नः ।
तेषां मृदुशीतोष्णाःस्पर्शग्राह्याः । पिच्छलविशदौचक्षुः
स्पर्शाभ्याम् । स्निग्धरूक्षौ चाक्षुषौ । शीतोष्णौ सुख-
दुःखोत्पादनेन । गुरुपाकः सृष्टविणमूत्रतया कफोत्क्ले-
शेन च । लघुर्वद्भविण्मूत्रतया मारुताकोपेन च । तत्र
तुल्यगुणेषु भूतेषु रसविशेषमुपलक्षयेत् । तद्यथा ।

मधुरो गुरुश्च पार्थिवः मधुरः स्निग्धश्चाप्य इति ।

अर्थ—लघु और गुरु विपाक दोनोंके गुण प्रथम कह आए हैं । उष्ण और स्निग्ध वीर्यसंज्ञक गुण वातको शमन करते हैं । शीत मृदु और पिच्छल वीर्यसंज्ञक गुण पित्तको । तीक्ष्ण रूक्ष और विशदवीर्यसंज्ञक गुण कफको शमन करते हैं ॥

गुरुपाक वातघ्न है । लघुपाक कफघ्न है । इनमें मृदु शीत और उष्णगुण 'स्पर्शनेन्दी' अर्थात् त्वचाकरके ग्राह्य है । पिच्छल (गिल गिला) और विशद दोनों चक्षुःइन्दी तथा स्पर्शनेन्दी करके ग्राह्य है । स्निग्ध रूक्ष नेत्र करके । शीत और उष्ण सुखदुःखसे उत्पादन से ग्राह्य हैं अर्थात् प्रतीत होते हैं ॥

तहां मलमूत्रके निकलनेसे और कफके उत्क्लेशकरके गुरुपाकद्वारा जानना, तथा मलमूत्रके न उतरनेसे और वायुके कुपित होनेसे लघुपाक द्वारा जानना तहां तुल्यगुण पृथिव्यादि भूतोंमें रसविशेषको जाने । जैसे मधुर और गुरु ये पृथ्वीके हैं और मधुर स्निग्ध ये जलके हैं ॥

भवति चात्र ।

गुणा य उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा ।

स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ ४ । ५ । ६

अर्थ—जो बीस गुण द्रव्य (औषधादिक) में कहे हैं वो इस देहमेंभी हैं अतएव है, वोस्थान (दोष, धातु, मलकी साम्यता) वृद्धि (दोषादिकोंकी अधिकता) और हास (दोषादिकोंके घटने करके) पांचभौतिक द्रव्यके हेतु होते हैं । अर्थात् जैसे २ दोषधातु मलादिक इस प्राणीकी देहमें घटते बढ़ते हैं तैसे २ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशजन्य द्रव्योंको इस देहमें घटाते बढ़ाते हैं यह अध्याय सब धैर्योंका विचारने योग्य है ॥ इति श्रीमाधुर कृष्णलालतनय दत्तराम संकलिते आयुर्वेदोद्धारे बृहत्त्रिपण्डुरत्नाकरे द्रव्यविशेष विज्ञानीयाध्यायः समाप्तः ॥

अथातो हिताहितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम हिताहितीय अध्यायकी व्याख्या करते हैं। अर्थात् इस-प्राणीको ये वस्तु हित (पथ्य) हैं और ये वस्तु अहित (अपथ्य) हैं, इस दोनोंका इस अध्यायमें वर्णन किया जावेगा ॥

प्रथमऔरोंकेमतकोकहतेहैं ।

यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमित्यनेन हेतुना न किञ्चिद्द्रव्यमेकान्तेन हितमहितं वास्तीति केचिदाचार्या ब्रुवते तत्तु न सम्यक् ॥

अर्थ—जो वस्तु वादीके रोगमें पथ्य है वह पित्तके रोगमें अपथ्य है [कारण यह है कि, वादीको वही वस्तु दूर करेगी जो गरम होवेगी और जो गरम है वह अवश्य पित्तके रोगमें अपथ्य होवेगी जैसे तेल और कांजी है] इस हेतुसे कोईसी द्रव्य निरंतर हितकारी नहीं होसके क्योंकि पित्तको अहितकारी है और न निरंतर अहितकारी होसकी है कि, वातको हितकरे है। ऐसे कोई आचार्य कहतेहैं, परंतु उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंनहींहै सो कहते हैं ॥ अपना मत कहते हैं ।

इह खलु यस्माद्द्रव्याणि स्वभावतःसंयोगतश्चैकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि च भवन्ति ॥

अर्थ—इस सौश्रुतग्रंथमें द्रव्य, स्वभाव(प्रकृति)से और संयोगसे निरंतर

हे बृहन्निधदुरत्नाकरके ग्राहक मित्र गणहो ! इस हिताहितीयाध्यायके नीचे हम चरकसे यज्ञ.पुरषीयाध्यायका केवल भाषांतरमात्र करके आपकी सेवामें निवेदन करते है यदि आप प्रसन्न होकर इसको स्वीकारकरेगे तो हम अपने परिश्रमको सफल मानेंगे ॥

श्रीहरि.—प्रहिले मन्वस्य धर्मस्वरूप भगवान् पुनर्वसु आश्रेय जो महाविपोकै साथ यह वार्त्ता चली कि आत्मा, इन्द्री, मन और इनके अर्थ इनका समूह यह पुरुष-संज्ञक है इस पुरुषका और पुरुषके देहमें जो रोग उत्पन्न होते है उनके मध्यमही रोगोत्पत्तिका निश्चय किसप्रकारहो । तब उससभामें काशीपति जिसको वामकभी कहते है वो सब ऋषियोंको मणामकर अपनी समती इसप्रकार कहने

१ जो सपूर्ण अवस्थाओंमें लूटे नहीं वो द्रव्यकी प्रकृती है। जैसे अग्निमें उष्णत्व औ जलमें द्रवत्व, तो यद्वा उष्णत्व और द्रवत्व येही अग्नि और जलद्रव्यकी प्रकृति जाननी ।

हितकारी और निरंतर अहितकारी एवं निरंतर हिताहित कर्ता होती हैं। इस जगह चकार जो पडा है इस्से संयोगमें स्वभावभी हेतु जानना तथा देश, काल, मात्रा, संस्कार ये सब स्वभावके संबंधसे जानने ॥

प्रथमएकांतहितोंको कहते हैं ।

तत्रैकान्तहितानि जातिसात्म्यात् सलिलघृतदुग्धौ
दनप्रभृतीनि ॥

लगाकि, यह पुरुष जिन कारणोंसे होता है वही कारणजन्य इसके देहमें व्यापिहोती है यह बात जो मैंने कही है हेऋषिहो ! यह ठीक है या नहीं ? तब उस सभाके मध्यमें श्रीपुनर्वसु आत्रेय महर्षि सब ऋषियोंके प्रति बोले कि, हेऋषिहो ! तुम सब अचित्य ज्ञान विज्ञान करके संशय रहितहो आपही इन महात्मा फाशीराजके सशयको दूरकरो । यह वचन सुन मौद्गल्य ऋषि बोले कि,—

यह पुरुष आत्मासे उत्पन्न होता है अतएव इसके जो रोग होते हैं वो भी सब आत्मजन्य हैं अर्थात् आत्मासे मगट होते हैं । यह पुरुष कर्मोंको संचय करता है अतएव उन कर्मोंके फलको भोगता है, ये जितने अत्माजन्य सुखदुःखहै वह सुखदुःख चैतन्यरूपको नहीं हैं यह मौद्गल्यके वचन सुन शरलोमा ऋषि बोलेकि,—

यह आपका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि आत्मासे आत्मा नहीं हो, न यह पुरुष आपको दुखदाई कर्मोंका संग्रह करता है । इसका यह कारण है कि, दुःखोंसे द्वेषकर्ता प्राणी अपनी आत्माको दुखदाई व्याधियोंमें कदाचित् नियुक्त नहीं करनेका । कदाचित् सब ऋषि प्रश्नकरे कि, फिर यह पुरुष कैसे होता है.

तहां शरलोमा अपने मतको कहे हैं कि, यह सत्वसंज्ञक मन रजोगुण तमोगुणसे मिलाहुआ इस मनुष्य देहका और इस मनुष्यदेहमें होनेवाले रोगोंका कारण है यह शरलोमाके वचन सुन वाणीविद् ऋषि बोलेकि,—

यह आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि एक मनही इनका कारण नहीं होसका देहके अंतमें न शरीररहे न शरीरके रोगरहे न मन रहता है इस्से मेरी समझमें यह आता है कि, संपूर्ण प्राणी राजसी अर्थात् रजोगुणसे मगटहै और संपूर्ण व्याधिभी राजसी है । यह शरलोमाके वचन सुनके हिरण्याक्ष ऋषि बोलेकि,

यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि आत्मा राजसी नहीं है और इन्द्रियहित मनभी नहीं है और न शब्दादि जन्यरोगहै । इस्से मेरी समझमें यह आता है कि, यह पुरुष च्छायातुअसि मगटहै और रोगभी पद्घातु जन्यहै । अतएव यह च्छायातु

अर्थ-तहां हिताहित द्रव्योंमें मनुष्य मात्रक जातिसात्म्य होनेके कारण जल, घृत, दूध, भात और आदिशब्दसे गेहूं, जौ आदि निरंतर सबको हितकारी है ॥

एकान्तअहित ।

एकान्ताहितानि दहनपचनमारणादिपुप्रवृत्तान्यग्निक्षार-
विपादीनि । संयोगादपराणि विपतुल्यानि भवन्ति ॥

अर्थ-तथा दहन (जराना) पचन (पचाना) और मारणादिकोमे प्रवृत्त ऐसे अग्नि, क्षार, विपादिक ये सब प्राणिमात्रके जाति असात्म्य होनेसे निरंतर अहितकारी है, परंतु यह कथन नैरोग्य पुरुषोंके प्रति है, रोगीको तो रोगमात्राकी अपेक्षा करके अग्नि क्षारादि हितकारी ही होते हैं और बहुतसी द्रव्य द्रव्यांतरोंके संयोग वशसे विपके तुल्य होजाती है ॥

बौका समूह है । इस वचनको सुन साख्यायन आद्यपरीक्षित और कुशिकऋषि बोलेकि, हमारी समझमेंभी ऐसाही आता है । इसप्रकार कुशिकऋषिके वाक्यको सुन शौनकऋषि बोलेकि,

यदि आप इसपुरुषको षडधातुसे उत्पन्नहुआ बतातेहों तो मैं आपसे पूछताहू कि, बिना माता पिताके कैसे यह पुरुष षडधातुज प्रगट होसकत है । इसके मेरी समझमें ऐसा आताहै कि, पुरुषसे पुरुषहोताहै। गौसे गौ । घोड़ेसे घोडा उत्पन्न होता है और जितने प्रमेहादिक रोग है वो पितृजन्य अर्थात् पितासेही होते है यह शौनक ऋषिके कहनेको सुनकर भद्रकाप्य नामक ऋषि बोला यह ठीक नहीं है ॥

क्योंकि अधे मनुष्यसे अथा बालक नहीं होता पहले मातापिताहीकी उत्पत्ति नहीं थी फिर बालक कहाँसे हुआ, इसके मेरी समझमें ऐसा आता है कि, यह प्राणी कर्मज है अर्थात् कर्मसे प्रगट होता है और जितने रोग इस प्राणीके होनेवाले हैं वह सब कर्मज हैं । क्योंकि कर्मके बिना न पुरुषका जन्म और न रोगोंका जन्म है । इस प्रकार भद्रकाप्यके वाक्यको सुन भरद्वाजबोलेकि, यह ठीक नहीं क्योंकि उस कर्मकाभी रचनेवाला उसके प्रथम था ऐसा देखागया है जिसकर्मका फल पुरुषहै ऐसा अकृतकर्म नहीं देखा गया, अतएव हमारी समझमें ऐसा आता है कि, इस प्राणीके और रोगोंके उत्पन्नहोनेमें स्वभावही हेतु है । जैसे

१ जो वस्तु आत्मा और देहके साथ रहकर देहम विकार न करे उसको सात्म्य कहते हैं ।

एकांतहिताहित ।

हिताऽहितानितु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्य
मित्यतः सर्वप्राणिनामयमाहारार्थं वर्ग उपदिश्यते ॥

अर्थ—और बहुतसी द्रव्य हितकारी तथा अहितकारी दोनों प्रकारकी हैं जैसे जो द्रव्य वादोंको पथ्य है वह पित्तको अपथ्य है इसप्रकार सकल द्रव्य हिताहित कर कहाती है, अब सब प्राणियोंके आहारके वास्ते एकांतहितवर्ग एकांत अहितवर्ग और एकांत हिताहितीय वर्गोंको कहते हैं ॥

द्रव्योंमें खर, इव, च्ल, उष्ण, तेज इनमें स्वभावही कारण है उसीप्रकार इस पुरुष और रोगोंके होनेमेंही स्वभाव कारण है ॥

इस वचनको सुन कांकायनऋषि बोले यह भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि स्वभावही पुरुष और व्याधिका कारण है तो उस स्वभावका फल प्रारंभमेंही क्यों नहीं होता, भावोंके होने न होनेकी सिद्धी अथवा असिद्धी स्वभावसे होती है यदि स्वभावसेही पुरुष होता है तो उस ब्रह्माको रचनेवाला और मजापति कहते हैं वो व्यर्थ है और सतानहोनेके निमित्त जो मजाहितैषी दुःख उठाते हैं वोभी न होना चाहिये क्योंकि वह तो स्वभावसेही होती है ? फिर दुःख क्यों उठाना इसवास्ते मेरी बुद्धिमें यह आता है कि, यह पुरुष कालज्ञ अर्थात् कालसे उत्पन्न है और इसके होनेवाले रोगभी कालजन्य है और यह संपूर्ण जगत् कालके वश है । इसवास्ते सर्वत्र कालही कारण है ॥

इस प्रकार ऋषियोंके आपसमें विवाद (झगडा) करनेमें श्रीपुनर्वसु आत्रेय बोले कि, भाईहो ! ऐसा विवाद मतकरो, क्योंकि जहां पक्षपात है वहां परतत्व निश्चय अर्थात् किसी बातका निर्णयद्वारा सिद्धांत करना दुष्प्राप्य है । वाद और मतिवादोंको कहते हैं उस २ पक्षकी समाप्तिको नहीं पहुँचे, जैसे तेलकी पानीका बेट चढते २ समाप्तिको नहीं पहुँचे तात्पर्य यह है कि, जैसे पानीका बेट बराबर उस पानीके और पास डोलाही कर्त्ता है, उसीप्रकार पक्षपाती दो विवाद करनेवालोंका झगडा नहीं समाप्त होवे, इसवास्ते आत्रेय महाशिव कहते हैं कि, इस विवादको त्यागके अध्यात्म (सिद्धांत) का चिंतन करो ॥

जैसे अधिकारमें एक खबरसडा हुआ है उसको जाननेवाले जबतक नहीं जानेंगे कि, यावत् वह अंधकार दूर नहीं हो । जिन भावोंकी संपत्त्य इस प्राणीको उत्पन्न करे है वोही उन प्राणियोंकी अनेक प्रकारकी व्याधियोंको उत्पन्न करे है ।

इसप्रकारका आत्रेय ऋषिके वचन सुन काशीपति वामक फिर आत्रेयसे बोला कि, हे भगो ! सपत्तिमित्तजन्य प्राणिके सपत्तिमित्तजन्य रोगके चढनेमें क्या कारण है ?

तद्यथा-रक्तशालिपट्टिककङ्कुकमुकुन्दकपाण्डुकपीतकप्र-
मोदककालकाशनकपुष्पककईमकशकुनाहतसुगन्ध-
ककलमनीवारकोद्रवोद्दालकश्यामाकगोधूमवेणुयवादयः ॥

अर्थ-छालचावल, सांठीचावल, कंगू (कांगुनी) मुकुन्दक (कालेरंगके
सांठीचावल) पाण्डुक (पीले रंगके चावल) पीतक, प्रमोदक, कालक, अश-
नक, पुष्पक, कईमक, शकुनाहत, सुगंधक, (देवशालि) कलमक (कल्मी)
इत्यादि चावलोंकी जाति गेहूँ तथा वेणुयव(बांसके चावल)इत्यादि धान्य।

तब आत्रेय महर्षि बोलेकि, अहित आहार अर्थात् कुप्य्य भोजन करना
व्याधि होनेका कारण है, इस मकार कह रहे जो आत्रेय उनसे अग्निवेश ऋषि
बोला कि, हे भगवन् ! हित और अहित आहारका लक्षण वादरहित हम किसम-
कार जाने तथा हम देखतेहैं कि, मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष, पुरुषकी
अवस्थांतर और इनमें युक्तभी आहार अपने विपरीत गुणकरता है इस्से आप
कहिये कि, इनमें क्या कारण है? ॥

हिताहित आहारके लक्षण ।

तब आत्रेयमहर्षि बोले कि, प्रथममें तुमसे हितआहारके लक्षण कहताहूँ सो
सुनो, हे अग्निवेश ! जो आहार शरीरके समान धातुओंको प्रकृतिमें स्थापनकरे
अर्थात् घटने बढ़ने न देवे और जो धातु विपम होरहीहो उनको समानकरे
उसको हित आहार जानना । यह सब प्राणियोंके सेवन करने योग्य है और
इस कहे हुए लक्षणसे विपरीतहो वह आहार अहित है, उसको मनुष्य त्यागदेवे ॥

इस मकार हिताहित कहनेवाले भगवान् आत्रेयसे अग्निवेश बोला कि, हे भ-
गवन् ! यह जो आपने हिताहित कहा इसको क्या वैद्य जान जावेगे? तब आत्रेय
बोले कि, हे पुत्र ! जिनको गुणोंसे, द्रव्यसे, कर्मसे, संपूर्णअवयवोंसे, मात्रासे
और भावसे आहारतत्त्वका ज्ञानहै वोही वैद्य जानसके है अन्यनहीं, परतु जैसे
सब वैद्य जाने उसको मैं कहताहूँ ॥

मात्रादि भावोंके कहनेसे उनके अनेक भेद होते है इसवास्ते आहार विधि
विशेषोंको लक्षणसे और अवयवोंके व्याख्यान करे है ॥

एकमकारका आहार अर्थभेदसे वह स्थावर जगमात्मक द्वियोनिके कारण
दोमकारका तथा द्विविध मभाव अर्थात् एक हितकारी दूसरी अहितकारी होकर
उसको चारमकारसे उपयोग करते है जैसे भक्ष (चूरा, खांड, चूर्णआदि) भोज्य

एणहरिण कुरङ्गमृगमातृकाश्वदंष्ट्राकरालक्रकरकपोत-
लावतित्तिरिकापिञ्जलवर्तीरवर्तिकादीनांमांसानि ।

अर्थ—कालामृग, लालवर्णकामृग कुरंग(काले हरिणके बराबर कुछ २ लालरंगका) मृगमात्रिका (कुरंगकी स्त्री) श्वदंष्ट्रा (अतिदुष्टकर्षटका) कराल(कस्तूरीमृग) क्रकर (क्रकसपक्षी) कपोत (पिंडुफिया) लवा,काला-
त्तितर, सपेद तीतर, वटेर, वर्तिका (वटेरका भेद घर्घर) इनसबका मांस॥

(लड्डू पेडा आदि) लेह्य (अवलेह, ल्हापसो, चटनीआदि) और चोप्य (जो चूसने योग्य पदार्थ है जैसे ईसकी गढेरी और आम इत्यादि) ॥

उस आहारमें रसोंके भेदसे छःभकारका (मीठा, खट्टा, चरपरा, निमकीन, कहुआ और कषेला) स्वाद है । और बीस गुण हैं जैसे गुरु, लघु, शीत, उष्ण, सिग्ध, रुक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, रस, मृदु, कठिन, विषद, पिच्छल, श्लेष्म, सर, सूक्ष्म, स्थूल, सांद्र, द्रव इनके आपसमें समयोग होनेसे अस्त्र-र्यात भेद होनाते है ॥

द्रव्यसंयोग करणकी अधिकतासे उस आहारके जो जो विकारके अवयव अत्यंत मगट्हीते हैं, वह मनुष्योंकी प्रकृतिसे हिततम और अहिततम अधिक कल्पना होती है उन्हीं २ कल्पनाओंको हम व्याख्यान करते है ॥

तहां लालचावल शूकधान्योंमें पच्यतम और उत्तमहै, इसीभकार फलीके धान्योंमें भूंग उत्तम, निमकोंमें संधानिमक, शाकोंमें (तरकारियोंमें) डोडीका साग उत्तमहै, हिरनके मांसोंमें फालेहिरनका मांस, पक्षि (परंदों) में उवा, विलेमें रहने वाले जीवोंमें गोह, मछलियोंमें रोहू मछली, घीयोंमें गौफा पी, दूधोंमें गौका दूध, स्थावर अर्थात् वृक्षादिजातिके, तेलोंमें तिलपातेल, चर्बियोंमें सूअरकी चर्बी, रूपमृग चर्बियोंमें सेह (जो फांटेवाला जानवर होताहै उसकी) चर्बी, मछलियोंकी चर्बीमें जो पाकहण नाम मछली होती है उसकी बसा, जलमें रहनेवाले पक्षियोंमें जलमुर्गावीकी चर्बी, पक्षेम्बोंमें विन्किर (जो सानेकी चोंचकी विस्तरके साने बांटे ऐसे) मुरगा, कचूतर, पिंडुफिया, और पिंडाआदि उत्त-
महै, चारपोंके जीवोंमें बकरी हुंवा आदि पच्यहै । फंदोंमें अदरस पच्य है। फलोंमें मुनका, दास पच्यहै। ईसके विकारोंमें मिथी वा चीनी उत्तम है ॥

ये आहारकी अर्थात् सानेयोग्य वस्तु सब मनुष्यकी भ्रष्टतिथी हितहै (ये प-
दार्थ सबको साने चाहिये) ये हित आहारसमूह मने सीखते कहेंदें ॥

अपच्यगण ।

अब अहित पदार्थोंको कहते हैं । शूकधान्योंमें जो शुपच्य है, फलीबाटे अनाजों-

सुद्रवनसुद्रमकुष्ठकलायमसूरमङ्गल्यचणकहरेणवाढकी
सतीलाः । चिल्लिवास्तुकसुनिपण्णकजविन्तीतण्डु
लीयकमण्डूकपर्ण्यः ॥

अर्थ-वनकी मूंग, मूंग, मोठ, मटर, मसूर, पीलेरंगकी मसूर, चना, गोलमटर, अरहर और केराव इतने फलीवाले धान्य, खेतकावधुआ, वनकावधुआ, चौपतिया, डोडी, चौलाई और ब्राह्मीधिसागोंमें ॥

में उदद अपच्य है, नदियोंमें वारिषका जल कुपच्य है। निमकोंमें ऊपर जमीनमें जो निमक होता है वह कुपच्य है। सागोंमें सरसोंका साग कुपच्य है। चौपाएन में गौका मास कुपच्य है [इसी कारण हमारे हिन्दुओंमें गोमांस खाना निषेध है] अब मांसखाने वालोंसे हम प्रार्थना करते हैं कि, जब यह गोमांस खानेको निषेध करताहै तो हेगोमांसभक्षीहो! तुम क्यों हठसे अवगुणकारी पदार्थको खाकर अपनी आत्मा और अस्मदादि हिंदुओंके दुश्मन होते हो] पक्षि (परदो) में कौएका मांस कुपच्य है। बिलोंमें रहने वालोंमें भेडकका कुपच्य है। मछलियोंमें चिलचिम मछली कुपच्य है। घृतोमें भेडका घी कुपच्य है। दूधोंमें भी भेडका दूध कुपच्य है। तेलोंमें स्यावर तैल (अर्थात् वृक्षसबधी तैलोंमें) कसूम (करड) का तैल कुपच्य है। जलसमीप रहनेवाले जानवरोंमें भैसकी चर्बी कुपच्य है। मछलीकी वसामें कुभीर नामक मछलीकी वसा कुपच्य है। जलमें रहनेवाले जीवोंमें जलीकका कुपच्य है। कदोंमें मूली कुपच्य है। पक्षियोंकी वसामें विक्किर पक्षियोंकी वसा कुपच्य है। जो वृक्षोंकी शाखा (गुद्दे) खाने वाले हैं उनमें हाथीकी वसा कुपच्य है। फलोंमें लकुच (कटहर) फल कुपच्य है। ईखके विकारोंमें उस ईखकी राव कुपच्य है। ये आहार की वस्तुओंमें ये सब प्रकृतिसे ही कुपच्यतम हैं इनमें जो मुख्य २ द्रव्य है सो हमने कही ॥

अब हिताहित अवयवरूप आहार विहारको फिर दूसरे माधान्यतासे और अनुबधसहित द्रव्योंका व्याख्यान करते हैं ॥

अन्न देहरक्षा करनेवालोंमें श्रेष्ठ है। जल माणरक्षकोंमें श्रेष्ठ है। मद्य श्रम हरनेवालोंमें श्रेष्ठ है। जीवनदाताओंमें दूध श्रेष्ठ है। पुष्ट करनेवालोंमें मांस श्रेष्ठ है।

* गोमांसभक्षणनिषेधका कारण मुख्य यही है फिर भी जिह्वास्वादलपट सबनाशा विधर्मा क्यामानेंगे 'प्राणजापपरवचननाड'। यह वचन इन्हीं दुराग्रहीं पामरोंमें चार-तार्थ होताहै नहा तो इस अभक्षको क्योंभक्षणकरे सम्भता इसी तें प्रगटहोती है धन्यरे कल्पियुगके अडबड साले सम्भयो ?? ।

गव्यं घृतं क्षौद्रसैन्धवदाडिमामलकमित्येपवर्गःसर्वप्रा-
णिनां सामान्यतः पथ्यतमः । तथा ब्रह्मचर्यनिवाताश-
यनोष्णोदकनिशास्वप्नव्यायामाश्वैकान्ततः पथ्यतमाः ॥

अर्थ—घृतोमें गौकाधी, सहत, निमकोमें सैधानिमक, विलायतीअनार
अथवा अनारदाना और फलोंमें आमले इत्यादि कड़ेहुए वर्ग सब प्राणी-
मात्रोंको सर्वथा हितहैं ॥

तथा ब्रह्मचर्य(स्त्रीसेवनसे बचना)निवात स्थानमें शयन करना, गरमज-
लसे स्नान, रात्रिमें सोना और दंड फसरत करना, ये एकान्त हित है अर्थात्
एक २ ही हित है ।

भोजनद्रव्य रुचि करानेवालोंमें निमक श्रेष्ठ है । हृदय मियोंमें खटाई श्रेष्ठ है । बल-
कारियोंमें मुरगेका मांस श्रेष्ठ है । वीर्यके बढ़ाने वालोंमें मगरका वीर्य श्रेष्ठ है ।

कफपित्तनाशकारियोंमें सहत उत्तम है । वातपित्तनाशकर्ताओंमें घी
उत्तम है । वातपित्तशमनकर्त्ताओंमें तेल उत्तम है । कफ हरणकारियोंमें वमन
कराना उत्तम है । पित्तहरणकरनेवालोंमें जुलाब कराना उत्तम है । बस्तीकर्म वात
हरणकर्त्ताओंमें उत्तम है । नम्र करनेवालोंमें पसीने निकालना यह कर्म उत्तम
है । स्थिर करनेवालोंमें दंडकसरत करना उत्तम है । नपुंसक (हिजडा) करने
वालोंमें खार (सब्जीखार, जवाखार और निमक, आदि) उत्तम है। अन्न द्रव्यरहित
जो पदार्थ है उनमें रुचिकर्त्ताओंमें तैदुआ उत्तम है। हृदयके अहितकारियोंमें भेडका
घी उत्तम है। देहसुखनेके रोग हरणकरनेवालोंमें बकरीका दूध उत्तम है । समानरु
धिरके संग्रहण करनेवालोंके शांतिकरनेमें खीका दूध उत्तम है । कफ पित्तके संचय
करनेवालोंमें भेडीका दूध उत्तम है । निद्रा उत्पन्न करनेवालोंमें भैसका दूध उत्तम है।
देहके छिद्र रोकनेवालोंमें दही उत्तम है । कर्षण (देहसुखानेवालों) में समापसा-
ई अन्न उत्तम है । देहमें रुखाई करनेवालोंमें कोदो अन्न उत्तम है । मूत्र पैदाकरने
वालोंमें ईत्र उत्तम है । वादी पैदाकरनेवालोंमें जामुनका फल उत्तम है । कफ
और पित्त करनेवालोंमें पूडी पिरामठे उत्तम है । अम्लपित्त करनेवालोंमें
कुलथी उत्तम है । कफपित्तकरनेवालोंमें उडद उत्तम है । वमन, आस्थापनबस्ती,
अनुवासन बस्ती इनके उपयोगी पदार्थोंमें मैनफल उत्तम है । सुखपूर्वक दस्तला-
नेवालोंमें निसोथ उत्तम है, नरम जुलाबोंमें अमलतास उत्तम है । तीक्ष्णजुलाब
लानेवालोंमें धूहरका दूध उत्तम है । शिरोविरेचनीयद्रव्योंमें सपेद आंग

एकान्तहितान्येकान्ताहितानि प्रागुपदिष्टानि । हिता-
हितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥

अर्थ—एकान्तहित जल है और एकान्त अहित अग्नि ये प्रथम कह आये हैं और हिताहित वही जानना कि, जो वादीमें पथ्य है वो पित्तमें अपथ्य है ॥

उत्तम है । पेटके कीड़े नाशकोंमें वायुविडंग उत्तम है । विष हरणकरनेवाले, पदा-
धोंमें सिरस उत्तम है । कोटरोग हरणकरनेवालोंमें खैर (खैरसार) उत्तम है ।
वादी हरणकरनेवालोंमें रास्ना उत्तम है । अवस्था स्थापनकरनेवालोंमें आमले
उत्तम है । पय्यवस्तुओंमें हरड उत्तम है । वृष्य और वातहरणकरनेवालोंमें
अंडकी जड उत्तम है दीपनीय, पाचनीय और अफरा हरण करनेवाली औषधोंमें
पीपरामूल उत्तम है । दीपनीय गुदाका शूल और सूजन हरणकरनेवालोंमें
चीतेकी जड उत्तम है । हिचकी, श्वास, खांसी और पसवाड़ेके शूलहरण कर-
नेवालोंमें पुहकरमूल उत्तम है । संग्राहक, दीपनीय और पाचनीयोंमें मोथा उत्तम
है । शीतलकरना, दीपन, वमन और अतिसार, हरणकरनेवालोंमें नेत्रवाला
(सुगंधवाला) उत्तम है । संग्राहक और दीपनीयोंमें स्योनाक अर्थात् टेटू-
उत्तम है । संग्राहक और रक्तपित्तनाशकोंमें अनंतमूल उत्तम है संग्राहक वातहर-
दीपनी कफ और रुधिरके विबंधको नाशकरनेवालोंमें गिलोय उत्तम है । संग्राहक,
दीपनीय और वातकफनाशकोंमें बेलफल उत्तम है । दीपनीय, पाचनीय, संग्रा-
हक और सर्वदोष हरनेवालोंमें अतीस उत्तम है । संग्राहक और रक्तपित्तनाश-
कोंमें उत्पल (नीलाकमल) कमोदनी और कमलफा केशरा उत्तम है । पित्तक-
फके शोषणकरनेवालोंमें धमासा उत्तम है । रक्तपित्तके अत्यंत गिरनेको दूर
करनेवालोंमें गंधप्रियंगु उत्तम है । कफपित्तरक्तकेसंग्राहक और शोषण करनेवा-
लोंमें कूडाकी छाल उत्तम है । रक्तसंग्राहकनाशकोंमें कंभारीके फल उत्तम हैं ।
संग्राहक, वातहर, दीपनीय और वृष्योंमें पृश्निपर्णी (पिठवन) उत्तम है । वृष्य
और सर्वदोष करनेवालोंमें विदारिगंधा उत्तम है । संग्राहक और बंधवातहरण
करनेवालोंमें खिरेटी उत्तम है । मूत्रकृच्छ्र और वादी हरणकरनेवालोंमें
गोखरू उत्तम है । छेदनीय और भेदनीय दीपनीय अनुलोमनी और वातकफके
नाशकर्त्ताओंमें अमलवेत उत्तम है । संसनीय और पाचनीय और
बवासीरनाशकोंमें जों उत्तम है, ग्रहणीदोष, बवासीर, घृतके विकार
इनके नाशकरनेवालोंमें छाछ पीनेका अभ्यास उत्तम है । वृष्यहो और उदावर्त्तहरण
कर्त्ताओंमें समान घृत, सत्तूका खानेका अभ्यास उत्तम है, दांतोंमें बल और रुचि-

संयोगविरुद्ध ।

संयोगतस्त्वपराणि विपतुल्यानि भवन्ति; तद्यथा-
वल्लीफलकरककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकदधि-
तैलविरोहिपिष्टशुष्कशाकाजाविकेमांसमद्यजाम्बवचिलि-
चिममत्स्यगोधावराडांश्च नैकध्यमश्रीयात् पयसा ॥

अर्थ—और बहुतसी द्रव्य संयोगहोनेसे विपके तुल्य होजाती हैं अर्थात् विपके समान एकांत अहित हो जाती हैं। जैसे बेलके फल (पेटा, कोला, धीया, तोरई, आदि) करक (छत्राक, छतोना) करील, बाँसकी कोपल, खटाईवाले फल, निमक, कुलधी, खल, दही, तेल, विरोहि (जिस्के अंकुर नहो) चावलोंका चून, सुखेसाग, मेंढका मांस, मद्य, जामुन, चिलचिलनामकी मछली, गोह और सूजरका मांस इन सबदस्तुओंको दूधके साथनभक्षणकरे ॥

कारियोंमें तेलके कुल्ले करनेका अभ्यास उत्तम है। निर्वापण (शांतकरना) और लेपकरनेवालोंमें चंदन और गूलर उत्तम है। शीतनाशक और लेपकी औषधोंमें रास्ना उत्तम है। दाह त्वचाके दोष, पसीने और लेपकारी औषधोंमें छाम्बक और खस उत्तम है। वातहर, उबटना और पसीनेवालोंमें कूट उत्तम है। नेत्रका-हितकारी, बालोंको हितकारी, कंठसुधारनेवाला वणको उज्ज्वल करनेवाला रंगने-वालोंमें और दाबके भरने वालोंमें महुआ उत्तम है। प्राणसंज्ञामधानहेतुओंमें पवन उत्तम है। जल, स्तंभ, शीत, शूल, कंप इनके नाशकरनेवालोंमें अग्नि उत्तम है। आमदोष करनेवालोंमें अति भोजनकरना उत्तम है। अग्निको चैतन्यकारि-योंमें यथा अग्निके अनुसार भोजन करना उत्तम है। चेष्टा और व्यवहारोपसे वियोंमें सात्म्य (अपनी आत्माको जो हितहोसो) उत्तम है। आरोग्यकरनेवालोंमें यथा-समय भोजन करना उत्तम है। रोगीकरनेको मलमूत्रोंका वेग धारण उत्तम है। आहारके गुणोंमें तृप्तिहोना उत्तम है। मन मसन्न करनेवालोंमें मद्य (दारू) उत्तम है। धी, धृति, स्मृति, हरण करनेवालोंमें मद्यका अत्यंतसेवन उत्तम है। पेटमें दुष्टपाक करने वालोंमें भारी पदार्थोंका भोजन उत्तम है। सुख और परिणाम करनेवालोंमें एकवार भोजन करना हितकारी है। देहका शोषण करनेवालोंमें स्त्रीसंग उत्तम है। नपुंसककरने वालोंमें

कचित् विरुद्धकाभीप्रयोगदिखातेहै ।

रोगं सात्म्यञ्च देशञ्च कालं देहञ्च बुद्धिमान् ।
अवेक्ष्याद्यादिकान् भावान् रोगवृत्तेः प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—उदरादिकरोग, सात्म्य, देश, (अनूपादि) काल (शीतादिक) देह (स्थूलकृशादि) और अम्यादिभाव कहिये जठराग्निआदिकी सामर्थ्य विचारके बुद्धिमान् वैद्य उक्त विरुद्धपदार्थोंको रोगीकोभीदेवे ॥

अत्यत शुक्रके वेग (स्तभनदवाई द्वारा) रोकना उत्तमहै । देहके घटानेवालोमे अन्नका त्यागदेना उत्तम है । देहके मुखानेमे थोडा भोजन करना उत्तम है । ग्रहणीके दूषितकरनेमे अजीर्ण और अर्धसन उत्तम है । विषाग्निकरनेवालोमे विषमांशन करना उत्तम है । दुष्ट रोगकरनेवालोमे विरुद्धवीर्य पदार्थ खाना उत्तम है । पथ्योंमे प्रशम (कोष मोहादिकान्तिना) उत्तम है । संपूर्ण अपथ्योंमें कुछभीकर्म न करना एक जगह बैठारहना उत्तम है । व्याधिके मुखोमे मित्यायोग उत्तम है । अलक्ष्मी (तेजबलादि) हरणकरनेवालोमे रजस्वला स्त्रीसे गमन करना उत्तम है । आयुकरनेवालोंमें ब्रह्मचर्य उत्तम है ॥

सब वृष्योंमें मनको मसन्न रखना उत्तम है, अवृष्य कारियोंमें दौर्मनस्य अर्थात् चित्तको दुःखित रखना उत्तम है । माणोंके हरणकर्ता कर्मोंमें ठीक २विचार के बिना करना उत्तम है । रोगबढानेवालोंमें दुःखी रहना उत्तम है । परिश्रम हरणकरनेवालोंमे स्नान करना उत्तम है । मसन्न कर्ताओमे हर्ष परमोत्तमहै । शोषण करनेवालोमे शोक (सोच) करना उत्तमहै । पुष्टिकारियोंमे भैथुनादि कर्मसे निवृत्ति होना उत्तमहै । तद्राकरनेवालोमे निद्रा उत्तम है । बलबढानेवालोमे सर्वरस भोजन करना उत्तम है । दुर्बलकरनेवालोमे एकरसका सेवन करना उत्तम है । निकालनेयोग्योमे गर्भशल्यका निकालना उत्तम है । उद्धारकरनेमे अजीर्ण उत्तम है । नम्र औषधोंके देनेमे बालक उत्तम है । याप्यकर्मोंमे वृद्ध उत्तम है । तीक्ष्ण औषध और परिश्रमसे बचानेवालोमे गर्भिणी स्त्री उत्तम है । गर्भधारणकर्ताओंमें मसन्न चित्त रहना उत्तम है ॥

दुश्चिकित्स्परोगोमे सन्निपातका रोग उत्तम है । विषम किचित्सावाले रोगोमें

१ सात्म्य आठ प्रकारका है जैसे जातिसात्म्य, आतुरसात्म्य, औषधसात्म्य अन्नसात्म्य, रससात्म्य, देशसात्म्य, ऋतुसात्म्य, जलसात्म्य, । २ भोजनके ऊपर भोजन करना । ३ कभीथोडा और कभी अधिक कभी मिदोसा कभी अवेरी ।

अब कहते हैं कि हिताहितत्व नहीं है ।

अवस्थान्तर बाहुल्याद्रोगादीनाव्यवस्थितम् ।

द्रव्यं नेच्छन्ति भिषज इच्छन्ति स्वस्वरक्षणे ॥

अर्थ—रोगादिककी अवस्था विशेषाधिक्यतासे वैद्य यह द्रव्यहित है, और यह अहित है ऐसी द्रव्य व्यवस्था नहीं मानते, किंतु स्वस्थ रक्षणमें उस द्रव्य व्यवस्थाको मानते हैं ॥

आमका रोग श्रेष्ठ है । संपूर्ण रोगोंमें ज्वर श्रेष्ठ है । दीर्घरोगोंमें कुष्ठरोग श्रेष्ठ है । रोगोंके समूहोंमें रानयक्ष्मा रोग श्रेष्ठ है । अनुसंगिकरोगोंमें प्रमेह श्रेष्ठ है ॥

अनुशुद्धाओंमें जोख लगाना उत्तम है । तंत्रोंमें वस्तिकर्म करना उत्तम है । औषध उत्पन्न होनेवाली संपूर्ण पृथ्वीभरमें हिमालय पर्वत श्रेष्ठ है । आरोग्य देशोंमें माहवारकी पृथ्वी उत्तम है । अहित देशोंमें अन्नपदेश श्रेष्ठ है, आज्ञा कर्त्ता रोगी उत्तम है । चिकित्साके अंगोंमें वैद्य श्रेष्ठ है । वर्जितोंमें नास्तिक उत्तम है । क्लेशकारियोंमें हाँसी ठोरी करना श्रेष्ठ है । अनिष्टोंमें वैद्यकी आज्ञा न मानना श्रेष्ठ है । वमनके लक्षणोंमें जीका मचलाना श्रेष्ठ है । वैद्यके गुणोंमें औषधका योग जनना उत्तम है । औषधोंमें पहचान करना उत्तम है । साधनोंमें शास्त्रके साथ तर्क (बहिश) करना श्रेष्ठ है । कालज्ञान प्रयोजनोंमें संप्रतिपत्ति उत्तम है । रुजगारमें आपत्ति डालनेवालोंमें उद्योग (कोशिश) न करना श्रेष्ठ है । निःसंशय करनेवालोंमें दीठता श्रेष्ठ है । भयकारियोंमें असामर्थ्य होना श्रेष्ठ है । जो विद्या आप पढाहो उसमें बादकरना उस विद्याकी वृद्धिमें श्रेष्ठ है । शास्त्रमाप्ति होनेमें आचार्य श्रेष्ठ है । अमृत (जरामरण रहितकरने) में वैद्यविद्या श्रेष्ठ है । अनुष्ठानकरनेमें सद्बचन (उत्तमवाणी) श्रेष्ठ है । सर्वहितोंमें परित्याग उत्तम है, सुखोंमें सबका संन्यास श्रेष्ठ है ॥

इसप्रकार जो जो वस्तु जिस २ में उत्तम हैं सबके १५२ एकसो बावन उत्तर सब रोगोंको दूरकरनेको मैंने कहे हैं । समान अर्थ उत्तम और निकृष्टोंका उदाहरण देकर दिखाए हैं तथा वातपित्त और कफ इनपर जो जो नाशकरनेमें हित हैं वो कहे हैं । वे मैंने व्याधिहरणकर्त्ता जो जो मुख्य हैं सो सो कहे हैं निपुण वैद्य इनको विचारके चिकित्सामें प्रयोगकरे ॥

श्री आत्रेय महर्षिकहते हैं कि, जो वैद्य इसप्रकार करता है वो धर्म और कामनाओंको प्राप्तहोता है । इनमें आपको अभिय और अपप्य है उसको यह प्राणी

१ आदिशब्दसे सात्म्य और देशादिकोंका ग्रहण है ।

पूर्वोक्तअर्थकोस्पष्टकरतेहै ।

द्वयोरन्यतरादाने वदन्ति विपदुग्धयोः ।

दुग्धस्यैकान्तहिततां विपमेकान्ततोऽहितम् ॥

अर्थ—तहाँ स्वस्थ मनुष्यको इन दोनों विप और दूधमें विप सर्वथा एकान्त अहित और दूधको वैद्यजन हितकारी बाताते है ॥

एवं युक्तरसाद्येषु द्रव्येषु सलिलादिषु ।

एकान्तहिततां विद्धि वत्स सुश्रुत । नान्यथा ॥

अर्थ—हेसुश्रुतवत्स! इसीप्रकार स्वस्थोपयोग प्रकारकरके रसादिद्रव्योंमें और जलआदिमें एकांतहितता जानना अन्यथा अर्थात् जो स्वस्थता हरण-करे उनमें एकांत अहितता जानना ॥

अतोऽन्यान्यपि संयोगादहितानि वक्ष्यामः । न च

विरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमापैर्वा ग्राम्यान्पौदक-

पिशितादीनि नाभ्यवहरेत् । न पयोमधुभ्यां रोहिणी-

शाकं जातुशाकं वाश्रीयात् । बलाकां वारुणीकुलमापा-

भ्याम् । काकमार्चां पिप्पलीमरिचाभ्याम् । नाडीभ-

ङ्गशाककुट्टदधीनि च नैकध्यम् । मधु चोष्णोदका-

नुपानं पित्तेन वा मांसानि । सुराकृशरापायसाञ्च नैक-

ध्यम् । सौवीरकेण सह तिलशङ्कुलीम् । मत्स्यैः सहे-

क्षुविकारान् । गुडेन काकमार्चां मधुना मूलकं गुडेन

वाराहं मधुना च सह विरुद्धम् । क्षीरेण मूलकम् ।

आम्रजाम्बवश्वाविच्छूकरगोधाञ्च सर्वाश्च मत्स्यान्

विशेषेण चिलिचिमं पयसा । कदलीफलं तालफलेन

पयसा दध्ना तत्रेण वा । लकुचफलं पयसा दध्ना माप-

कदाचित् सेवन न करे और जो आपको प्ययहो तथा मियहो उसका सेवन करे । मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष और गुणान्तर इनमें द्रव्यादिभाव मात्राहोकर उसी उसीके अनुसार दीसते है ॥

सूपेन वा मधुना घृतेन च । प्राक्पयसं पयसोऽन्ते वा ॥

अर्थ—अथ अन्य जो संयोग विरुद्ध हैं उनको कहते हैं । विरुद्धधान्य (जिसमेंसे अंकुर निकले हों या अंकुर दूर हो गए हों) उनको वसा (चर्बी) सहत, दूध, गुड, उडद इनके साथ भक्षण न करे । ग्रामके जीवोंका मांस अनूप संचारी जीवोंका मांस, जलसंचारी जीवोंका मांस इनकोभी वसा सहत आदिके साथ न खाय, क्योंकि संयोगसे विरुद्ध है । कुटकीका शाक और कमलका शाक दूध और सहत के साथ न खावे । बलाका (बगलाका भेद) का मांस मद्य और उवालेहुए उडदके साथ न खाय । पीपर और काली भिरचके साथ कार्कमाचीके सागको न खाय । नाडी सागके पत्तोंका साग मुरगेका मांस और दही इनको दो मिलायके अथवा तीनों मिळायके न खावे । गरमजलके साथ अथवा पित्तके साथ सहतको न खाय । अथवा मांसोंको पित्तके साथ न खाय । दारू खिचडी और खीर इनको मिलायके न खाय । तिलकी पूडियोंको काँजीके साथ न खाय । मछलीके साथ कोईसा ईखका विकार (खाँद, मिथी, गुडआदि) न खाय । काकमाचीको गुडके साथ न खाय । सहतसे मूली न खाय । तथा सूअरका मांस सहतके साथ खाना विरुद्ध है । दूधके साथ मूली न खाय । आम जामुन सेह (काटेवाला जानवर) सूअर और गोह तथा सब प्रकारकी मछली उनमेंभी चिलचिम नामकी मछली इन सबको दूधके साथ न खावे । केलाका फल (गहर) की ताड़फलके साथ वा दूधके साथ वा दहीके साथ अथवा छालके साथ न खाय । बडहरके फलको दूध, दही, उडदकी दाल, सहत अथवा घीके साथ न खावे । दूध पीनेके प्रथम अथवा अंतमें बडहरका फल नखावे । इति ॥

कर्मविरुद्ध ।

अतः कर्मविरुद्धान् वक्ष्यामः । कपोतान् सर्पपतैल-
भृष्टान्नाद्यात् । कपिअलमयूरलावतित्तिरिगोधाश्वैरण्ड

इसी हेतुसे यह प्राणी और स्वभाव और मात्रादिके आश्रित कहा है अतएव स्वभाव और मात्राका मध्यम विचार करके सिद्धिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको म-
योग करना चाहिये ॥

१ काकमाचीको मन्त्रोय कहते हैं ।

दावांसिसिद्धा एरण्डतैलसिद्धावा नाद्यात् । कांस्यभाजने
दशरात्रपर्युपितं सर्पिर्मधुचोष्णैरुष्णे वामत्स्यपरिपचने
शृङ्गवेरपरिपचने वाभाजने सिद्धां काकमाचीम् । तिल-
कल्कसिद्धमुपोदिकाशाकम् । नारिकेलेन वराहवसापरि-
भृष्टां बलाकाम् । भासमङ्गारशूल्यं नाश्रीयादिति ॥

अर्थ-अब संयोग विरुद्धोंको कहकर कर्मविरुद्धोंको कहते हैं । तहाँ
कपोत (कबूतरका भेद पिंडुकिया) को सरसोंके तेलमें भूनके न खावे।
सपेदतीतर, मोर, लवा, कालातीतर, गोह इनको अंडकी और दारुहलदी-
की लकड़ियोंकी आंचमें भूनके न खावे । तथा अंडीके तेलमें भी तलके न
खाय । गरमीकी ऋतुमें काँसेके पात्रमें अथवा गरम काँसेके पात्रमें घी,
सहत ये दशदिन धरेहुएनको न खायामछली जिस पात्रमें वनाईहो अथ-
वा अदरकका साग जिस पात्रमें किया होवे उस पात्रमें सिद्धकरी फाक-
माचीका साग न खाय । तिलकल्कमें सिद्धकरा (पकाया हुआ) पोईका
साग न खाय । सुअरकी चर्बीमें भुनीहुई बगलीके मांसको नारियलकी
गिरीके साथ न खाय । भास (जो एक गीधका भेद है) उसको लोहेके
सूपसे भेदकर आगमें सेंकेहुएको न खाय ॥

अथमानविरुद्ध ।

अतो मानविरुद्धान् वक्ष्यामः । मध्वम्बुनी मधुसर्पिणी
मानतस्तुल्ये नाश्रीयात् । मधुस्रेहो जलस्रेहो वा तैलस-
र्पिणी तैलवसे तैलमज्जानौ सर्पिर्वसे सर्पिर्मज्जानौ विशे-
पादान्तरिक्षोदकानुपानौ ॥

अर्थ-अब कर्मविरुद्ध कहनेके अनंतर मान (तोल) विरुद्धोंको कहते हैं।

आगे इसअध्यायमें ८४ आसव इस मकार कहे हैं ॥

तहाँ धान्य, फल, सार, पुष्प, कांड, पत्र, छाल ये सात वस्तु आसवकी योनि
हे अर्थात् आसव इन्हींसे बनती हे तथा शर्करा और नवमद्रव्य संयोग इनके
मिलापसे अनेक आसव अमृतके तुल्य बनती हे । तिनमें ८४ आसव पप्यतमहैं ।
उनको सुन-सुरा, सौवीर, तुपोदक, मैरेय, भेदक, धान्याम्ब, ये छः
धान्यासव हे ॥

सहत जल और सहत घी ये समान भाग मिलायके न खावे । सहत और घृतादि स्नेहा तथा जल और घी आदि तेल और घी तेल और चर्बी । तेल और मज्जा । घी और चर्बी तथा घी और मज्जा ये समान भाग मिलायके न खाय । तथा घी और मज्जाको पीकर अंतरिक्ष संबंधी जल न पीवे ॥

दोदोरस रसवीर्य और विपाकसे विरुद्ध ।

अत ऊर्ध्वं रसद्वन्द्वानि रसतो वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्यामः । तत्र मधुराम्लौ रसवीर्यविरुद्धौ मधुरलवणौ च, मधुरकटुकौ च सर्वतः । मधुरतित्तौ रसविपाकाभ्यां मधुररसकपायौ च, अम्ललवणौ रसतः । अम्लकटुकौ रसविपाकाभ्यां । अम्लतित्तावम्लकपायौ च सर्वतः । लवणकटुकौ रसविपाकाभ्यां लवणतित्तौ लवणकपायौ च सर्वतः । कटुतित्तौ रसवीर्याभ्यां । कटुकपायौ तित्तकपायौ च रसतः ॥

अर्थ—मान विरुद्धोको कहकर अब दोदो रसोंको रस, वीर्य और विपाक से विरुद्धको कहते हैं । तहाँ मधुर और खट्टे दोनोरस रस और वीर्यसे विरुद्ध है अतएव मिलायके न खावे एवं मधुर और लवणरसभी रसवीर्य से विरुद्ध है मधुर और तीक्ष्णरस सर्व रसवीर्य विपाक से विरुद्ध है, मधुर और कटुआ रस रसविपाक से विरुद्ध है, एवं मधुर और कषेला रसभी रसविपाक से विरुद्ध है खट्टा और निमकीनरस रससे विरुद्ध है । खट्टा और चरपरा रस तथा विपाकसे विरुद्ध है । अम्ल, तित्त तथा अम्ल और कपाय ये रसवीर्य और विपाक से विरुद्ध है । लवण कटुकरस रसविपाक से विरुद्ध है । लवण

मुनका, दाख, खजूर, कंभारी, धन्वन, राजादन, तृणशूल्य, परुष, अभया, आमलक, मृगलिडिका, जाम्बव, नफ, कैय, कुवल, बदर, कर्कधु, पीलू, पिपाळ, पनस, न्यग्रोध, अश्वत्थ, दाक्षा, कपीतन, उदुबर, अजमोद, सिधाडे और संखनी इन फलोंसे बननेवाले २६ फलासव हैं ॥

१ दही बूटा । यद्यपि खट्टे और मीठे रसहोनेपरभी उपयोगी होतैसे दोष नहीं है, परंतु जो खट्टाई और मिठाई मिली किसी उपयोगमें नहीं आवे वो विरुद्ध है उसको ग्रहण नहीं करना ।

तिक्त तथा लवण और कपाय ये सबसे विरुद्ध हैं । चरपरा और कडु-आ रस एवं कटुकपायरस, रसवीर्यसे विरुद्ध है । तिक्त (कडुआ) और कपाय सबसे अर्थात् रसवीर्य और विपाक से विरुद्ध है ॥

तहाँ गयदास इस रसवीर्यविपाक विरुद्धोंको नहीं माने कारण यह है कि, प्रथम मधुररस भोजन करना लिखा है फिर सब रसखाय एक-रसकाही सेवन निषेध है, परंतु प्राचीन ग्रंथोंमें लिखा देखकर हमनेभी लिखकर व्याख्या करदी ॥

अब कहते हैं कि, अत्यंत गुणकारी भैंसके दूधआदि पदार्थ हितकारी हैं, परंतु स्वस्थ मनुष्यको उसी एकका सेवन अहितकारी होता है यह कहते हैं ॥

तरतमयोगयुक्तांश्च भावानतिरूक्षानतिस्निग्धानत्युष्णानतिशीतानित्येवमादीन्विवर्जयेत् ॥

अर्थ-अत्यंत स्नेहादि सहित जैसे अतिरूक्ष, अतिस्निग्ध, अतिउष्ण, अतिशीतल इत्यादि पदार्थोंका सेवन इसप्राणीको वर्जनीय है । इसमें चकार जो पडा उससे अत्यंत पथ्यतम, अत्यंत आयुके बढ़ानेवाले, अत्यंतवृष्यपदार्थोंकोभी सेवन न करे ॥

पूर्वोक्तकोस्पष्टकरतेहैं ।

विरुद्धान्येवमादीनि रसवीर्यविपाकतः ।

तान्येकान्ताहितान्येव शेषं विद्याद्विताहितम् ॥

अर्थ-पूर्वोक्त जो विरुद्ध पदार्थ कहें हैं उनसे आदिले जो जो अन्य पदार्थ रसवीर्य और विपाकसे विरुद्ध हैं, उनको एकान्त अहित, वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारलेवे । बाकी जो द्रव्य है वो एकांत हिताहितहै ॥

विरुद्धपदार्थभक्षणकेअवगुण ।

व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यं मरणञ्चाधिगच्छति ।

विरुद्धरसवीर्यादीन् भुञ्जानोऽनात्मवान्नरः ॥

अर्थ-रस-वीर्यादि विरुद्ध अहितकारी द्रव्य भोजन करनेसे उस चंचल

विदारीगन्धा, असगंध, कृष्णगंध, शतावर, श्यामा, त्रिवृद, दंती, द्रवंती, बिल्व, आरुक और चित्रक ये ११ मूलासे अर्थात् जडसे बननेवाली आसवहै ॥

१ जैसे भैंस गौकादूध अत्यंत स्निग्धहै इसी वास्ते नेत्रोग्य मनुष्यको अपनी समाधिके रक्षाके वास्ते ये नहीं खाना चाहिये ।

पित्तवाले मनुष्यके अनेक प्रकारकी व्याधि, इन्द्रियोंमें दुर्बलता अथवा मृत्यु पर्यंतकी करे है, इसवास्ते विरुद्ध पदार्थको सर्वथा त्याग देवे ॥

विकारकर्त्तापदार्थ ।

यत्किञ्चिदोषमुत्क्रेश्य भुक्तं कायात्र निर्हरेत् ।

रसादिष्वयथार्थं वा तद्विकाराय कल्पते ॥

अर्थ—कोई २ द्रव्य भोजनके अंतमें भोजनके पदार्थको प्रकुपित करके वमनकीसी इच्छा कराती है, उसको वमनके द्वारा देहके बाहर न निकाले तो वह कोई न कोई पीडाको करे ऐसा जानना । यहकेवल दोषकारी होकर व्याधिमात्रको ही नहीं करे किंतु रसादिधातु दुष्टकारी व्याधियोंकोभी करे हैं । तहाँ बहुतसी द्रव्य दोषोंको दुष्टकरे है और बहुतसी द्रव्य धातुओंको दुष्टकारी है उनको ग्रंथ बढनेके भयसे इसजगहपर नहीं लिखा ॥

विरुद्धभोजनजनितरोगोंकीचिकित्सा ।

विरुद्धाशनजात्रोगान्प्रतिहन्ति विरेचनम् ।

वमनं श्मनं वापि पूर्वं वा हितसेवनम् ॥

अर्थ—विरुद्ध भोजनसे उत्पन्न रोगोंको विरेचन (दस्तकराना) दूरकरता है तथा वमन करना और श्मनकर्त्ता औषध नष्ट करती है । एवं उस विरुद्धपदार्थजन्य व्याधिके होनेसे प्रथम ही हितसेवन करे तो विरुद्धदोष श्मनहोवे । तहाँ बलवान्का वमन विरेचनद्वारा रोग शांति करे और हीनबलीका श्मन औषधसे श्मनकरना चाहिये ॥

विरुद्धभोजनकरनेपरभीकिसीकोरोगनहींहोयहकतेहैं ।

सात्म्यतोऽल्पतया वापि दीप्ताग्नेस्तरुणस्य च ।

स्निग्धव्यायामबलिनां विरुद्धं वितथं भवेत् ॥

अर्थ—जो अपने सात्म्यसे अल्प भोजन करते हैं अर्थात् जिसका थोडा २

साल, प्रियकसाल, चंदन, स्यंदन, खैर, फदर, सतवन, कोह, विनेसार, अरि-
मेद, तिंदुक, किण्ही, शमी, शक्ति, सीसव, सीरीस, वंजुल, धान्यरू और
महुआ ये बीस सारसे बननेवाली सारासव है ॥

१ गरमद्रुधमे चीनी बुरा शीतल डालना विरुद्ध होनेपरभी विचारनहीं करे ।

२ विरुद्धपदार्थजन्यरोगोंको विरेचन दूरकरता है अतएव विरुद्धभोजनजन्य कुष्ठरोगकोभी दूरकरे है इस्से यह सिद्धहै कि, विरेचन कुष्ठरोगका शत्रु है ॥

अभ्यास कराहो ऐसी द्रव्य तथा जिसकी दीप्ताग्नि है और जो तरुण है एवं जो स्निग्ध और दंडकसरत करनेसे बलिष्ठ है अथवा जो दंडकसरत करते हैं और बली हैं ऐसे प्राणियोंके विद्वंभोजनभी निष्फल होजाता है । अर्थात् रोग नहींकरे ।

व्यायामशीलो बलवाञ्छिशुश्चस्निग्धोऽग्निमांश्वा-
पिमहाशनश्च । आप्नोतिरोगान्नविरुद्धजातान-
भ्यासतो वाल्पतया च जन्तुः ॥

अर्थ—जो दंडकसरत करा कर्ता है, बलीपुरुष, बालक, स्निग्ध देहवाला, प्रबल जठराग्निवाला, अत्यंत भोजन करनेवाला तथा जिसने जिसविरुद्ध वस्तुका अभ्यास करलीना होवे तथा वह विरुद्ध पदार्थ बहुत अल्प खाय तो वह प्राणी विरुद्धभक्षणजन्य रोगोंको नहीं प्राप्त होवे ॥

अब इस अध्यायकी समाप्तिमें वातके गुणकहते हैं तहां हितकारीभी पवन दिशाओंके संयोगसे अहितकारी होजाता है अतएव उनके पृथक् २ गुण कहते हैं ।

पूर्वपवनकेगुण ।

पूर्वः समधुरः स्निग्धो लवणञ्चैव मारुतः । गुरुर्विदाह-
जननो रक्तपित्ताभिवर्द्धनः ॥ क्षतानां विपजुष्टानां
व्रणिनः श्लेष्मलाश्चये । तेषामेव विशेषेण सदा रोगवि-
वर्धनः ॥ वातलानां प्रशस्तश्च श्रान्तानां कफशोपि-
णाम् । तेषामेव विशेषेण व्रणक्लेदविवर्द्धनः ॥

अर्थ—पूर्वकीपवन मीठी, स्निग्ध और निमकीनहै; भारी, दाहउत्पन्नकरता और रक्तपित्तके बढ़ाने वाली है, घाववाले और विपसेपीडित तथा जिसके फोड़ेहो एवं कफसे व्याप्त हैं उनको यह पूर्वकी पवन सदैव रोगके बढ़ाने वाली है । घादीवाले, श्रांत (थकेहुए, और जिनका कफ सूखगया है उनको विशेषकरके पूर्वकी पवन अति उत्तम है । तथा यह घावोंमें सदैव क्लेदके बढ़ाने वाली है ॥

पद्म, उत्पल, नलिन, मुकुद, सौगंधिक, शतपत्र, मधूक, मियंगु, धायकेफूल ये पुष्पासव हैं इक्षु, कांडिषु इक्षुवाळिका, पुंड्रक, ये छालकी आसव हैं और शर्करा सब इस प्रकार आसवोंके भेद ८४ हैं ॥

॥ इति यज्ञः पुरुषीयाध्यायः ॥

दक्षिणपवनकेगुण ।

मधुरश्चाविदाही च कपायानुरसो लघुः । दक्षिणो मारुतः
श्रेष्ठश्चक्षुष्यो बलवर्द्धनः । रक्तपित्तप्रशमनो न च वात-
प्रकोपनः ॥ विशदो रूक्षपरुपः खरः स्नेहवलापहः ॥

अर्थ—दक्षिणकीपवन मधुर है, दाह नहींकरे और कपेले रसवाली हल-
कीहै तथा नेत्रोंको हितकारी, बलको बढ़ानेवाली, रक्तपित्तरोगको
हरणकर्ता और वातको कुपित नहीं करे, विषद, रूक्ष, कठोर, तीखा,
चिकनाईके बलको नाशक है और उत्तम है ॥

पश्चिमकीपवन ।

पश्चिमो मारुतस्तोक्ष्णः कफमेदोविशोपणः ।

सद्यः प्राणक्षयकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ॥

अर्थ—पश्चिमका पवन तीखा, कफ और मेदाको शोषणकरने वाला है,
तथा सद्यप्राण नाशन और प्राणियोंके देहको सुखाने वाला है ॥

उत्तरकीपवन ।

उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एव च । कपायानुरसः

शीतो दोषाणामप्रकोपनः ॥ तस्माच्च प्रकृतिस्थानां

क्वेदनो बलवर्द्धनः क्षीणक्षयविपार्तानां विशेषेण तु पूजितः ॥

अर्थ—उत्तरका पवन चिकना, नम्र, भीठा और कुछ कपेला है, शीतल
दोषोंको कुपितनहींकरे, इसी कारण जो प्रकृतिस्थ अर्थात् नैरोग्य पुरुष
है उनको आर्द्रकरे और बलको बढ़ावे है । तथा जो प्राणी क्षीणहै क्षई-
रोगवाले और विपरीगी उनको प्रायः माननीय है ॥

॥ इति द्विवाद्वितीयाध्यायः समाप्तः ॥

इति श्रीमाधुरकृष्णलालतनय दत्तरामप्रणीते आयुर्वेदोद्धारे

बृहन्निघण्टुरत्नाकरे मिश्रप्रकरणं समाप्तम् ॥

समाप्तोऽयं मिश्रखंडः ।

ॐ

श्रीशंभुदे

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

आयुर्वेदोद्वारांतर्गतबृहन्निघंटुरत्नाकरे
चिकित्साखण्डप्रारम्भः ।

शिष्य-चिकित्सा किसको कहते है ?

गुरु-शरीरमे धात्वादि विकृत दोष समान करनेवाले कर्मको चिकित्सा कहते है जैसे-वाग्भटमें लिखा है ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।

सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिर्जां मतम् ॥

अर्थ-जिनक्रियाओं करके देहमें रसरक्तादि धातु समानहोवे वही रोगो-की चिकित्साहै और वैद्योका वही कर्मकहाहै ॥

सुश्रुतेऽपि ।

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।

प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थां चिकित्सेत्यभिधीयते ॥

अर्थ-सुश्रुतमेभी लिखाहै कि, उत्तम वैद्यादि (वैद्य, रोगी. सेवक और औषध) चतुष्टयोका विकृत (कुपित) धातुके समान करनेके लिये जो प्रवृत्ति है उसको (चिकित्सा) ऐसे कहते है ॥

अन्यच्च ।

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते ।

दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत् ॥

अर्थ-अन्यत्रभी लिखाहै कि, जो क्रिया व्याधिके हरण करने वाली है उस को चिकित्सा कहते हैं । जो चिकित्सा दोष (वातादि) धातु (रसर-कादि) और भलादिकोंको समान करती है वही रोगहरणकर्ता जाननी । क्रिया शब्द करके इसजगे कर्मका ग्रहणहै ॥

क्रियाकेलक्षण ।

यात्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ।

सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

अर्थ-जो बढीहुई व्याधिको शमनकरे परंतु अन्य व्याधिको प्रगट न करे उसीको क्रिया (चिकित्सा) कहते हैं और जो एकव्याधिको हरणकरे और तत्काल दूसरी व्याधिको प्रगटकरदे उसे क्रिया नहीं कहते । (क्रिया) शब्द करके इस जगे (चिकित्साका) ग्रहणहै जैसे " आरंभो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं संप्रधारणम् । उपायः कर्मचेष्टा च चिकित्सा च नवक्रियाः " यह अमरकोपमें नौ नाम चिकित्साके कहे हैं ॥

चिकित्सा और उसका प्रयोजन ।

यद्ब्याधिनिर्घातकरं वक्ष्यते तच्चिकित्सितम् ।

चिकित्सितार्थेतावान्विकाराणां यदौषधम् ॥

अर्थ-जो व्याधि अर्थात् रोगका नाशकरे वही चिकित्सा जाननी उस चिकित्साका प्रयोजन इतनाही है कि. विकारोंकी औषधि करना ॥

चिकित्साकेनाम ।

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।

प्रायश्चित्तप्रशमनंप्रकृतिस्थापनंहतम् ॥

विद्याग्नेपजनामानि-

अर्थ-अब प्रथम चिकित्साके नाम कहते हैं जैसे चिकित्सित, व्याधि-हर, पथ्य-साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृतिस्थापन और हत ये भेषज (औषधी और चिकित्सा) के नाम हैं ॥

उपचारास्तूपचर्याचिकित्सारूढप्रतिक्रिया ।

निग्रहोवेदनानिष्ठाक्रियाचोपक्रमश्रमाः ॥

अर्थ-ग्रंथातरसे चिकित्साके नाम कहते हैं जैसे-उपचार, उपचर्या, चिकित्सा, रूक्प्रतिक्रिया, निग्रह, वेदनानिष्ठा, उपक्रम और श्रम ये चिकित्साके नाम ।

प्रायश्चित्तं प्रशमनं चिकित्सा शांतिकर्मच ।

पर्यायास्तस्यनिर्दिष्टा ॥

अर्थ-सुश्रुतमें भी लिखाहै जैसे कि, प्रायश्चित्त, प्रशमन, चिकित्सा और शांतिकर्म ये चिकित्साके पर्यायवाचकशब्द हैं ॥

श्लिष्य-चिकित्सा कितने प्रकारकी है?

गुरु-चिकित्सा दो प्रकारकी हैं जैसे, लिखाहै "चिकित्सितं कर्षणवृंहणाख्यं" अर्थात् चिकित्सा दो प्रकारकी है एकैकर्षण, दूसरी वृंहण । परंतु किसी आचार्यके मतसे तीन प्रकारकी है । जैसे लिखाहै ॥

निदानरोगविपरीतऔरतदर्थकारिणीचिकित्सा ।

निदानविपरीता च विपरीतारुजस्तथा ।

तदर्थकारिणीचेति चिकित्सा त्रिविधा मता ॥

अर्थ-निदानविपरीत और रोगविपरीत तथा निदानरोगविपरीत ऐसे चिकित्सा तीनप्रकारकी है निदान विपरीत चिकित्सा जैसे विप-भक्षणजन्य गरमीमें दूध घृतका पान करना, रोगविपरीत चिकित्सा जैसे अतीसाररोगमें दस्तोंका बंद करना, उसीप्रकार निदान और रोगविपरीतचिकित्सा जैसे, शीत कफज्वरमें सोंठका काढा परंतु ये तीनों प्रकारकी चिकित्सा उन्हीं पूर्वोक्त कर्षण वृंहणके अंतर्गत है ॥

दैवीमानुषीऔरराक्षसीचिकित्सा ।

रसादिभिर्याक्रियते चिकित्सा दैवीति वैद्यैःपरिकीर्त्तिता सा ।

सा मानुषी याऽथकृताफलाद्यैःसा राक्षसी शस्त्रकृताभवेद्या ॥

अर्थ-जो रसादिकरके चिकित्सा करीजावे उसको दैवी चिकित्सा वैद्य कहते हैं और जो फलमूलादि करके करीजावे उसे (मानुषीचिकित्सा) तथा शस्त्रकृत अर्थात् चोरने फाडनेको (राक्षसी चिकित्सा कहते हैं) यह अधमहै

१ जो दोषघातुमलादिको को क्षीणकरदे उसको कर्षण चिकित्सा कहते हैं जैसे-वमन विरेचन, लघनादि ।

२ जो दोषघातुमलादिकोको बढाकर रोगको दूरकरे उसको वृंहणचिकित्सा कहते हैं अर्थात् जिसमें रोगीका देहभी यथार्थ बना रहै और रोग दूर होजाय इस चिकित्साको प्रायः हकीम और डॉक्टर लोग बहुतप्रसन्न करते हैं ।

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता ।

शस्त्रैः कपायैर्लोहाद्यैः क्रमेणांत्यासुपूजिता ॥

अर्थ—चिकित्सा—आसुरी, मानुषी और दैवी इन भेदोंसे तीन प्रकारकी है तहां शस्त्रसे अर्थात् चीरना, फाडना, काटना आदि चिकित्साको आसुरी (राक्षसी) कहते हैं और फाटे, चूर्ण, गुटिका आदिकरके जो चिकित्सा करीजाय वो मानुषीचिकित्साहै और जो सुवर्ण, चांदी और लोह आदि शब्दसे पारा, गंधक, रसोपरस, रत्नोपरल और विषादिकसे चिकित्सा करीजावे वो दैवीचिकित्सा कहलाती है । इनमें अंतकी चिकित्सा अर्थात् दैवीचिकित्सा माननीय है ॥

शिष्य—चिकित्सामें कौन २ वस्तु जानने योग्यहै ॥

गुरु—चिकित्साकरने वालोंको प्रथम चिकित्साके अंगोंका जानना अतिआवश्यक है ।

शिष्य—तो आप कृपापूर्वक चिकित्साके अंगोंको कहिये ।

गुरु—जैसे अंगहीन मनुष्य अच्छा नहीं इसी प्रकार अंगहीन चिकित्साकीभी शोभा नहीं अतएव मैं उन अंगोंको कहता हूँ ॥

अथचिकित्सांगानि ।

रोगी दूतो भिषग्दीर्घमायुर्द्रव्यं सुसेवकः ।

सदोपधं चिकित्साया इत्यंगानि बुधा जगुः ॥

अर्थ—रोगी, दूत, वैद्य, दीर्घआयु, द्रव्य, उत्तमसेवक और उत्तम औषधी ये चिकित्साके अंग विद्वानोंने कहे हैं । जैसे अंगहीन मनुष्य अशोभित होता है उसीप्रकार चिकित्साभी अंगहीन उत्तम नहीं कहलाती ॥

शिष्य—आपने “ चतुर्णांभिषगादीनां ” इसश्लोकमें जो वैद्यादिचतुष्टय कहे उनका चिकित्सामें क्या प्रयोजन है और उनको क्याकहते हैं ॥

गुरु—वो चिकित्साके पादचतुष्टयहै अर्थात् चिकित्साके चारपैरहे इनके बिना चिकित्सा चल नहीं सकती यहीप्रयोजन है ॥

चिकित्साकेपादचतुष्टय ।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।

गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये ॥

अर्थ—वैद्य—द्रव्य (औषधि) रोगीका सेवक और रोगी ये चिकित्सा

के चार पैरहैं । यह पादचतुष्टय उपयुक्त गुणसंपन्न होनेसे रोगशांतिकर-
नेको समर्थ होते हैं ॥

पाठांतरम् ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ।

एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥

अर्थ—वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक (सेवक) ये चिकित्साके चार
पैर कर्मसाधनके हेतुहैं; अर्थात् इनके बिना चिकित्सा कर्म नहीं होसका ॥

वैद्यविना पादत्रयको निष्फलत्व ।

वैद्यहीनास्त्रयः पादागुणवंतोऽप्यपार्थकाः ।

उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाध्वर्युर्विनाध्वरे ॥

अर्थ—वैद्यरहित चिकित्साके अन्य तीनपाद गुणवान्भी निरर्थक हैं,
जैसे—यज्ञमें विना अध्वरी (उपाध्यायके) उद्गाता, होता और ब्रह्मा
ये निष्फल हैं । जैसे अध्वरी—उद्गाता होता और ब्रह्माको पृथक् २ कर्ममें
युक्ति बताता रहता है उसीप्रकार वैद्य, रोगी, सेवक और औषधमें
युक्ति बताता रहता है ॥

पादत्रयविनाभीवैद्यको मुख्यत्व ।

वैद्यस्तुगुणवानेकस्तारयेदातुरान्सदा ।

पुवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधारइवार्णवम् ॥

अर्थ—गुणवान् अकेला वैद्यही रोगियोंको सदैव उद्धार करता है अर्थात्
रोगसे निर्मुक्त करता है जैसे प्रतितर(भीतरभरे हुए जलके उलीचने वालों
करके) हीन नावको अकेला मल्लाह (केवटिया) पार लगाता है ॥

पादचतुष्टयमें वैद्यको प्राधान्यत्व ।

कारणंपोडशगुणंसिद्धौपादचतुष्टयम् । विज्ञाता शासिता
योक्ता प्रधानं भिषगत्र तु । पक्ताहि कारणं पक्तुर्यथा
पात्रेधनानलाः ॥ विजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि
च । आतुराद्यास्तथा सिद्धौ पादाः कारणसंज्ञिताः ॥
वैद्यस्यातश्चिकित्सायां प्रधानं कारणं भिषक् । मृदंड
चक्रसूत्राद्याः कुंभकारादतेयथा ॥ नावहंति गुणं वैद्या-
दृतेपादत्रयं तथा ॥

अर्थ—चिकित्साकी सिद्धीमें सोलहगुण संपन्न पादचतुष्टय कारण है, तथा चिकित्साके पादचतुष्टयोंमें जानने वाला, आज्ञा करनेवाला, युक्ति बताने वाला वैद्य है, इसीसे वैद्यको मुख्यत्व है । इनको दृष्टांत देकर समझाते हैं कि, जैसे रसोई करनेवाले प्राणीको रसोईके करनेमें पात्र, ईंधन और आगि ये कारण हैं तथा जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजा को जीतनेमें जैसे पृथ्वी, फौज और हथियार कारण हैं । इसी प्रकार वैद्यको चिकित्साकी सिद्धीमें अतुरादि (रोगी आदि) तीनपाद कारण हैं, इसीसे चिकित्सामें प्रधान कारण वैद्य है और दृष्टांत देते हैं कि, जैसे मिट्टी (जिस्से बरतन बनते हैं) दंड (चाक फिरानेकी लकड़ी) और वासन तयार होनेपर काटनेका डोरा इत्यादि सब वस्तु धरी हैं, परंतु बिना कुम्हार (बनाने वाले) के वो अपने २ गुणोंको नहीं करते (मिट्टी स्वयं वासनरूप नहीं बनती, लकड़ी स्वयं चाकको घुमाती नहीं है और डोरा काटता नहीं है, तात्पर्य यह है कि, जैसे मिट्टी, लकड़ी और डोरा उस कुम्हारके आधीन हैं वो उनसे काम लेसक्ता है) इसीप्रकार रोगी औषधी और सेवक ये वैद्यके आधीन हैं बिना वैद्य कुछ नहीं करसक्ते परंतु वैद्य सब कार्य करा सक्ता है ॥

तहां प्रथमवैद्यकेलक्षण ।

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते ।

सच यादृक् समीचीनस्तादृशोऽपि निगद्यते ॥

अर्थ—जो चिकित्साकरे उसको चिकित्सक कहते हैं वो वैद्य जैसा उत्तम उसको लिखते हैं ॥

वैद्यशब्दकीव्युत्पत्ति ।

पंचतत्त्वात्मकं सर्वं वेत्ति यस्मादशेषतः ।

तस्माद्वैद्य इति ख्यातो तस्य नामानि कथ्यते ॥

अर्थ—संपूर्णब्रह्मांडके पदार्थोंको पंचतत्त्वात्मक जाननेसे इसको वैद्य कहते हैं अथवा (विदज्ञाने) इस धातुसे वैद्य पद सिद्ध होता है इससे संपूर्ण त्रिस्कंधात्मक आयुर्वेद तथा अन्य व्याकरण, न्याय, ज्योतिषादि संपूर्ण शास्त्रोंके आशयोंको तथा लौकिकके संपूर्ण व्यवहारोंको जाननेसे इसको वैद्य ऐसा कहते हैं अब उस वैद्यके नामोंको कहते हैं ॥

वैद्यकेनाम ।

वैद्यः श्रेष्ठोऽगदंकारो रोगहारी भिषग्विधिः ।

रोगज्ञो जीवनो विद्वानायुर्वेदी चिकित्सकः ॥

अर्थ—वैद्य, श्रेष्ठ, अगदंकार, रोगहारी, भिषक, विधि, रोगज्ञ, जीवन, विद्वान्, आयुर्वेदी और चिकित्सक ये वैद्यके संस्कृत नाम हैं इसी प्रकार गदहागदारि, प्राणाचार्य, प्राणद और वैद्यराज इत्यादि और भी अनेक नाम वैद्यके हैं

वैद्यकेलक्षण ।

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती । लघुहस्तः

शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्द्धीमान्

व्यवसायी प्रियंवदः। सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥

अर्थ—जिसने यथायोग्य आयुर्वेदशास्त्र अध्ययन कर उसका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम अर्थात् हृत् कर लिया हो, अन्यवैद्यके करे हुए छेदनादि और स्नेहपाकादि क्रियादि चिकित्साको अनेकवार देख चुका हो, स्वयं चिकित्सामें कुशल तथा जिसका हलकाहाथ हो, अर्थात् छेदनादि क्रियामें जिसका हाथ कांपे नहीं । पवित्राचार, (बाहरभीतरसे शुद्ध) शूर (खेदरहित) नवीन तयार करी हुई औषधयुक्त तथा अग्रोपहरणीयाध्यायमें पठितयंत्र शस्त्रादि युक्त, तात्काल स्फुरणवाली बुद्धि, अर्थात् वादकी किसी अवस्थामें मोहित न हो । बुद्धिवान् (जो अनुक्त और दुरुक्त ग्रहण करनेवाली और त्यागनेवाली बुद्धिवाला) उद्योगी (रोगीकी विगडी-हुई अवस्थामें भी यत्न करनेमें मोहित न हो) प्रियवचन बोलने वाला, कोई प्रियंवदकेस्थानमें (विशारद) ऐसा पाठ कहते हैं तहां विशारद कहिये शास्त्रके कठिन शब्दोंको देखकर भी न घबड़ावे, सत्य और धर्ममें तत्पर ऐसा वैद्य उत्तम कहा है ॥

वैद्यकेगुणचतुष्टय ।

श्रुतेपर्यवदात्त्वं बहुशो दृष्टकर्मता ।

दासंशौचमितिज्ञेयं वैद्येगुणचतुष्टयम् ॥

अर्थ—शास्त्रमें प्रवीणत्व तथा अनेक प्राचीन वैद्यांकी कर्मसिद्धीको जिसने अनेक बार देखा हो, चतुर और पवित्र ये वैद्यमें चारगुण जानने ॥

१ विशारद. इतिपाठ्यतरम् ।

अब प्रसंगवश चरकसे तीनप्रकारके वैद्योंको यहाँ परवर्णन करतेहैं ॥
त्रिविधवैद्य ।

भिषक्छद्मचराः सन्ति सन्त्येके सिद्धिसाधिताः ।

सन्ति वैद्यगुणैर्युक्तास्त्रिविधा भिषजो भुवि ॥

अर्थ—इस पृथ्वीमें तीनप्रकारके वैद्यहैं जैसे कि, छद्मचर (कपटी) वैद्य, दूसरे सिद्धसाधित और तीसरे वैद्यगुणोंकरके युक्त अर्थात् उत्तम वैद्य हैं ॥

ठगवैद्यकेलक्षण ।

वैद्यभांडोपधैः पुस्तैः पल्लवैरवलोकनैः ।

लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रातिरूपकाः ॥

अर्थ—वैद्योंके पात्र, औषधि, पुस्तक और पत्तेआदिके देखनेसे जो भिषक् (वैद्य) शब्दको प्राप्त होते हैं वो वैद्य मूर्खहैं, उनको प्रातिरूपक अर्थात् ठगिया कपटके बने वैद्यजानने चाहिये, तात्पर्य यहहै कि, जो मूर्खवैद्य ठगियाहोते हे वो अनेक शीशी, अमृतवान् आदि पात्रोंसे और झूठी औषध, पोथी, रूखडीआदिसे अपने स्थानको सजायेद्वर रखते हैं कि, जिससे रोगियोंको यह मालूम होवे कि, ये कैसे बडेभारी वैद्य है, परंतु ऐसे दुष्टवैद्य रोगियोंको त्यागदेने चाहिये ॥

सिद्धिसाधितवैद्यकेलक्षण ।

श्रीयशोज्ञानसिद्धीनां व्यपदेशादतद्विधाः ।

वैद्यशब्दं लभन्ते ये ज्ञेयास्ते सिद्धिसाधिताः ॥

अर्थ—चिकित्साश्री और यशोज्ञान कहिये चिकित्साक्रियाकी सिद्धी इनके भिषसे जो वैद्यशब्दको प्राप्त होते हैं परंतु उनमें उत्तगुण होवे नहीं उनको सिद्धिसाधित वैद्य कहतेहैं अर्थात् बिना चिकित्साकरे और बिना चिकित्साकी क्रियाके बरे जिनका संसारमें यह नाम होजावे कि, असुकवैद्य की चिकित्साके बराबर दूसरेकी चिकित्सा (इलाज) नहीं है और वो इसकर्म में अत्यंत निपुणहै उसको सिद्धसाधित वैद्य शास्त्रमें कहाहै। (ऐसे वैद्य क्या काम करते हैं कि, किसी नवीन शहरमें जाकर आप वैद्यवन बैठते हैं और उसीशहरके अथवा दशवीस अन्य शहरके पूर्व मनुष्योंको कुछ लोभदेकर अपना नाम इसप्रकार प्रसिद्ध कराते है कि, वो उस शहरमें जाकर यह प्रसिद्धी करतेहैं कि, भाईहो! ये नये वैद्य आपहैं इनका भगवान् भंगलकरे कि भरेवपोंसे फोडका रोग या सो इन्होंने दशही दिनमें दूर करदिया । दूसरा मनुष्य कह-

ताहै कि मेरे महीनोंके पुराने ज्वरको दोतीन पुडियोंमें खोय दिया। तीसरा कहताहै कि, मेरे दमेके रोगको जो बडे २ वैद्य और डाक्टरोंसे अच्छा न होसका उसकोइन्हीने थोडेहीदिनमे विलकुल जडसे टखाड दिया परमात्मा इनकी जय करे,इसी प्रकार कोईकुछ और कोई कुछ रोगका नामले-हैं वस इन दुष्ट मनुष्योंके वचनरूप जालमें फसकर उस शहरके भोले भाले मनुष्य इन बनेहुए सिद्धसाधक वैद्योंके पास खिचेहुए चलेजाते है और जब ठगा जाते हैं तब पश्चात्ताप करते उन दुष्टमनुष्योंकी निंदा करते हुए (जो कि, उन वैद्योंकी बडाई करतेथे) चुपहो बैठ रहते हैं ॥

सद्वैद्यकेलक्षण ।

प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाःसुखप्रदाः ।

जीविताभिपरास्तेस्युर्वैद्यत्वंतेष्ववस्थितम् ॥

अर्थ-प्रयोग (औषध प्रयोग करण) ज्ञान (शास्त्रज्ञान) विज्ञान (लोक-व्यवहारज्ञान) सिद्धि (चिकित्साकर्मकी सिद्धी) इन करके जो विख्यातहैं और रोगियोंको सुखके देनेवाले वो प्राणाभिपर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य हैं ये रोगियाँ करके टपादेय हैं अर्थात् ऐसे वैद्योंसे अपनी चिकित्सा करानी चाहिये ॥

अब प्रसंगवस चरकसे द्विविध वैद्यवर्णनके वास्ते दशप्राणायतनीयाध्यायका वर्णन करते हैं ॥

अथातोदशप्राणायतनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम दशप्राणायतनीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे अर्थात् प्राणोंके रहनेके दशस्थान जिस्मेकहे अतएव उसका वर्णन इस अध्यायमें कराराजायगा ॥

दशैवायतनान्याहुःप्राणोयेषुप्रतिष्ठितः ।

शङ्खौमर्मत्रयंकण्ठोरक्तशुक्रौजसीगुदः ॥

तानीन्द्रियाणिविज्ञानं चेतनाहेतुमामयम् ।

जानीतेयःसविद्वान्बै प्राणाभिपरउच्यतेइति ॥

अर्थ-जिनमें प्राणरहतेहैं वो दशस्थान कहे हैंजेसे दोनोंकनपटी,तीनमर्म,

कंठ, रुधिर, शुक्र, ओज और गुदा इनदशस्थानमें प्राणरहाकरते हे-
इनको और इन्द्रियोंके विज्ञानको तथा चेतनाके हेतुको और रोगको जो
जानता है उस विद्वान् वैद्यको प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य जानना ॥

अब इसजगे यह जिज्ञासा हुई कि, प्राणाभिसर किसका नाम है इसवा-
स्ते कहते हैं ॥

द्विविधवैद्यवर्णनम् ।

द्विविधास्तुखलुभिषजो भवंत्यभिवेश-
प्राणानामेकेऽभिसराहन्तारो रोगाणा-
मेकेऽभिसरारोगाणां हन्तारः प्राणिनामिति ॥

अर्थ—अब चरकके मतसे दो प्रकारके वैद्य कहते हैं । महर्षिआत्रेय भिय-
शिष्य अभिवेशको संबोधन देकर बोलेकि, हेवत्स ' इसपृथ्वीमें दो प्रकारके
चिकित्सक (वैद्य) हैं, एक प्राणाभिसर अर्थात् प्राणोंके रक्षक और रोगोंके
नाशक। दूसरे रोगाभिसर अर्थात् रोगोंके रक्षक और प्राणोंके नाशकर्ता ॥

एवं वादिनं भगवन्तमात्रेयमभिवेश उवाच । भगवंस्ते
कथमस्माभिर्वेदितव्या भवेयुरिति । भगवानुवाच । ये
इमे कुलीनाः पर्यावदात्श्रुताः परिशिष्टकर्माणो दक्षाः शुच-
योजितहस्ता जितात्मानः सर्वोपकरणवन्तः सर्वेन्द्रियोपप-
न्नाः प्रकृतिज्ञाः प्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणिनामभिसरा हन्तारो
रोगाणाम् ॥

अर्थ—इसप्रकार आचार्यके वाक्यको श्रवणकर अभिवेश बोलेकि, हेभ-
गवन् ! ये दो प्रकारके जो वैद्य आपने वर्णनकरे उनको हम किसप्रकार
जाने, अतएव अनुग्रह करके उनके लक्षण कहो । तब महर्षि बोले कि, हेव-
त्स ! श्रवणकर अबमैं दोनोंप्रकारके वैद्योंके लक्षण वर्णन करताहू । उत्तम
कुलमें जन्म जिन्होका शुद्ध शास्त्रज्ञान संपन्न, कृतकर्मा (जिन्होंने वैद्यकी
क्रिया स्वयं करलीनीहो) कर्मकरनेमें चतुर, पवित्र, जितहस्त (चोरी-
आदि दुष्टकर्मसे रहित) जीती है आत्मा जिन्होने सर्व चिकित्साकी
सामग्री करके युक्त, सर्व इन्द्रीन् करके युक्त (अर्थात् काँगा, भेड़ा, लूला,
लंगड़ा, टोटा इत्यादि लक्षण युक्त नहीं) रोगियोंकी प्रकृतिको जानने
वाला और प्रतिपत्तिवेत्ता अर्थात् ज्ञानी ऐसे वैद्य रोगियोंके प्राणोंके
रक्षक और रोगोंके नाश करनेवाले होते हैं ॥

तथाविधाहि केवले शरीरज्ञाने शरीराभिनिवृत्तिज्ञानेप्र-
कृतिविकारज्ञाने च निःसंशयाः सुखसाध्यकृच्छ्रसा-
ध्ययाप्यप्रत्याख्येयानां च रोगाणां समुत्थानपूर्वरूप-
लिंगवेदनोपशयविशेषविज्ञाने व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ-उसीप्रकार जो शरीरविज्ञान और प्रकृति तथा विकृतिके
नियम विषयमें भलेप्रकार जानने वाला, सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याग्य
तथा असाध्यरोग समस्तकी उत्पत्ति, पूर्वरूप, लक्षण, पीडा और उपश-
यज्ञानमें संदेहशून्यहो ॥

त्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्य ससंग्रहव्याकरणस्य सत्रिविधौ-
पधग्रामस्य प्रवक्तारः सर्वेषां मूलफलानां चतुर्णामहा-
स्त्रेहानां पंचानां लवणानामष्टानां च मूत्राणामष्टानां
च क्षीराणां क्षीरत्वक्वृक्षाणां च पण्णां शिरोविरे-
चनादेश्च पंचकर्माश्रयस्याौषधगणस्याष्टाविंशतेश्च यवा-
गूनां द्वात्रिंशतश्च सर्वेषां चूर्णप्रदेहानां पण्णां विरेचनश-
तानां पंचानां च कपायशतानामितिस्वस्थवृत्तौ च
भोजनपाननियमस्थानचक्रमणशय्याशनमात्राद्रव्यांज-
नधूमनावनाभ्यंजनपरिमार्जनवेगाविधारणाविधारणव्या-
यामसात्भ्येन्द्रियपरोक्षोपक्रमसदृत्तकुशलाश्चतुष्पादोप-
गृहीते च भेषजशोडशकले सविनिश्चये सस्त्रिपर्येपणे
सवातकलाकलज्ञाने व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ-जिसका संग्रह तथा व्याकरण एवं त्रिविध (वृद्धिमातृदोषके
घटानेवाली, घटेदुर्प्रोगकी बढानेवाली, तथा समभावावस्थित दोषोंके
संरक्षक) औषधसाहित त्रिस्फुध (हेतु, लक्षण और औषधज्ञानात्मक)
आयुर्वेदमें विशिष्टज्ञानसंपन्न सर्वप्रकारके मूल, फल, चतुर्विधमहास्त्रेह,
पौंचप्रयारके निमक, आठमूत्र, आठ प्रकारके दूध, पचामें क्षीरवाले
पृक्षोंके तथा छः प्रकारके शिरोविरेचन पंचकर्म संबंधी २८ औषधसमूह
और ३२, प्रकारकी यवागू, सर्वप्रकारके चूर्ण और प्रदेह समस्त, छः सौ
विरेचन और पौंचसौ कपाय (काढे) आदि द्रव्यगण, स्वस्यावस्था भोजन

और-पानके नियम, अवस्थान, डोलना, फिरना, शयन, बैठना द्रव्यादि-
कोंका परिमाण, अंजन, धूमपान, नस्याविधि उबटना, देहका पोंछना,
उपस्थितरोगका धारण और अधारण, व्यायाम शाल्पता, उसी-
प्रकार इन्द्रियोंके अप्रत्यक्षस्थलमें क्रियासंपादनका नियम, उत्तम आच-
रणमें इत्यादि सर्वविषयोंको जाननेमें कुशल, पाद चतुष्टयोपरहीत,
औषध तथा सोलहकला करके निश्चित त्रिश्रेयणाका ज्ञाता सवात-
कलाकल ज्ञानमें संदेहरहित हो ॥

चतुर्विधस्यच स्नेहस्यचतुर्विंशत्युपनयस्य चतुःषष्टि-
पर्यंतस्य व्यवस्थापयितारो बहुविधविधानयुक्तानां
च स्नेहस्वेद्यवम्यविरोध्यौषधोपचाराणां कुशलाः ॥

अर्थ—चार प्रकारके स्नेह चौबीसप्रकारके उपनय तथा चौसठ पर्य-
तका स्थापन करनेको भलेप्रकार जानताहो । अनेक प्रकार विधिके साथ
स्नेहनीय, स्वेदनीय, वमनीय और विरेचनीय औषध समस्तोंके
प्रयोग विषयमें कुशल ॥

शिरोरोगादेश्च दोषांशविकल्पज्ञस्य व्याधिसंग्रहस्य
संक्षयपीडकाविद्रधेः सर्वेषां च शोफानांबहुविधशो-
फानुबंधानामष्टचत्वारिंशत्तश्च रोगाधिकारिणां चत्वारिं-
शस्य च नानात्वजस्य व्याधिशतस्य तथा विगर्हि-
तातिमलातिकृशानां सहेतुलक्षणोपक्रमाणां स्वप्नस्य
च हिताहितस्यास्वप्नातिस्वप्नस्य च सहेतूपक्रमस्य
पण्णांचलंवनादीनामुपक्रमाणां संतर्पणापतर्पणज्ञानां
रोगाणांस्वरूपप्रशमनानांशोणितज्ञानां च व्याधीनां
मदमूर्च्छासंन्यासानां च सकारणरूपोपधानां कुशलाः
कुशलाश्च ॥

अर्थ—शिरोरोग, दोषोंके अंश, विकल्पजात, आधि व्याधिसंग्रह, क्षय, पीडका,
विद्रधि, समस्त प्रकारकी सृजन, संपूर्ण सौषोंके १४८ अनुबंध मुख्यरोग ४०,
तथा अनेक प्रकारकी १०० व्याधि, तथा द्रुष्ट मल, अतिकृशोंके सहेतु लक्षण-
क्रमोंका जाननेवाला, स्वप्नका शुभाशुभ ज्ञाता, सोना तथा अत्यंत मोना
इनके सहेतु चिकित्साका ज्ञाता अनुबंध, लंघनादि छःषस्तुओंका उपक्रम,

संतर्पण और अपतर्पण मद मून्डाँ और संन्यास, इत्यादि सकल रक्तजन्य व्याधि एवं इनके निदान, लक्षण और प्रशमक औषध समस्त विषयमें विशेष विज्ञानशाली ॥

आहारविधिविनिश्चयस्य प्रकृत्याहिततमानामाहारवि-
काराणामश्रयसंग्रहस्यासवानांच चतुरश्रति द्रव्यगुणवि-
निश्चयस्य रसानुरससंशयस्य सविकल्पकवैरोधिकस्य-
द्वादशवर्गाश्रयस्य चान्नपानस्य सगुणप्रभावस्य सान्न-
पानगुणस्य नवविधार्थसंग्रहया आहारगतेश्च हिताहि-
तोपयोगविशेषात्मकस्य च शुभाशुभविशेषस्य धात्वा-
श्रयाणां च रोगाणामौषधसंग्रहाणांच दशानांच प्राणाय-
तनानां यं च वक्ष्याम्यर्थे दशमहामूलीयं त्रिशततमा-
ध्याये तत्र च कृत्स्नस्य च तंत्रोद्देशलक्षणस्य तंत्रस्य
च ग्रहणधारणविज्ञानप्रयोगकर्मकार्यकालकर्तृकरणकु-
शलाः कुशलाश्च ॥

अर्थ-आहारकी विधिका निश्चय, प्रकृतिके हिततम आहारविकारोंका ज्ञाता, अपिसंस्कारसे बने चौरासी आसवोंके, द्रव्यगुणोंका निश्चय, रसा-
नुरससंशय सविकल्प और उनके विरोधी तथा द्वादशवर्गाश्रित अन्नपा-
नका सगुणप्रभावका तथा अन्नपान आहारगतिके हिताहित उपयोग विशेष
शुभाशुभका ज्ञाता, धातुसंश्रित रोग सकलको औषध प्रयोग विषयमें
निपुण तंत्रोक्त निखिल लक्षण और तंत्रका ग्रहण धारण विज्ञान तथा
प्रयोगादि विषयमें भलेप्रकार जाननेवाला ॥

स्मृतिमतिशास्त्रयुक्तिज्ञान आत्मनः शीलगुणैरविसं-
वादनेन संपादनेन सर्वप्राणिपुचेतसो मैत्रस्य मातृपितृ-
भ्रातृबंधुवदेवं च परंकृपालव इत्येवं बहुविधगुणयुक्ता
भवंत्यग्निवेश प्राणानामभिसराहन्तारोरोगाणामिति ॥

अर्थ-स्मृति, बुद्धि, युक्ति और शास्त्रज्ञानसंपन्न, एवं सर्वप्राणीमात्रमें
मातापिता भैयाँके और बंधुबंधुके समान परम कृपाकरने वाला, इत्यादि

समस्त और इसीप्रकार अन्यान्यबहुगुणविशिष्ट वैद्य प्राणरक्षक और रोग-
नाशक कहाताहै ॥

प्राणनाशकवैद्यकेलक्षण ।

अतो निपरीता रोगाणामभिसरा हन्तारः प्राणिनामिति
तेभिपक्छद्मप्रतिछन्ना राज्ञांप्रमादाच्चरन्ति राष्ट्राणि तेषा-
मिदं विशेषविज्ञानमत्यर्थं वैद्यवेशेन श्लाघमानाविशि-
खान्तरमनुचरन्ति कर्मलोभाच्छ्रुत्वा च कस्यचिदातु-
र्यमभितः परिपतन्ति गृध्राइव मांसलोभात्, संश्रवणे-
चास्यात्मनोवैद्यगुणानुच्चैर्वदन्ति यश्चास्य वैद्यः प्रतिक-
र्मकरोति तस्य च दोषान् मुहुर्मुहुरुदाहरन्त्यातुरमित्राणि-
च प्रहर्षणोपजापोपसेवाभिरिच्छन्त्यात्मीकर्तुमल्पेच्छ-
तांचात्मनःख्यापयन्तिकर्मचासाद्य मुहुर्महुरवलोकयन्ति
दाक्ष्येणाज्ञानमात्मनश्छादयितुकामा व्याधितं चाप-
वर्त्तयतुमशक्नुवंतोव्याधितमेवानुपकरणमपचारिकमना-
त्मवन्तमुद्दिशन्ति अन्तगतं चाभिसमीक्ष्यान्यमाश्रयन्ति
देशमपदेशमात्मनः कृत्वाप्राकृतजनसन्निपाते चात्मनः
कौशलमकुशलवद्वर्णयन्ति अधीरवच्च धैर्यमपवदन्ते
विद्वज्जनसन्निपातं चाभिसमीक्ष्य प्रतिभयमिव कान्तार-
मध्वगाः परिहरन्ति । नचैपामाचार्याः शिष्यावा स ब्रह्म-
चारी वैवादिको वा कश्चित्प्रज्ञायते इति ॥

अर्थ—अब दुष्टवैद्यके लक्षण कहते हैं कि, जो लक्षण कह आयेहैं इस्से विपरी-
त लक्षण वाले वैद्यको रोगाभिसर अर्थात् रोगोंका रक्षक और प्राणोंका ना-
शक जानना। ऐसे कपटीवैद्य छिपेदुष्ट राजाके प्रमादसे (राजाके बंदोबस्त न
करनेसे) नगर सहरोंमें फिरते हैं। इसकदनेसे यह प्रयोजन है कि, ऐसे दुष्ट वैद्यों-
को राजा अचक्षु दंडदेवे जिस्से ये बढे नहीं। अब इन दुष्टवैद्योंके जाननेके
लिये कुछ लक्षण कहते हैं। कि, ये दुष्ट वैद्यवेशको धारण करे रहते हैं और
अपनी बढाई आप अत्यंत करते हैं और कुछ कर्म वैद्योंकेसे कराकरते हैं,

एवं किसी मनुष्यको रोगी सुनकर इसप्रकार उसके ऊपर गिरते हैं जैसे मांसके लोभी गीध गिरते हैं, [इस्से यह दिखाया कि, गीध केवल मांसके लोभसे गिरता है उसीप्रकार ये छलिया वैद्य द्रव्य और उसरोगीके प्राणहरण करनेको जाते हैं] प्रत्येक उपायोंको करके उसरोगीके पास पहुँच उसको प्रसन्न करते हैं,—उसके सुनते ऊँचे स्वरसे पुकारकर अपने वैद्यगुणोंको कहते हैं,—यदि कोई दूसरा वैद्य उसरोगीकी चिकित्सा करता होवे तो उसके वारंवार दोषोंको कहे अर्थात् इसवैद्यमें ये ये अवगुण है और रोगीके मित्र बांधवोंको अनेक प्रसन्नता, जप, सेवादि कर्मकरके अपनाय लेनेकी चेष्टा करे और इसप्रकार अपनेको बेपरवाही दिखावे कि, रोगीके बांधवोंको यह प्रतीत होजावेकि, इनको इसके चिकित्सा करनेका कुछ आग्रह नहीं है,—केवल हमारे कहनेसे लाचार होकर करते हैं,—जब रोगी इन दुष्टवैद्योंके हस्तगत होजाता है तब किसीक्रिया प्रयोगके विगडनेसे वारंवार क्रियाके फलको देखते है (अर्थात् हमने यह रोगविचारकर इसरोगीको यह औषध दीनी, परंतु यह विपरीत गुणवाली क्यों होगई) इसाँचितामें डूबजाते हैं । जब रोगी अच्छा न होसके तब अपने दोष छिपानेके निमित्त रोगीको उपकरण विहीन कहे (अर्थात् हम क्याकरें जो वस्तु रोगीको चाहिये वोतो इसके यहाँ नहींथी) और यह रोगी अत्याचारी है (पथ्यसे नहीं रहता) और सत्त्वसून्य है, इस प्रकार उस रोगीको दोष देते हैं । रोगीके मरनेपर अपने ऊपर विपत्यके भयसे छलकरके दूसरे देशमें चलेजाते है (अर्थात् रोगीके मरनेपर उसके बांधव कहीं सरकारमें रिपोर्ट न करदेवे अथवा लडनेको तयार न होजायें, इस कारण परदेशको चलेजाते है) और ये सामान्यमनुष्योंके समीप अकुशलके समान अपनी कुशलता और अधीरके समान अपने धैर्यको प्रगट करते है । विद्वानोंके समूहको देखके जैसे रास्ता चलनेवाला मनुष्य घोर वनको त्याग देता है उसीप्रकार ये दुष्टवैद्य उस विद्वानोंके समाजको देखकर चलेजाते है इन दुष्टोंके न आचार्य (गुरु) जाने जावे, न शिष्य न सहाय्याई न विवादकर्ता जाने जावे ॥

मूर्खवैद्योंके लक्षण ।

भिषक्छद्मप्रतिछन्ना व्याधितांस्तर्कयन्ति ये ।

वीतंसमिव संश्रित्य वने शाकुन्तिको द्विजान् ॥

श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्राज्ञानवहिष्कृताः ।

देहको ठककर और मस्तकको नीचा झुकाके स्मृतिमान् शांति स्वरूप, स्थिरबुद्धि और रोगसंबंधी शास्त्रका चिंतन करने वाला होना चाहिये। रोगीके घरकी कोईभी छिपीहुई बात बाहर निकलके किसीके आगे कहेनहीं।

ह्यसितंचायुषः प्रमाणंनवर्णयितव्यम् जानतोपित-
त्रयत्रोच्यमानमातुरस्यान्यस्यवाप्युपघाताय संपद्य-
ते तेनैतदप्यवश्यंचितनीयं यजीवनाशाच्छेदात्प्रा-
णिनां धैर्यगांभीर्यादि प्रभृष्टाः परंशोचनीयतांया-
न्ति अपिचनकश्चिजगत्यप्रमत्तो विद्यते, कदाचित् व्या-
धेः साध्यत्वेऽप्यसाध्यताभ्रंतिस्तद्वत् व्याख्यानात् त-
द्वचनप्रतीतोह्यातुर आयुष्मानपिविपद्यते अतोनानिवा-
र्यहेतुंविनारिप्लक्षणांप्रकटनीयम् । ज्ञानवतापि च नात्य-
र्थमात्मनोज्ञानेकथितव्यम् । आत्तादपिकथमानादत्यर्थ-
मुद्विजंत्येके ॥

अर्थ—तथा रोगीके आगे अथवा रोगीके किसी आत्मीय बांधवके आगे जिस्से उनको दुःख होय ऐसी रोगीकी भाँवी (हॉनहार मृत्यु) को जानकरभी न कहे, क्योंकि कहनेसे उस रोगी और उसके बांधवकी धैर्यता जाती रहती है और वो घबडा जाते है अतएव इस बातको अवश्य याद रखना चाहिये । इस मनुष्य की जीवनआशा टूटीसुनतेही धीरज और गांभीर्यतादि गुण तत्काल चलायमान होजाते है और वो घोर शोकसागरमें डूब जाते है, इसीसे उस दुष्टवैद्यकी बराबर दूसरा प्रमत्त और कौन होगा। दूसरा कारण यहहै कि, जिस रोगीको वैद्यने भ्रमसे असाध्य बताया यदि वो साध्य होय तो उस वैद्यके वाक्यका विश्वास जाता रहता है । और जिसको वैद्यने भ्रंतीसे साध्य बतायाहै

१ देहठकने और मस्तक नीचा करनेसे वैद्यकी साधुता प्रगट होती है अन्यथा उद्धत और बेचूफ तथा मदमास जाहिरहोता है । २ जब वैद्य रोगीके घरमें जाता है तो उसके घरकी सर्वाभली और बुर्खाबात इसमें जाहिरहो जाती है उस घरत बाहर आनन उमकी धूरनटढावे यह पडे भारी ऐवकी बातहै । ३ यदि वैद्यको उम रोगीका अनुभव कहनेकी ही अतिआवश्यताहो तो उसके किसी बुद्धिमान् बाधवकी एकात्म ले जाकर कहदेवे ॥

और वो रोगी मरजावे तो फिरभी मनुष्योंको उसके कहनेका विश्वास नहीं रहता अतएव जब तक यह वैद्य अरिष्ट लक्षणोंको भलेप्रकार न विचार लेवे तब तक भला और बुरा कुछभी न कहे । यद्यपि आप विशेष ज्ञानवान्भी है, परंतु अपनी बहुत प्रशंसा आप न करे क्योंकि यथार्थ विद्वान और बहुदर्शीके भी मुखसे आत्मश्लाघा सुननेसे बहुतसे मनुष्य उससे विरागलेआते है अर्थात् फिर उनकी वो श्रद्धा नहीं रहती है । ये वैद्यकोही क्या मनुष्य मात्रको अपनी बडाई आप करना एक तुच्छता दिखानेका कारण होता है इससे अच्छे मनुष्यको आत्मश्लाघा करना त्याज्य है ॥

प्रसंगवसकलियुगियावैद्योकासिद्धान्त ।

स्वस्थैरसाध्यरोगैश्च जन्तुभिर्नास्तिकिञ्चन ।

कातरादीर्घरोगाश्च भिपजां भाग्यहेतवः ॥

अर्थ—स्वस्थ (रोगरहित) और असाध्यरोगवाले प्राणियो करके कुछ नहीं है, किंतु जो कायर (डरपोक) और दीर्घरोगी है वो प्राणी वैद्योके भाग्यके कारणहै । तात्पर्य यह है कि, रोगरहित देनेहीका क्याहै और जो असाध्य है वो जानता है कि, अबमैमरुंगातो सही फिर इन वैद्योके ठगाने से क्या हासिल है, परंतु डरपोक प्राणी तत्काल ही वैद्यके दाबमें आजाते है। एव जो बहुत दिनका रोगी है, वोभी नित्य प्रति वैद्यको उला येगा तो जबतक पडा रहेगा तबतक कुछन कुछ वैद्यको छीजता ही रहेगा ॥

नातिधैर्यं प्रदातव्यं नातिभीतिश्च रोगिणम् ।

नैश्चिन्त्यान्नादिमे दानं नैराश्यादेव चांतिमे ॥

अर्थ—वैद्यको उचितहै कि, रोगीको अत्यंत धीरजभी न देय और न बहुत भयही दिखलावे, क्योंकि यदि अत्यंत धीरज वधाय देवेगा तो वो रोगी यह विचारके कि, अब मै अच्छातो होयही जाऊंगा वैद्यको क्या ठगाऊ और अत्यंत भयदिखाने से वह रोगी मनमें विचारेगा कि, अब मै बचनेका तो होई नहीं फिर इस वैद्यको देखर क्या घरखुका करे जो बचेगा तो बाल बच्चोके ही काम आवेगा, अत एव अत्यंत धीरज और अत्यंत भय वैद्य रोगीको न देवे जैसे रुपया हाय आवे वो युक्ति करे ॥

भैपज्यं तु यथाकामं पथ्यं तु कठिनं वदेत् ।

“ वैद्यानां शारदीमाता पितातु कुसुमाकर ” ॥

१ चैत कार भूले फिरे पठयाति और वैद्य ।

आरोग्यं वैद्यमाहात्म्यादन्यथात्वमपथ्यतः ॥

अर्थ—वैद्यको उचित है कि, रोगीको जो मनमें आवे वोही (घूल, खाक) की पुडिया बांधके देदेवे, परंतु उसके ऊपर पथ्य कठिन बतावे (जो रोगीसे न बन आवे) यदि ऐसा करनेपर उस रोगीको आराम होगया तो वैद्यका माहात्म्य अर्थात् वैद्यने अच्छा करा है और आराम न होवे तो कह देवे कि, हम क्या करें तुमने पथ्यतो किया ही नहीं (हमनेतो रामबाण दवाई दीनी भाग्य तुम्हारा) ॥

निदानं पूर्वरूपाणि सात्म्यासात्म्यचिकित्सिते ।

सर्वमप्युपदेक्ष्यन्ति रोगिणः सदने स्त्रियः ॥

अर्थ—कदाचित् मूर्खवैद्य अपने मनमें यह विचार करे कि, मैं कुछ पढातो हूँ ई नहीं वहाँ रोगीके रोगका निदान और दवाई क्या कहंगा उसको कहते हैं कि, भाई तुम बुलानेवालेके साथ जायके उसरोगीके घरमें रोगीके समीप चुपके थोड़ी देर बैठतो जाऊ फिर तो रोगका निदान (कारण) तथा पूर्वरूप, एवं रोगीका हिताहित और चिकित्सा(इलाज) ये सब उसके घरकी स्त्री (औरत) अपने आप तुमको बताय देंगी (क्या आपको जानेमेंभी आलस्य आताहै भला ऐसी सुप्तकी जीवका तुमको फव हाथ लगनेकी है) ॥

जृम्भमाणेषु रोगेषु म्रियमाणेषु जन्तुषु ।

रोगतत्त्वेषु शनकैर्व्युत्पद्यन्ते चिकित्सकाः ॥

अर्थ—जब चारों तरफसे रोग मूं फैलाते हैं अर्थात् फैलते हैं और हजारों प्राणी मरते हैं तब वैद्य धीरे २ रोगतत्वोंमें बुद्धियुक्ति होते हैं । तात्पर्य यह है कि, तब तक रोग बढ़ते नहीं और विशेष मरी नहीं चेतते तब तक वैद्य एकदोही देखते हैं और जहां रोगबढ़े तथा मरी चेतती फिरतो वैद्यका बजारचेता और सेकड़ों नपनए वैद्य प्रगट होजाते हैं ॥

प्रवर्त्तनार्थमारंभे मध्येत्वौपधहेतवे ॥

बहुमानार्थमन्तेच जिहीर्षन्ते चिकित्सकाः ॥

अर्थ—प्रथम रोगीका यत्न आरंभ करनेको भेट आदि लेते हैं, फिर बीचमें कहते हैं कि, अब हमारे पास दवाई नहीं रही यदि कुछ देऊतो दवाई बनावे ऐसे कहकर लेते हैं और जब अच्छा होगया तब अंतमें बहुमानार्थ

अर्थात् अपनी विदाईके वास्ते वैद्य धनको हरण करते हैं । रोगी के पास वैद्यके आनेकी देरी है ॥ क्या ये पैसेको छोड़ते हैं । कभी नहीं, परंतु इनकेभी गुरुपंडाल हकीम और डाक्टर है “दुल हामरोचहिये दुलहनमेरा टका तो मोपदे” ॥

बहुश्रुतवैद्यकीप्रशंसा ।

स्वतंत्रकुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्ववहिष्कृतः ।

वैद्यो ध्वजइवाभाति नृपतद्विधपूजितः ॥

अर्थ—जो वैद्य वैद्यविद्यामें कुशल है और अन्य ज्योतिष व्याकरणादिमें अवहिष्कृत (थोडा २ जाने) है, वो वैद्य ध्वजाके समान प्रकाश करता है । इसीप्रकार अन्यप्रजाओं करके पूजित राजा शोभित होता है ॥

निदानऔपधीऔरसाध्यासाध्यज्ञातावैद्यकोकर्मकीसिद्धि ।

यस्तुकर्मविशेषज्ञःसर्वभैषज्यकोविदः ।

साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥

अर्थ—जो वैद्योंके कर्मका विशेष जानता है और संपूर्ण औपधोंके योग अयोगमें कुशल है तथा साध्यासाध्य विभागके विधानको जाननेवाला है उसको चिकित्साकी सिद्धि हाथमें है अर्थात् वो तत्काल आराम करसक्ता है ॥

शास्त्र और क्रियाज्ञातावैद्यकीप्रशंसा ।

दृष्टकर्माच्च शास्त्रज्ञो वैद्यःस्यात् सिद्धिभागसौ ।

एकाङ्गहीनो न श्लाघ्य एफपक्ष इवद्विजः ॥

अर्थ—जो छेदन भेदन आदि कर्म देखचुकाहो और शास्त्रभी पढाहो वो चिकित्सासिद्धिका भागी है, परंतु जो एकही वस्तुको जानता है अर्थात् कर्म और शास्त्र इनमेंसे एकके जाननेवाला वैद्य प्रशंशके योग्य नहीं है जैसे एक पांखका पखेरु । तात्पर्य यह है कि, एक पंखसे जैसे पक्षी नहीं उड़सके उसीप्रकार एकवस्तु जाननेवाला वैद्य चिकित्सा नहीं करसक्ता ॥

चतुर्विधज्ञानवान् वैद्यकोराजत्व ।

हेतौ लिंगप्रशमने रोगाणामप्युर्भवे ।

ज्ञानं चतुर्विधं यस्य सराजादुर्भिपकृतमः ॥

अर्थ—रोगोंका हेतु (आदिकारण) रोगोंके लक्षण और उनरोगोंका नाश करना, तथा जैसे नाशइए रोग फिर इसप्राणीकी देहमें कभी प्रगट

नहो ऐसा उपाय करना ये चार प्रकारका जिसको ज्ञानहै वह सब वैद्योंका राजा है ॥

पद्मगुणयुक्तवैद्यकीप्रशंसा ।

विद्यावितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परताक्रिया ।

यस्यैते पद्मगुणास्तस्य नसाध्यमतिवर्त्तते ॥

अर्थ—विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मरण और उसीकर्ममें तत्पर होजाना एवं क्रिया यह पद्मगुणसंपन्न वैद्यसे साध्यव्याधि कदाचित् नहीं रहती अर्थात् तत्काल दूर करदेताहै ॥

वैद्यशब्दप्राप्तीकाकारण ।

विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः ।

वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तौ बलमेकैकमप्यदः ॥

यस्य त्वेते गुणाः सर्वे सन्ति विद्यादयः शुभाः ।

सवैद्यशब्दं सद्भूतमर्हन् प्राणिसुखप्रदः ॥

अर्थ—विद्या, मति, कर्मदृष्टी, वैद्यकर्मका अभ्यास तथा उसकर्मकी सिद्धि और आश्रय ये एक २ वैद्यशब्द प्राप्त होनेमें बल कहिये कारण हैं जिसवैद्यमें ये संपूर्ण विद्यादि गुण हैं वो वैद्यशब्दको प्राप्तिहो प्राणियोंको सुखदाई जानना इसश्लोकका तात्पर्ययही है कि, जो विद्या विनयआदि गुणयुक्त है उसीको वैद्य कहना ठीक है मूर्खको नहीं। वो उनमेंहै कि “वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदरः। यमस्तु हरति प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च” ॥

गुरुमुखपठितवैद्यकोवैद्यत्व ।

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ।

यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥

अर्थ—जो गुरुमुखसे शास्त्रको पढके और उसके तात्पर्यको विचारके अथवा उसके कर्मोंको सीखकर जो कर्म कर्ता है वो वैद्य है और बाकीके चोर हैं ऐसा जानना ॥

पूज्यवैद्यकेलक्षण ।

शीलवान्मतिमान्युक्तो द्विजातिःशास्त्रपारगः ।

प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यः प्राणाचार्यःसहि स्मृतः ॥

अर्थ—शीलवान् और बुद्धिमान् द्विजाती तथा शास्त्रमें पारंगत ऐसा वैद्य प्राणियों करके गुरुके समान पूज्य है क्योंकि ऐसा वैद्य प्राणोंका आचार्य है ॥

जीवनदानको श्रेष्ठत्वकथन ।

धर्मार्थं सहशस्तस्यदातानेहोपलभ्यते ।

नहिजीवितदानाद्धि दानमन्याद्विशिष्यते ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ और काम का दाता उसके बराबर और नहीं है कि, जिसने जीवनदान किया। कारण यह है कि, जीवनदानके समान दूसरा कोईभी दान नहीं है ॥

परोपकारत्वकथन ।

परोभूतदयाधर्म इतिमत्वाचिकित्सया ।

वर्तते यः ससिद्धार्थः सुखमत्यंतमश्नुते ॥

अर्थ—प्राणियोंके दया धर्मपर यह वैद्यकशास्त्र है ऐसाविचारके जो चिकित्सामे वर्तता है वह सिद्धार्थ है और अत्यंत सुखको भोगे है ॥

वैद्यकोदानित्वकथन ।

धर्मस्यार्थस्य कामस्य त्रैलोक्यस्याभयस्यच ।

दातासंपद्यते वैद्यो दानाद्देहसुखायुषाम् ॥

अर्थ—देह सुख और आयु इनके देनेसे धर्म, अर्थ, काम और त्रिलोकी को अभय का दाता वैद्य कहलता है ॥

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम् ।

छित्वावैवस्वतान्पाशाञ्जीवितंच प्रयच्छति ॥

अर्थ—दारुणरोगोंकरके यमपुरीको खींचे हुये मनुष्यकी जमफासोंको छेदनकर यह वैद्य इन प्राणियोंको जीवन देताहै। अतएव इस वैद्यके समान धर्मअर्थका दाता दूसरानहीं है क्योंकि जीवनदानसे बढकर संसारमें दूसरा दान कौनसा है ॥

चिकित्साकरनेकापुण्य ।

कपिला कोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम् ।

तस्मात्कोटिगुणंपुण्यमेकातुराचिकित्सया ॥

अर्थ—करोड कपिलागौदान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है उससेभी करोड गुणा अधिक पुण्य एकरोगीकी चिकित्सा (इलाज) करनेसे होता है ॥

अन्यच्च ।

धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यमूलमुत्तमम् ।

तस्मादारोग्यदानेन नरोभवति सर्वदः ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टयोंका मूलकारण आरोग्यता है। इसीसे आरोग्यदान करके यह प्राणी सर्व वस्तुका दाता होता है। चाहिये सर्व दानकरो और चाहिये तो रोगीका यत्न करो दोनोंका फल बराबर है ॥

ग्रन्थांतरेच ।

अप्येकं नीरुजीकृत्यव्याधितं भेषजैर्नरः ।

प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः ॥

अर्थ—एकभी रोगीको औषधी करके रोगरहित करनेसे यह प्राणी अपने सात कुलोंको संग लेकर ब्रह्मलोकको जाता है। तात्पर्य यह है कि, वैद्य आप तो तरताही है, परंतु चिकित्साके प्रभावसे अपनी सात पीढी (पुस्तो) को तार देता है ॥

अपिमूलेनकेनापि मर्दनाद्यैरथापिवा ।

सुस्थीकृतं लभेन्मर्त्यः पूर्वोक्तं लोकमुत्तमम् ॥

अर्थ—किसीएक जड़ीबूटीसे अथवा तैलादि मर्दनसे जो वैद्य रोगीको अच्छा कर्ता है वह पूर्वोक्त उत्तम लोक (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होता है ॥

प्रमाणांतर ।

धर्मार्थो कीर्तिमत्यर्थं सतां ग्रहणमुत्तमम् ।

प्राप्नुयात्स्वर्गवासंच हितमारभकर्मणा ॥

अर्थ—जो वैद्य प्राणियोंकी चिकित्सा करता है वह धर्म, अर्थ, कीर्ति और महात्माओं करके ब्राह्म स्वर्गवासको प्राप्तहोता है ॥

सर्वत्रवैद्यवृत्तिकाकथन ।

नदेशो मनुजैर्हीनो न मनुष्यानि रामयाः ।

अतः सर्वत्रवैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥

अर्थ—ऐसा कोईसाभी देश नहीं है जो मनुष्योंसे रहित हो और जहाँ २ मनुष्य हूँ वहाँ २ घो रोगरहित नहीं है, अर्थात् थोड़े और बहुत अवश्य रोगी होंगे इसी कारण सर्वत्र वैद्योंकी वृत्ति तो सिद्ध है अर्थात् बनाबनाई तयार है फहाँ जाओ ॥

न प्राणिरहितो देशो न च प्राणिनिरामयः ।

तस्मात्सर्वत्रभिपजांकल्पिताएववृत्तयः ॥

अर्थ-ऐसा कोईसा देश नहीं है कि, जहाँ प्राणी (मनुष्य) नहीं रहते और प्राणी रोगरहित नहीं है अर्थात् सर्वत्र मनुष्य रोगपीडित हैं, इसी कारण वैद्योंकी वृत्ति सर्वत्र कल्पित है अर्थात् सर्वत्र मौजूदहै (जिसदेशमें जायगा उसी देशमें वैद्यकी चाहै) ॥

रोगके अंतमें वैद्यपूजन ।

चिकित्सितशरीरं यो ननिष्क्रीणाति दुर्मतिः ।

सयत्करोति सुकृतं तत्सर्वभिपगश्नुते ॥

अर्थ-जो दुष्टबुद्धि रोगी अपने चिकित्सित शरीरको धनादि दान देकर उक्लण नहीं करता, वह जो कुछ सुकृत (पुण्य) करता है वह सब वैद्यको प्राप्त होताहै । अतएव रोगीको उचित है कि, इस लोक और परलोक की भलाईके वास्ते अपनी यथाशक्ति धन, रत्न, वस्त्रादिक देकर वैद्यको प्रसन्नकरे । अन्यथा वह कृतप्रियोंकी गणनामें है ॥

योरोगीभिपजं सम्यक् रोगशांतौ न पूजयेत् ।

तस्यार्जितस्य पुण्यस्य प्राप्नोत्यर्द्धं भिपगवरः ॥

अर्थ-जो रोगी रोग शांतहोनेपर वैद्यका पूजन नहींकरे, अर्थात् धन-वस्त्रादि देकर संतुष्ट नहीं करता उसके संचितपुण्यका आधाभाग वैद्यको प्राप्त होता है । यदि रोगी कुछ न देवे तो हे भिपगवरहो ! तुम इसी वाक्यपर संतोषकरो ॥

चिकित्साकाफल ।

क्वचिदर्थःक्वचिनमैत्री क्वचिद्धर्मःक्वचिद्यशः ।

कर्माभ्यासःक्वचिच्चापिचिकित्सानास्तिनिष्फला ॥

अर्थ-कहीं अर्थ (धनकी प्राप्ति) कहीं मित्रता, कहीं धर्म, कहीं यशकी प्राप्ति और कहीं चिकित्सा करनेसे कर्मकाही अभ्यास होता है, इत्यादि कारणोंसे चिकित्सा निष्फल नहीं है किंतु सफलही है ॥

चिकित्साकाफल ।

सनातनत्वाद्देदानामक्षरत्वात्तथैवच ।

तथादृष्टफलत्वाच्च हितत्वादापि देहिनाम् ॥

वाक्समहार्थविस्तारात्पूजितत्वाच्चदेहिभिः ।

चिकित्सितात्पुण्यतमं नकिंचिदपि सुश्रुमः ॥

अर्थ-वेदोके सनातन और अविनाशी होनेसे तथा प्रत्यक्ष फल दिखानेसे और प्राणीमात्रको हितकारी होनेसे तथा वाणीसमूहोके कारण एवं देहधारियोंको माननीय होने से हम चिकित्सासे बढकर दूसरा पुण्यतम वस्तु नहीं सुना यह सुश्रुतमे लिखा है ॥

वैद्यकोशिक्षा ।

स्त्रीभिःसहास्यं संवादं परिहासं च वर्जयेत् ।

दत्तं च ताभ्यो नादेयमत्रादन्यद्रिपग्वरैः ॥

अर्थ-वैद्यको उचित है कि, स्त्रियोंके साथ एकजगे बैठना उनसे बात चीतकरना एवं उनसे हांसी ठटोरी करना त्यागदेवे । तथा अन्नके सिवाय और कोईसी वस्तु स्त्रियो से न लेवे, तात्पर्य यह है कि, रोगीके यहाँ स्त्रियोंके साथ बैठना हासी ठटोरी करना और कोई वस्तु लेनेसे अन्य मनुष्यको यहप्रतीत होगी कि, इस रांडसे इस वैद्यकी कुछ सटलगरही है ॥

नसुप्याद्रोगिसदने नभुंजीयात्कदाचन ।

विनाह्वानं न गच्छेच्च नब्रूयान्मरणं भिषक् ॥

अर्थ-वैद्यको कदाचित् रोगीके घरमे न सोना चाहिये और नरोगीके घरमें भोजनकरे, एवं विनाबुलाए रोगीके यहाँ कदाचित् न जावे तथा रोगी का मरण जानकरभी न कहे ये पूर्वोक्त कर्म वैद्यकी प्रतिष्ठाहानि कारकहै ॥

भाणीकोवैद्यशब्दकीप्राप्ति ।

विद्यासमाप्तौ भिषजो द्वितीयाजातिरुच्यते ।

अश्नुते वैद्यशब्दं हि न वैद्यः पूर्वजन्मना ॥

अर्थ-इस भिषकको विद्याकी समाप्तिमें द्विजाती जाति कहते है, अर्थात् दूसरी जाति होजाता है, तब यह वैद्य शब्दको प्राप्तहोता है किंतु जन्मलेने मात्रसेही वैद्य नहीं पहलाता ॥

वैद्यमात्रकोद्विजत्व ।

विद्यासमाप्तौ ब्राह्मं वा सत्वमार्षमथापि वा ।

ध्रुवमाविशति ज्ञानात्तस्माद्देवो द्विजः स्मृतः ॥

अर्थ-आयुर्वेद विद्याकी समाप्तिमें ज्ञानहोनेके कारण इस प्राणीमें ब्राह्मसत्व अथवा ऋपिसत्व अवश्य प्राप्त होता है अतएव इस वैद्यको शास्त्रमें द्विज कहा है ॥

वैद्यकेप्रतिरोगीकावर्त्ताव ।

नाभिध्यायेन्नचाक्रोशेदहितैर्न समाचरेत्-।

प्राणाचार्यम्बुधःकश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम् ॥

अर्थ-इस वैद्यका किसी प्रकार दुष्टचितवन न करे, न गालीदे, तथा जिसमें वैद्यका अहितहोवे सो कर्मभी न करे, क्योंकि यह प्राणाचार्य है । अतएव आयुकी इच्छा करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको सदैव प्रसन्नराखे ॥

कहकरनदेनेमेंअधर्मित्व ।

चिकित्सितस्तु संश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः ।

नोपाकरोतिवैद्याय नास्ति तस्येह निष्कृतिः ॥

अर्थ-जोरोगी वैद्यको देनाकरके नहीं देता अथवा किसीप्राणीको जो वस्तु देनी कहके नहीं देता, अर्थात् देनेसे उरुणनहीं होता उस अधर्मिके पापकी निष्कृति कहीं नहीं है ॥

वैद्यकेधर्म ।

भिषगप्यातुरान्सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान् ।

आवाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम् ॥

अर्थ-अब वैद्यके धर्मकहते हैं कि, वैद्यभी उत्तम धर्मका इच्छा करता, संपूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान रोगोंसे रक्षाकरे ॥

अनाथात्रोगिणो वैद्यःपुत्रवत्समुपाचरेत् ।

अर्थ-अनाथ रोगियोंको वैद्य अपने पुत्रके समान चिकित्सा करे । अर्थात् यदि उनके पास भोजनको न होवे तो भोजनको देय और औषधको द्रव्य न होवे तो आप उस औषधको मगायके देवे ॥

प्राणाचार्यश्च पितृवत्संपूज्यःशक्तिभक्तितः ॥

अर्थ-रोगी, रोगनिर्मुक्त होनेपर प्राणाचार्य(वैद्य) को अपने पिताके समान अपनी यथाशक्तिसे पूजनकरे (कि, जिस्से वैद्य प्रसन्न होकर और आशीर्वाद देवे जिस्से फिर रोगी नहो) ॥

धर्मार्थिनार्थकामार्थमायुर्वेदोमहर्षिभिः ।

प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमुत्तमम् ॥

अर्थ-धर्मपर महर्षियोंने उत्तमलोककी इच्छा करके यह आयुर्वेद शास्त्र धर्मार्थ प्रकाशकरा है किंतु कामनाके अर्थ नहींकरा, अतएव सब वैद्योंकी उचित है कि, इस अमूल्य पदार्थको तुच्छ कामनाओंमें न लगावे ॥

नार्थार्थं नापिकामार्थं अथभूतदयांप्रति ।

वर्त्तते यश्चिकित्सायां ससर्वमतिवर्त्तते ॥

अर्थ-यह आयुर्वेद, शास्त्र, धन एकत्र करनेको अथवा इसके द्वारा अनेक काम भोगना, इसके वास्ते नहीं है किंतु जो चिकित्सामें प्राणियोंकी दया विचारके यत्न करता है वह वैद्य सर्वमें श्रेष्ठ है ॥

नैवकुर्वीतलोभेनचिकित्सापण्यविक्रयम् ।

ऐश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थतुदत्तये ॥

अर्थ-इस वैद्यको उचितहै कि, जो ऐश्वर्यसंपन्न अर्थात् सेठसाहूकार राजा वाबू हैं उनसे अपने वृत्तिके लगनेको लोभके वशहो चिकित्साका पण्यविक्रय (दुकानदारी) न करे अर्थात् इसरोगीसे इतनेही रूपयालेकर यत्न (इलाज) करेंगे । क्योंकि बड़े आदमी साले क्या देंगे. उनसे द्रव्यलेना ऐसाहै जैसे जवाहिरको कोडियोंमें बेचना ॥

वृत्त्यर्थचिकित्साकरनेकानिषेध ।

कुर्वते येतुवृत्त्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयम् ।

तेहित्वाकाञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते ॥

अर्थ-जो प्राणी वृत्ति (जीविका) के अर्थ चिकित्साकी विक्रीकरते हैं वो सुवर्णकी रासको छोडके धूलमिट्टी की रासको ग्रहण करते हैं ॥

अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम् ।

आयुर्वेदप्रसादेन किन्नदत्तं भवेद्भुवि ॥

अर्थ-वैद्य आयुर्वेदके प्रतापसे जैसे जैसे एकभी रोगीको नेरोग्य करता है उसने या पृथ्वीमें क्या वस्तु नहीं दीनी, अर्थात् वो सब वस्तु दे चुका अब कुछभी देना बाकी नहीं रहा, 'आयुर्वेदप्रसादेन' इस पदके

धरनेसे यह प्रयोजन है कि, आयुर्वेद पढकर रोगोंका निश्चय करके जिसने यत्न करा उसको सर्वदानीकी पदवी प्राप्त होसक्ती है किन्तु मूर्ख वैद्य भलेही सैकड़ों रोगियोंका यत्न करके अच्छा करदे, परंतु अधर्मकाही भागी होगा क्योंकि विना पढेसे चिकित्सा कराना निषेध लिखा है ॥ सो आगे कहेंगे “ औषधं मूढवैद्यानामित्यादि ” ॥

शस्त्रादिविशोधन ।

शस्त्रं शास्त्राणि सलिलं गुणदोषप्रवृत्तये ।

मात्रापेक्षीण्यतः प्रज्ञां चिकित्सार्थं विशोधयेत् ॥

अर्थ—शस्त्र, शास्त्र, जल, ये मात्राकी अपेक्षा करते हैं अतएव इनको गुण-दोषकी प्रवृत्ति अर्थ और चिकित्साके अर्थ वैद्य शोधनकरे। तहां शस्त्र, शास्त्र और जलको चिकित्साके वास्ते शुद्ध (उज्वल) करे। एवं गुणदोष प्रवृत्तिके वास्ते प्रज्ञाका शोधन करना चाहिये ।

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।

ताभ्यांभिपक्व सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थ—ज्योति प्रकाशार्थं शास्त्र और आत्मकी बुद्धि दर्शनके अर्थ इन दोनों (शास्त्र और बुद्धि) करके युक्त होकर जो वैद्य चिकित्सा करता है वह चिकित्सा कर्ममें कदाचित् नहीं चूके अर्थात् उसकी चिकित्सा ठीकहोती है

चिकित्सिते त्रयः पादा यस्माद्वैद्यव्यपाश्रयाः ।

तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्भिपक्वस्वगुणसंपदि ॥

अर्थ—चिकित्साके तीनों पैर वैद्यके आश्रित हैं अतएव वैद्यकोभी उचित है कि, वह अपने गुण संपत्तिमें यत्नपूर्वक स्थित रहे। तात्पर्य यह है कि, रोगी दूत और औषधी ये सब वैद्यके आश्रित हैं यदि वैद्यही मूर्ख हुआ तो फिर ये कुछ कामके नहीं हैं इसी से वैद्य विद्या और वैद्यकर्ममें कुशल रहे ॥

वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति ।

मैत्रीकारुण्यमार्त्तुषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम् ।

प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा ॥

अर्थ—अब वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति कहते हैं कि, रोगियोंमें भिन्नभाव और करुणाकरे तथा जो प्रकृतिस्थ प्राणी हैं अर्थात् रोगहीन हैं उनमें प्रीति और सावधानीसे देखना ॥

अश्विनावग्निरिन्द्रश्चवेदेषुसुतरास्तुताः ।

वैद्यावित्यश्विनौदेवौपूज्येतेविबुधैरपि ॥

अर्थ—वेदमे अश्विनीकुमार अग्नि और इन्द्र निरंतर स्तुति करे गए है । वे अश्विनीकुमार वैद्य है सो देवताओवरकेभी पूजेजाते है । फिर औरोंको तो अवश्य पूजने चाहिये ॥

अजरैरमरैर्नित्यं सुखितैरेवमाहृतैः

व्याधिमृत्युजराग्रस्तैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।

किंपुनर्भिपजोमर्त्यैः पूज्याः स्युर्नात्मशक्तितः ॥

अर्थ—जब अजर अमर और सदैव सुखित देवताओंकरके वैद्य पूजे जाते है तो फिर व्याधि, मोत और वृद्धावस्था फरके ग्रसित, दुखिया और सुखकी इच्छा करनेवाले ऐसे मनुष्योंको वैद्य अपनी शक्तिके माफिक क्या नही पूजने चाहिये किंतु सर्वथा पूजनेही चाहिये ॥

चिकित्सासिद्धियोग्यवैद्य ।

यस्तुरोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ।

देशकालविभावज्ञस्तस्यसिद्धिर्नसंशयः ॥

अर्थ—जो वैद्य रोगविशेषोंको जानता है अर्थात् संपूर्ण रोगोंको जानता है और संपूर्ण औषधोंके बनानेमें चतुर है तथा देशकालके विभागोंको जानने वाला है उसको चिकित्सा की सिद्धिमें कुछभी संशय नहीं अर्थात् ऐसे वैद्यको तो सिद्धी अवश्यही होती है ॥

वैद्यशास्त्रपठितको चिकित्साकरनेका अधिकार ।

आयुर्वेदं ततोऽधीत्य सकाशात्सद्गुरोर्भिषक् ।

चिकित्सारोगिणांकुर्यादन्यथा पापभागभवेत् ॥

अर्थ—वैद्य गुरुसे आयुर्वेदशास्त्रको पढकर रोगियोंकी चिकित्साकरे अन्यथा पापका भागी होता है [तात्पर्य यह है कि, केवल अमृतसागर आदि वांचकरही वैद्य मत बनो भाइयो ! कुछ गुरुमुखासे भी पढो जिस्से ज्ञान और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति हो]

अन्नजलऔरचिकित्सादानकाफल ।

अन्नदो जलदश्चैव आतुरस्यचिकित्सकः ।

त्रयस्ते स्वर्गमायांति विनायज्ञेनभारत ! ॥

अर्थ—हेभारत ! अन्नदाता जलदाता और रोगीकी चिकित्सा करने वाला ये तीनों प्राणी विनायज्ञकियेही स्वर्गको जाते हैं । तात्पर्य यह है इन तीनों प्राणियोंको विनायज्ञ करने परभी यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है । यह प्रमाण भारतके शांतिपर्वमें लिखा है, फिर न मालूम बड़े २ पंडित, वैद्यवृत्तीको क्यों दोषारोपण करतेहैं ।

राजाकोवैद्यादिचतुष्टयोंकानित्यदर्शन ।

वैद्यः पुरोहितो मन्त्रीदिवज्ञश्चचतुर्थकः ।

द्रष्टव्याः प्रातरेवैतेनित्यंश्रेयोविवृद्धये ॥

अर्थ—औरभी लिखा है कि, राजा अपने कल्याणकी वृद्धिके लिये नित्य प्रातःकाल उठकर वैद्य,पुरोहित,मन्त्री और चतुर्थदिवज्ञ (ज्योतिषी) का दर्शनकरे । येभी प्रमाण धर्मशास्त्रका है देखोमित्र ! इसश्लोकमें भी प्रथम वैद्यका दर्शन करना लिखता है, इसीसे आयुर्वेदमें इसवैद्यका नाम प्राणाचार्य लिखा है जो प्राणोंसे द्वेषकराचाहै वो वैद्यसे भलेही द्वेषकरे जैसे नीचेके श्लोकमें लिखते हैं ॥

गतश्रीर्गणकान् द्वेष्टि गतायुश्चचिकित्सकान् ।

गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टिभारत ॥

अर्थ—गई है श्री (संपत्ति वा शोभा) जिसकी वो ज्योतिषियोंसे द्वेष (वैर) करता है । गतायु अर्थात् गई है आयु जिसकी (मरणासन्न) वो वैद्योंसे द्वेष (वैर) करता है और हेभारत ! गतश्री और गतायु ऐसाप्राणी ब्राह्मणोंसे द्वेषकरता है (हमब्राह्मण उसीको कहेंगे कि, जो ब्राह्मणवंशमें प्रगटहुआ हो और विद्यापढा हो) केवलविद्याभ्यासी अथवा केवल ब्राह्मणकुलमें जन्म होनेसे ब्राह्मण नहीं होता तथापि विद्याहीन ब्राह्मणसे पढा हुआ क्षत्री वैश्य उत्तम है तथा शूद्रभी वनिस्वत विना पढेसे पढाहुआ उत्तम है ॥

विनाशास्त्रप्रायश्चित्तादिकथनमेंब्रह्महत्याकेपापकीप्राप्ति ।

प्रायश्चित्तं चिकित्सांच ज्योतिषं धर्मनिर्णयम् ।

विनाशस्त्रेणयोन्नूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

अर्थ—प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्योतिष और धर्मका निर्णय इनको जो विनाशास्त्रप्रमाणके कहता है, उसको बड़े २ मुनीश्वर ब्रह्महत्याकाकहते हैं ।

तहां प्रायश्चित्त उसको कहते हैं जो पापीके वास्ते दंडकल्पना (कृच्छ्र-
चांद्रायणादि) है चिकित्सा उसको कहते हैं जो रोगीके आरोग्य करनेको
निर्णय करीजावे जैसे औषध और चीरना फाटनाआदि । ज्योतिषकरके
इसजगे ग्रहादिकों का फल तथा प्रभादिक जानने । और धर्मनिर्णय
एकादशी जन्माष्टमीआदि व्रतोंका निर्णयआदि) जानना । इनके उदा-
हरण दिखाते हैं, जैसे किसी पुरुषने चांडालादिकका अन्न भोजनकरा
अब शास्त्रसे तो उसका निश्चय नकरा किंतु जो जातीमें पंचहैंउन्होंने कह
दियाकि १०० रुपये हमको देउ हम तुझको जातमे लेलेवेगे, वस जहाँ
उनको रुपयेदिये और उन्होंने कही जा मूंड मुडाय जनेऊ पलट अमुक
देवके आगे दियाधरआ और जात जिमायदे, तो यह शास्त्राविरुद्ध प्राय-
श्चित्तहुआ । एवं विनारोगका और औषधका निर्णय हुए औषधदेना
ये शास्त्राविरुद्ध चिकित्सा हुई । एवं विनाग्रह गोचर दशांतर्दशाके कह-
देना कि, तुझको मारकेश है अथवा अटकलपंजे प्रश्रवतानेलेगे वा तिथि
वार बताने लगे, तोयह शास्त्राविरुद्ध ज्योतिष हुआ इसी प्रकार विनाशास्त्रके
जाने सूतकादिका निर्णय करना ये शास्त्राविरुद्ध धर्मनिर्णय हुआ ॥

गुणयुक्तपादचतुष्टयोंकीप्रशंसा ।

गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थोगुणवान् भिषक् ।

व्याधिमल्पेन कालेन महांतमपि साधयेत् ॥

अर्थ—गुणवान् तीन पैर (रोगी, औषधि और पारेचारक) करके
और चौथा गुणवान् वैद्य घोर व्याधिकोभी शीघ्रही साधन करसक्ताहै,
अर्थात् बढीहुई भी व्याधिको शीघ्र रोक सके है ॥

शास्त्रऔरबुद्धिद्वाराकर्मकरनेकी आज्ञा ।

प्रदीपभूतशास्त्रेण दर्पिता विपुलामतिः ।

ताभ्यां भिषक्तुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थ—शास्त्रहै सो दीपक रूपहै उसने विशेष बुद्धि दिखाई है । अर्थात्
जैसे दीपक अंधकारकी वस्तुको दिखाता है उसी प्रकार शास्त्रने अज्ञा-
नांधकारसे ढकी हुई बुद्धिको बढायके दिखाई, इन दोनों अर्थात् शास्त्र और
बुद्धिसे भलेप्रकार मिलाकर जो चिकित्सा करताहै वो कदाचित् नहींचूके ॥

उत्तमवैद्यकेलक्षण ।

येतु शास्त्रविदोदक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः ।

जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यकृते नमः ॥

अर्थ—अब उत्तमवैद्यकी प्रशंसा करते हैं कि, जो शास्त्रज्ञ, चतुर, पवित्र, चिकित्साकर्ममें निपुण, जितहस्त और जिती हैं आत्माजिन्होंने ऐसे उत्तम वैद्योंके अर्थ हमारी नित्य नमस्कार है ॥

निदानरहितवैद्यकोकर्मकीअसिद्धि ।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिपक् ।

अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥

अर्थ—जो रोगकी परीक्षाके बिना चिकित्सा करता है यद्यपि वो औषध विधानमें प्रवीणभी है, परंतु फिरभी उसको सिद्धीकी यथेच्छा है अर्थात् चिकित्साकरनेसे रोगी अच्छाहोय चाहिये नहींवे ॥

बिनापठित वैद्यकी निंदा ।

अविज्ञायतुशास्त्राणि भेषजं कुरुते भिपक् ।

यमएव सविज्ञेयो मर्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ॥

अर्थ—जो, बिनाशास्त्र पढे औषध करता है वो मनुष्योंमें मनुष्यका रूप धारणकर्ता साक्षात् यमराज है ॥

मूर्खवैद्यकाहास्य ॥

पाणिचाराद्यथा चक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत् ।

नौमार्रुतवशे वाज्ञा भिपक्चरति कर्मसु ॥

अर्थ—बिनेत्रके अंधापुरुष हाथपैरोंको जैसे डरता हुआ धीरे धीरे धरता है और जैसे पवनके प्रबलवेगसे नौका (जिहाज) जैसे समुद्रमें मारा २ डोलता है उसीप्रकार मूर्खवैद्य चिकित्साकर्ममें चलता है ॥

वैद्याभिमानोमूर्खवैद्यकीनिंदा ।

यदृच्छयासमापन्नमुत्तार्यनियतायुपम् ।

भिपग्मानी निहंत्याशु शतान्यनियतायुपम् ॥

तस्माच्छस्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने ।

भिपक्चतुष्टये युक्तः प्राणाभिपरञ्च्यते ॥

अर्थ—मूर्खवैद्य यदृच्छापूर्वक प्राप्तहुए पूर्णआयुवालेको रोगसे बचायके मारे अभिमानके अनेक अनियतायुधी अर्थात् जिनकी आयुका

कुछ ठीक नहीं ऐसे सैकड़ों प्राणियोंको यह वैद्याभिमानी दुष्टवैद्य मारता है इसीकारण इस प्राणीको शास्त्र और शास्त्रके अर्थ ज्ञानमें तथा उस वैद्यकर्मकी प्रवृत्ति एवं उसकर्मोंके देखनेमें प्रवृत्तहो तथा चतुष्पाद संपत्तियुक्तहो जो चिकित्सा करता है वो प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य कहलाता है ॥

निदान विनाजाने चिकित्सा करनेमें वैद्यको दंडनीयत्व कथन ।

भेपजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चामयम् ।

वैद्यकर्म सचेत्कुर्याद्विधमर्हति राजतः ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल औषध देना जानता है किंतु रोगोंको नहीं जाने कि, इस रोगीके क्या विकार है यदि वो वैद्य कर्म (चिकित्सा) करे तो वो राजासे वधके योग्य है । अर्थात् ऐसे वैद्यको राजा, फांसी, देदेवे, इससे वैद्यको उचित है कि, प्रथम निदानका अभ्यास करके फिर चिकित्साकरे ॥

केवल शास्त्रज्ञाता और औषधज्ञान रहित वैद्यकी निंदा ।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञोभेपजेष्वविचक्षणः ।

तं वैद्यं प्राप्य रोगीस्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्र पढा है, परंतु चिकित्सा करनेमें अकुशल (मूर्ख) है, उस वैद्यको प्राप्तहो रोगीकी ऐसी दशा होती है, जैसे विना केवटिया (मलाह) के बीच धारमें नावकी गति ॥

शास्त्रपठित और क्रियारहित वैद्यको भीरुत्वकथन ।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञक्रियाष्वकुशलो पिभक् ।

समुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्यभीरुर्वाहवम् ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्रको जानता है किंतु उस शास्त्रकी क्रियाओंमें अकुशल (मूर्ख) है वह वैद्य रोगीको देखके ऐसे घबडाता है कि, जैसे भीरु (कापरमनुष्य) संग्राम (लड़ाई) को प्राप्तहोकर घबडाताहै ॥

विनापठित वैद्यको राजासे दंडनीयत्वकथन ।

यस्तुकर्मसु निष्णातो धाष्टर्याच्छास्त्रवहिष्कृतः ।

स सत्सु पूजां नामोति वधमर्हति राजतः ॥

अर्थ—जो वैद्यके कर्ममें तो निपुणहै, परंतु ठीकतासे शास्त्र वहिष्कृत अर्थात्

शास्त्रको नहीं जाने वो सत्पुरुषोंमें सत्कार नहीं पाता, किंतु राजासे वध (मृत्यु) को प्राप्त होता है ॥

कर्त्तव्यमें मूर्खवैद्यकी निंदा ।

छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु ।

स निहंति जनं लोभात्कुवैद्यो नृपदोपतः ॥

अर्थ—जो वैद्य छेदन भेदनादि कर्ममें मूर्ख है, तथा घृत तैल आदिके बनानेमेंभी मूर्ख है वह दुष्टवैद्य राजाके दोषसे प्राणियोंको लोभवश होकर मारता है [यदि राजाही ऐसे दुष्टवैद्योंकी परीक्षा कियाकरे तो ये इतने क्यों बड़े और हजारों अनाथके समान प्राणी यमपुरकी यात्रा क्यों करे] धन्यरे अंगरेजी राजा तू धन्य है !!!

मूर्खवैद्यकेदोष ।

लोभयंत्यातुरं मूर्त्ता विचित्रैःकर्मकौशलैः ।

तेभ्योरक्षेत्सदात्मानमात्मायस्मात्सुदुर्लभः ॥

अर्थ—मूर्खवैद्य अपना चित्रविचित्र कर्मकौशल (अर्थात् धालाफी) से रोगी को लोभित करते हैं । उन दुष्ट वैद्योंसे मनुष्यको सदैव सावधानी के साथ अपनी आत्माकी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि इस संसारमें आत्मा अत्यंतही दुर्लभ है ॥

तेषुणाक्षरवत्किंचिदुत्थाप्यनियतायुषम् ।

घ्नंतिवैद्याभिमानेन शताननियतायुषान् ॥

अर्थ—वो घुणाक्षरन्यापसे अनियतायुषीप्राणीकी रोगसे बचापके वैद्याभिमानो ही अनेक अनियतायुषी प्राणियोंको नाश करते हैं ॥

ये क्रियां विक्रियां कुर्वन्त्युपेक्षंते स्वच्छंति वा ।

स्वादंति ते परप्राणान्निजानि सुकृतानि च ॥

अर्थ—जो वैद्य क्रियाको विक्रिया करते हैं अथवा जिससमय क्रिया करनेका कालहै उसकी उपेक्षा करदेते अथवा चिकित्सामें चूकजाते हैं वो दुष्टवैद्य दूसरे के प्राणों को और अपने सुकृतोंको खाते हैं ॥

वैद्यकोस्वयंतर्ककरनेकीआज्ञा ।

नचैकांति न निर्दिष्टे शास्त्रेनिर्विशते बुधः ।

स्वयमप्यत्रभिपजातकनीयं चिकित्सता ॥

अर्थ—शास्त्रमें सब कहा है तथापि वैद्य सब जानता है ऐसा नहीं होता इसीसे वैद्यको स्वतः तर्क चलायके चिकित्साकरे। तात्पर्य यह है कि, शास्त्रमें भी कुछ हगनी मूतनी छोटी २ बात नहीं लिखी है। अतएव वैद्य को उचित है कि, अपनी बुद्धिसे विचारकरे केवल शास्त्रके भरोमें ही न रहे ॥

निषिद्धवैद्य ।

कुचैलःकर्कशस्तब्धो ग्रामीणःस्वयमागतः ।

पंचवैद्यानपूज्यं ते धन्वंतरिसमा अपि ॥

अर्थ—मलिन कपड़ेको धारणकर्ता, कर्कश, गर्ववाला (अभिमानी) ग्रामीण (गंभईका रहनेवाला) और जो विनाबुलाए आयाहो, ये पांच वैद्य धन्वंतरिके भी समान होवे तथापि पूजे नहींजाते । अर्थात् ऐसे वैद्योंका कोई सत्कार नहीं करता ॥

वैद्यकोपाककारित्वमेंप्रमाण ।

अन्यजातिकृतःपाकोद्व्यस्पृश्यःसर्वजातिभिः ।

इतिविज्ञाय मतिमान् वैद्यं पाकेनियोजयेत् ॥

अर्थ—अन्य जातिका करापाक सब जातियोंको अस्पृश्य (छूने योग्य नहीं) है, ऐसा जानेके बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको पाक करनेपर नियुक्त करे। तात्पर्य यह है कि, अपनी २ जातिका करा पाक सब खातेहैं दूसरी जाति-का किया कोई नहीं छूता और वैद्यके हाथका करा सब खाते हैं अतएव पाककर्ता वैद्यही होना चाहिये ।

अन्यजातिकेकरेपाकभोजनमें प्रायश्चित ।

मोहाद्विजातिवर्णाद्यैः पाचितं खादितेसति ।

प्रायश्चित्तीभवेच्छूद्रो जातिहीनो भवेद्विजः ॥

अर्थ—जो प्राणी मोहवश ब्राह्मण आदिके करे हुए पाकको भक्षण (भोजन) करता है। यदि वह शूद्र होवे तो प्रायश्चित्ती होवे और ब्राह्मण होय तो जातिसे रहित अर्थात् जात बाहर होताहै । यह प्रमाण पूर्व बंगालदेशमें है, परंतु हमारे पश्चिमोत्तर देशमें प्रमाणिक नहींहै। क्योंकि सब पुराणोंमें राजा महाराजाओंके ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके राजा महाराजा भोजन करते रहे हैं । फिर हमारे देशमें भी प्रायः पक्की रसोई भोजनका व्यवहारहै कच्चीका नहीं ॥

वैद्यशास्त्रऔरज्योतिषशास्त्रकोप्राधान्यता ।

अन्यानिशास्त्राणिविनोदमात्रं नकिञ्चिदेपांतुविशिष्टमस्ति ।
चिकित्सितं ज्योतिषमंत्रवादाः पदेपदे प्रत्ययमावहन्ति ॥

अर्थ-अन्य (व्याकरण, न्यायआदि) शास्त्र केवल विनोदमात्र अर्थात् बालकोंकेसे खेल हैं उन व्याकरणादि शास्त्रोंमें कुछ विशेषता नहीं है, परंतु चिकित्सित (वैद्यविद्या) ज्योतिष और मंत्रवाद ये तीनोंशास्त्र पद पदमें विश्वासदेते हैं ।

तात्पर्य यह है कि, व्याकरण, छंद, काव्य, अलंकार, प्रहसन आदि ये सब खेलनेके समान है, जैसे खेलकी वस्तुसे खेले और धरदानी इसी प्रकार ये अन्य शास्त्रहैं, परंतु प्रत्यक्षपरचादिज्ञाने वाले ये तीनही शास्त्र हैं, जैसे वैद्यक, ज्योतिष और तंत्रशास्त्र, इनमें भी हमको तो वैद्यशास्त्रमें विश्वास है । क्योंकि इसकी जितनी क्रिया हैं सब प्रत्यक्ष हैं और ज्योतिषमें हम गणितभागको प्रत्यक्ष फलदायक मानते हैं । रहा-मंत्रशास्त्र उसमें हम सदेहयुक्त हैं तथापि वाममार्ग तो सर्वथा दुष्ट पाम-रोंका निमित्त प्रतीत होता है अस्तु ॥ " जिस गावमेंही न जाना उसके कोश गिनना व्यर्थ "

चोरी कपट और बलपूर्वकविद्या ग्रहणमें दोष ।

विद्यां गृहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मबलादिना ।

न तेषां सिद्ध्यते किञ्चिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥

अर्थ-जो प्राणी विद्याको चोरीसे कपटसे और जबरदस्तीसे ग्रहण करनेकी इच्छा करता है उनको मणिपरीक्षा, मंत्र और औषधकी सिद्धि ये कोईभी फलीभूत नहींहों ॥

मरणपर्यंतचिकित्साकरनेकीआज्ञा ।

यावदुच्छ्वासितिप्राणी यावद्भेषजमात्तिच ।

तावच्चिकित्साकर्तव्यादैवस्यकुटिलागतिः ॥

अर्थ-जबतक यह प्राणी श्वासलेता है और जबतक औषध भक्षण करसके तायत्कालपर्यंत वैद्यको इस प्राणीकी चिकित्सा करनी ही चाहिये क्योंकि देव (विधाता) की गति फुटिल (टेटो) है अर्थात् मालूमनहीं-पडे नमालूम उस वक्तभी औषध देनेसे रोगी जीरठे ॥

यावत्कंठगताः प्राणायवन्नास्तिनिरिन्द्रियः ।

तावच्चिकित्साकर्तव्या दैवस्यकुटिलागतिः ॥

अर्थ—यावत् कंठमें प्राणहो और जबतक यह प्राणी इन्द्रिरहित न होवे तबतक पर्यंत रोगीकी चिकित्साकरनी चाहिये क्योंकि दैवकी गति कुटिल है (कदाचित् इस अवस्थामेंभी औषध देनेसे रोगी बचजावे)

रोगीकेलक्षण ।

रोगोयस्यास्तिरोगीस सचिकित्स्यस्तुयादृशः ।

यादृशश्चाचिकित्स्योपिवक्ष्यमाणोनिशम्यताम् ॥

अर्थ—अब चिकित्साके दूसरे पादका अर्थात् रोगीके लक्षण वर्णन करते हैं जैसे कि, जिसके रोग हुआहो वो रोगी कहलाता है, तहां जैसे रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये और जैसे कि, चिकित्सा नहीं करनी उन दोनोंके लक्षण में आगे कहताहूं उनको सुन ॥

चिकित्साकेयोग्यरोगी ।

निजप्रकृतिवर्णाभ्यांयुक्तः सत्वेन चक्षुषा ।

चिकित्स्योभिपजारोगीवैद्यभक्तोजितेन्द्रियः ॥

अर्थ—जो रोगी अपने प्रकृति, वर्ण, धैर्य, बल और नेत्र, इनकरके युक्त है तथा जो वैद्यका भक्त और जितेन्द्री है, वो वैद्यको चिकित्सा करनेके योग्य है ॥

आयुष्मान् सत्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि ।

चिकित्स्योभिपजारोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥

अर्थ—जो रोगीदीर्घायु, धैर्ययुक्त, साध्य, द्रव्यवान्, और वैद्यकी आज्ञा पालन करनेवाला एवं आस्तिक ऐसे रोगीकी चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये ॥

आढ्योरोगीभिपगवश्याज्ञापकः सत्ववानपि ।

वैद्यशास्त्रेचविश्रब्धः कृतज्ञः पथ्यकारकः ॥

अर्थ—जोरोगी धनवानहो, वैद्यके वशीभूत, अपनीप्रकृतिको यथार्थ कहने वाला धैर्यवान् तथा चिकित्सा और शास्त्रमें विश्वासरखने वाला उपकारका माननेवाला और पथ्य करनेवाला ऐसा रोगी उत्तम जानना ॥

रोगीकेगुणचतुष्टय ।

स्मृतिनिर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापिच ।

ज्ञापकत्वं चरोगाणामातुरस्य गुणाः स्मृताः ॥

अर्थ—स्मरणवान्, वैद्यकी आज्ञाका पालन करनेवाला, निर्भय और अपने रोगको वैद्यको बतानेवाला, ये चारगुण रोगीके हैं ॥

उत्तमरोगी ।

प्राज्ञोरोगेसमुत्पन्ने बाह्येनाभ्यन्तरेणवा ।

कर्मणालभतेशर्म शास्त्रोपक्रमणेनवा ॥

अर्थ—बुद्धिमान् रोगी रोग उत्पन्न होतेही बाहरके यत्नसे अथवा भीतरके यत्नसे कल्याणको प्राप्तहोताहै, अथवा शास्त्रोपक्रम (चीरना फाड़नाआदि) से कल्याणको प्राप्तहोताहै तात्पर्य यह है कि, चतुररोगी रोगको प्रगट होतेही बाहर भीतरकी चिकित्सा अथवा चीरना फाड़नेआदिसे तत्काल उसे नष्टकर सुखी होता है ॥

मूर्खरोगी ।

वालस्तु खलुमोहाद्वा प्रमादाद्दानबुध्यते ।

उत्पद्यमानं प्रथमं रोगंशत्रुमिवाबुधः ॥

अर्थ—बाल (मूर्खरोगी) मोहवश अथवा प्रमादसे उस उत्पन्न पदु रोगको नहींजानता, जैसे मूर्खमनुष्य प्रगटहूए अपने शत्रुको नहींजानता ॥

अग्राहिप्रथमंभूत्वारोगः पश्चाद्विवर्द्धते ।

सजातमूलोमुष्णातिबलमायुश्च दुर्मतेः ॥

अर्थ—प्रथम रोग अग्राह्यहोकर वीरेर बढता है जब वो जडबद्ध होजाता है तब इस दुर्बुद्धिकी बल और आयुको हरणकरे है ॥

न मर्त्या लभते श्रद्धां तावद्यावन्नपीड्यते । पीडितस्तु
मर्ति पश्चात् कुरुते व्याधिनिग्रहे । अथ पुत्रांश्चदारांश्च
ज्ञातींश्चाहूय भापते । सर्वस्वेनापि मे काश्चिद्विपगानीय-
तामिति । तथाविधं च कः शक्तो दुर्बलं व्याधिपीडितम् ॥
कृशं क्षीणेन्द्रियं दीनं परित्रातुं गतायुषम् । सत्रातारम-

नासाद्य वालस्त्यजति जीवितम् । गोधालाङ्गूलवद्धे वा
कृष्यमाणा वलीयसा । तस्मात्प्रागेव रोगेभ्यो । रोगेषु
तरुणेषु वा । भेषजैः प्रतिकुर्वीत यद्दृष्टेत्सुखमात्मनः ॥

अर्थ—जबतक यह प्राणीदुखीनहीं होता तबतक वैद्य और औषधीमें श्रद्धा नहीं लाता । और जो रोगोंसे पीड़ितहुआ कि, फिर रोगनाश करनेमें बुद्धि करता है । तब अपने पुत्रोंको स्त्रियोंको और अपने कुटुंबके मनुष्योंको बुलायके उनसे कहता है कि, मेरा सर्वस्वभीदेकर वैद्यको लाओ [और जैसेहो तैसे मुझको बचाओ मैं तुम्हारीशरणहूँ अबके बचगयातो आपलोगोंका उपकार जन्मभर नहीं भूलूंगा] परंतु फिर उस असाध्य दुर्बल कृश, क्षीणन्द्रिय, दीन और मरणासन्न रोगीके बचानेको कौनसामर्थ्य है । वस, इसीप्रकार पुकारता २ अपने बचाने वालेको न प्राप्तहो कर यह मूर्खरोगी अपने प्राणोंको त्यागदेता है । जैसेगोहकी पूँछ बँधीहुई ही और वो जब चले उसी वक्त वली मनुष्य उसको खींचलेता है इसप्रकार यमराज इसप्राणीको खींचलेता है । अतएव यदि अपने आत्माको सुख चाहैतो रोगों से प्रथमही अथवा तरुणरोगोंमेंही औषधद्वारा उस रोगको शांति करना चाहिये ॥

त्याज्यरोगी ।

चंडः साहसिकोभीरुःकृतघ्नोव्यग्रएवच । शोकाकुलो-
मुमूर्षुश्चविहीनकरणैश्चयः ॥ वैरवैद्याविदग्धश्च श्रद्धाही-
नश्च शंकितः । भिषजामविधेयश्च नोपक्रम्यभिषग्विधः ।
एतानुपाचरन् वैद्योब्रह्मन् दोषानवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो अत्यंतक्रोधी साहसी (अर्थात् विनाविचारे करनेवाला) डरपनेवाला कृतघ्न (वैद्यके उपकारको न माननेवाला) व्यग्र (व्या-
बुल) शोकार्त, मरनेकी इच्छा करनेवाला गतेन्द्री (जिसकी इन्द्रि-
योंकी शक्ति नष्टहो गईहो) वैर करनेवाला वैद्यपनेका अभिमान रख-
नेवाला, अविश्वासी और शंका रखनेवाला स्वतः औषधका जाननेवाला
और वैद्यके स्वाधीन न रहनेवाला इत्यादि गुणवाले रोगीकी चिकित्सा
करेतो, वैद्यको अनेक दोष लगते हैं ॥

जारं चौरं तथा म्लेच्छं ब्रह्मघ्नं मत्स्यघातिनां द्विष्टारं ग्रामकू-
टं च वद्धकं मांसविक्रिणम् । एते सुव्याधिना अस्तान् कुर्या-
च्छ मनक्रियाम् । ते पां जीवाप्ति संजाता द्वैद्यो भवति पापभाक् ॥

अर्थ—जार (परस्त्रीगामी वा रंडीवाज) चौर म्लेच्छ ब्रह्महत्यारा मछ
लियोंको मारनेवाला (धीवर) ग्रामकूट (गामको दुखदाई) वद्धक (जीवोंको
बांधनेवाला) और मांसका बेचने वाला ऐसे प्राणी यदि रोगी होवेतो
उनको वैद्य औषध न देवे, क्योंकि यदि इन प्राणियोंको औषध देनेसे
प्राणवचने पर ये जो हत्या आदि पातक करेंगे वो पाप वैद्यको लगेगा ॥

भैषज्यलक्षण ।

वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ।

तद्यादृशमवश्यं स्याद्रोगघ्नं तादृशं भवे ॥

अर्थ—अब चिकित्साके तीसरे पादका अर्थात् औषधके लक्षण कहते
हैं । जिससे वैद्य रोगहरणकरे उस द्रव्यको औषध कहते हैं वो रोगनाश-
क औषध वैद्यको जैसी लेनी चाहिये उसके लक्षण कहते हैं ॥

उत्तम औषध ।

प्रशस्तदेशसंजातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥ अल्पमात्रं व-

हुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमधिकं-

नविकारियत् ॥ समीक्ष्य कालेदत्तं च भेषजं स्याद्दृणावहम् ॥

अर्थ—उत्तम स्थानमें प्रगट और शुभदिनवट्टी सुदृत्तमें उखाड़ी गई
अल्पमात्र (थोड़ी दी जावे) और बहुतगुण दिखावे, तथा यथायोग्य गंध
वर्ण और रसकरके युक्त घातादि दोषोंके नाशकरनेवाली, तथा जो ग्लानि
और अधिक अवगुणकारी नहोवे, तथा रोगोंको विचारके तथा सम-
यपरदानी एसी औषध परमगुणदायक होती है ॥

औषधके चारगुण ।

बहुतातत्र योग्यत्वमनेकविधकल्पना ।

सम्पञ्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणां गुण उच्यते ॥

अर्थ-बहुतातत्रयोग्यत्व (रोगानुसारी) अनेक विधि कल्पना अर्थात् जिसकी कल्पना अनेक प्रकारसे होवे और संपत्ती (रसादि संपत्ति) ये चारगुण द्रव्यों के कहे हैं ॥

प्रसंगवश औषधोंके भेद चरकसे लिखते हैं ।

त्रिविधऔषध ।

त्रिविधमौषधमिति । दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं स-
त्त्वावजयश्च ॥

अर्थ-औषध तीनप्रकारकी है जैसे कि १ दैवव्यपाश्रय २ युक्तिव्यपा-
श्रय ३ सत्त्वावजय अब इनके पृथक् २ लक्षण कहते हैं ॥

दैवव्यपाश्रय ।

तत्रदैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधिमणिमङ्गलनियमप्रायश्चित्तो-
पवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि ॥

अर्थ-तहां मंत्रजाप औषधी, धारण, मणियोंका धारण, मंगलकर्म,
(पुण्याहवाचन आदि)नियमधारण, प्रायश्चित्तकरण, उपवासादि व्रतधारण,
स्वस्तिवाचन, देवगुरुवृद्धोंकी प्रणाम करना और तीर्थोंमें गमन ये सब
दैवव्यपाश्रय औषध कहलाती हैं ॥

युक्तिव्यपाश्रय ।

युक्तिव्यपाश्रयंपुनराहारौषधद्रव्याणां योजना ॥

अर्थ-युक्तिव्यपाश्रय औषध वो है जो युक्तिपूर्वक भोजनादिक और
औषध आदि द्रव्योंकी योजना करना ॥

सत्त्वावजयः ।

सत्त्वावजयःपुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः ॥

अर्थ-सत्त्वावजय औषधी वो है जैसे दुष्टकर्मसे अपने मनको रोकके
उत्तम शुभकर्ममें लगाना अब औरभी औषधोंके भेद कहते हैं ॥

शरीराश्रितत्रिविधऔषधी ।

शरीरदोषप्रकोपेत्तलुशरीरमेवाश्रित्यप्रायश्चित्त्रिविधमौष-
धमिच्छन्ति अन्तःपरिमार्जनं बहिःपरिमार्जनं शस्त्रप्रणि-
धानं चेति ॥

अर्थ—देहमें दोषोंके कोप होनेसे वो दोष शरीरके आश्रित होकर वैद्य-
प्रायः त्रिविध औषधकी इच्छा करते हैं, जैसे १ अंतःपरिमार्जन, २ बहिः
परिमार्जन ३ शस्त्रप्रणिधान, अब इन प्रत्येकके लक्षण आगे पृथक् २ कहते हैं॥

अंतःपरिमार्जन ।

तत्रान्तःपरिमार्जनं यदंतःशरीरमनुप्रविश्यौषधमाहारजा
तव्याधीन् प्रतिमार्ष्टि ।

अर्थ—तहां जो औषध शरीरके भीतर प्रवेशकर भोजनजनित व्या-
धियोंको दूर करे उसको अंतः परिमार्जन औषध कहते हैं उदाहरण—जैसे
काय, चूर्ण, गुटिका, रस, पाक आदि जानने ॥

बहिःपरिमार्जन ।

यत्पुनर्बहिःस्पर्शमाश्रित्याभ्यंगस्वेदप्रदेहपरिपेकोन्म-
र्दनाद्यैरामयान् प्रमार्ष्टि तद्बहिःपरिमार्जनम् ।

अर्थ—जो औषध बाहर त्वचाके स्पर्शके आश्रित हो उबटना, पसीने
निकालना, तरडा देना, मालिश करना इत्यादि कर्मद्वारा जो रोगोंको
नष्ट करे उसे बहिःपरिमार्जन औषध कहते हैं, उदाहरण—जैसे तैलका
लगाना, लेपकरना, अंजन, मंजन आदिजानना ॥

शस्त्रप्रणिधानम् ।

शस्त्रप्रणिधानंपुनश्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनोत्पाटन
प्रच्छन्नसीवनैषणक्षारजलौकाश्चेति ।

अर्थ—शस्त्रप्रणिधान चिकित्सा जैसे छेदन, भेदन, व्यधन, दारण
लेखन, पाटन, प्रच्छन्न, सीवन, एषण, क्षार और जलौका आदिकर्म जो
अष्टविधशस्त्रकर्माध्याय और क्षारकर्म तथा जलौकावचारण अध्यायमें
लिखआये हैं वो जानने ।

त्रिविधऔषधी ।

किंचिदोषप्रशमनं किंचिद्धातुप्रदूषणम् ।

स्वस्थवृत्तौ हितं किञ्चिद्द्रव्यं त्रिविधमुच्यते ॥

अर्थ—द्रव्य तीनप्रकारकी है कोई दोषनाशक, कोई धातुको दूषणकर्ता
और कोई स्वस्थवृत्ति अर्थात् आरोग्यप्राणीको हितकारी ॥

जंगमादि भेदसे त्रिविध औषध ।

तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जांगमौद्भिदपार्थिवम् ।

अर्थ—फिर वो पूर्वोक्त द्रव्य तीनप्रकारकी है जैसे जंगम, औद्भिद (स्थावर) और पार्थिव ॥

जंगमद्रव्य ।

मधूनिगोरसाः पित्तं वसामज्जासृगामिपम् ।

विण्मूत्रं चर्मरेतोऽस्थिस्नायुरंगं खुरानखाः ।

जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशालोमानिरोचना ॥

अर्थ—सहत, गोरस (दूध, घी) पित्ता (मोर, मछली, आदिका पित्ता) वसा (चर्बी) मज्जा, रुधिर, मांस, विष्टा, (गोबर, लीद) मूत्र, चाम, वीर्य (मगर आदिका) हड्डी, स्नायु, अंग, खुर और नख (नाखून) तथा केश (बाल) लोम (रुआं) और गोलोचन ये जंगम (पशु, पक्षी, मनुष्यादि) के लियेजाते हैं, ये जंगम द्रव्य जानना ॥

भौमद्रव्य ।

सुवर्णसमलाः पंचलोहाः सप्तिकतासुधा ॥ मनः शिलालेमण-

योलवणं गैरिकाञ्जने । भौममौषधमुद्दिष्टं-

अर्थ—सुवर्ण और अपने २ मल अर्थात् कीटीसहित पांचों लौह, धूल, चूना, मनशिल, हरताल, मणी, निमक, गेरू और सुरमा इत्यादि भौम औषध अर्थात् पृथ्वी संबंधी औषध जाननी ॥

औद्भिदंतुचतुर्विधम् ।

वनस्पतिर्वीरुधश्च वानस्पत्यस्तथौषधिः ॥

अर्थ—औद्भिद अर्थात् स्थावरसंबंधी औषध चारप्रकारकी है जैसे, वनस्पति, वीरुध, वानस्पत्य और औषधी इन प्रत्येकके लक्षण आगे कहते हैं ॥

फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यफलैरपि ।

औषध्यः फलपाकान्ताः प्रतनिर्वीरुधः स्मृताः ॥

अर्थ—जिनमें केवल फलही लगते हैं फूल नहीं लगते उनको वनस्पति कहते हैं, जैसे गूलर, पीपर, बटआदि । और जिनमें फल फूल दोनों लगे

उनको वानस्पत्य कहते हैं, ऐसे आम, जासुन, आदिके वृक्ष । और जो फलके आनेसे पककर नष्ट हो उनको औषधी कहते हैं, जैसे जों, गेंहूँ चना आदि । और जो वेलके माफिक प्रतान वाली हैं उनको वीरुध कहते हैं, जैसे गिलोय, पान, आकाश्वेल आदि । कोई औषधके पांच-भेद कहता है वो हम इसके निघंट भागमें लिखेंगे ॥

औद्भिदगण ।

मूलत्वक्सारनिर्यासनाड्यःस्वरसपल्लवाः । क्षाराक्षीरंफलं
पुष्पंभस्मतैलानिकंटकाः । पत्राणिशुद्धाकन्दाश्चप्ररो-
हाश्चौद्भिदगणः ॥

अर्थ-तहां जड, त्वचा, सार, गोंद, नाडी, स्वरस, नवीन पत्ते, क्षार, दूध, फल, फूल, भस्म, तेल, काटे, पत्ते, शुद्ध (कली) कंद और प्ररोह (अंकुर) ये औद्भिद गण हैं अर्थात् वृक्षादिकोंसे इतनी वस्तु ग्रहण करी जाती हैं ॥

उद्भिदजऔषधोंकीगणना ।

मूलिन्यःषोडशैकोनाःफलिन्योविपरीतकाः । महास्ने-
हाश्चचत्वारःपञ्चैवलवणानिच ॥ अष्टौमूत्राणिसंख्याता-
न्यष्टावेवपर्यासिच । शोधनार्थाश्चपट्टवृक्षाःपुनर्वसुनिद-
र्शिताः ॥ यएतान्वेत्तिसंयोजुं विकारेषुसवेदविव ॥

अर्थ-जडवाली रूखडी मुख्य १६ हैं, फलवाली १९ हैं, महास्नेह हैं, पांच प्रकारके निमक हैं। आठप्रकारके मूत्र, आठप्रकारके दूध और शोधन करनेके अर्थ छः वृक्ष हैं, ये पुनर्वसु आश्रयने कहे हैं । जो इनको विकारोंमें देना जानता है वो आयुर्वेदका ज्ञाता है ऐसा जानना । इन सबका खुलासा चरकके प्रथमाध्यायमें लिखा है सो लेना ॥

औषधज्ञानकोदुर्ज्ञेयत्व ।

ननामज्ञानमात्रेणरूपज्ञानेनवापुनः ।

औषधीनांपरांप्राप्तिकश्चिद्वेदितुमर्हति ॥

अर्थ-औषधोंका यथार्थज्ञान केवल नामज्ञानमात्रसे, अथवा रूप-ज्ञान करकेही नहीं होता किंतु रूप और नाम दोने जाननेसे होता है ॥

औषधोक्तेरूपऔरयोगज्ञातावैद्यकीप्रशंसा ।

योगज्ञःस्तस्यरूपज्ञस्तासांतत्वविदुच्यते ।

किंपुनर्योविजानीयादौषधीःसर्वदाभिपक् ॥

अर्थ—जो वैद्य औषधोक्ते योगकी और उनके रूपको जानता है उसको तत्ववेत्ता कहते हैं और जो सदैव औषधोंको जानता रहताहै उस वैद्यका तो क्या कहना है ॥

तथावैद्यकोउत्तमत्वकथन ।

रूपतासांतुयोविद्यादेशकालोपपादितम् ।

पुरुषंपुरुषंवीक्ष्यसविज्ञेयोभिपक्तमः ॥

अर्थ—देशकालोपपादित औषधोक्ते रूपको प्रत्येक पुरुषोंके प्रति जो देना जानता है वह संपूर्ण वैद्योमें श्रेष्ठ है ॥

ज्ञाताज्ञातऔषधोक्तेगुणागुण ।

यथाविषं यथाशस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।

तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतंयथा ॥

अर्थ—जैसे विष, जैसेशस्त्र, जैसे अग्नि, जैसे वज्रपात प्राणीके प्राणहारक होते हैं । उसीप्रकार विनाजानी औषध प्राणोंको हरण करती है और जो जानी हुई औषध है वो अमृतके तुल्य प्राणदायक जाननी ॥

अज्ञात और दुष्प्रयोजितऔषधकीनिंदा ।

औषधं ह्यनविज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः ।

विज्ञातं वापि दुर्युक्तं युक्तिवाह्येन भेषजम् ॥

अर्थ—जो औषध नाम,रूप और गुण इन तीनोंकरके विना जानीहुई है अथवा जो इन तीनों प्रकार करके जानीभी है, परंतु अविधिसे उसका प्रयोग करा है, वो युक्तिरहित औषध अपना गुण नहीं करे ॥

युक्तऔरअयुक्तऔषधकेगुणागुण ।

योगादपिविषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् ।

भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम् ॥

अर्थ—तीक्ष्ण, विषभी योगके साथ उत्तम औषधीरूप होजाता है,

और उत्तम औषधीभी दुष्टयुक्तीके साथ देनेसे घोर विषके समान प्राण-हरण कर्ता होती है ॥

युक्तिपूर्वकऔषधकोमुख्यत्व ।

तस्मान्नभिषजायुक्तं युक्तिवाह्येन भेषजम् ।

धीमता किंचिदादेयं जीवितारोग्यकाक्षिणा ॥

अर्थ—इसीसे जीवन और आरोग्यकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान रोगीको युक्तिवाह्य औषधका प्रयोग कदाचित् नहीं करना चाहिये । अर्थात् मूर्खवैद्यकी औषधका ग्रहण न करे ॥

मूर्खवैद्यकेहाथकीऔषधनलेना ।

कुर्यान्निपतितं मूर्ध्नि सशेषं वासवाग्निः ।

सशेषमातुरं कुर्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ॥

अर्थ—रोगी अपत्तेमस्तकपर वचपात गिरना अंगीकार करले, रोगयुक्त रहना अंगीकार करलेवे, परंतु मूर्खवैद्यकी अनुमतीसे दी हुई औषधको कदाचित् अंगीकार न करे ॥

अज्ञानीवैद्यसेभाषणकरनेमेपापकथन ।

दुःखिताय शयानाय श्रद्धानाय रोगिणे । यो भेषजम-
विज्ञाय प्राज्ञमानी प्रयच्छति ॥ तस्य च मृत्युदूतस्य
दुर्मतेस्त्यक्तधर्मणः । नरो नरकपातीस्यात्तस्य संभाष-
णादपि ॥

अर्थ—दुखिया, पड़ेहुए, श्रद्धावाले रोगीको जो पडिताभिमानी वैद्य विना जानी औषधको देता है, उस मृत्युके दूत दुष्टमतिवाले अधर्मीके संभाषण (बोलने) से यह प्राणी नरकगामी होता है । अर्थात् ऐसे दुष्टवैद्यसे भाषणभी नकरे, परंतु इसवातको कौन देखता हो भला विनाबुलाये और थोड़ेसेमे खुसी होने वालेभी तो येही वैद्य है, भलेही प्राणचलेजावे परंतु धनतो बचजायगा धन्यरे दुष्ट समय तू धन्य है ॥

शरणागतरोगीसे द्रव्यादिलेनेकानिषेध ।

वरमाशीविषविषं कथितं ताम्रमेव वा । पीतमत्यग्निसन्त-
ता प्राशितावाप्ययोगुडाः ॥ नतु श्रुतवतावेशंविभ्रता शर-

णागतात् । ग्रहीतमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥

अर्थ—सर्पका हलाहल विष पीलेना, औटाहुआ ताम्र पीलेना तथा अभिसे दहकते हुए लोहेके गोलको खायलेना उत्तम है, परंतु पंडित वेपधारी होकर शरणागत रोगीसे अन्नजल अथवा द्रव्य ग्रहण करना कदाचित् उचित नहीं है ॥

मूर्खवैद्यसेयत्नकरानानिषेध ।

वरं दुस्यौ वरंव्याले वरं यादोविभीषणे । सागरे जीवनो-
त्सर्गः सुघोरे वापि धन्वनि ॥ नाधीतशास्त्रे नाभ्यस्ते
कर्मण्यखिलवैरिणि । न कार्यं दुर्मतौ पापे भिपजात्म-
समर्पणम् ॥

अर्थ—चौरके हाथसे, हिंसकजीव (सिंह व्याघ्रादि) से, मगरआदि जलके जीवोंसे समाकुल घोर समुद्रमें अथवा घोर मारवाडकी भूमिमें, अपने प्राणोंको त्यागदेना परमोत्तम है, परंतु विना शास्त्रपढेहुए और विना अभ्यस्त कर्मवाले, सबके वैरी, दुर्बुद्धी, पापात्मा वैद्यके, हस्तगत अपना धात्म-सर्पण करना कदापि उचित नहीं है ॥

वैद्यकोवैद्यकेगुणसीखनेकीआवश्यकता ।

भिपक्वुभूर्धुर्मतिमानतः स्याद्गुणसम्पदि ।

परं प्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदःस्याद्यथा नृणाम् ॥

अर्थ—एतएव इत्यादि उक्त कारणोंसे बुद्धिमान प्राणी वैद्यहोनेकी इच्छा रखनेवाला वैद्य गुणसंपत्तिमें परम यत्नवर्क स्थितहोवे, क्योंकि यह वैद्य प्राणियोंको प्राणका देनेवाला है ॥

उत्तमऔषधऔरवैद्य ।

तदेवमुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।

सचैव भिपजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

अर्थ—वही औषधी उत्तम है जो रोगियोंको आरोग्यकरे । और वही वैद्योंमें श्रेष्ठ है जो रोगियोंको रोगोंसे छुडावे ॥

उत्तमप्रयोगऔरउत्तमवैद्यकीप्रशंसा ।

सम्यक्प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्यातिकर्मणाम् ।

सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिपत्तमम् ॥

अर्थ—उत्तम प्रयोग संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धिको प्रगटकरै है और सर्व-
गुणयुक्त वैद्यको कर्मसिद्धि विख्यात करती है ॥

परिचारककेगुण ।

उपचारज्ञतादाक्ष्यमनुरागंचभर्त्तारि ।

शौचंचेतिचतुष्कोऽयंगुणः परिचरेजने ॥

अर्थ—अब चिकित्साके चतुर्थपाद अर्थात् परिचारक (सेवक) के गुण लिखते हैं—जैसे कि, उपचारज्ञता (अर्थात् रोगीकी सेवाके नियमोंका जानने वाला,) चतुर और अपने स्वामी (मालिक) में अनुराग, तथा पवित्रता ये चारगुण सेवकके हैं । तहाँ चारगुण वैद्यके, चारगुण रोगीके, चारगुण औपधके और चारगुण सेवकके ये संपूर्ण सोलह गुण चिकित्साकी षोडश कला कहलाती हैं । अर्थात् चिकित्साके वैद्य आदि चार पादहैं और एक एक के चारगुण ऐसे सोलहगुण सोलह कला कहलाती हैं ॥

परिचारककेलक्षण ।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्वलवान्युक्तोव्याधितरक्षणे । वैद्यवाक्य-
कृदश्रांतोयुज्यतेपरिचारकः ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षो
बुद्धिमान्परिचारकः ॥

अर्थ—स्नेह रखनेवाला, अनिदित, चलवान्, रोगीके संरक्षण करनेमें चतुरवैद्यकी आज्ञापालन करनेवाला, निरंतर परिश्रम करते २ न धके, कृपालु, शुद्ध, कुशल और बुद्धिमान् ऐसा सेवक रोगीके समीप रहना चाहिये ।

अब चिकित्साके चारों पैर और शोडष कलाओंको कहकर चिकि-
त्साके अंग कहते हैं । तहाँ रोगी, दूत, वैद्य, सेवक और उत्तम औप-
धोंके लक्षणक अब शेषोंको कहते हैं ॥

आयुविचार ।

भिपगादौपरीक्षितरुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ।

ततः आयुपिविस्तीर्णैचिकित्सासफलाभवेत् ॥

अर्थ-वैद्य प्रथम रोगीके आयुकी परीक्षा करे कारण यह हैकि, यदि आयु बड़ी होयगी तो चिकित्साभी सफल होतीहै, अन्यथा निष्फल होतीहै, परंतु दीर्घायुके लक्षण इस बृहन्निषण्डुरत्नाकरकी प्रथम जिल्दमें अर्थात् शारीर भागमें लिख आयेहैं, इस वास्ते यहाँपर नहीं लिखे हैं ॥

आयुकाप्रमाण ।

जलजानवलक्षास्तु दशलक्षास्तुपक्षिणः । रुद्रलक्षास्तु-
कृम्याद्यास्थावराणांचविंशतिः ॥ त्रिंशच्छक्षंगवादीनां
चतुर्लक्षास्तुमानवाः ॥

अर्थ-जलज (जलमें होनेवाले) ९००००० नौलाख है, पक्षी १०००००० दशलख हैं, कृमि (कीड़े) ११००००० ग्यारहलाख है स्थावर (वृक्षादिक) योनि २०००००० बीस लाख हैं, गवादि (अर्थात् गौ भैसवकरी आदि) योनि ३०००००० तीसलाख हैं, और मनुष्य योनि ४०००००० चार लाख हैं ॥

शतायुःपुरुषश्चैववृक्षाणांतुसहस्रकम् । द्वात्रिंशश्चतुरंगणां
शतंकुजरसिंहयोः ॥ व्याघ्राणांचचतुःपष्टिः सहस्रंफणि-
काकयोः । जम्बुकानांपोडशाब्दं शुनांद्रादशवत्सरम् ॥
चतुर्विंशतिरुक्तंगोमहिष्योः सूकरस्यच । अजानांद्रा-
दशप्रोक्तंमत्स्यानामयुतंतथा ॥ कुकुटानववर्षाणि मृगा-
णांविंशतिर्भवेत् । पक्षिणांदशवर्षाणिखराणांद्रादशद्व-
यम् ॥ चतुर्विंशतिरुष्ट्राणां रासभानांतथैवच ॥

अर्थ-पुरुष (मनुष्य) की १०० सौवर्षकी आयु है, वृक्षोंकी १००० हजार वर्षकी, घोड़ोंकी ३२ बत्तीस वर्षकी है । सिंह और हाथीकी उमर १०० वर्षकी है बघेरे की आयु ६४ वर्षकी है सर्प (साँप) और कौआ इनकी १००० वर्षकी आयु है । स्वार (गौदड़) की आयु १६ वर्षकी है । कुत्तेकी उमर १२ वर्षकी है । गौ भैस और सूअरकी उमर २४ वर्षकी है, बकरी की उमर १२ वर्ष की, मछली की उमर १०००० दशह-

जार वर्षकी है, मुरगेकी ९ वर्ष की, मृग (हिरण) की उमर २० वर्ष की है, पक्षि (तोता मॅना चिडिया आदि) की उमर दशवर्ष की है, गधेकी उमर २४ वर्ष की है, कंटकी उमर २४ वर्ष की और खिच्चरकी आयु २४ वर्ष की जाननी, ये इनकी परमायु है, परंतु कोई २ इस्से अधिकभी जीते हैं ॥

अथद्रव्यम् ।

सर्वैद्रव्यमपेक्ष्यंतेरोगीप्रभृतयोयतः

विनावित्तंनभैपज्यंचिकित्सांगततोधनम् ॥

अर्थ-रोगीसे आदिले संपूर्ण द्रव्यकी इच्छा करते है, विना धनके औषधी नहीं हो सकती, इसीसे चिकित्साका मुख्य अंग धनहै ।

शिष्य-रोग और आरोग्य किसको कहते है ॥

गुरु-दोषोकी विषमावस्थाको रोग और समानावस्थाको आरोग्य कहते हैं जैसे वाग्भटमें लिखा है ॥

व्याधेर्लक्षणंवाग्भटे ।

रोगस्तुदोषवैपम्यंदोषसाम्यमरोगता ।

रोगाद्दुःखस्यदातारोज्वरप्रभृतयस्तुते ॥

अर्थ-दोषोकी विषमता (समान न रहनेको) रोग कहते है और समाना वस्थाको आरोग्य कहते है तहां दुखदाई रोग वे ज्वरप्रभृति अर्थात् ज्वरादिक जानने ॥

अथातोव्याधिसमुद्देशीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम व्याधिसमुद्देशीयाध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

द्विविधा व्याधयःशस्त्रसाध्याःस्नेहादिक्रियासाध्याश्च । तत्र शस्त्रसाध्येषु स्नेहादिक्रिया न प्रतिपिच्यते । स्नेहादिक्रियासाध्येषु शस्त्रकर्म न क्रियते ॥

अर्थ-इस संसारमें दोप्रकारकी व्याधि है एक शस्त्रसाध्य (शस्त्रकर्मसे अच्छी होनेवाली है दूसरी स्नेहादिक्रियासाध्य, अर्थात् घृत तैल काय

चूर्णादि से अच्छी होनेवाली तहां अष्टविध शस्त्रसाध्यव्याधियोंमें स्नेहादिक्रिया करना सिद्धिकारक नहीं होती, जैसे भगंदरादि रोग चीरने-फाड़नेयोग्य है उनपर तैलादि लगानेसे कुछ फायदा नहींहोता । और जो स्नेहसाध्य व्याधि है उनपर शस्त्रकर्म न करे, क्योंकि तैलकाथादिसे अच्छे होसकें ऐसे वातव्याधि और ज्वरादिरोगमें चीरना फाड़ना केवल दुःखदायक हैं ॥

**अस्मिन् पुनः शास्त्रे सर्वतन्त्रसामान्यात्सर्वेषां व्याधीनां
यथा स्थूलमवरोधः क्रियते ॥**

अर्थ—तहां शल्यतंत्रमें शस्त्रक्रियाकोही मुख्यत्व है, स्नेहादि क्रियाको नहीं है इसशंकासे दोनो क्रियाओका अधिकार दिखाते है । इस सौश्रत शल्यतंत्रमें शालाक्यादि तंत्रोको समान होनेसे संपूर्ण व्याधियोंका स्थूल-दृष्टिकरके ग्रहण किया है ॥

**प्रागभिहितं तद्दुःखसंयोगो व्याधिरिति तच्च दुःखं त्रिवि-
धमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकमिति तच्च सप्त-
विधे व्यधावुपनिपतति ॥**

अर्थ—इस सुश्रुतकी प्रथमाध्यायमें लिखआये हे कि, शरीरी और शरीरका अथवा शरीर और मनके दुःख संयोगको व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं । तहां वो दुःख तीनप्रकारका है १ अध्यात्मिक २ आधिभौतिक, ३ और आधिदैविक यही त्रिविधदुःख सात प्रकारकी व्याधियोंमें विभा-जित किया है अर्थात् सातप्रकारसे बांटा है ॥

**ते पुनः सप्तविधा व्याधयः । तद्यथा-आदिवलप्रवृत्ता-
जन्मवलप्रवृत्ता दोषवलप्रवृत्ताः संघातवलप्रवृत्ताः का-
लवलप्रवृत्ताःदैववलप्रवृत्ताःस्वभाववलप्रवृत्ता इति ॥**

अर्थ -वो सातप्रकारकी व्याधि इसप्रकारसे है जैसे, १ आदिवलप्रवृत्त,

१ आदिशब्दसे स्वेदन, वमन, विरेचनादि जानने । २ आत्मशब्दसे मनररके सहित शरीरका ग्रहणहे । वातपित्त और कफसे उत्पन्न शरीरमें होनेवाली तथा रजोगुण तमोगुणसे होनेवाला व्याधियोंको आध्यात्मिक कहते है । ३ भूतप्राणियोंको भूतों-में अधिकारकरके जा कर्ते उसको अधिदैव कहते है । ४ देव, असुर, भूत, प्रेत, इत्यादिमें होनेवाले रोगोंको अधिदैव कहते है ॥

२ जन्म बलप्रवृत्त, ३ दोषबलप्रवृत्त, ४ संघातबलप्रवृत्त, ५ कालबलप्रवृत्त, ६ दैवबलप्रवृत्त और ७ स्वभावबलप्रवृत्त, अब इन प्रत्येकका वर्णन नीचे करते हैं ॥

तहांआदिबलप्रवृत्तव्याधि ।

तत्रादिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शः प्रभृतयः । तेषुपि द्विविधा मातृजाःपितृजाश्च ॥

अर्थ—तहां पूर्वोक्त सप्तविधव्याधियोंमें जो आदिबलप्रवृत्त व्याधि हैं वह ये हैं जैसे जो दुष्टशुक्र और दुष्टरुधिरसे उत्पन्न होते हैं—ऐसे कोढ़, चवासीर, प्रभृति । वोभी दोप्रकारके हैं—एक माताके रुधिरसे और दूसरे पिताके वीर्यदोषसे जो होते हैं ॥

जन्मबलप्रवृत्तव्याधि ।

जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात्पद्भुजात्यन्धबधिरमूक-मिण्मिणवामनप्रभृतयो जायन्ते । तेषुपि द्विविधारसकृ-तादौहृदापचारकृताश्च ॥

अर्थ—जन्मबलप्रवृत्त वह रोग है जो मातापिताके शुक्रशोणितकी दुष्टीके बिनाभी गर्भावस्थामें माताके दुष्टआहार और आचार करनेसे पांशुरा, जन्मांध, बहरा, गूगा, गिनगिनाके बोलने वाला, बोना आदि रोग होते हैं । वोभी जन्मबलप्रवृत्तरोग दोप्रकारके हैं, एक रसकृत, दूसरे दौहृदके अपचार करनेसे होते हैं ॥

दोषबलप्रवृत्तव्याधि ।

दोषबलप्रवृत्ता य आतंकसमुत्पन्ना मिथ्याहाराचारभवा-श्च तेषुपि द्विविधा आमाशयसमुत्थाः पक्काशयसमुत्थाश्च पुनश्च द्विविधाः शारीरा मानसाश्च त एतआध्यात्मिकाः ॥

अर्थ—दोषबलप्रवृत्त जो व्याधि होती है वो मिथ्या आहार विहारसे होती है, अर्थात् जो घात, पित्त क्षय और रज तमकी शक्तिवरके रोग प्रवृत्त (उत्पन्न) होते हैं, वो दोप्रकारके हैं एक आमाशयसे प्रगट होने वाले, दूसरे पक्काशयसे उत्पन्न होनेवाले, फिर वो आमाशय और पक्काश

१ प्रभृतिशब्दसे प्रमद, क्षय, आदिजानने ।
साम शत्रियोंकी इच्छाको दौहृद कहते हैं ॥

२ गर्भवती माताके चतुर्थादिमा

यसे उत्पन्न होनेवाले रोग दो प्रकारके हैं एकशारीरक अर्थात् शरीरसे उत्पन्न होनेवाले, दूसरे मानसिक अर्थात् मनमें प्रगटहोनेवाले, इन्हीं दोषबलप्रवृत्त रोगोंको आध्यात्मिक कहते हैं ॥

संघातबलप्रवृत्तव्याधि ।

संघातबलप्रवृत्ता ये आगन्तवो दुर्बलस्य बलवद्विग्रहात्तेऽपि द्विविधाः शस्त्रकृता व्यालादिकृताश्च । एतेआधिभौतिकाः ॥

अर्थ—संघातबलप्रवृत्तव्याधि वोहैं जो आगंतुक और दुर्बल मनुष्यका बलवान्से लडना, फिर वो दोप्रकारकी है १ पहली शस्त्रकृत और दूसरी व्यालादि (सर्पादि) कृत, इन्हींको आधिभौतिक व्याधिकहतेहैं ॥

कालबलप्रवृत्तव्याधि ।

कालबलप्रवृत्ता ये शीतोष्णवातवर्षाप्रभृतेनिमित्तास्तेऽपि द्विविधा व्यापन्नर्तुकृता अव्यापन्नर्तुकृताश्च ॥

अर्थ—कालबलप्रवृत्तव्याधि वो है जैसे-शरदी, गरमी, पवन, वर्षा आदि पदार्थोंके निमित्तसे होती हैं वोभी दोप्रकारकी है एक व्यापन्नर्तुकृत, दूसरी अव्यापन्नर्तुकृत ॥

देवबलप्रवृत्तव्याधि ।

देवबलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिशस्तका अथर्वकृता उपसर्गकृताश्च तेऽपि द्विविधा विद्युदशनिकृताः पिशाचादिकृताश्च पुनश्च द्विविधाः संसर्गजा आकस्मिकाश्च ॥

अर्थ—देवबलप्रवृत्त अर्थात् देवशक्तिसे होने वाले रोग वो है जो देव (देवता, गौ, गुरु, सिद्ध, इनसे द्रोहकरने) से होते हैं । तथा अभिशस्तक अर्थात् ऋषियोंके शापदेनेसे, अथर्वकृत (अथर्वणवेद प्रणीत अभिचारिक मंत्रोंके होनेवाले मारण, मोहनादि व्याधि) और उपसर्गज (अर्थात् छूतकेरोग जैसे ज्वरवालेके पास रहनेसे वो ज्वर उटकर दूसरेको लगजाता है इत्यादि) । फिर वो देवबलप्रवृत्त रोगभी

१ ऋतुने इषित होनेसे रोगहोते हैं वो व्यापन्न ऋतुप्रवृत्त कहते हैं । २ और ओ उपम ऋतुमें इषित ओषध गलने सेवनसे होनेवाली व्याधि होती हैं वो अव्यापन्न ऋतुकृत जाननीं ॥

दोमकारके हैं, एक विजली और अशनिर्कृत दूसरा पिशाचादिकृत । फिर इसके दोभेद हैं एकसंसर्गज, दूसरा आकस्मिक ।

स्वभावबलप्रवृत्त ।

स्वभावबलप्रवृत्ताःक्षुत्पिपासाजराभृत्युनिद्राप्रभृतय-
स्तेऽपि द्विविधाः, कालकृता अकालकृताश्च तत्र परि
रक्षणकृताःकालकृता अपरिरक्षणकृता अकालकृता
एते आधिदैविकाः ॥ तत्र सर्वव्याध्यवरोधः ॥

अर्थ-स्वभावबल (अर्थात् प्रकृतिकी शक्तिसे) उत्पन्न होनेवाले ऐसे भूख, प्यास, बुढापा, मौत, निद्राआदि वोभी दोमकारके हैं एक काल-कृत और एक अकालकृत, तहां रक्षाकरने परभीहोय वो कालकृत रोग है और बिना रक्षा करनेसे जो होवे वो अकालकृत जानने । इन्हीको आधिदैविक कहते हैं तहाँ इन्ही आदि बलप्रवृत्तादि सात प्रकारकी व्याधियोंमें संपूर्ण व्याधिमात्र अंतर्गत जाननी ॥

कदाचित् कोई कहे कि, सबव्याधियोंका कैसे इन्हीमें संग्रह होसका है इस वास्ते कहते हैं ॥

सर्वेषाञ्च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं तल्लि-
ङ्गत्वाद्दृष्टफलत्वादागमाच्च तथाहि कृत्स्नं विकारजातं
विश्वरूपेणावस्थितं सत्त्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यन्ते ।
एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितमव्यतिरि-
च्यवातपित्तश्लेष्माणो वर्तन्ते ॥

अर्थ-संपूर्ण व्याधियोंके आदिकारण वातपित्त और कफ हैं । कारण कि,

१ लताके आकार तिरछी गिरे वो बिजली गिरी कहाती है । २ और अग्नि के समान गोला रूप गिरे उसको अशनि अर्थात् (बजपात) कहते है । ३ आदि शब्द-से भूत, मेत, मल्लराससादि जानने । ४ देग्द्रोइकरके मज्जुप्योंके आपसमे मिलनेसे जो महामारी आदि रोग होते है । ५ बिना संसर्गके जो पूर्व जन्मोपार्जित कर्मरके होनेवाले । ६ इससे कालरोगोकी चिकित्सा नही बर्ही ॥

सर्व व्याधिमात्र तल्लिगत्व होनेसे; तथा दृष्टफलत्व होनेसे और शास्त्रप्रमाण होनेसे तथा यह संपूर्णविकार समूह विश्वरूपः करके स्थित है अर्थात् जाग्रत रूपकरके स्थित है । इसीसे यह सत्वगुण, रजोगुणसे पृथक् नहीं है इसी प्रकार यह संपूर्ण विकारजात विश्वरूपकरके स्थित अर्थात् रोगसमूहकरके स्थित पृथक् नहीं है ॥

कोई प्रश्नकरे कि, तीनदोषोंसे आदिवलप्रवृत्तादि अनेक व्याधि कैसे होती हैं तहाँ कहते हैं ॥

दोषधातुमलसंसर्गादायतनविशेषान्निमित्ततश्चैषां विकल्पा भवन्ति ॥

अर्थ—दोष धातु-मल इनके संयोगसे आयतन विशेषसे और निमित्तसे व्याधियोंके अनेक भेद होते हैं ॥

दोषदूष्यसंज्ञालक्षणाकरकेहोतीहै ।

दोषदूषितेष्वत्यर्थं धातुषु संज्ञाक्रियते रसजोऽयं शोणितजोऽयं मांसजोयं मेदोजोऽयमस्थिजोऽयं मज्जजोऽयं शुक्रजोऽयं व्याधिरिति ॥

अर्थ—दोषोंकरके दूषित धातुओंकी संज्ञाकरीजाती है यह रसजन्यव्याधि है, यह रुधिरजन्य है, यह मांसजन्य है, यह मेदाजन्य है, यह अस्थिजन्य है, यह मज्जाजन्य है और यह व्याधि शुक्रजन्य है ॥

१ तल्लिगं कहिये वातादिदोषोंके लक्षण-रूख, अल्प, और स्नेहादिक तथा तोद, दाह और सुजली आदि कार्यजानने । २ दृष्टफलत्व कहिये वातादिकका क्षमन होना प्रत्यक्ष देखाजाताहै । ३ शास्त्रमें भी लिखाहै १२० न्यारहसोबसि व्याधियोंको कार्यभूत वातपित्त और कफही कारण है । ४ विकार इसजगे २३ महदादिक जानने ५ संयोग जैसे । वातादिदोष, रसधातु, मल, मूत्रादिके संयोगसे अतीसारादिरोग होते हैं । वातादिदोष रक्तधातु इनके संयोगसे विद्रधि और रक्तगुल्मादि रोग होते हैं । तथा वातादिदोष और रसधातुके संयोगसे ज्वरादिक रोग होते हैं । रसादि दूष्य और मलमूत्र आदिके संयोगसे बीसप्रकारकी ममह होती है । ६ स्थानभेदसे रोगोंके भेद जैसे सातस्थानमें ६५ मुखरोग हैं । नेत्ररोग ७० इत्यादिजानने १३ निमित्त कहिये वातादिसेभी रोगोंके अनेकभेद हैं—जैसे वातादि ज्वर तीन, सनिपातका एक, दह नतनि, आंगुत्त आठवां इसीप्रकार और भी भेद अनेक जानने ॥

जैसे यह घीसे जलगया तेलसे जलगया, तामसे जलगया, लोहसे जलगया इत्यादि, जैसे घी, तेल, तामा और लोहमें अपि कारण है उसी प्रकार रसरक्तादिजन्य रोगोंमें वातादि दोष कारण हैं ॥

अब चिकित्सा, विशेष विज्ञानार्थ, सुखसाध्यत्वादि कर्मके बोधार्थ प्रत्येक रसादि धातु विकारोंको दिखाते हैं ॥

रसजन्यविकार ।

तत्रान्नाश्रद्धारोचकाविपाकाङ्गमर्दज्वरहृत्लासवृत्तिगौरव-
हृत्पाण्डुरोगमागौपरोधकार्श्य वैरस्याङ्गसादकालबलि-
पलितदर्शनप्रभृतयोरसदोषजा विकाराः ॥

अर्थ—तहाँ अन्नमें अश्रद्धा और अन्नमें अरुचि (नफरत) विपाक, अंगोंमें फूटन, ज्वर, हृत्लास, वृत्ति (पेटभरेके समान) देहमें भारीपना, हृदयरोग, पाण्डुरोग, छिद्रोंका बंद होजाना, कृशता, सुखमें विरसता, अंगोंमें उत्साहरहितपना, विना समय बुढापा और बालोंका सपेदहो-
जाना इत्यादि रसदोषजन्य विकार हैं ॥

रुधिरजन्यविकार ।

कुष्ठविसर्पपिडकामशकनीलिकातिलकालकन्यच्छव्य-
ङ्गेन्द्रलुप्तप्लीहविद्रधिगुल्मवातशोणितार्शोऽर्बुदाङ्गमर्दा-
सृग्दररक्तपित्तप्रभृतयो रक्तदोषजा गुदमुखमेद्रपाकाश्च ॥

अर्थ—कोठ, विसर्प, पिडका, मस्से, निलिका, तिलकालक (तिल) न्यच्छ (लहसन) व्यंग (झाई) इन्द्रलुप्त (जिसमें मूँडके बालजाते रहें प्लीह (तिल्ली) विद्रधि, गोला, वातरक्त, बवासीर, अर्बुद, अंगमर्द, (अंगोंका टूटना) असृग्दर (रक्तप्रदर) और रक्तपित्तआदि ये रुधिर-
दोषजन्यबीमारी हैं । तथा गुदा, मुख और भगलिंगका पकना येभी रुधिरजन्यविकार हैं ॥

मांसदोषजन्यविकार ।

अधिमांसार्बुदाशोऽधिजिह्वोपजिह्वोपकुक्षगलशुण्डिका-
लजीमांससंघातौष्ठप्रकोपगलगण्डमालाप्रभृतयोमांसदोषजाः ॥

अर्थ—अधिमांस, अर्बुद, बवासीर, अधिजिह्व, उपजिह्व, उपकुक्ष,

गलशुंठी, अलजी, मांससंघात, ओष्ठप्रकोप, गलगंड, गंडमाला
आदि मांसदोषज विकार हैं

मेददोषजविकार ।

ग्रन्थि वृद्धिगलण्डावुदमेदोजौष्ठप्रकोपमधुमेहातिस्थो-
ल्यातिस्वेदप्रभृतयो मेदोदोषजाः ॥

अर्थ-गांठ, अंडवृद्धि, गलगंड, अर्शुद, मेदरोग, ओष्ठप्रकोप, मधुमेह,
अतिस्थूल और अतिपर्सानोंका आना आदि मेददोषजविकार हैं ॥

अस्थिदोषजविकार ।

अध्यस्थह्याधिदन्तास्थितोदशूलकुनखप्रभृतयोऽस्थिदोषजाः ॥

अर्थ-अधिक हड्डीका होना, अधिदंत (दांतके ऊपर दांतका आना)
हड्डियोंमें चभकाचलना और हड्डीका दंद तथा कुनख आदि अस्थि-
दोषज विकार अर्थात् ये विकार हड्डीके हैं ॥

मंजादोषजन्यविकार ।

तमोदर्शनमूर्च्छाभ्रमपर्वगौरवस्थूलमूलोरुजङ्घानेत्रा-
भिष्यन्दप्रभृतयो मज्जादोषजाः ॥

अर्थ-अंधकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, स्थूलमूलवाले फोडानका पर्वों
(जोड़ों) में होना, भारीपना, ऊरू (जांघ) और पीडुरी इनमें पीडा,
तथा नेत्राभिष्यंद आदि मज्जादोषजन्य विकार जानने ॥

शुक्रजन्यविकार ।

क्लेन्याप्रहर्षशुक्राश्मरीशुक्र मेदशुक्रदोषादयश्चतद्वोषजाः ॥

अर्थ-नष्टसकता, स्त्रीसंगमें इच्छा न रहना, वीर्यकी पयरी शुक्रमेह,
और शुक्रदोषादिक शुक्रके विकार जानने अर्थात् ये दोष शुक्रके दोषसे होते हैं

मलायतनविकार ।

त्वग्दोषाःसङ्गोऽतिप्रवृत्तिर्वामलायतनदोषाः ॥

अर्थ-कुष्ठसे आदिले त्वचाके विकार, मलमूत्रादिकोंका रुकजाना अथवा
अत्यंत उतरना तथा कान, मुख, नाक, नेत्रआदि मार्गके रुकनेको संग
पेसा कहते हैं ॥

इन्द्रियायतनदोष ।

इन्द्रियाणामप्रवृत्तिरयथाप्रवृत्तिर्वेन्द्रियायतनदोषाः ।
इत्येवंसमासउक्तो विस्तरनिमित्तानि चैषां प्रतिरोगं
वक्ष्यामः ॥

अर्थ—इन्द्रियोंका अपने २ कार्यमें प्रवृत्तनहोना अथवा कुलुका कुलु-
करना ये इन्द्रियायतन दोष हैं । तहां दोषधातु मल संसर्गादि दोष्याधि-
योंके कारण जो पूर्व कहआये तथा आयतनविशेष दूसरा व्याधि होनेका
कारण ये दोनोंको संक्षेपसे कहकर ॥

अब तीसरे निमित्तजन्य कारणको कहते हैं कि निमित्त (वातादि)
कारण जैसे बलधानसे विरोधकरना और मिथ्याप्रयुक्त स्नेहादिक से
होनेवाले अतिसारादिरोगोंको प्रत्येक रोगोंके प्रति पृथक् २ कहेंगे ॥

भवन्ति चात्र ॥

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ।

यत्र सङ्गस्वैगुण्याद्याधिस्तत्रोपजायते ॥

अर्थ—शरीरमें विचरनेवाले कुपित दोषोंका जिस मार्गमें बिगाड
होनेसे रुकेंगे वही रोग उत्पन्न करते हैं ॥

इति ।

चिकित्साविधिकाउपदेश ।

जातमात्रश्चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतयागदः ।

वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥

अर्थ—व्याधि उत्पन्न होतीही उसकी चिकित्सा करे, किंतु यह अल्पहै
क्या बिगाडकरेगी इसप्रकार उपेक्षा न करदेवे । क्योंकि उपेक्षा करनेसे
वह अल्पही व्याधि अग्नि, शत्रु और विषके तुल्य विकार करने वाली
होजातीहै । जैसे अग्निकी चिनगरी घडे २ महलोंको धूक देतीहै, छोटासा
शत्रु काल पायके सर्वनाशकरेहै । एवं थोडासाभी विष प्राणहरण करताहै,
उसीप्रकार अल्पव्याधि प्राणनाश करे है ॥

वैद्यकाकर्तव्य ।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।

एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

अर्थ-व्याधिका भलेप्रकार जानना और उस व्याधिजनित पीडाका नाशकरना यही वैद्यका वैद्यत्वहै किंतु वैद्य आयुका प्रभु नहींहै अर्थात् आयुका मालिक नहीं । परंतु कोई आचार्य इसश्लोकको इसप्रकार लगाते है कि, व्याधिका यथार्थ ज्ञान करना और पीडाकी शांति करनाही वैद्यका वैद्यपना नहींहै, किंतु सौ आगंतु मृत्युओंको हरणकरेहै इसवास्ते वैद्य आयुका प्रभुहै ॥

रोगमादौ परीक्षित ततो नंतरमौपधम् ।

ततः कर्मभिषकु पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

अर्थ-वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे, रोगज्ञानके पश्चात् औपधकी परीक्षा करे, जब रोग और औपध दोनोकी परीक्षा करचुके तब सावधानीके साथ कर्म (औपधदेना आदि चिकित्सा) का प्रारंभकरे । असावधानीसे चिकित्सा न करे ॥

अव-प्रसंगवश रोगोंके जाननेके वास्ते चरकसे त्रिविधविज्ञानी याध्यायको भाषा लिखते है ॥

॥ अव हम त्रिविध विज्ञानीध्यायायका वर्णन करते है ॥

तहां रोगका विज्ञान तीन प्रकारसे होता है । जैसे १ उपदेश, २ प्रत्यक्ष और ३ अनुमान ।

तहां आतवचनको उपदेशकते है । अव यह जिज्ञासा हुई कि, आत किसको कहते है तहां आतोंके लक्षण कहते है ॥

आतलक्षण ।

जो तर्करहित स्मृताविभागके जानने वाले और बिना प्रीतिके परदुःखसे आप दुखी होवे उन महात्माओंको आत ऐसा कहते है । उनका गुणसंयुक्त वचन प्रमाण है अर्थात् ग्रहणकरने योग्य है ॥

और मत्त (सिडी पागल) उन्मत्त (मद्यादिपीनेसे पागल) मूर्ख, बिना विचारेकहने वाला इनका वचन अप्रमाण है अर्थात् अमाननीय है ॥

प्रत्यक्षकेलक्षण ।

जो वस्तु अपने नेत्रादि इन्द्री और मनपरके ग्रहण करी जावे वो प्रत्यक्ष है अनुमान ।

तर्क और युक्तिकी जिसमें अपेक्षा होवे उसको अनुमान कहते है

इस (उपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान) त्रिविध ज्ञानसमुदायसे प्रथम रोगपरीक्षा कराहुआ रोगी चिकित्साकरनेमें संशयरहित होता है ॥

संपूर्ण ज्ञान केवल ज्ञानके एकदेश जाननेसे कदाचित् नहीं होता किंतु संपूर्ण ज्ञानके अंगोंके जाननेसे होता है ॥

इन तीनोंप्रकारके ज्ञानमें प्रथम आतोपदेशज्ञान मुख्य है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानद्वारा निश्चय करना कहा है ॥

परंतु वादी शंकाकर्ता है कि, हम आत्तोंको नहीं जानते । इस वास्ते हम प्रत्यक्ष और अनुमान ये दोही परीक्षाओंको मुख्य करके मानते हैं इसीसे अब ज्ञानवालोंको दोही परीक्षा करना मुख्य है, प्रत्यक्ष और अनुमान, परंतु बहुतसे बुद्धिमान पुरुष इनदोनों परीक्षाओंके साथ उपदेश प्रमाणको मानते हैं अर्थात् इन दोनोंमें आसवचन संमतजो होवे वो प्रमाण है ॥

जैसे एक रोग, दोषोंका प्रकोप, रोगोंकी घोनी, आत्मा, अधिष्ठान, वेदना, संस्थान, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपद्रव, वृद्धिस्थान, क्षययुक्त इनका प्रसर और इनके नाम इत्यादियोग आसवचनसे जानना अर्थात् प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति है यह आसवचनसे जाना जाता है ॥

प्रत्यक्ष ।

रोगतत्त्वकी प्रत्यक्ष जानना होवे तो सब इन्द्रियोंसे रोगीके देहगत सबइन्द्रियार्थ (शब्द स्पर्शादिकों) की परीक्षा करे, विना जिह्वाद्वारा परीक्षाके । तात्पर्य यह है कि, वैद्य नेत्र, कान, नासिका और हाथोंसे परीक्षा करे और स्वाद जानना जिह्वा इन्द्री द्वारा होता है, परंतु इसको जिह्वा इन्द्रीसे नहीं करते अतएव यहाँ वर्जित है ॥

तहाँ इन्द्रियद्वारा जो परीक्षा करीजाती है उसको लिखते हैं ॥ पोहों कर्णइन्द्री ।

जैसे आँतोंका बोलना, संधियोंका चटकना और उंगलीके पूँोंका चटकना इत्यादि और जो शरीरमें शब्द होनेवाले धर्म हैं उनकी कर्ण इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

नेत्रइन्द्री ।

देहका वर्ण, लंबा, नीचा, छाया शरीरकी प्रकृति, पांडुरोगादि विकार और जो नेत्रविषयक ज्ञान है उनको नेत्र इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

जिह्वाइन्द्री ।

जिह्वाइन्द्रीका ज्ञान जैसे—रोगीके मलमूत्रका और देहका सारा भीठा

जायका यह अनुमानसेही जानलेवे, यह रसनेन्दी ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा नहीं होता है, इसीसे रोगीसे प्रश्नद्वारा करना चाहिये अर्थात् आपके मुसका जायका कैसा है जब मल मूत्र करते हो उस पर गवखी बहुत बैठती है या थोड़ी और इसीप्रकार देहपर मक्खियोंके बैठनेसे देहमें मिष्टताका अनुमान करना और यदि जूँआँ आदि जीव देहपर दौड़े तो जाननाकि, इसरोगीके देहमें विरसता है ॥

अब रक्तपित्तकी परीक्षामें यह परीक्षा करना कि, इसके यह जलही-रुधिरमिला लाल २ गिरे है अथवा रक्तपित्त गिरता है। तहाँ उस रुधिरको कौआ कुत्ते आदि भक्षणकरे तो जानना कि, रुधिर मिला जल गिरता है। और यदि कुत्ते कौआ आदि न खावेतो जानना कि, इसरोगीके रक्तपित्त गिरता ॥

इसी प्रकार औरभी खट्टे चरपरे आदि इस प्राणीके देहगत रसोंकी परीक्षा वैद्य अपनी बुद्धिके बलसे करे ॥

नासिकाइन्दी ।

रोगीके देहमें दुर्गंध आती है या सुगंध आती है, और दुर्गंध सुगंध किसप्रकारकी आती है इत्यादि प्रकृतिविकारजन्य गंधको नासिका-इन्दीसे सूँघकर जाने ॥ स्पर्शनेन्दी ।

हाथोंसे प्रकृति और विकृतियुक्त यह कठोर है यह नम्र है यह गरम और शीतल इत्यादि परीक्षा स्पर्श द्वारा प्रत्यक्ष और अनुमानके एकदेश द्वारा जाननी अवअनुमान ज्ञानको कहते हैं ।

अर्थ—अब आगे जो भाव कहते हैं इनसे आदिले औरभी अनुमानसे वैद्योंको जाने जातेहैं जैसे पचनेकी शक्तिद्वारा जठरामिका मंदतीक्ष्णादि ज्ञान होता है । दंढकसरत डोलने फिरनेसे बलका अनुमान होता है शब्दादिग्रहणसे प्राणीके सुननेकी शक्तिका ज्ञानहोता है व्यभिचारसे मन और मनके अर्थोंका निश्चय होता है । व्यापार आदिसे विज्ञानका निश्चय होता है । संगतिसे रजोगुणका निश्चय होता है ज्ञानसे मोहका निश्चय होता है । द्रोह (वैरभाव) करनेसे क्रोधका निश्चय होता है । दीनता करनेसे शोकका निश्चय होता है प्रसन्नता (खुशबख्ती) से हर्षका निश्चय होता है संतुष्टतासे प्रीतिके ज्ञानहोता है । घबडाहटसे भयका ज्ञानहोता है । स्वस्वचित्तसे धैर्यका ज्ञानहोता है । टक्साहटद्वारावीर्यका निश्चय होता है । विना भ्रमके स्थितिका निश्चय होता है । अभिप्रायसे

भ्रद्धाका निश्चय होता है । ग्रहण धारणसे मेधाका निश्चयहोता है । नाम ग्रहणसे संज्ञाका निश्चय होता है । स्मरणसे स्मृतिका ज्ञान होता है । लज्जा-युक्त होनेसे लज्जा (शरम) का बोध होता है । सुशीलोंके आचरणसे शीलताका ज्ञान होता है । वर्जित करनेसे द्वेषका ज्ञान होता है । अनुबंधनसे उपाधिका निश्चय होता है । चंचलता रहित होनेसे धृत्तिका निश्चय होता है । आज्ञाके अनुसार चलनेसे वशीभूतपनेका निश्चय होता है । काल, देश, उपशय और पीडा इनसे अवस्था, भक्ति (भोजनक्रिया) सात्त्व्य और व्याधि इनका निश्चय होता है जिस व्याधिके लक्षण छिपे हुए हैं उसका ज्ञान उपशय और अनुपशय द्वारा होता है ॥

तथा दोषोंका प्रमाण, अपचार, आयुकी क्षीणता ये अरिष्टद्वारा जाने जाते हैं ग्रहणीका मृदु और दारुणत्व, दुःस्वप्नदर्शन, अनपेक्षितवस्तुओंमें अभिप्राय, सुख, दुःख, इन सबका रोगीसे प्रभु करनेसेही निश्चय होता है ॥

इसीवास्ते आत्रेय महार्थ कहते हैं—आतोपदेश प्रत्यक्ष इन्द्रियोंसे और अनुमानद्वारा चतुर वैद्य व्याधियोंकी परीक्षाकरे ॥

अर्थवेत्ता वैद्य यथासंभव सबको सर्वथा ज्ञानबुद्धिरूप दीपकसे देखकर कार्य करता है वह तत्ववेत्ता है ॥

प्रथम तत्वविचारकरे फिर कार्य करके उसको जाने । जो कार्य तत्वमें विशेष ज्ञाता है वह परीक्षा विषयमें मोहको नहीं प्राप्त होता है और बुद्धिमानकी उच्चम फल प्राप्त करता है । जो वैद्य केवल ऊपरहीसे रोगकी परीक्षा करता है और ज्ञान बुद्धि दीपकसे रोगीके अंतःकरणका विचार नहीं करता वह चिकित्सा करनेका अधिकारी नहीं है ॥

इस प्रकार संपूर्ण रोगविशेषोंका त्रिविधज्ञानसंग्रह है—जैसे आतटपदेश करते है और जैसे प्रत्यक्ष ग्रहणकरा जाता है एवं जैसे अनुमानसे रोग-जाने जाते है उनको उदार बुद्धि वैद्य जाने इसप्रकार त्रिविधरोगविज्ञानीय विमानमें भाषोंका मुनिने वर्णन करा है ॥

इति श्रीभामुखेदोद्धारे बृहन्नियद्वराकरे त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयं समाप्तम् ।

रोगज्ञानानंतरचिकित्सा ।

आदावन्ते रुजाज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः ।

१ भित्त औषध अन्न और विहारसे रोगीको सुसहो उसको उपशय और सात्त्व्य कहते है और इससे विपरीतको अनुपशय और असात्त्व्य कहते हैं ॥

भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ—वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षामें यत्नकरे फिर औषधोंके विधान करके चिकित्सा करना चाहिये ।

सवरोगोंकेनामनजाननेमेंअलज्जत्व ।

विकारनामाकुशलो न जिह्वियात्कदाचन ।

नहि सर्वविकाराणां नामतोस्ति ध्रुवास्थितिः ॥

अर्थ—वैद्य रोगका नाम न जाननेपर कदाचित् लज्जा न करे, क्योंकि संपूर्ण रोगोंकी नामकरकेही परीक्षा नहीं करी, अर्थात् अनेकानेक रोग इससंसारमें विना नामके दीखते हैं ।

अनुक्तदोषोंमेंलक्षणद्वाराचिकित्साकीआज्ञा ।

नास्तिरोगोविनादोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ।

अनुक्तमपिदोषाणां, लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

अर्थ—विनादोषोंके रोग नहींहो इसीसे वैद्य, जो दोष शास्त्रमें नहीं कहे उनदोषोंको रोगोंके उपद्रवोंसे जानके चिकित्साकरे ।

असाध्यरोगीकीचिकित्साकानिषेध ।

येनकुर्वत्यसाध्यानां चिकित्सा ते भिषग्वराः ।

अतो वैद्यः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणे ॥

अर्थ—जो असाध्य रोगीका यत्न नहीं करते वोही वैद्योंमें श्रेष्ठ हैं अतएव वैद्यको उचित है कि, साध्यासाध्यकी परीक्षामें श्रम करे ॥

उत्पन्नहोतेही चिकित्साकरनेकाहेतु ।

यथास्वल्पेनयत्नेन छिद्यते तरुणस्तरुः ॥

सएवातिप्रवृद्धस्य छिद्यतेऽतिप्रयत्नतः ॥

अर्थ—जैसे तरुणवृक्ष अर्थात् नवीनोत्पन्नवृक्ष थोड़े यत्न करने परही काटा जासक्ता है, परंतु जब वोही बढकर शाखाप्रशाखाओंकरके बढ जाता है तब उसका काटना बडाकठिन हो जाता है, उसीप्रकार रोग प्रगटहोते ही कुछ थोड़ीसी चिकित्सासे दूरहोसक्ता है, परंतु जब रोग बढके बढमूल होजाता है फिर उसका दूरकरना बडा कठिन है ॥

औषधकी आवश्यकता ।

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजं विना ।

भेषजेन पुनर्जीवेत्स एवहि निरामयः ॥

अर्थ—जिसकी दीर्घावस्था है यदि वो रोगग्रस्त हो औषध न करे तो वो दुःख सहित जीता है और यदि वही औषध करे तो रोगरहित हो आनंदसे जीवे । तात्पर्य यह है कि, दीर्घ आयुवाला विना औषधके दुःखी रहता है और औषध के करनेसे रोगरहित जीवन पाता है ॥

नचौषधीनामपिसर्वथैव प्रभावहानिः परिकल्पनीया ।

फलंप्रयात्यूर्ध्वमधस्त्रिवृच्च प्रत्यक्षतः कस्यनसिद्धिमेतत् ॥

अर्थ—इसप्राणीको उचित है कि, औषधोंमें सर्वथा [कलिदोषसे] प्रभाव हानीकी कल्पना नकरे [अर्थात् अब कलियुगमें ये औषध अपना प्रभाव नहीं दिखाती, ऐसा विचार कदाचित् न करे] । क्योंकि मैनफलके खानेसे उलटी होती ही है और निसीध खानेसे, दस्तहोते, यह बात प्रत्यक्षमें किसको सिद्ध नहीं है, अर्थात् सबजानते हैं तथा जमालगोटा, इन्द्रायणके फल, चोक ये सब औषध अपना फलदिखाती हैं इसी कारण औषधोंके गुणमें किसीको भी संदेह नहीं करना ॥

यदि जो औषधके गुण हैं वो गुण नहोवे तो जानना कि, ये दवाई पुरानी है अथवा इसके प्रयोगमें कुछ नकुछ विपरीतता आ गई है या इसप्राणीकी प्रकृति के अनुसार नहीं है इत्यादि कारणोंसे औषध गुण नहीं करती, परंतु मुख्यमनुष्य अपने मूर्खता पर तो देखते नहीं व्यर्थ औषधको दोषदेते हैं ॥

सतिचायुपिनोपायंविनोत्थातुंक्षमोरुजी ।

दर्शितश्चात्रदृष्टांतः पंकमग्नोमहागजः ॥

अर्थ—आयुष्यमानभी रोगी विना उपायके रोगसे नहीं उठसके, इस्में दृष्टांत है कि, जैसे कीचमें फँसा हुआ हाथी विना यत्रके नहीं निकलसका उसीप्रकार रोगी-विना यत्रके अच्छा नहीं होता । यहाँ रोगी है सो हाथी है और रोग है सोई कीचड़ है, उसमें फँसको औषध देना मानो उस कीचड़से निकालनेका उपाय है ॥

सतिचायुपिनष्टः स्यादामयश्चचिकित्सितः ।

यथासत्यपितैलादौदीपोनिर्वातिवात्यया ॥

अर्थ—दीर्घावस्थावालाभी रोगी रोगकी विना चिकित्सा (इलाज) करे नष्ट होजाता है इसमें दृष्टांत है कि, जैसे तेल और बत्ती होनेपर भी हवाके वेग करके दीपक बुझ जाता है, यहाँ यत्रुप्यकी देहही दीपक है और आयु-रूप तेल है समयरूप बत्ती तामें जीवरूप ज्योति है और रोगरूप पवन इस जीवरूप दीपकको बुझाय देती है जैसे उस दीपकको रक्षामें रखनेसे नहीं बुझे इसीप्रकार इस देहकी रक्षा करनेसे अकाल मृत्यु नहीं हो ।

यथासत्यपितैलादौदीपनिर्वापयेन्मरुत् ।

एवमायुष्ययुक्तंचर्दिसंत्यागंतुमृत्यवः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त वाक्यको दृष्टांत देकर फिर पुष्ट करते हैं जैसे तेल घाती आदि रहनेपर भी दीपकको पवन बुझादेती है इसीप्रकार दीर्घ आयु होने-परभी आंगतुज मृत्यु इसप्रकारको नाशकर देती है ॥

दोषांगतुनिमित्तेभ्योरसमंत्रविशारदौ ।

रक्षेतांनृपतिनित्यंयत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ।

अर्थ—इसीवास्ते शास्त्रमें लिखा है कि, दोष जन्यव्याधि और आंगतुज व्याधियोंसे रस और मंत्रके ज्ञाता (जाननेवाले) वैद्य और पुरोहित राजकी रक्षा करे ॥

रोगज्ञानमें अभ्यासको मुख्यत्व ।

अभ्यासात्प्राप्यतेदृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।

रत्नादिसदसज्ज्ञानं नशास्त्रादेवजायते ॥

अर्थ—अभ्यास (धारंवार चिकित्साकर्ममें प्रवृत्त होने) से कर्मसिद्धि प्रकाशकरता दृष्टी होती है, अर्थात् चिकित्सा करनेका ज्ञान होता है, इसमें दृष्टांत है कि, जैसे हीरापत्ता आदि रत्नोंके सच्चे झूठेका ज्ञान जैसे शास्त्रके पढनेसेही नहीं होता किंतु उसमें अभ्यास करनेसे होता है इसीप्रकार वैद्य विविधव्याधि चिकित्सामें जाने ॥

दृष्टापचारजः कश्चित्कश्चित्पूर्वापराधजः ।

तत्संकराद्भवत्यन्योव्याधिरेवंत्रिधास्मृतः ॥

अर्थ—अब त्रिविध व्याधियोंको कहते हैं तहाँ कोई व्याधि दृष्टापचारज (इस लोकमें व्याधिके कारणोंसे होनेवाली) है और कोई पूर्वापराधज

(पूर्वजन्मके करे अशुभ कर्मोंसे हुए) है और तीसरे इन दृष्टापचारज और पूर्वापराधजके मिलनेसे होते हैं इसप्रकार रोग तीन प्रकारके हैं ॥

यथानिदानंदोषोत्थैःकर्मजोहेतुभिर्विना ।

महारंभोलपकेहेतावार्त्तक्रोदोषकर्मजः ॥

अर्थ—तहां दोषजन्यरोग स्वप्ने २ निदानसे प्रगट होते हैं (जैसे घातके रूक्ष लघु आदि कारण है इनसे जो रोग प्रगटे वो वातजन्य जानना इसीप्रकार पित्त और कफजन्य रोगोंको भी समझना चाहिये) और जो दोषोंके कारण विनाही प्रगट होवे वो कर्मजन्य रोग जानना और जिसमें थोड़े दोषोंके कुपित होनेसे बड़ीभारी व्याधि प्रगट हो उसको दोषकर्मज व्याधिकहते हैं ॥

**दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः । सत्त्वं सात्म्यं
तथा हारभवश्चाथपृथग्विधाः ॥ सूक्ष्मासूक्ष्माःसमीक्ष्यैषा
दोषौषधनिरूपणे । यो वर्त्तते चिकित्सायां न सस्खल-
ति जातुचित् ॥**

अर्थ—दोष औषध निरूपणमें जो वैद्य दूष्य, देश, बल, काल, अग्नि, प्रकृति, अवस्था, सात्म्य, आहार और द्रव्यादिकोंकी सूक्ष्म और बड़ी अवस्थाको देख (विचार) कर चिकित्सा करता है वह कदाचित् नहीं स्खलन होता अर्थात् कदाचित् नहीं भूले ॥

गुरुलपव्याधिसंस्थानंसत्त्वदेहबलाबलात् ।

दृश्यतेप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितोभवेत् ॥

अर्थ—वैद्य, सत्त्व देह और बलाबलके कारण गुरु और अल्प व्याधियोंको आकृति अन्यथा दीखती है उसमें सावधान होवे। जैसे अधिक सत्त्व और उत्कृष्ट देहबलवाले प्राणीके होने वाले भारी भी रोग हलके मालूम होते हैं कारण कि, उसके देहमें सत्त्व बल ये अधिक है । इसीप्रकार हीनसत्त्व हीनदेह हीनबल वालेके उत्पन्न हुई व्याधि हलकी भी बड़ी भारी दीखे है।

गुरुलघुमितिव्याधिकल्पपर्यंतुभिषाग्नवः ।

अल्पदोषाकलनयापथ्येविप्रतिपद्यते ॥

अर्थ—जो कुत्सित वैद्य है वो व्याधिके संस्थान (स्वरूप, मात्रके देखते

ही भारी रोगको हलका समझते हैं, जब हीन दोष समझा तो मात्रा भी हलकी देते हैं अतएव वो मात्रामें मोहको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार हलकी व्याधिको बड़ी भारी विचारके मात्रा देनेमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥

ततोल्पमल्पवीर्यवा गुरु व्याधौप्रयोजितम् ।

उदीरयेत्तरारोगान् संशोधनमयोगतः ॥

अर्थ-अब कहते हैं कि, अल्पमात्र अल्पवीर्य ऐसी संशोधनरूप औषध प्रबल रोगोंमें दीनीहुई हीनयोग होता है, इसवास्ते रोगोंको अत्यंत बढ़ाती है । इससे तो औषधन देनाही ठीक है जैसे पुत्रके कार्य न करनेसे अपुत्र कहाँता है उसी प्रकारका अयोग ही हीनयोग कहलाता है ॥

शोधनंत्वतियोगेनविपरीतविपर्यये ।

क्षिणुयान्नमलानव केवलवपुरस्यति ॥

अर्थ-लघुव्याधिमें विपरीत शोधन अर्थात् अत्यंत वीर्यवान् और अधिक औषधी देवे, वह अतियोगके वश मलाकोही नहीं क्षीणकरे है किंतु देहको भी नष्टकरे है ॥

अतोभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।

यथायुजातभेषज्यमारोग्याय यथा ध्रुवम् ॥

अर्थ-इसकारण अर्थात् रोगोंकी गति दुर्विज्ञेय होनेसे निरंतर आयु-वेद पठन पाठन अनुष्ठानमें तत्पर वैद्य सब द्रव्यादि वस्तुओंको विचार इसप्रकार औषध देवे कि, जैसे आरोग्य अवश्य हावे ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्रव्याधिज्ञानं त्रिधा मतम् ।

दर्शानाम्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शानाम्नाडिकादिभिः ॥

प्रश्रैः दूतादिवचनादिति त्रेधा समुच्यते ॥

अर्थ-रोगका ज्ञान तीन प्रकारसे होता है जैसे दर्शन (देखना) स्पर्शन (छूना) और प्रश्न (पूछना) तहाँ मूत्र और जिह्वा आदिशब्दसे मल देहकी आकृति आदि देखने करके जाननाही आदिको छूनेसे जाने और दूतादिके वचन पूछने करके वैद्यजाने इस प्रकार परीक्षा तीन प्रकारकी है ॥

शारीरामानसांगंतुसहेजाव्याधयोमताः ।

शारीराज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्यामानसामताः ॥

आगंतवोभिशपोत्या सहजाक्षुत्तृपादयः ॥

अर्थ—तहाँ व्याधि चार प्रकारकी है १ शारीरी २ मानसी ३ आगंतु और ४ सहज । तहाँ ज्वरकुष्ठादिक शारीरी व्याधि है । क्रोध लोभादिक मानसिक व्याधि है । अभिशापजन्य व्याधि आगंतुज है और भूख, प्यास, निद्राआदि सहज व्याधि कहलाती है ॥

रोगोकेभेद ।

तेचस्वाभाविकाः केचित्केचिदागंतवः स्मृताः ।

मानसाःकेचिदाख्याताःकथिताःकेऽपिकायिकाः ॥

अर्थ—उनरोगोंमें कोई स्वाभाविक रोग है । कोई आगंतु और कोई मानसिक एवं कोई रोग कायिक अर्थात् देहसे संबंध रखते हैं ॥

त्रिविधव्याधि ।

कर्मजाः कथिताः केचिदोपजाःसंतिचापरे ।

कर्मदोषोद्भवाश्चान्येव्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ॥

अर्थ—व्याधी तीन प्रकारकी है जैसे एक तो कर्मज (जो पूर्वजन्मोपाजितकर्मसे होती है) दूसरी दोषज (जो वातादि दोषोंके—कुंपित होनेसे) होती है और तीसरी कर्म और दोष दोनों करके त्रिविधव्याधियोंकी चिकित्सा होनेवाली, ये तीनभेद हैं ॥

त्रिविधव्याधियोंकीचिकित्सा ।

कर्मक्षयात्कर्मकृतादोषजाः स्वस्वभेषजैः ।

कर्मदोषोद्भवार्थातिकर्मदोषक्षयात्क्षयम् ॥

अर्थ—कर्मकृत व्याधि कर्मके जीर्ण होनेसे शांति होती है । दोषजन्य

१ स्वाभाविक रोग भूख, प्यास, निद्रा, वृद्धावस्था और मृत्यु आदिहै, अथवा अपने स्वभावसे उत्पत्ति होवे उसके स्वाभाविक कर्हिमें सहज राग वा जन्माधादिक जानने । २ जो किसी प्रकारकी चोट लगनेमें हावे वो आगंतुज है । ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दीनता, पिशुनता, शोक, विषाद, हर्ष, ईर्ष्या, असूया और मात्सर्यादिक ये मानसिक व्याधिहै । ४ अथवा उन्माद, अपस्मार, भ्रम, मोह, तम सन्यासादिक जानने । ५ पूर्वजन्मोपाजित दुष्टकर्म अन्यव्याधि ॥

व्याधि अपनी २ पृथक् २ औषध करनेसे शांति होती है और कर्मदोष दोनोंसे प्रगट व्याधिकर्म और दोष दोनोंके क्षय होनेसे दूर होती है ॥

पुनः त्रिविधव्याधि ।

सांध्यायाप्याअसाध्याश्चव्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ।

सुखसाध्यःकष्टसाध्यो द्विविधः साध्यउच्यते ॥

अर्थ-साध्य-याप्य और असाध्य ऐसे व्याधि तीन प्रकारकी हैं । अब कहते हैं कि, साध्यव्याधिके दोभेद, एक सुखसाध्य-दूसरी कष्टसाध्य ॥

याप्यकेलक्षण ।

यापनीयंतुतंविद्यात्क्रियाधारयतेहियत् ।

क्रियायांतुनिवृत्तायांसद्योयश्चविनश्यति ॥

अर्थ-अब याप्यके चिह्न कहते हैं कि, जो चिकित्साकी क्रियाको धारण करे उसको याप्य अर्थात् दूर होने योग्य व्याधि जाननी और औषधोपाय न चले तो वो रोगी शीघ्रमरे उस रोगीको याप्य जानना ॥

प्राप्ताक्रियाधारयतिसुखिनंयाप्यमातुरम् ।

प्रपतिष्यदिवागारंस्तम्भोयत्नेनयोजितः ॥

अर्थ-याप्य रोगीको प्राप्तहुई क्रिया धारण करती है अर्थात् जबतक उसका यत्नहुआ करेगा तबतक रोगी नहीं मरे, जैसे गिरतेहुए घरमें अडवार अथवा किसी पत्थर वगेरहका नचि सहारा लगादेनेसे वह पर नहींगिरे ॥

साध्यायाप्यत्वमायांतिं याप्याश्चासाध्यतां तथा ।

म्रंति प्राणानसाध्यस्तु नराणामक्रियावताम् ॥

अर्थ-विना यत्नकरनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग याप्य होजाते हैं और याप्यरोग असाध्य होते हैं, एवं असाध्य रोग इन प्राणियोंके प्राणोंको हरण करते (इसीसे मनुष्य मात्रको उचित है कि, रोगके उत्पन्न होतेही उसका यत्नद्वारा निवारण करे) ॥

याप्यत्व ।

याप्यःकेचित्प्रकृत्यैवकेचिद्याप्याउपेक्षया ।

प्रकृत्याव्याधयोऽसाध्याकेचित्साध्याउपेक्षया ॥

अर्थ-कोई रोगतो प्रकृतिसेही याप्य होते हैं और कोई रोगकी उपेक्षा

से होते हैं । कोई व्याधि प्रकृतिसे ही अर्थात् उत्पन्न होते ही असाध्य होती है और कोई उपेक्षा अर्थात् उसका यत्न नहीं करनेसे होती है ॥

साध्योयमितियःपूर्वनरोगमुपेक्षते ।

सकिंचित्कालमासाद्यमृतएवावद्दृश्यते ॥

अर्थ—यह रोग अभीतो साध्य है इस प्रकार जो उसकी उपेक्षा कर देता है, वह थोड़ेही कालमें मर गया ऐसा दीखता है ॥

सप्तविधव्याधि ।

स्वभावजाश्चदोषोत्थाः सहजाश्चापचारजाः ।

आगंतवःप्रभावोत्थाः कालजाश्चेतिसप्तधा ॥

अर्थ—१ स्वभावज २ दोषज ३ सहज ४ अपचारज ५ आगंतुज ६ प्रभावोत्पन्न और ७ कालज ऐसे व्याधि सात प्रकारकी है ॥

स्वभावजाः समाख्यातावाद्धक्यंक्षुत्तृपादयः । दोषो
त्थाश्चाऽनृताहाराविहारादिसमुद्भवाः ॥ सहजारत्करेतस्थ-
दोषसंभारसंभवाः। गर्भपचारजास्तेस्युः कुब्जावामनता-
दयः । आगंतवोऽग्निवाय्वादिभूतावेशादिसंभवाः । प्रभा-
वोत्थासुरक्षोणीसुरगुर्वादिशापजाः ॥ वर्षाशीतातपाद्यु-
त्थाव्याधयः कालजामताः ॥

अर्थ—तहां भूख, प्यास और बुढापा आदि स्वभावज रोग है। मिथ्याआहारसे प्रगट होनेवाली व्याधि दोषज कहाती है । मातापिताके रुधिर और वीर्यदोषसे जो रोग प्रगट होवे वो सहजव्याधि कहलाती है। गर्भवतीके विरुद्धाचरणसे जो कुवडा बोना आदि व्याधि है उनको अपचारजन्य कहते है। अग्नि, पवन आदि और भूतावेशमें होनेवाली व्याधियोंको आगंतव कहते हैं ब्राह्मण देवता गुरुआदिके शापसे होनेवाली व्याधियोंको प्रभावोत्पन्न कहते हैं और वर्षा (चारिश) सरदी और गरमीसे जो प्रगट उन व्याधियोंको कालजन्य कहते है ॥

उपद्रवकेलक्षण ।

रोगारंभकदोषस्यप्रकोपादुपजायते ।

योऽन्योविकारः सवुधैरुपद्रवइहोदितः ॥

अर्थ—जो रोगके उत्पन्न करनेवाले वातादिदोष है उनके कुपित होने-

से जो रोगमें भी दूसरा विकार उत्पन्न होता है उसको उपद्रव कहते हैं । उदाहरण, जैसे ज्वरमें तृपा अनिद्रा आदि उपद्रव होते हैं ॥

अरिष्टकेलक्षण ।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यं भाविलक्ष्यते ।

तल्लक्षणमरिष्टस्याद्रिष्टं चापितदुच्यते ॥

अर्थ—जिन लक्षणोंसे रोगियोंका मरण अवश्य सूचितहो उनको अरिष्ट अथवा रिष्ट ऐसे कहते हैं ॥

नजंतुकश्चिदमरः पृथिव्यामेव जायते ।

अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किंतुरोगान्निवारयेत् ॥

अर्थ—इस पृथ्वीमें कोई प्राणी अमर (जो न मरे ऐसा) नहीं है अर्थात् सब एक दिन मरेंगे इसीवास्ते मृत्यु निवारण नहीं होसकती किंतु रोग निवारण होसकते हैं । तात्पर्य यह है कि, वैद्य रोगरहित करदेवे जैसे मरते समय कंठमें कफ घटघडाता है तो वैद्यकी चातुर्यता यह है कि, ऐसी औषध देवे कि कफका बोलना बंद हो जावे फिर बोरोगी चाहिये इसीक्षणमें मरजाय ॥

मृत्युसंज्ञा और कालसंज्ञा ।

एकोत्तरं मृत्युज्ञतमथर्वाणः प्रचक्षते ।

तत्रैककालसंयुक्तः शेषास्त्वागंतवः स्मृताः ॥

अर्थ—अथर्वाण ऋषिने १०१ एकसौ एक मृत्युकही है तिनमें एककाल संज्ञक मृत्युहै बाकी आगंतु संज्ञक मृत्युकही हैं । तहां कालसंज्ञक मृत्यु आयुष्यके अंतमें प्राणियोंको अवश्य मारेगा वह सब उपायोंसे भी अवार्य है तथा ब्रह्मादिकोंकी भी आयु अंतमें हरण करता है जैसे लिंगपुराणमें कार्तिकेयके प्रति श्रीशिवका वाक्य है ॥

ममायुर्मसतेकालः कुतः पुत्ररसायनम् ॥

अर्थ—हे पुत्र ! यह काल मेरी भी आयुको मसता है जिनको प्राणी रसायन कहता है । सो कहाँ है । अतएव जो कालसंज्ञक मृत्यु है वह अवश्य होकर रहती है और जो आगतुसंज्ञक जैसे, विषभक्षण अजीर्णमें अत्यंत भोजन दुष्ट देशका जलपीना, अत्यंत बलवान्से व्याध, घनका भैंसा मतघारा हाथी आदिसे लड़ना, सर्पके साथ खेलना, अत्यंत ऊंचे पृष्ठपर चढ़ना, हाथोंसे तैरकर बड़ी भारी नदीकी पारजाना, अकेला रात्रिमें जाना इत्यादि जानना ये यत्न करनेसे रुकसंती है ॥

शान्तिशीतप्रतीकारमुष्णेतूष्णनिवारणम् ।

कृत्वा कुर्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥

अर्थ—शरदीके रोगमें शरदीके निवारण कर्त्ता गरम और गरमीके रोगमें गरमीके निवारणकर्त्ता शीतल औषध करके प्रातःक्रियाको करे, किंतु क्रियाके समयको नष्ट न करे, अर्थात् जो समय क्रिया करनेका शास्त्रने निश्चय कियाहै, वह ठसी समय क्रियाकरनी, आगे पीछे नहीं ।

विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रियालध्वी गरीयसि ।

द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता ॥

अर्थ—छोटेसे रोगमें बड़ीभारी क्रियाका करना अर्थात् अधिक और उत्कट औषधदेना, एवं बड़ेभारी रोगमें छोटी क्रिया अर्थात् थोड़ीदवा और अल्पगुण वाली देना, ये दोनों कर्म वैद्यकी मूर्खतासूचक हैं। कुशलता वैद्यकी उसीमें है कि, यथायोग्य कर्म करना ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।

पूर्वस्यां शान्तिवेगार्या न क्रिया संकरो हितः ॥

अर्थ—जो रोगीके प्रति क्रियाकरे यदि वह अपना गुण न दिखलावे तो दूसरी क्रियाकरे, अर्थात् दूसरी औषध देवे, परंतु जब पहली औषधका वेग शान्ति होलेवे तब दूसरीदेवे, क्योंकि संकर(विपरीत)क्रिया रोगीको हितकारी नहीं होती ॥

क्रियाभिरल्परूपाभिर्नक्रियासंकरोहितः ।

ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यं नैवदुष्यति ॥

अर्थ—वैद्यको एकसी दो चिकित्सा एकही कालमें नहीं करनी चाहिये, वो हितकारी नहीं होती, परंतु यदि दोनों भिन्नरूप अर्थात् पृथक् रूप वाली होवे तो वो संकर दोषकारक नहीं होती ॥

उत्पद्यते च सावस्था दोषकालबलं प्रति ।

यस्यां कार्यमकार्यं स्यात्कर्मकार्यं विवर्जितम् ॥

अर्थ—देश, काल, बल इनकी अवस्था देखके वैद्य रोगीको औषध देनेसे यदि विकृति देखे तो वह औषध वैद्यको त्यागदेनी चाहिये। इसका यह तात्पर्य है कि, बहुतसे रोगोंमें देश, काल और बलके अनुसार कोई करनेयोग्य

कार्यतो न करने योग्य होजाता है और न करनेयोग्य कार्य करनेयोग्य होजाता है । इस बातका विचार वैद्यको करलेना चाहिये ॥

अच्छेहोनेपरभीपथ्यकरनेकीआज्ञा ।

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिः स्वल्पेनायातिहेतुना ।

दोषैर्मागीकृतेदेहेशेषः सूक्ष्मइवानलः ॥

अर्थ—दोषोंकरके रास्ता करी हुई देहमें दूरहुईभी व्याधि थोड़ेसेभी कुपथ्य करनेसे फिर लौट आती है, जैसे बहुत सूक्ष्म अग्निकी चिनगारी रहने पर फिर प्रज्वलित आग होजाती है ॥

कर्मदोषजऔरदोषजव्याधि ।

पुण्यैश्चभेषजैःशांतास्तेज्ञेयाः कर्मदोषजाः ।

विज्ञेयादोषजास्त्वन्येकेवलावायसंकराः ॥

अर्थ—जो व्याधि पुण्य और औषधों करके शांत होवे वो कर्म और दोषजन्य जाननी अन्य व्याधि केवल दोषजन्यही होती है और कोई २ मिश्रित व्याधि होती है ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेतचरोगिणम् ।

रोगनिदानप्राप्त्यलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

अर्थ—दर्शन, स्पर्शन और प्रश्नसे, रोगीकी परीक्षाकरे तथा निदान, पूर्व-रूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति इस निदानपंचक द्वारा रोगकी परीक्षा वैद्यको करनी चाहिये ॥

अब रोगपरीक्षा करनेका क्रम लिखते हैं ॥

वैद्यको उचित है कि, एक ऐसी पुस्तक बनावे कि, जिस्में खाने हों । उनमें जिसरोगीका यत्नकरे उसकी व्यवस्था इस प्रकार लिखलिया करे।

१ पहले खानेमें रोगीका नाम तथा उपनाम लिखे ॥

२ दूसरेमें उसकी अवस्था लिखे ॥

३ तीसरेमें ज्ञाति और वर्णन तथा उसका रुजगार लिखे ॥

४ चौथेमें विवाहित है या फारा है यह लिखे ॥

५ पांचवेंमें उसका जन्म और वर्तमानमें रहनेका स्थान लिखे ॥

६ छठेमें रोगका नाम और उसके उत्पन्न होनेकी तिथिवार संवत् लिखे ॥

७ सातवेंमें रोगीके चिकित्सा आरंभका दिनलिखे ॥

८ आठवेंमें रोगीकी अवस्था आदि लिखनी ॥

अब लिखते हैं कि, वैद्यको रोगीसे यह पूछना चाहिये कि, तुम्हारे यह रोग कबसे हुआ है और उत्पन्न होनेमें इसकी क्या व्यवस्था थी अर्थात् यह रोग एकसाथ बढ़ा है या धीरेधीरे तथा किस प्रकार बढ़ा ॥

दूसरे वैद्यको पूछना कि, इसरोगीके कुलमें कोई पैतृज रोगतो नहीं है तथा इसके माता पिताकी मृत्यु कौनसी अवस्थामें हुई और वो कौनसे रोगसे मरे ॥

तथा इसकी जठराग्नि कैसी है और शीतला, फेंफड़ेके रोग हुए होतो उनको भी पूछे तथा स्त्रियोंमें ऋतुका हाल पूछे अर्थात् ऋतु कुछ पीडाके साथ तो नहीं हो, एवं समय २ परहोता है कि, कुछ हेरफेरसे होता है और थोडाहोता है या अधिक ॥

फिर यह तलाशकरे कि, प्रथम यह रोग कैसे आया और किसकी दवाई करी उस दवाईने क्या फायदा और नुकसान करा ॥

फिर रोगीकी अवस्थाकी परीक्षा एवं मल, मूत्र, जिब्हा, श्वास, त्वचा, स्वर, नेत्र, मुख, बलाबल और नाडीआदि की परीक्षा सावधानीके साथ करे तो रोगका ज्ञान भलेप्रकार होवे इसमें संदेह नहीं है ॥

औषधं मंगलं मंत्रमन्याश्चविविधाःक्रियाः ।

यस्यायुस्तत्रसिध्यन्ति नसिद्धयन्तिगतायुषि ॥

अर्थ—औषधी मंगल (स्वस्तिवाचन पुण्याहवाचनादि) मंत्र और अनेकप्रकारकी क्रिया (जाटू टोना टोंटकाआदि) ये सब जिसकी आयुवाकी है उसजगे चलती है औरगतायु मनुष्य परनहीं चले ॥

आरोग्यलक्षण ।

**मंगलाचारसंपन्नपरिवारस्तथातुरः । श्रद्धधानोऽनुकूलश्च
प्रभूतद्रव्यसंग्रहः ॥ सत्वलक्षणसंयुक्तोभक्तिवैद्यद्विजाति-
षु । चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्यलक्षणम् ॥**

अर्थ—मंगलाचारसंपन्न, परिवार (कुटुंब) के प्राणियों करके युक्त श्रद्धा-

वाला, अपने, अनुकूल वदुतसा द्रव्यसंग्रहवाला, सत्वगुणी, वैद्य और ब्राह्मणोंका भक्त और चिकित्सामें अरुचि न लानेवाला, ऐसा रोगी होवे तो जानना कि, यह आरोग्य होयगा इसमें संदेह नहीं ॥

दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापिवा ।

दृष्ट्वापथिनिरातंकमकृत्वाब्रह्महाशुचिः ॥

अर्थ—जो वैद्य, मार्गमें तीव्ररोगसे ग्रस्त ब्राह्मण अथवा गौको रोगी देखे उसकी चिन्ता चिकित्साकरे वैसेही चलाजावे उसको ब्रह्महत्याका पाप लगकर अपवित्र होता है ॥

॥ इति चिकित्सापादचतुष्टयवर्णन समाप्तम् ॥



अथ

ज्वरप्रकरणम् ।

शिष्य—रोग कितने हैं ?

गुरु—रोग असंख्यात अर्थात् बेशुमारी हैं, परंतु उसमेंसे मुख्य २ जो प्राचीन आचार्योंने संग्रह करे हैं उनको मैं कहता हूँ तू सुन ॥

रोगसंख्या हेमाद्रौ ।

ज्वरातिसारो ग्रहणीह्यशौ जीर्णविषूचिका । सालसाच
विलंबी च कृमिरुक्पांडुकामलाः ॥ हलीमकं रक्तपित्तं
राजयक्ष्मा उरःक्षतम् । कासो हिक्का तथा श्वासःस्वर-
भेदस्त्वरोचकः ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च तथापाना-
त्ययादयः । दाहाख्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारोऽनिला
मयः ॥ वातरक्तमुरुस्तंभमामवातोऽथशूलरुक् । पक्तिजं
शूलमानाहमुदावर्तोथ गुल्मरुक् ॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च
मूत्राघातस्तथाश्मरी । प्रमेहो मधुमेहश्च पिडिकाश्च प्रमे-
हजाः ॥ मेदो दोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः । गंड-
मालापचीग्रंथीह्यर्बुदं श्लीपदं तथा ॥ विद्रधित्रणशोथौ च
द्रौत्रणौ भग्ननाडिकौ । भगंदरोपदंशौ च शूकदोषास्त्व-
गामयः ॥ शतिपित्तमुदरं श्वोत्कोठकश्चांलापित्तकम् ॥ विस-
र्पश्च सविस्फोटस्तथैव च मसूरिका ॥ क्षुद्रास्यकर्णनासा
क्षिशिरस्त्रीवालकामयाः ॥ विपंचेत्ययमुद्देशः संग्रहोस्मिन्प्रकीर्तितः

अर्थ—१ ज्वर २ अतिसार (दस्तोंकी विमारी) ३ संग्रहणी (पेचिस) ४ ववा-
सौर ५ अजीर्ण (वदहजमीकारोग) ६ विशूचिका (हैजा) ७ अलस
८ विलंबिका (ये दोनों रोग उसी हैजाके भेद हैं) ९ कृमिरोग (देहके

आमव्याधिलक्षण ।

आलस्यतंद्राहृदयाविशुद्धिदोषाप्रवृत्त्याकुलमूलभावैः ।

गुरुदरत्वादरुचिसुप्तताभिरामान्वितंव्याधिमुदाहरति ॥

अर्थ—आलस्य, तंद्रा, हृदयकी विशुद्धि अर्थात् चित्तमे अस्वास्थ्य और मलमूत्रका अवरोध, पेटका भारीपना, अरुचि, अंगोका रहजाना, इत्यादि लक्षणोंसे आमयुक्त व्याधि जानना ॥

उसकायत्न ।

आमंजयेल्लंघनकोष्णपेयाहृध्वन्नरूक्षोदनतित्तयूपैः ।

निरूहणैःस्वेदनपाचनैश्चसंशोधनैरूर्ध्वमधस्तथाच ॥

अर्थ—लंघन, मंदोष्णपेया, हलकेअन्न, रूखेअन्न, कहुएरस, मूंगका यूप आदि, निरूहवस्ती, स्वेदन, पाचन, रेचन और वांति, इत्यादि उपायोंसे आमव्याधिका नाश करे ॥

दोषत्रयकायत्न ।

कफंत्वरिपुवत्तीक्ष्णैर्वातंस्नेहेनमित्रवत् ।

पित्तंजामातरमिव मधुरैःशीतलैर्जयेत् ॥

अर्थ—कफको शत्रुके समान तीक्ष्ण औषधोंसे जीते, वादीको मित्रके समान स्नेहनद्रव्य से जीते और पित्तको अपने जामाता (जमाई) के समान मधुर और शीतल पदार्थोंसे जीते ॥

औषधकेनाम ।

भैषज्यंभेषजंजैत्रमगदोजायुरौषधम् ।

आयुर्योगोगदारातिरमृतंचतदुच्यते ॥

अर्थ—अब औषधके नाम कहते हैं जैसे—भैषज्य, भेषज, जैत्र, अगद, अजायु, औषध, आयुयोग, गदाराति और अमृत ये औषधके नामांतर हैं।

औषधकेदोभेद ।

भेषजंद्विविधंचतत् ।

स्वस्थस्योजस्करंकिंचित्किञ्चिदार्त्तस्यरोगनुत् ॥

अर्थ—अब कहते हैं कि, वह चिकित्सा अर्थात् औषध दो प्रकारकी है,

एक तो नैरोग्य पुरुषको तेज-(पुरुषार्थ) के करनेवाली और दूसरी रोगीके रोगको नाश करनेवाली ॥

स्वस्थस्योजस्करयत्तु तद्वृष्यंतद्रसायनम् ।

प्रायः प्रायेण रोगाणां द्वितीयं प्रश्नमे मतम् ॥

प्रायः शब्दो विशेषार्थोऽह्युभयं ह्युभयार्थकृत् ॥

अर्थ-अब दोनोंके भेदोंको, कहते है कि, जो स्वस्थ (नैरोग्य) पुरुषके तेज, बल, कांतिको बढावे वो वृष्य और रसायन है । (वह इस चिकित्साखंडके अंतमें लिखेगे) तथा दिनादिचर्याभी इसी ओजस्कर चिकित्सामें है यह प्रथम इस बृहन्निघंटुरत्नाकरके दूसरेभागमें लिख आये है । और दूसरी रोगीके रोगहरणकारी चिकित्सा है वह इसी चिकित्साखंडके प्रत्येक ज्वरादिरोगोंमें पृथक् २ लिखी जावेगी ॥ प्रायः यह शब्द विशेषार्थ वाचक है और उभयशब्द दोअर्थका वाचक है ॥

अभेपजंचद्विविधं बाधनं सानुबाधनम् ।

अर्थ-अभेपज (अर्थात् जो औषध नहीं है) वह दो प्रकारकी है एक-बाधन और दूसरी सानुबाधन ॥

अभेपजमितिज्ञेयं विपरीतं यदौषधम् ॥

अर्थ-जो औषधसे विपरीत कर्मकरे उसको अभेपज ऐसे वैद्य कहते है ॥

शिष्य-प्रथम ज्वर कहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥

गुरु-यह संपूर्ण रोगोंका राजा है अतएव प्रथम हम ज्वराधिकार कोही वर्णन करते है जैसे लिखा है ॥

यतः समस्तरोगाणां ज्वरो राजेति विश्रुतः ।

अतो ज्वराधिकारोऽत्र प्रथमं लिख्यते मया ॥

अर्थ-संपूर्ण रोगोंमें ज्वर राजा है इस प्रकार सुना है अतएव प्रथम मैं इस जगे ज्वराधिकार लिखता हू तहां प्रथम ज्योतिषके मतको कहते है ॥

पूर्वजन्मकृतं पापं ग्रहरूपेण बाधते ॥

अर्थ-पूर्वजन्मके पाप इस प्राणीको ग्रहरूप होके बाधा करते है ॥

ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेपजम् ।

तेभेपजानांवीयांणिहरन्तिबलवंत्यपि ॥
प्रतिकृत्यग्रहानादौ पश्चात्कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ—ग्रह (सूर्यचंद्रादि) के प्रतिकूल (मारकादि) होनेसे प्राणीको औषधी अनुकूल (हितकारी) नहीं होती, क्योंकि वो दुष्ट ग्रह बड़ी बलवान् औषधोंके वीर्यको हरण करलेते हैं इसीसे वैद्यको उचित है कि, प्रथम ग्रहोंको जप, दान, हवन पूजनादिसे शांति करके फिर चिकित्सा करे अत एव अब उन ग्रहोंके द्वारा ज्वर रोगका निर्णय कहते हैं ॥

ज्योतिः शास्त्रकाअभिप्राय ।

नीचस्थितस्य भानोर्दशाक्षिनाशो ज्वरः शिरोरोगाः ।
बंधनमहोत्रपीडाकुष्ठस्य च दर्शनं चिह्नम् । एवंक्षीणेन्दु-
दशायां परिचितनीयम् ॥

अर्थ—नीचस्थितसूर्यकी दशामे नेत्रनाश, ज्वर, मस्तकरोग, बंधन, महाभय, कोठ, रोग इत्यादि पीडाहोती है । इसीप्रकार क्षीणचंद्रकी दशामें भी रोगहोते हैं ॥

सुहृद्बंधुसमायोगो भूनिमित्तं कलिर्भवेत् । देहपीडाज्व-
रोव्याधिः शिखिमध्यगते बुधे । शनिरंतर्गतेप्येवम् ।
तद्वैकृतनिराकृतयेजपहोमादिकं कुर्यात् इति सारावल्याम् ॥

अर्थ—केतुकी दशामें बुधकीदशाआनेसे सुहृत् तथा बंधु इनका समागम और पृथ्वीके मध्ये झगडा, देहमें पीडा, ज्वर और व्याधि ये उपद्रव होते हैं । तथा शनीकी दशामें बुधकी दशा आनेसे उक्तफलहोता है उस पीडाके दूर करनेके निमित्त जपहोमादिक करे यह सारावली ग्रंथमें लिखा है ॥

ज्योतिषकल्पतरौ ।

हेलिः पित्तश्चन्द्रमाश्लेष्मवातौ भौमः पित्तोज्ञः त्रिदोष-
प्रधानः । जीवः श्लेष्माकारकोभार्गवस्तु वातश्लेष्मा-
भास्करिर्वातकारी ॥

अर्थ—अशुभ सूर्य पित्तके रोगोंको करे है, चंद्रमा कफघातके रोगोंको करे है, मंगल पित्तक, बुध त्रिदोष (संनिपात) के रोगोंको, बृहस्पति कफके

विकार, शुक्र वातकफके विकार, एवं अशुभ शनैश्वर वादीके रोगोंको अपनी दशांतर्दशामें कर्ता है ॥

ज्योतिषहरस्येऽपि ।

योबलीत्रिकभावेशोदशाश्चांतर्दशास्वपि ।

सूर्यभौमार्कभिर्विद्धःसभवेज्वरदायकः ॥

अर्थ-त्रिकभाव ६-८-१२) पण्डेश अष्टमेश और द्वादशेश इन तीनोंमें जो ग्रह बली होय वही अपनी दशा और अंतरदशामें सूर्य, मंगल और शनीश्वर करके विद्ध होवे तो ज्वरको प्रगटकरे है ॥

यैदृष्टोरिपुभावेशस्तत्तत्प्रकृतिजैर्गुणैः ।

ज्वरकृत्स्वदशामध्यवातपित्तकफादिकैः ॥

अर्थ-पण्डेशको जो जो ग्रह देखते हैं और उनकी जैसी २ प्रकृति है उसके माफिक अपनी २ दशामें वात, पित्त और कफादिजन्य ज्वरको प्रगट करते हैं ॥

पैशाचिकज्वरकायोग ।

रिपुभावेश्वरोदृष्टोराहुकेतुशनैश्वरैः ।

दृष्टोवाव्ययभावेशो ज्ञेयःपैशाचिकज्वरः ॥

अर्थ-पण्डेशको अथवा द्ययेशको राहु केतु और शनैश्वर देखते होवें तो उस प्राणीको पैशाचिक अर्थात् भूतबाधाका ज्वर जानना ॥

खेदज्वरकायोग ।

मार्गाधीशोथबलवान्राहुकेतुशनैश्वरैः ।

दृष्टेखेदज्वरोज्ञेयइत्याहभगवान्भृगुः ॥

अर्थ-मार्गाधीशबली यदि राहुकेतु और शनैश्वर करके वीक्षित होवे तो उस प्राणीके खेदज्वर होवे इस प्रकार भृगुऋषिने कहा है ॥

ज्वरद्वारामृत्युकायोग ।

अष्टमेशोयदाभौमोलग्नेशेनेत्थशालवान् ।

पित्तराशिगतौतौचेज्वरेणमृतिमादिशेत् ॥

अर्थ-मंगल यदि अष्टमेशहोके लग्नेशके साथ इत्थशाल योग करता हो तथा अष्टमेश और लग्नेश दोनों पित्तराशिके होवे तो उसप्राणीको ज्वररोगसे मृत्यु होवे ॥

औषधजन्यज्वरयोग ।

प्रश्नलग्नेपित्तराशौ रोगेशेन समन्वितः ।

औषधाज्ज्वररोगःस्यादथवा वैद्यचापलात् ॥

अर्थ—प्रश्नलग्ने पित्तराशिहो और रोगेश (पण्डेश) करके युक्त होवे तो उस रोगीको औषधसे ज्वर जानना अथवा वैद्यकी चपलतासे ज्वर जानना ॥

भीतिज्वरयोग ।

भयाधीशदयाधीशावेकस्मिन् भवने बली ।

चंद्रमाबुधसंयुक्तो भीतिज्वरयुतो नरः ॥

अर्थ—भयाधीश और दयाधीश दोनों बलवान् होकर एकवरमें बैठे हों और चंद्रमा तथा बुधयुक्त होवेतो उस प्राणीको भीतिज्वर जानना ॥

शापज्वरयोग ।

धर्मेशः पृष्ठभने पण्डेशेन समन्वितः ।

रिपुदृष्ट्या चेत्यशाली शनिना शापतो ज्वरः ॥

अर्थ—धर्मेश छठेघरमें पण्डेशकरके युक्तहोवे, तथा रिपुदृष्टिकरके शनिशरसे इत्यशाल करता होवे तो उस प्राणीको शापजनित ज्वर जानना ॥

यमघटयोग ।

आदित्ययोगेनमघाविशाखाचंद्रेणयुक्ताकुजार्द्रयातु ।

मूलंप्रबुद्धेगुरुकृत्तिकाचशुक्रेणरोहिण्यसितेनहस्तः ॥

एतान्वदंतिनिपुणायमघंटयोगान्वयाधिप्रपन्नमनुजोय-

दिपुण्ययोगात् । संजायतेमुदितमेवइति ॥

अर्थ—रविवारको मघानक्षत्र, सोमवारको विशाखानक्षत्र, मंगलवारको आर्द्रानक्षत्र, बुधवारके दिन मूलनक्षत्र, गुरुवारको कृत्तिकानक्षत्र, शुक्रवारको रोहिणी और शनिवारकी हस्त नक्षत्र, होनेसे यमघंटसंज्ञक योग होता है यदि इस योगमें मनुष्य रोगी होवे पुण्ययोगसे कदाचित् अच्छा होता है ॥

सुखयोग ।

दिनकरकरयुक्तःसोमसौम्येनवापितुरगसहितभौमः

सोमपुत्रे ऽनुराधा । सुरगुरुरपिपुष्येरेवतीशुक्रवारेदिन-
करसुतयुक्तोरोहिणीसौख्यहेतु ॥

अर्थ—रविवारमें हस्तनक्षत्र, चंद्रवारमें मृगशिरनक्षत्र, मंगलवार अश्वि
नीनक्षत्रयुत बुधवार अनुराधानक्षत्र करके युक्त, बृहस्पति पुष्यनक्षत्रयुत,
शुक्रवार रेवतीनक्षत्रयुत और रोहिणीनक्षत्रयुत शनिवार होवे वह सौख्य
योग है यदि इस योगमें रोगी विमारहोवे तो शीघ्र आराम होवे ॥

अथनक्षत्रयोगेनज्वरव्याधिःप्रजायते ।

साध्यासाध्यंचयाप्यंचवक्ष्यामिशृणुपुत्रक ॥

अर्थ—अब नक्षत्रयोगसे जो साध्यासाध्य और असाध्य रोग प्रगट होतेहैं
उनको हे पुत्र ! मैं तेरे आगे कहता हूँ सुन ॥

असाध्यनक्षत्र ।

मघा भरणिहस्तेषु मूलेवा ज्वरतोपिवा ।

मृत्युमापद्यते सोपि नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ—मघा, भरणी, हस्त और मूल इन नक्षत्रोंमें यदि मनुष्य ज्वर-
पीडित होवेतो अवश्य मृत्युको प्राप्त होवे ॥

साध्यनक्षत्र ।

अश्विनीरोहिणीपुष्ये मृगज्येष्ठापुनर्वसौ ।

एते सध्यास्तु विज्ञेया ज्वरिणांच विशेषतः ॥

अर्थ—अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु इतने नक्षत्र
ज्वररोगीको साध्य हैं ॥

कष्टसाध्यनक्षत्र ।

पूर्वात्रयं स्वातितथापि चित्रा त्रयोत्तरा वा श्रवणं धनिष्ठा ।

मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिः साप्योनुराधा सह ज्ये-

ष्ठया च ॥ एते सकष्टाः सहपीडितानां ऋक्षस्तु याप्यं

कुरुते नरस्य ॥ तस्मात्तुविज्ञायबुधश्चसम्यक्कुरुजांवि-

नाशंप्रतिकर्मभिश्च ॥

अर्थ—पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद, स्वाति, चित्रा,
तीनोंउत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका, अश्लेषा, अनुराधा

और ज्येष्ठा ये नक्षत्र रोगीको कष्टसाध्य और याप्यकर्ता है [तहां कोई नक्षत्र कष्टसाध्य और कोई नक्षत्र याप्य जानना] इसीसे यह वैद्य प्रथम शुभाशुभ नक्षत्रोंको विचारके फिर रोगनाशक औषधी देवे ॥

कष्टावली ।

अश्विन्यां चैकरात्रं तु भरण्यां मृत्युमादिशेत् । कृत्तिका-
नवरात्रं तु रोहिण्यां तु दिनत्रयम् ॥ अश्विनीष्वपिपट्टरात्रं
सुखं भवति देहिनाम् । यमदैवे समुद्दिष्टं मरणं पंचमे
ऽहनि ॥ कृत्तिकासुगृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्वरः ।
न मुंचेद्यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखम् ॥ अत ऊर्ध्वं
विपद्येत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ रोहिण्यामष्टरात्रेण
मुच्येदेकादशेहनि ॥ मृगेण षडहं ज्ञेयं नवरात्रमथापि
वा । आर्द्रया मुपसंसृष्टं पंचाहान्मृत्युमादिशेत् ॥
ऊर्ध्वं यद्यपि वर्तेत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ पुनर्वसूप-
सृष्टस्तु ज्वरेण परिपीडितः । त्रयोदशाहान्मुच्येत
सप्तविंशेऽथवा हनि ॥ पुष्ये त्रिरात्रं ज्वरितं सप्तरात्रान्नि-
वर्तते । नवरात्रं तथाश्लेषा मघाचेति यमालयम् ॥

अर्थ—अश्विनी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग १ रात्रि रहता है । भरणी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग मृत्यु करता है। कृत्तिका नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग नौरात्रि रहे। रोहिणीमें तीनदिन जानना । अथवा अश्विनीमें प्रगट हुआ रोग छः रात्रि रहकर फिर आनंद होता है और भरणीमें प्रगटहोनेसे पांचमें दिन रोगीका मरणहोवे । कृत्तिका में हुआ ज्वर सातरात्रि रहता है । यदि सातदिनमें अराम न होयतो फिर २१ दिनमें सुखहोवे । यदि इक्कीसदिनकेभीबाद आराम न होवे तो वह रोगी १॥ महीनेमें बचे अथवा मरजावे। रोहिणी नक्षत्रमें आठदिन रहकर ११दिनमें रोगशांत होवे । मृगाशिरमें छःदिन रहे अथवा नौ रात्रिमें उतरे । आर्द्रा में हुआ रोग पांचदिनमें मरणकरे। यदि पांचदिनके उपरांत रोगी बचजावे तो १॥ महीनेमें संशय कारक होता है पुनर्वसु में हुआ ज्वर १३ दिनमें छूटे अथवा २७ वें दिन ज्वर रहितहोवे। पुष्यनक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर तीन रात्रि रहे फिर क्रम २ से घटके सातवें

दिन मुक्तहोवे । श्लेपानक्षत्रमें ज्वर ९ रात्रिरहे । और मघानक्षत्रमें रोगहोनेसे रोगीका मरण होय ।

अश्लेपासुभवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमादथ । मघासुद्रादशा-
हेनमृत्युर्भवतिदेहिनः ॥ ऊर्ध्वयातिमघायांतुपुनरेवसु
खीभवेत् । पूर्वाभासत्रयज्ञेयंउत्तरापंचकत्रयम् ॥ पूर्वात्र
येत्रयोमासाः शुभाः ज्ञेयामनीपिभिः । पूर्वासुचोपसृष्ट-
स्यफाल्गुनीषु भवेदश ॥ उत्तरासुतथाष्टौचनवरात्रमथा
पिवा । एकविंशतिरात्राद्वाज्वरश्चेत् सौख्यमृच्छति ॥
एतेपांतुर्यगेचांशेयदिरोगस्तदानृतिः ॥

अर्थ-श्लेपानक्षत्रमें रोगहोनेसे बहुतदिनमें मृत्युहोवे । मघानक्षत्रमें १२ दिनसे मरे । यदि १२ दिनसे उपरांत बच जावे तो फिर सुखी होय । पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद इनमें हुआ रोग तीन महीनरहे और अच्छा होजावे । पू० फा० नक्षत्रमें हुआरोग १० रात्रिरहे । उ० फा० नक्षत्रमें आठरात्रि अथवा नौरात्रि रहे अथवा २१ रात्रिरहकर फिर आनंद होवे यदि उक्तनक्षत्रोंके चतुर्थ पादमें रोग होयतो रोगी निश्चय मरे ॥

हस्तेनप्रथमेमोक्षश्चित्रायामष्टमेहनि । स्वातिः षोडशरा-
त्रंतुविशाखाविशारात्रिकम् ॥ स्वातियोगेदशाहेनमुच्येतप-
क्षत्रयेणवा । विशाखासुभवेन्मृत्युरेकविंशतिमेहनि ॥
चानुराधापक्षमेकं ज्येष्ठांदशदिनानितु । ज्वरस्तुदिवसा
नष्टावनुराधासुवर्त्तते ॥ अतऊर्ध्वंतुमुक्तिःस्यान्नास्तित
स्यचिकित्सितम् ॥

अर्थ-हस्तनक्षत्रमें प्रथमदिनही रोगसे मुक्त होजावे । चित्रानक्षत्रमें आठवेंदिन । स्वातिनक्षत्रमें आठ रात्रिमें । विशाखानक्षत्रमें बीसदिनसे रोगमुक्तहोवे । अथवा स्वातिनक्षत्रमें १० दिनसे अथवा १॥ महीनेमें छूटे । विशाखामें २१ दिनसे मृत्यु होय । अनुराधानक्षत्रमें १५ दिनसे । ज्येष्ठानक्षत्रमें दशदिनसे रोगमुक्त होवे अनुराधानक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर आठदिनरहे । यदि आठदिनसे ज्यादा ज्वर रहे तो उस रोगीका मरण होवे उसका यत्नही है ॥

ज्येष्ठायांपंचमेमृत्युरूध्वाद्वादशात्मखम् । मूलेनचोप
सृष्टस्यदशरात्रंभवेज्वरः ॥ तदूर्ध्ववर्त्तमानस्यचैकविंशे
भवेत्सुखम् । पूर्वाषाढ्यांतुनवमेहानि रोगात्प्रमुच्यते ॥
उत्तरासुत्वपाढासुमांसंक्लिश्यत्यसंशयः । अष्टौवानवमा-
सानांततोऽस्यसुखामादिशेत् ॥ श्रवणेनाष्टरात्रंतुक्लिश्य
तेज्वरपीडितः ॥

अर्थ-ज्येष्ठानक्षत्रमें पांचवेदिन मृत्युहो, यदि बच जावे तो १२ दिनमें
सुखहोवे । मूलनक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर दशरात्रि पर्यंत रहता है । यदि-
दशरात्रिमें रोग नहटेतो २१ दिनमें सुखी होय । पूर्वाषाढनक्षत्रमें यदि
रोग प्रगट होवे तो नौमेंदिन अच्छा होय । उत्तराषाढमें रोगोत्पन्न हुआ
१ महीने पर्यंत कष्टकारक जानना फिर आठ महीनेमें या नौ महीनेमें
रोगशांति होवे और श्रवणनक्षत्रमें यदि ज्वर प्रगट होवे तो वह रोगी
आठरात्रिपर्यंत बलशित रहता है ॥

मासत्रयंधनिष्ठासुशतभिपकृदिनविंशकम् । नवरात्रंपूर्वा-
भाद्रेउत्तरापंचकत्रयम् ॥ दशाहंरेवतीपीढासुच्यतेव्या-
धिभिस्ततः । दशरात्रंधनिष्ठासुज्वरोभवतिदेहिनाम् ॥
षडात्राद्वादशाहंवाभवेच्छतभिपासुच । तथाभाद्रप-
देष्वेवपूर्वासुमरणंध्रुवम् ॥ उत्तरासुभवेन्मोक्षोदिवसेऽर्द्ध-
चतुर्दशे । चतुरात्राष्टरात्रंवारिवेत्यांवर्त्ततेज्वरः ॥

अर्थ-धनिष्ठानक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग तीनमहीने रहता है । शतभिपा-
नक्षत्रमें बीसदिन । पूर्वाभाद्रपदनक्षत्रमें उत्पन्नहुआ रोग नौरात्रि रहता
है । उत्तराभाद्रपदमें प्रगट हुआ रोग १५ दिन रहता है । रेवतीनक्षत्रमें
प्रगट हुई पीडा दशदिन रहकर नष्टहोती है । धनिष्ठानक्षत्रमें ज्वररोग
होयतो दशरात्रिरहे। शतभिषानक्षत्रमें छःरात्रि अथवा चार रात्रिरहे पूर्वा-
भाद्रपदमें ज्वर प्रगट होयतो रोगी मरो। उत्तरा भाद्रपदमें ७दिनरहे। एवं रेव-
तीनक्षत्रमें यदि ज्वर होवे तो चाररात्रि अथवा आठरात्रि पर्यंत रोग रहता है ॥

अदिवनी ।

अश्विन्याःप्रथमेपादेनवरात्रंप्रकीर्तितम् । द्वितीयेपूर्ण-

माख्यातंतृतीयेसप्तवासराः । संप्रोक्तावासराःपूर्णाश्चतु-
र्थेह्येकविंशति ॥

अर्थ—अब नक्षत्रके प्रत्येक चरणका फल कहते हैं । तहां अश्विनीनक्षत्र-
के प्रथम पादमें रोग होवे तो नौरात्रिरहे । दूसरेमें होयतो मृत्युकरे ।
तीसरेपादमें होयतो सातदिन रहे और अश्विनीके चतुर्थपादमें हुआ रोग
२१ दिनपर्यंत रहता है ॥

भरणी ।

भरण्यांप्रथमेपादेचैकादशदिनानितु । द्वितीयेचत्वारिं-
शचतुर्वतीयेपूर्णमादिशेत् ॥ चतुर्थेरुद्रसंख्याकंदिनसं-
ख्याप्रकीर्तिता ॥

अर्थ—भरणीके प्रथमपादमें हुआ रोग ११ दिनरहे, दूसरेमें ४० दिन
तीसरेमें मृत्यु और चतुर्थपादमें होवेतो १० दिन रोग रहता है ॥

कृत्तिका ।

कृत्तिका नक्षत्रके प्रथम चरणमें पित्तजन्यज्वर उत्पन्न होवेतो वो दश-
दिनरहे।दूसरे चरणमेंभी दशहीदिन रहे।तीसरेचरणमें होयतो पाँच दिनरहे
रोहिणी ।

रोहिणीके प्रथम चरणमें ९ रात्रि पीडारहे । दूसरे चरणमें १८ दिनरहे।
तीसरेचरणमें दशरात्रि पीडा जाननी ॥

मृगशिर ।

मृगशिरनक्षत्रके प्रथम चरणमें ७दिन पीडारहे । दूसरे चरणमें १२ दिन-
रहे । तीसरेचरणमें २५ दिनपीडा रहती है ॥

आर्द्रा ।

आर्द्रानक्षत्रके प्रथमचरणमें १५ दिन।दूसरे चरणमें १२ दिन और
तीसरे चरणमें पीडा होय तो रोगीकी मृत्यु होय ॥

पुनर्वसु ।

पुनर्वसुनक्षत्रके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो १५ दिनरहे । दूसरेमें ७
दिन और तीसरे चरणमें होयतो २५ दिन पीडारहे ॥

पुप्य ।

पुप्यनक्षत्रके प्रथम चरणमें ७ दिन पीडा रहे । दूसरेमें २० दिन और तीसरेमें २१ दिन पीडा रहती है ॥

अश्लेषा ।

अश्लेषाके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो तीन महीने रहे और रोगी कष्टसे जीवे । दूसरेमें तथा तीसरेमें रोगीकी मृत्यु होय ॥

मघा ।

मघाके प्रथम चरणमें ७ रात्रि पीडारहे । दूसरेचरणमें २७ दिन और तीसरे चरणमें ३० दिन पीडा रहती है ॥

पूर्वाफाल्गुनी ।

पूर्वाफाल्गुनीके प्रथम चरणमें ५ रात्रि पीडा रहती है । दूसरेमें १२ दिन और तीसरे चरणमें १ महीनेके बाद रोगी मरे ॥

उत्तराफाल्गुनी ।

उत्तराफाल्गुनीके प्रथम चरणमें १४ दिन पीडारहे । दूसरेमें सातरात्रि और तीसरे चरणमें ९ दिन पीडारहती है ॥

हस्त ।

हस्तनक्षत्रके प्रथमचरणमें रोग होवेतो ७ रात्रिरहे । दूसरेमें होयतो ४ दिन रहे और तीसरेमें होवेतो ५ दिन पीडा रहती है ॥

चित्रा ।

चित्राके प्रथमचरणमें व्याधि होनेसे रोगीकी मृत्युहोवे । दूसरे चरणमें तीन महीने रोगीरहे और तीसरेचरणमें १३ दिन रोग रहता है ॥

स्वाति ।

स्वातिके प्रथम चरणमें रोग होवेतो २७ दिनरहे । दूसरे चरणमें बीस दिन और तीसरे चरणमें रोग होयतो मृत्युहोय ॥

विशाखा ।

विशाखाके प्रथम चरणमें व्याधि होनेसे ४८ दिनरहे । दूसरे चरणमें होयतो बारह दिन रहे और तीसरे चरणमें भी १२ दिन पीडा रहती है ॥

अनुराधा ।

अनुराधाके प्रथम अंशमें पीडा उत्पन्न होयतो ७ दिन । दूसरेमें १५ दिन और तृतीयचरणमें ६४ दिन पीडा रहती है ॥

ज्येष्ठा ।

ज्येष्ठाके प्रथम चरणमें रोग होनेसे तीन महीने पीडा रहे । दूसरेमें १६ दिन तथा तीसरेमें मृत्युहो ॥

मूल ।

मूलनक्षत्रके प्रथम द्वितीय तृतीय चरणमें रोग होनेसे १५ दिन पर्यंत पीडा रहती है ॥

पूर्वाषाढ ।

पूर्वाषाढके प्रथम चरणमें रोग होनेसे ३ महीने पीडा रहे । दूसरेमें १६ दिन और तीसरे चरणमें मृत्यु होवे ॥

उत्तराषाढ ।

उत्तराषाढनक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग होयतो १५ दिन रहे । दूसरेमें १२ दिन और हे महामुने ! तीसरे चरणमें रोग होयतो २० दिन रोग रहे ॥

श्रवण ।

श्रवणके प्रथम चरणमें ७ दिन, दूसरेमें २० दिन और तीसरे चरणमें १६ दिन रोग रहे है ॥

धनिष्ठा ।

धनिष्ठाके प्रथम चरणमें २० दिन रोग रहे । दूसरे चरणमें ६० दिन तथा तीसरे चरणमें रोग होवेतो १६ दिन रहता है ॥

शतभिषा ।

शतभिषाके प्रथम चरणमें रोग होवेतो १॥ महीने घोर दुःखः देवे, दूसरेमें छः महीने और तीसरे चरणमें रोग होनेसे १६ दिन पीडा रहती है ॥

पूर्वाभाद्रपद ।

पूर्वाभाद्रपदके प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरणमें रोग होनेसे मृत्यु होवे ॥

उत्तराभाद्रपद ।

उत्तराभाद्रपदाके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसे १५ दिन पीडा रहे । दूसरे चरणमें २८ दिन दुःख रहे और तीसरे चरणमें होनेसे १५ दिन रोग रहता है ॥

रेवती ।

रेवतीनक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसे ८ दिन पीडा रहे ।

दूसरे चरणमें होवेतो १६ दिन दुःखीरहे और तीसरे चरणमें रोग होनेसे १० दिन पीडा रहे पश्चात् शांति होती है ॥

एवंज्ञात्वानरः सम्यक्कुर्यात्प्रशमनक्रियाम् ।
नक्षत्रस्यत्रयोभागारात्रेयणप्रकीर्तिताः ॥

अर्थ—इसप्रकार नक्षत्रके और नक्षत्रके चरणोंका शुभाशुभविचारके शास्त्रीक (जो आगे कहते हैं) उस शांतिकर्मको करे, यद्यपि नक्षत्रके चार चरण होते हैं, परंतु यहाँ पर आत्रेयमहर्षिने तीनही चरणका फल कहा है चतुर्थ चरणका फल जो संपूर्ण रोगका प्रथम कहा है वह जानना ॥

अवनक्षत्रहवनकीविधि कहतेहैं—तहांप्रथम ।

समिधा ।

आक, खैर, टाक, बेर, नीम, दूब, छोंकरा, कुश, फाश, पीपल, बड, जटामांसी, जामुन, आम, सोमबल्कल, बहेडा, चंदन, अरनी, अगरवृक्ष, कटसरैया, सतावरी, सर्वांपधी, हलदी, दारुहलदी ये सब होमकरनेके लिये समिधा हैं ॥

परंतु राजनिषंडुमें सत्ताईस नक्षत्रोंके सत्ताईस वृक्ष करे हैं उनकी समि लेनी चाहिये ॥

गंध ।

चंदन, लालचंदन, गौरोचन, हरदी, गेरू, नीब, बेल, पतंग, फदंब, केशर, कस्तूरी, कपूर, श्रीपर्णी, देवदारु, पीतचंदन, पन्नाख, दारुहलदी, अगर, सीसों और टाक ये गंध द्रव्य है ॥

फूल ।

कमल, बेल, तुलसी, दूब, कुश, अरनी, छोंकराके पत्ते, आक, टाक, इनके फूलले ॥

धूपदीपादि अलंकारोंसे वास्तुमंडल अलंकृत करके ईशानादिक्रमसे नवग्रहोंको स्थापनकरे । तथा नक्षत्रोंको स्थापनकरे, प्रथम सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु इनका पूजन करके क्रमसे इनकी समिधाका हवन करे फिर समिधाओंके दही, शहत, घृत इनमें डबो २ के अश्विन्यादि नक्षत्रोंका हवन करे ॥

तहां आककी समिधा लेकर, ' इदमश्विनो' इस मंत्रसे तथा 'विष्णो-
रराट' इन मंत्रोंसे अश्विन्यादि नक्षत्रोंका हवनकरे ॥

' इदंभरण्यो' और 'मधुमाध्वी' इसमंत्रसे बेरकी समिधा भरणीनक्ष-
त्रकी शांतिके अर्थ हवनकरे ॥

' कांडात् कांडात् ' इस मंत्रसे नीमकी समिधा कृतिकानक्षत्रकी
शांतिके अर्थ हवनकरे, एवं दूर्वा (दूव) कुशा, इनकी समिधासे रोहिणी
मृगशिर आर्द्रा आदि नक्षत्रोंकी शांत्यर्थ हवनकरे इसी प्रकार सब नक्ष-
त्रोंका हवन पृथक् २ है सो शांतिसार, शांतिकमलाकर, शांतिमयूख,
आदि ग्रंथोंमें देखो ॥

फिर घृतसे पूर्णाहुती करे और ग्रहोंको अभिषेकस्नान करावे । फिर
रोगीको भस्मस्नान और मंत्रस्नान कराय सपेद कपड़े पहिनायके उस
यज्ञमें बैठाले वे वेदोक्त मंत्रोंसे उसका मार्जन करे तथा अपामार्जनसे
उसे मार्जित करे आशीर्वाद देवे । पश्चात् वह रोगी गोदान, वस्त्रदान,
पृथ्वीदान आदि यथाशक्त्यनुसार करे इस प्रकार हवन करे तो सर्वग्रह
नक्षत्र और योगोंकी शांति होवे ॥

ज्वररोगका कर्मविपाक ।

यथाशास्त्रं तु निर्णीतं यथाव्याधिचिकित्सितः ।

न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥

अर्थ—जिस व्याधिका शास्त्रानुसार निर्णयकर उस व्याधिके अनुसार
चिकित्सा करी फिरभी न शांतिहोवे उस व्याधिको पंडितजन कर्मज जाने

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण वाधते ।

तच्छान्तिरौपधैर्दानैः जपहोमसुरार्चनैः ॥

तस्मात्कर्मविपाकोक्तप्रायश्चित्तादिसाधनैः ।

पूर्वपापक्षयात्क्षिप्रं व्याधिः शाम्येदसंशयम् ॥

अर्थ—जन्मान्तरमें किया हुआ पाप इस देहमें रोगरूपहोकर दुख देता है
उसकी शांति औपधपान दिव्यौषधधारण दानकरना जप होम और देवता

ओंका पूजन इन कारणोंसे होती है। इसीसे कर्मविपाकोक्त प्रायश्चित्तादि साधनों करके पूर्वजन्मोपार्जित पापोंके शांति होनेसे रोग निःसंदेह शीघ्र शमनहो जाते हैं । इसीसे पूर्वजन्मजनितपाप परिपाकसे उत्पन्न ज्वरके हेतु और उनका यत्न कहते हैं ॥

येसंपूर्ण प्रायश्चित्त रोगानुसार बड़ा और छोटा करे और इनमें वित्तशा-
ठ्य नकरे अर्थात् जिसकी दशरूपे लगानेकीसामर्थ्य है यदि वो एकरूपा या दो रूपाही लगावे तो वो वित्तशाठ्य कहलाता है ऐसा करनेसे वो फलीभूत नहीं होता है और न रोग शमनहो इसवास्ते अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रायश्चित्त करे और जो असामर्थ्य है उसको ऋण लेकर प्रायश्चित्त नहीं करना किंतु अपनी देहसे जो धनसके उसको जैसे विष्णुसहस्रनामका पाठ, गाय-
त्रीजप और मनसे परमात्माका ध्यानआदि ॥

सर्वज्वरेकर्मविपाकमाह ।

देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः । ज्वरो महाज्वर-
श्चैव रौद्रो वैष्णवएव च ॥

अर्थ—अब सर्वज्वरका कर्मविपाक कहते हैं । जैसे देवद्रव्य हरण कर-
नेसे अनेक प्रकारका ज्वर प्रगट होता है उन्हींमें उष्णज्वर शिवसे और महाज्वर (शीतज्वर) विष्णुभगवान्से, प्रगट हुआ है ॥

अथास्यशांतिः ।

ज्वरे रुद्रजपं कुर्यान्महारुद्रं महाज्वरे ।

महारुद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्वयं जपेत् ॥

अर्थ—ज्वरके दूर करनेको रुद्रजप और महाज्वर दूर करनेको महारुद्रजप कराना चाहिये । रुद्रज्वरवालेको महारुद्र और वैष्णवज्वरमें रुद्र और महारुद्र दोनोंको जप करावे ॥

गार्ग्यः ।

ये पुनः पूर्वजन्मनि क्रूराः पिशुनाः ततस्तेऽन्यजन्मनि
सततं ज्वरिणः स्युः ॥

अर्थ—गर्गऋषिका पुत्र लिखता है कि, जो मनुष्य पूर्वजन्ममें क्रूर तथा पिशुन (चुगली करनेवाले) होते हैं, वो उस पापकरके इस जन्ममें सत-
तज्वरी होते हैं ॥

शीतज्वरकाकर्मविपाक ।

ये पुनः क्रूरकर्माणः पापाः पिशुनचेतसः ।

ते भवेयुः सदाशीतज्वरवंतस्तदेनसा ॥

अर्थ—जो कोई क्रूरकर्म करनेवाले, पापी, चुगलखोर हैं वो पुरुष सदैव शीतज्वरसे पीडित होते हैं ॥

उसकाशमन ।

शांतयेऽयुतसंख्याकं प्रकुर्यात्प्रयतो जपम् । जातवेदसमं-

त्रेण ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ सुरामांसोपहाराद्यैर्बालिः

सर्वत्र शस्यते ॥ सहस्रकलशस्नानं शतभोजनमेव च ॥

शीतज्वरे पुनः कुर्यादभिषेकं हरेर्बुधः ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए शीतज्वरकी शांति करनेको (जातवेदसे) इस मंत्रको दशहजार जप करावे और ब्राह्मणभोजन करावे अथवा मद्यमांस इनकी बलिदानदे किंवा सहस्रकलशाभिषेक करे और १०० ब्राह्मणोंको भोजन करावे अथवा श्रीविष्णुभगवान्का अभिषेक करावे ॥

सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्य कारयेत् ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छतथाजपेद्वैजातवेदसम् ॥

अर्थ—अन्यत्रभी लिखा है कि, शिवका रुद्रीसे सहस्र कलशाभिषेक करावे तथा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावे और 'जातवेदसे' इस मंत्रका जप करावे ॥

ज्वरवालेके दैविकउपचार ।

वेदानां श्रवणं हितस्यचरणं विप्रस्यसंतर्पणं कृष्णस्यस्म-

रणं शुभस्यकरणं द्रव्यस्यसंतर्पणम् । अश्वत्थभ्रमणं

सुरत्नधरणं दीनस्य संरक्षणं हन्यादष्टविधं ज्वरं कुमुदिनी-

नाथो यथोग्रंतमः ॥

अर्थ—अब ज्वरवान्को दैविक यत्न कहते हैं जैसे कि, वेदश्रवण, हिता-चरण, ब्राह्मणभोजन, कृष्णका स्मरण, शुभकार्य, द्रव्यदान, पीपलकी मद्-

क्षिणा, उत्तमरत्नोंका धारण तथा दीनजनोंका पोषण ये उपचार अष्टविध ज्वरोंको जैसे चन्द्रमा घोर अंधकारका नाश करता है वसी प्रकार नाश करे।

सहस्रनेत्रस्य सहस्रबाहोः सहस्रवक्रस्य सहस्रमूर्धः ।

सहस्रपादस्य सहस्रनाम्नां सहस्रनाम्नां पठनं ज्वरघ्नम् ॥

अर्थ—नेत्र, बाहु, मुख, मस्तक, पैर, हस्तादिअंग तथा उसीप्रकार नाम ये जिसके अनेक हैं ऐसे देवका सहस्रनाम (विष्णुसहस्रनाम) पाठ करे तो ज्वर दूर होवे ॥

गणेश्वरो वा गरुडेश्वरो वा गौरीश्वरो वा दिवसेश्वरो वा ।

महेश्वरो वा कुलदेवतं वा तत्पूजनं तज्ज्वरिणां प्रशस्तम् ॥

अर्थ—गणेश, विष्णु, शिव, गौरी, (दुर्गा) सूर्य अथवा कुलदेव इनका पूजन ज्वरवालेको हितकारी है ॥

मंगलेषुचकार्येषुसततंकोपवात्ररः ! उष्णज्वराभिभूतः

स्यात्तस्यपापापनुत्तये ॥ सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्यकार्येत् ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छत्तयाजपेद्वैजातवेदसम् ॥

अर्थ—जो प्राणी मंगलकार्य(विवाहादिक) में क्रोध करता है वह प्राणी उष्ण ज्वरवाला होता है उस पापके दूर करनेको शिवका सहस्रकलशाभिषेक करे और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावे और “जातवेदसे” इसमंत्रका जपकराना चाहिये ॥

अथसर्वज्वरहरकुंभदानम् ।

नवंकुंभंसमानीयमृन्मयंचात्रणंदृढम् । लोहितंकर्णरहितं

स्थापयेत्तंदुलोपरि ॥ तंदुलानांपरिमाणंद्रोणपंचकमि-

प्यते । विशुद्धास्तंदुलाग्राह्याःश्वेतवस्त्रेणवेष्टयेत् ॥ मधु-

नाप्यथवाज्येनगुडशर्करयापिवा । तैर्वापूरयेदद्विर्य-

थाविभवतो नरः ॥ श्वेतपुष्पैरर्चयेत्तंगंधपुष्पैस्तथापरैः ।

होमश्चपूर्ववत्कार्यः समिदाज्यचरुत्करैः ॥ सुवर्णचयथा-

शक्त्याब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ तस्मेद्भुतवतेवृत्तश्रुतशी-

लायसत्कृतम् । मंत्रेणानेनविधिवत्पूजयित्वाज्वरीनरः ॥

मंत्र ।

महेश ! देवदेवेश ! देवदेव ! परात्पर ! ॥ कुंभेनानेनदाने-
नज्वरंक्षिप्रंविनश्यतु ॥ एकांतरं सन्निपातं तृतीयकचतुर्थ-
कौ । पाक्षिकं मासिकं चैव सांवत्सारिकमेव च ॥ नाशयेतं
ममक्षिप्रं वासुदेवमहेश्वरौ ॥

अर्थ—नवीन मिट्टीका कलश जो फूटा और जो जरा न होवे तथा पक्का होय और रंगमें लाल होवे उसको चावलोंके ढेर पर स्थापन करे चावल पांच द्रोण अर्थात् दो मन होवे परंतु (यह धनाढ्यके वास्ते आज्ञा है गरीबको यथाशक्ति लेना) वो चावल विने और फटके हुए शुद्ध होने चाहिये । फिर उस कलशको सपेद वस्त्रसे लपेटके उस घडेमें शहत, घी, गुड, खांड अथवा तैल इनमें किसी एकको भरे यदि इन वस्तुओंसे किसीके भरनेकी सामर्थ्य न होवे तो स्वच्छ जलसेही भरदेवे पश्चात् उसका सपेद फूल, फल, गंध, धूप, दीप नैवेद्यादिसे पूजनकर पूर्वोक्त विधिसे हवनकरे उसमें समिधा घी और चरुको हीममें पश्चात् उस हवन करनेवाले ब्राह्मणको कि, जो वेद और वेदार्थको जानता हो तथा जिसका उत्तम आचार उसको यथाशक्ति इसमंत्रसे उसघटका और सुवर्णका दान करे ॥

उस मंत्रका यह अर्थ है कि, हे महेश ! हे देवदेवेश ! हे देवोंके देव ! हे परात्पर ! इस कुंभदानकरके मेरा एकाहिक, सन्निपातज्वर, तिजारी, चौथिया, पंद्रहदिनमें आनेवाला, महिनेमें आनेवाला एवं वर्ष दिनमें आनेवाले सब ज्वरोंको हे वासुदेव, महेश्वर, शीघ्र नाश करो ॥

अन्यत्र ।

अपामार्जनकंस्तोत्रं हनुमत्कवचादिकम् ।
पठेज्ज्वरीचसततंसर्वज्वरनिवृत्तये ॥

१ जो ब्राह्मण व्याकरणादिभिः पटाहो और ग्रहस्थीहो, उसको दानदे । किंतु जैसे पाथा—पुरोहित—टाराचारी, केवल संडमुसंड, खुसामदी, निरक्षर, मट्टाचार्य, परखीगामी, आदिपापीको दान नदे, इनको दानदेना मानो आपको नरकका महमान बनानाहे ॥

अभिमान करके तिरस्कार कर्ता हुआ, उस समय श्रीशिवके अत्यंत क्रोध करके लाल २ तीसरे नेत्रसे पीले रंगका और तीनमस्तकवाला, वीर-भद्रगण तत्काल प्रगट हुआ । पीलेनेत्र, बाधंवरको ओढ़े हुए, अमिकी कांतिकी धारणकर्ता, छोटी देह और तीनपैर, बडा भारी उदर जिस्का, ऐसा वो वीरभद्रगण त्रिपुरके वैरी शिवके सन्मुख हाथ जोडकर बोला कि, हे प्रभो ! मैं क्या करूं तब उस घोर रूपवालेसे घोरस्वरूप श्रीशिव यह बोले ॥

सर्वंकुरुनिरुत्सवंसइतिरुद्रतो निर्दयं निशम्य समशीसम-
प्रथममेव वल्लिन्नयम् । मरुद्गणमदुद्रवद्भवमतुष्टवद्यज्वि-
नोमुनीनलमनीनमदमनभीतसन्नस्वनान् ॥

अर्थ—कि, दक्षके यज्ञोत्सवको विध्वंसकर इस प्रकार रुद्रसे निर्दय आज्ञाको सुन प्रथम दक्षके यज्ञमें जो तीन अग्निहैं उनको शांति करता हुआ । उस समय यज्ञमें आये ऐसे मरुद्गणोंको भजाता हुआ, श्रीशिवको प्रसन्न करता दमनभयसे रुके श्वासजिनके यज्ञकरानेवाले मुनीश्वरको नीचा करता अर्थात् जीतता हुआ वीरभद्र श्रीशिवके सन्मुख प्राप्त हुआ ॥

इदंतमवदत्स्थितं पुरारिपुः पुरस्ताद्यतोऽखिलं हविरिदकृतो
र्झातिर्जीर्णमेवत्वया । अतोऽस्य जगतो ज्वरो भवततः
प्रभृत्युच्चैरयं ज्वरयति स्फुरद्विविधनामधेयैर्जगत् ॥

अर्थ—इस प्रकार वैरीको जीतके सन्मुख खडे हुए उस वीरभद्रसे श्रीपु-रारिपु (महादेव) बोले कि, तैने शीघ्र इस यज्ञकी सामिग्रीको जीर्णकरी अर्थात् पचागया इसीसे तू इस जगतमें ज्वरनामकरके विख्यात हो, वस उसी दिनसे यह ज्वर अनेक नामोंकर इस जगतको अपने वेगसे ज्वर-वान् करता है ॥

ज्वरोनरिसपाकलालसहरिद्रतापेश्वराः गजोष्ट्रमहिपार्व-
गोष्वथयथाक्रमं कीर्त्तिताः । तथैन्द्रमदस्वोरकर्षभकप-
क्षपाताह्वयाः समस्ततिमिरासभांबुजखगेष्वलर्कः शुनाम् ॥

अर्थ—तहां मनुष्योंके जो ताप होता है उसको ज्वर ऐसा कहते हैं। हाथियोंमें इस ज्वरको पाकल कहते हैं । कंटोंमें इसको अलस कहते हैं । भैंसाओंमें इसकी हरिद्र संज्ञा है । घोडोंमें ताप कहलाता है। गौओंमें ईश्वरनाम करके विख्यात है। सब मच्छलियोंकी जातिमें इन्द्रमद कहलाता है ।

गधाओंमें खोरक नाम करके विख्यात है । कमलोंमें इसको ऋषभके नामसे पुकारते हैं । सब पक्षियोंमें अर्थात् पखेरुओंमें पक्षपात नामसे पुकारते हैं और कुत्तोंमें इसज्वरको अलर्कनामक कहते हैं ॥

**मृगामयारुयोमृगजातिपूक्तः प्रलेपकोऽजाविपुचूर्णकोत्ने ।
उष्णीपसंज्ञः ससरीसृपेपुपर्वाप्रसूनेषु च नीलिकासु ॥**

अर्थ—वही ज्वर मृग (हरिणों) की जातिमें मृगामय कहलाता है । बकरी और भेड़ोंमें प्रलेपकनाम करके विख्यात है । अन्न (गेहूँ, चना, चावल आदि धान्यो) में चूर्णक कहलाता है । सर्पोंमें उष्णीसनाम ज्वरकी संज्ञा है । पुष्प (फूलों) में पर्वा नामसे कहाता है और जलमें इसकी नीलिका संज्ञा है ॥

**कुंकुमको गोधूमे ज्योतिष्कस्त्वौपधीपुपर्वासु ।
ग्रंथिकसंज्ञो ब्रततावित्यभिधानैर्ज्वराः कथिताः ॥**

अर्थ—गेहूँधान्यमें कुंकुमनाम ज्वर की संज्ञा है । औषधियोंमें इसकी ज्योतिष्कसंज्ञा है । वेलोंमें इसकी ग्रंथिक संज्ञा है । इस प्रकार नामों-करके ज्वरकहे हैं ॥

भूमेरूपरकः प्रोक्तो वृक्षाणां कोटरः स्मृतः ॥

अर्थ—पृथ्वीमें ऊपरनामक ज्वर कहलाता है अर्थात् जिसपृथ्वीमें खार पैदा होता है वो ज्वरग्रसित पृथ्वी जाननी। एवं वृक्षोंमें कोटर कहलाता है अर्थात् वृक्षोंमें खोतरका विकार है ॥

ज्वरके आठभेद ।

**वीभत्सस्त्रिशिराज्वरोथकपिलाभस्मप्रहारस्त्रिपात् पिंगा-
क्षोऽथ महोदरोऽथ परतोरोद्रो ज्वलद्विग्रहः । शंभोःश्वाससमु-
द्भवाभयकरादक्षकतोर्ध्वसका घोराघर्षरनादि नो मुनिव-
रैः प्रोक्ता ज्वरास्तेऽष्टधा ॥**

अर्थ—वीभत्स, त्रिशिरा, कपिल, भस्म, प्रहार, त्रिपाद, पिंगाक्ष, महोदर और ज्वलद्विग्रह ये श्रीशिवकी श्वाससे प्रगट, भयकारी, दक्ष-पत्नविध्वंसक, घोररूपवाले और घर्षघर्ष नाद करनेवाले ऐसे आठ मुनिवरोंने कहे हैं ॥

वीभत्सज्वरका स्वरूप ।

वीभत्सोरुधिरारुणांबरवृतो गंधास्यमालाधरो

रक्ताक्षःकृमिसंकुलस्त्रिनयनोदुर्गंधिपूर्णोऽनिशम् ।

नम्रो रुद्रसमुद्रवोऽतिबलवान्कोपीजगद्धातकः

कृष्णाङ्गोमलिनोमदांधदमनःपूष्णोर्द्विजध्वंसकः ॥

अर्थ—रुधिरसे रंगे हुए वस्त्रोंको पहने, रुधिरकी गंधआवे, मुंडमालाको धारण करे, लालनेत्र, कृमिसे संकुलदेह, तीननेत्रवाला और दिनरात्रि-दुर्गंध जिसकी देहसे आवे, नम्र और अतिबली, कोपयुक्त, जगत्का घातक, काली देहका, मलिनस्वरूप, मदमस्तोंको दमनकर्त्ता और पूषा देवताके दांतोंको तोड़नेवाला ऐसा श्रीशिवसे उत्पन्नहुए बीभत्सज्वरका स्वरूप है ॥

त्रिशिराज्वरकास्वरूप ।

अभूदक्षविध्वंसकोरुद्रकोपात्रिशीर्षः स्त्रिपान्नंदनेत्रोऽ-

तिकायः ॥ चलजिह्वयासृक्किणीलेलिहंतो बृहद्भालजं-

घारुणाक्षोऽतिक्रोधी ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसे दक्षका विध्वंस करनेवाला तीनशिरका, तीनपैरका, नौनेत्रका, बड़ीदेहवाला, चलायमान जीभसे हीटोंके प्रांतोंको चाटताहुआ, लंबेतालके समान पीठरीवाला, लालनेत्रका, अत्यंतक्रोधी, ज्वर प्रगट हुआ इसका त्रिशिरा नाम है ॥

कापिलारुयज्वरकास्वरूप ।

अभूद्रुद्रकोपाज्वरःकापिलारुयोमुखाङ्गारपुञ्जोद्विरन्तोऽ-

तिकायः । मदाघूर्णिताक्षःस्फुरत्ताम्रकेशोमहामेघगर्जो-

मनोहर्षहर्त्ता ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसे जो कापिलज्वर हुआ है वो अत्यंत ऊँची देहका मुखसे अंगारोंके पुंजोंको छोड़ता, मदसे चढ़े हुए नेत्र, तामेके समान प्रकाशवाले बाल, घोरमेघकी गर्जनाका करनेवाला और मनकी प्रसन्नताका नाशक है ॥

भस्मविक्षेपकज्वरकास्वरूप ।

अभूद्रस्मविक्षेपकोरुद्रकोपान्महाट्टाट्टहासोमुहुर्जुभमा-

णः । चलत्सप्तजिह्वः करालोऽग्रदंष्ट्रः स्फुरत्ततताम्रा-

रुणश्मश्रुकेशः ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसे एक भस्मविक्षेपक ज्वर प्रगट हुआ वह घोर अट्टाट्टहासका करनेवाला, वारंवार जंभाईको लेताहुआ और चलायमान सातजीभ, विकराल उग्रढाढावाला और प्रकाशमान तपेहुए तामेंके समान लाल डड्डी और केशवाला ऐसा जानना ॥

त्रिपादज्वरकास्वरूप ।

त्रिपादुद्रकोपाद्भूवारुणाक्षो भृगोः इमश्रुविध्वंसकस्त-
ब्धकर्णः । ज्वरोदीर्घकायोमुहुः श्वासकर्तारणेनृत्यमा-
नोज्जदाहीत्पार्तः ॥

अर्थ—रुद्रके कोपसे तीन पैरका ज्वर प्रगटहुआ जिसके लालनेत्र और खडेहुए कान दीर्घदेहवाला वारंवार श्वासको छोडनेवाला तथा संग्राममें नाचनेवाला अंगोंमें दाहका करनेवाला और प्याससे व्याकुल तथा भृगु-
ऋषिकी डाढीका उखाडने वाला जानना ॥

पिङ्गाख्यज्वरकास्वरूप ।

अभूद्भीरभद्रेश्वरादुत्कटास्योज्वरःपिङ्गनेत्रोऽल्पजंघोऽग्नि-
वर्णः । तृपात्तोद्विजिह्वोत्सिंहद्वितीयश्चलत्तत्रिकेशः
कृशः शुष्कमांसः ॥

अर्थ—वीरभद्रेश्वरसे टेढे मुखका, पीलेनेत्रवाला, छोटी २ पींडरीवाला अधिके समान लालवर्ण, तृपासे व्याकुल, दोजीभ मानो दूसरा नृसिंहही है, चलायमान तीव्र बालोंवाला, कृशदेह और सूखे मांसवाला ऐसा पिङ्ग-
नेत्रज्वर प्रगट हुआ ॥

महोदरज्वरकास्वरूप ।

वभूवातिदीर्घोदरोलंबकर्णोज्वलदग्निरूपश्चलद्रक्तनेत्रः ।

तृपाश्वासजृम्भान्वितांगप्रमदोभटेशोज्वरोरक्तवर्णः प्रमत्तः ॥

अर्थ—श्रीशिवसे एक बडेपेट और लंबे कानका प्रज्वलित आगके समा-
नरूप, चंचल लालनेत्र तृपाश्वास जृम्भाकरके युक्त, अंगोंका तोडनेवाला,
योद्धाओं का राजा तथा लाल वर्णका और मतवाला महोदरज्वर जानना ॥

ज्वलद्विप्रहज्वरकास्वरूप ।

ज्वलद्विप्रहोमुक्तकेशश्चलद्ब्रह्मिश्चूलासिहस्तोभुजंगेश-

पाशः । ज्वरेशोऽतिवीर्योहरश्वासजातः कृशः शुष्कमां-
सोवलीभैरवेशः ॥

अर्थ—श्रीशिवजीके श्वाससे प्रगट अभिसमान देहवाला, खुलेदुए वाल
चलायमान भुकुटी, त्रिशूल, तलवार, सर्प और फांसका धारण करनेवाला,
सबज्वरोंका राजा, अतिपराक्रमी, कृशदेह और शुष्कमांसका बलवान्
भयानकोंनेभी श्रेष्ठ ऐसा ज्वलद्विग्रह ज्वरका स्वरूप जानना ॥

सुश्रुतेऽपि ।

रुद्रकोपाग्निभूतः सर्वभूतप्रतापनः । त्रिपादभस्मप्रहरण
स्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलोज्ज्वल-
विग्रहः । पिण्डेक्षणोद्भवजघो वीभत्सोवलवानयम् ॥ पुरुषो
लोकनाशार्थमसौ ज्वर इति स्मृतः ॥

अर्थ—ये आठज्वर जो हंसराज ग्रंथमें लिखे हैं उनका मूलकारण यह
सुश्रुतका वाक्य है । अर्थात् इसीके नामोंको लेकर हंसराजकाविने अपनी
कविता शक्ति दिखलाई है वास्तवमें ज्वर एकही है। तहां रुद्रकोपाग्निसे प्रगट,
सर्व प्राणियोंको तपानेवाला, तीनपैरका, भस्मप्रहरण अर्थात् भस्महेति
शस्त्रका प्रहार करता, तीनमस्तक, बड़ेभारीउदरवाला, व्याघ्रचर्मरूपवस्त्र,
कपिल, ज्वलद्विग्रह, पीलनेत्रका, झोटीजांघका, वीभत्स, बलवान् ऐसा
पुरुष लोकनाशार्थ प्रगट करा इसको ज्वर ऐसा कहते हैं ॥

ब्राह्मणज्वरकेलक्षण ।

दंडीयज्ञोपवीतीचरौद्रोब्राह्मणरूपधृक् ॥

अर्थ—श्रीरुद्रभगवान्से प्रगट दंड यज्ञोपवीत (जनेऊ) को धारणकरे
और ब्राह्मणरूप किये हुए ऐसा ब्राह्मणज्वर जानना । तथा छत्र, कमंडलु,
मृगचर्मादि भूषित, पवित्र और शांतिवेश आदि जो ब्राह्मणोंके चिन्ह-
होतेहैं वो सब जानने ॥

क्षत्रीज्वरकेलक्षण ।

जपाकुमुमसंकाशोरौद्रदंष्ट्राकरालितः ।

खड्गहस्तोमहारौद्रोमाहेन्द्रः क्षत्रियोमतः ॥

अर्थ—जपा (गुडहर) के फूलके समान लालरंगका, तीखी डाटीवाला,
खड्गफोलिये महान् रौद्र, सब रुद्रज्वरोंका राजा, क्षत्रीज्वर जानना ॥

वैश्यज्वर ।

चंपकप्रसवाभासःतप्तकांचनभूषितः ।

दंडहस्तोमहावेगी वैश्योज्वरइतिस्मृतः ॥

अर्थ—चंपके फूल समान पीतवर्ण, तपेहुये सुवर्णसे भूषित, दंडहाथमे महावेगी ऐसा ज्वर वैश्य कहलाता है ॥

शूद्रज्वरकेलक्षण ।

कृष्णमेघांजनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ।

त्रिनेत्रोज्ज्वलनप्रख्यःकालःशूद्रोविजानता ॥

अर्थ—कालेबादल और फाजलके आकार,तीखीडाढावाला,उज्ज्वलमुख का,तीननेत्र,अमिके समानस्वरूप,कालेरंगका, ऐसा शूद्रज्वर जानना विशेष देखना होवे तो ज्वरपराजय और ज्वरतिमिरभास्कर ग्रंथमें देखो ॥

ज्वरकेनाम ।

रोगःपाप्माज्वरोव्याधिर्विकारोदुःखमामयः ।

यक्ष्मातंकगदाबाधशब्दाःपर्यायवाचिनः ॥

अर्थ—रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद और आबाध ये शब्द सब आपसमें पर्यायवाचकहै अर्थात् रोगके नामहै।

१ रोगादिरु शब्द पर्यायवाचक है अर्थात् एक अर्थकेही देनेवाले है, परंतु इनमें प्रत्यर्थभेद भी दीखता है जैसे—रोग (पीडादेनेसे इसको रोग कहते हैं) पाप्मा पापोंके करनेसे होता है इसीसे इसको पाप्मा ऐसा कहते हैं) ज्वर (व्याधालु अवस्थाकी दानिमे वर्ते है उसके आगेवर प्रत्ययलानेसे ज्वरशब्द सिद्ध होता है यह देह और मनको संतापकारक होनेसे ज्वर कहाता है) व्याधि (जो देहम अनेक प्रकारके दु ख प्रगटकरे उसको व्याधि कहते है) विकार (मन-बुद्धि और इन्द्रियोंके विवृत करनेसे विकार कहाता है) दु ख (उपतापक होनेसे दु ख कहते है) आमय (सपूर्ण रोगआमसे प्रगट होते है इस वास्ते आमय कहते है अर्थात् सपूर्ण प्राणीमात्र चपलतासे अदेश अवालम अपथ्य और अत्यंत भोजनके सेवन करने वाले होते है इसीसे आमजन्यरोग प्रगट होते हैं यक्ष्मा (सष रोग और रोगोंके समूह होनेसे यक्ष्मा कहलाते है,) आतंक (प्राणी रोगोंसे उपतप्तहो खी, पान, भोजनादि त्याग कठिनसे जीते है इस वास्ते उनको आतंक ऐसा कहतेहै) गद (अनेक कारण जन्य होनेसे ज्वरको गद ऐसा कहाहै) आबाध (जो चारो तरफसे देह और मनको बाधाकरे इस वास्ते इसको आबाध ऐसा कहते हैं ॥

अथ निदानपंचकम् ।

मंगलाचरणम् ।

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् । स्वर्गापवर्गयो-
द्धारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥ नानामुनीनां वचनैरि-
दानीं समासतः सद्भिर्पजां नयोगात् । सोपद्रवारिष्टनिदा-
नलिङ्गो निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥ २ ॥

अर्थ—जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग (सुख) अपवर्ग (मोक्ष) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको प्रणामकर अनेक चरक सुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आज्ञासे अब मैं संक्षपसे रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना कर्ता हूँ । जिसमें (उपद्रव) (अरिष्ट) (निदान) और (चिन्ह) इनका लक्षण अच्छी रीतिसे किया गया है ॥ १ ॥ २ ॥

*शिष्य—*यह अतिसूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्य है उनके वाक्योंका निरादरकर मनुष्यकृत तुद्द्वारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसे प्रवृत्ति होवेगी ? इसकारण माधवाचार्यने “नानामुनीनां वचनैः” इस पदको धरा, अर्थात् अनेकमुनीश्वरोंके वचनोंका आशयलेमैने यह ग्रन्थ निर्माण किया है किंतु मेरे मनकी उक्तिसे कल्पित नहीं है ।

शंका—पहलेही बहुत ग्रन्थ निर्माणकरे उपस्थित हैं फिर तुद्द्वारे इस ग्रन्थको कौन पढेगा इसकारण माधवाचार्यने “इदानीम्” पद मूलमें धरा, इसपदका यह आशय है कि, हमहीं अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंसे अब ऐसा जलौकिक ग्रंथ रचते हैं कि, पहिलेकि

१ प्रथम लिख जायें कि “दर्शनस्पर्शनैः प्रश्नैः संपरीक्षितरोगिणम् । रोगनिदानमाशूषलस-
नोपशयातिभिः ” अर्थात् दर्शन, स्पर्श और प्रश्नसे रोगीकी परीक्षा करे, तथा निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संभाषि करके रोगीकी परीक्षाकरे तहां त्रिविधरोगीकी परीक्षा तो प्रथम लिख जायें अब हम रोगपरीक्षाके निमित्त निदानपंचकको रोगविनिश्चय ग्रंथसे लिखते हैं तथा जिस रोगका निदान लिखेंगे उसीके साथ उसकी चिकित्साभी लिखी जायगी ॥

२ उपद्रवो—रोगारम्भक दोषप्रकोपजन्योपिकारः । ३ नियतमरणख्यापकालिगमारिष्टम् ।
४ निदानरोगोत्पादकोहेतुः । ५ लिंगं—रोगख्यापकोहेतुः । तेन लिग्यते व्याधिः अनेनेति व्युत्पत्त्या पूर्वरूप-रूपी—पशय समासयो विज्ञायते ।

सौआचार्यने अद्यापि नहीं निर्माणकरा । कोईवादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसीने नही पढातो आपका ग्रन्थनिर्माण करना व्यर्थ होयगा इसकारण माधवाचार्यने "सद्भिषजां नियोगात्" यह पद धरा इसपदका आशय यह है कि, हमारे पढनेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माणकरो ऐसे बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसे इसग्रन्थकी रचना करी है शंका—श्रीमहादेवजीके हर मृद रुद्र शाम्भव इत्यादिनामोंको त्यागकर शिव इसनामको क्यों मणामकरा? उत्तर—इसरोगविनिश्रयग्रन्थके पठनपाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छाकर सर्वकामना देनेवाला कल्याणवाचक शिवनाम विचार इसको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्यने मणामकरा ॥ १ ॥ २ ॥

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।

सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

अर्थ—अन्यनिदान ग्रन्थोंसे इसकी उत्तमता दिखातेहै जैसेकी अनेक ग्रंथोंके विचार करनेमें असमर्थ ऐसे मन्दबुद्धिवाले वैद्योंके सुखपूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यहीग्रन्थ करण होवेगा. क्यों कि रोगका जाननाही मुख्यहै सो ग्रन्थान्तरोंमें लिखाभीहै ॥

रोग जाननेके पांच उपाय उन्को कहतेहैं ।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।

संप्राप्तिश्चोति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति, ये पांच प्रकार पृथक् पृथक् और समस्तव्याधिके बोधक होतेहै । इसप्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पांच प्रकारका कहाहै ।

*इसश्लोकमें " उपशयस्तथा " यह जो पद धरा इसका यह आशयहै कि, जैसे निदान पूर्वरूप और रूपसे रोग जाना जायहै उसीप्रकार उपशयसे और

१ रोगमादौपरिक्षितततोन्तरमौषधम् ॥ तत कर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वसमाचरेत् ॥ १ ॥
रोगज्ञानार्थमेवादौषधकार्यो भिषग्वरैः ॥ सतितस्मिन्क्रियारम्भःपुण्याययज्ञसेभियै ॥ २ ॥
मसगयज्ञ रोगज्ञानकी विधि कहतेहै जैसे रोग चारप्रकारसे जानाजाता है प्रत्यक्ष-अनुमान उपमान-और शब्दसे तहां चित्रकुष्ठादिव्याधि प्रत्यक्ष देखनेसे प्रतीतहोती है, ज्वरादित्वकृद्भ्रंशसे जानेजाते है ॥

सम्प्राप्तिसेभी रोग जानाजाताहै 'सम्प्राप्तिश्चेति' इसपदमें च और इतिके धरनेसे यह मयोजनहै कि, रोगजाननेके इन पाचोंसे विशेष और उपाय नहींहै । अब कहतेहै कि, रोगोंका निदान सनिकृष्ट समीप और विप्रकृष्ट दूर इन भेदोंसे दोमकारकाहै 'सनिकृष्ट' उसे कहतेहै कि, जैसे वातादिक कुपित ज्वरादिक रोगोंको भगटकरेहै और विप्रकृष्ट उसे कहतेहै जैसे हेमतऋतुमें सचितहुआ कफ वसंतऋतुमें कुपित होताहै 'पूर्वरूप' उसे कहतेहै जैसे ज्वरमें आलस्यादि धर्म 'रूप' उसे कहतेहै जैसे १८ के श्लोकमें लिखाहै 'स्वेदावरोधइति' अर्थात् पसीनोंका अवरोध होना इत्यादिक 'उपशय' उसे कहतेहै जैसे वातरोग तैलादिक लगानेसे शान्ति होयहै । 'सम्प्राप्ति' उसे कहतेहै जैसे १० के श्लोकमें लिखाहै 'यथादुष्टेनदोषेण' इत्यादि शंका-क्योंजी ये पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसे रोगका निश्चय होसकेहै फिर माघवाचार्यने पाचमकार व्यर्थ क्यों लिखे? क्योंकि पाचोंका मयोजन केवल रोगका जाननाहै- उत्तर- तुमने कहा तो ठीकहै, परंतु इन पाचोंका पृथक् पृथक् मयोजनहै जैसे निदान से यह मयोजनहै कि, जिसवस्तुके रानेसे या लगानेसे रोग भगटहो उसका त्याग करनेसे रोग नहीं बढ़े किंतु उलटा शांतिही होताहै और-पूर्वरूप के जाननेसे यह मयोजनहै जैसे सुश्रुतमें लिखा है कि, वातज्वरके पूर्वरूपमें घृतपानकरानेसे वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय-रूप के जाननेसे यह मयोजनहै कि, व्याधि अर्थात् रोगका साध्यासाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होताहै, जैसे-जिसरोगका अल्परूप हो वह सुखसाध्यहै और मध्यरूप कष्टसाध्य और सपूर्णरूप असाध्य इसप्रकार जाननेसे असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा सुखसाध्यकी औषधि करनी उचित है-उपशयके जाननेसे यह मयोजनहै कि, सुपरीक्षित व्याधिके सपूर्ण लक्षण न मिलनेसे व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे, सो चरक में लिखाहै कि, जिस व्याधिके लक्षण भगट न होय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वारा परीक्षा करे । उसीप्रकार-सुश्रुतमें लिखाहै जैसे उबटना, तेल लगाना, स्वेदनविधि, इत्यादि कर्म करनेसे वातरोग शांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने और सम्प्राप्ति के जानने से यह मयोजन है कि, सम्प्राप्तिके बिनाजाने पूर्वरूपादिकोंकरके जानीभईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभी है, परंतु अज्ञात, विकल्प बल, आदिकी जवतक नहींजाने

- १ अर्थात् नाडा नेत्र निव्हा मल मूत्र आदि पराज्ञाआसे रोगोंका ज्ञान यथार्थ नहाहो ।
 २ वातिकज्वरेपूर्वरूपेघृतपानमिति तथाच साध्यरूपाणामाध्यत्वमपिज्ञायते । ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकमें लिखे है-यथा-निमित्तपूर्वरूपाणामध्यमेबलेइति । ४ गूटालगव्याधिसुपक्षापाऽनुज्ञायाम्यानुद्धेयतइति । ५ अम्यगस्नेहस्वेदाद्यैर्वातरोगोनाशाम्याति । विकारस्तत्र विज्ञेयोऽदुष्टमत्रास्तितशोषितमिति ।

निमित्तहेत्वाऽऽयतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।

निदानमाहुः पर्यायैः—

अर्थ—अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहे हैं निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्र-व्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहतेहै कारण इनके कहनेका यहहैकि, व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इन छहो शब्दोंमेंसे कोईशब्द आवे उसको निदान वाचकही जाने ॥

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः ।

लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्ब्रूयाधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस जंभाई आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवे उसको प्राग्रूप अर्थात् (पूर्वरूप) कहतेहैं फिर वो व्याधिदोष (वात पित्त कफ) से बहुधा अप्रगट होवे । * शंका—यदि वातादिक दोषोंसे अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भवहै, क्योंकि कारण तो वातादिक दोषहैं जब दोषही नहीं तो रोग कैसे प्रगट होस केहैं । * (उत्तर इसपदका यह अर्थहै कि, दोष वातपित्त कफ इनका व्याधिके अल्प होनेसे अप्रगटरूप होना अर्थात् थोड़ा थोड़ा होना अत एव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने २ अप्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसातैसाही होतेहै अब कहतेहै कि, (पूर्वरूप)दोषकारकाहै एक सामान्य दूसरा विशिष्ट सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहतेहैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) से दूषित धातु उसके बिगड़नेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोके चिन्ह न मालूमहों जैसे “श्रमो-रतिर्विवर्णत्वमिति” अर्थात् ज्वरमें श्रम, मनका न लगना, देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण हो और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उन्होंके चिन्ह तिसके एक अंशकी प्रतीतिहो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहतेहै जैसे “जंभा-त्यर्थं समीरणात्” अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसेहीहै । इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस

तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं होसके, इसी से वैद्य निदानपत्रकका अवश्यही परिचय करे ॥

वातका एक अंश फौन जंभाई, ऐसे औरभी जानने चाहियो। इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाईआदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिन्ह है, इस वातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं। (दृष्टान्त) जैसे तृणके समूहमें छोटी अमिकी चिनगारी गिरनेसे धूम(धूआं) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसे ही शान्ति करसकतेहैं, परन्तु जब अग्नि एक-साथ जोरसे प्रज्वलित होगई तब शान्ति नहीं होसके ऐसेही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसे शान्ति कर सके हैं, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं होसके है इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है * अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं शारीरक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना देह भारी, नेत्रसे जल गिरना इत्यादिक * और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शान्ति न होना तथा खट्टे चरपरेणदार्थपर मन चलना इत्यादि ॥

तदेवव्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।

संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥

अर्थ—जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको रूप ऐसे कहते हैं। और संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिन्ह और आकृति, यह छः शब्द रूपके पर्यायवाचक हैं ॥

उपशयके लक्षण ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।

औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥

विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः ।

अर्थ—अब उपशयके लक्षणको कहते हैं हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थकारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न (पथ्य) विहार आचरण इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगके हेतुको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरण उसको उपशय कहते हैं और (व्याधिसात्म्य) ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका है, सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि, दाह

और प्यासयुक्त नवीनज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका बढ़ानेवाला है इसे शीतलजल सुखकर्ता न हुआ अतएव शीतलजलको उपशय न समझना चाहिये । परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतलजल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

आगे अब क्रमसे उदाहरण दिखाते हैं ।

हेतुविपरीत औषध-जैसे शीतकफ ज्वरमें सोंठ तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है कि वात (सर्दी) उस वातका शीतलधर्म है-तो अब शीतकफ यह कब शान्तिहोय कि, जब सर्दी और कफके विपरीत औषधमिले, ऐसी औषध कौन कि, शुंठी ये सर्दीको और कफ दोनोंको शान्ति करे है तो शीत कफ ज्वरमें हेतुविपरीत

नाम	औषध	अन्न	विहार
हेतुविपरीत	शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ	श्रम और बादीसे प्रगटरोगपर मांसको रस और भात	दिनके सोनेसे प्रगट कफ रोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना
व्याधि-विपरीत	अतिसारमें दस्त बढ़करनेवाली अवाधि पाठाआदि	दस्तों में दस्तके बढ़कारक पथ्य मसूर	उदावर्त्तरोगमें शब्दपूर्वक अधोवायुको निकसना मन्न औषध धारण देवगुरुकी सेवाकरनी
हेतुव्याधि-विपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका कादावात और सूजन दोनोंको दूर करने वाला है	कफकी संग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक कफनाशक और संग्रहणीनाशक	स्निग्ध जो दिनके सोनेसे उत्पन्नतद्रा तिसमें रुक्षतद्रासे विपरीत और स्निग्धता नाशक रात्रिमें जागना
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान व्रणकी सूजनमें पित्तकारक उन्मापिडीका बांधना	पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन करना	जैसे वातसे पैदा उन्मादमें त्रासका देना
व्याधि-विपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफल आदि	अतिसार रोगमें दस्तकारक दुग्ध देना	छर्दिरोगमें हाथका अंगुठा गलेमें कर वा कमलनाल आदिसे उलटीका लाना.
हेतुव्याधि-विपर्यस्तार्थकारी	जैसे अग्निजलेपर गरम अगरआदि लेप अथवा विषपर विष	जैसे मद्यपानके करनेसे प्रगट मदात्पय रोगमें मदकारक मद्य पीना	दंढकसरतसे प्रगट वातमें जलका तेरना रूपव्यायामका करना

औषध सॉठ हुई ॥ १ ॥ ऐसेही (हेतुविपरीत) अन्न जैसे श्रम और सरदीसे प्रगट ज्वरमें मांसका रस और चावल इसमें हेतु कौनाके श्रम और सरदी, ये कब शान्ति होंगे कि, श्रम और सर्दी हरणकर्ता पथ्य मिले, ऐसी पथ्य कौनाके, मांसरस और चावलका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीत है अर्थात् नाशकहैं ॥ २ ॥ ऐसेही (हेतुविपरीतविहार) कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसे प्रगट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन हुआकि, दिनका सोना, उससे प्रगट दोष कौनकि, कफ, यह कफ कब शान्ति होयकि, जिस हेतुसे प्रगटभया उस हेतुसे विपरीत आचरण कराजाय, तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि, रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरणभया । इसीप्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके पूर्व लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिवान् मनुष्य समझ लेंगे ॥

अनुपशयके लक्षण ।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसाम्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो उपशयके लक्षण कहें हैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधिका 'असाम्य' अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ ९ ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथाचानुविसर्पता ।

निवृत्तिरामयस्याऽसौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

अर्थ—दोष कहिये वातपित्त कफ इनका दुष्टहोना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके, ऐसे कुपितदोष अपने स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचारनेसे जो रोग प्रगटहो उसको (सम्प्राप्ति) कहते हैं और (जाति) तथा आगति ये दोनों पर्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं । तात्पर्यार्थ ये हैं कि, मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ दोष बढकर जैसे रोगको प्रगटकरे उसीप्रकार उसको सम्प्राप्ति कहते हैं । उदाहरण—जैसे कुपितदोषका आमाशयमें प्रवेश होना और उसस्थानमें इतस्ततो गमन करना तथा रसकी बहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकना और पकाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहिर निकालना तथा उसी जठराग्निसे सर्व देहके तप्तहोनेसे ये ज्वर हैं, ऐसा जो निश्चयकिया जाय है उसीको सम्प्राप्ति कहते हैं । ऐसेही अतिसारादि रोगोंकी सम्प्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।

अर्थ—अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं सा कहिये सो संप्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ बल ५ काल इति ॥
संख्यारूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽऽद्यौ ज्वरा इति ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांचप्रकारकी खांसी है ऐसा कहेंगे अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥
विकल्परूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽंशांशकल्पना ।

अर्थ—मिलेहुए दोष कहिये वात, पित्त, कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूप सम्प्राप्ति कहते हैं जैसे धूँके निकलनेसे ये पर्वत अभिमानहै ऐसेही ये रोगीके देहमें वातका अंश विशेषहै, काहेसे कि, वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं—उदाहरण—जैसे रूखा, शीतल, हलकी और फैलनेवाली, इत्यादि गुणयुक्त जो पवन, उस्का रौक्षादि गुणयुक्त कसेला रस वातको सर्वांशकरके बढानेवालाहै उसी प्रकार कटुरस सर्वभावकरके पित्तको बढानेवालाहै जैसे कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्वकरके हाँग पित्त को बढानेवालाहै उसीप्रकार मधुररस जैसे भैंसका दूध ये सर्वभावकरके कफको बढानेवालाहै इत्यादि इसमें (दोषाणां) जो बहुवचनहै सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और (समवेतानाम्) ये पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धराहै ॥

प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

स्वातंत्र्यपरतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वतंत्र और परतंत्रकरके व्याधिको प्राधान्यता है जैसे स्वतंत्रज्वरको प्रधानताहै और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानताहै ॥

बलरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्वलावलविशेषणम् ।

अर्थ—हेतु आदिशब्दसे पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोड़े लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना जैसे जिस रोगके प्रति जो निदान कहाहै वो निदान सम्पूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवाला है कि, एकदेश ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त

अवयवों करके व्याधिका प्रकाशकहै या एकदेशसे इत्यादि लक्षणोंसे चलाबलका निश्चय करना ॥

कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथा दोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेवढनेके हेतुका समय जाने * उदाहरण दिखाते है—जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अंत, तो रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अंतभाग वातका है, ऐसेही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका, ऐसेही ऋतु जैसे वसंतऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होती है ऐसेही भोजनका जैसे भोजनकरनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भलेप्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल, इसकासके जाननेसे यह प्रयोजनहै कि, जिस दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहा है उसको उसी २ कालमें प्रावृत्त्यता जानलेना कठिन मालूम नहीं होती ॥

निदानपचकका उपसंहार ।

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—इति कहिये इस प्रकार संक्षेपप्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक रोग २ के प्रति निदान पूर्वरूपादि करके कहते है ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—अब पूर्व चतुर्थ श्लोककी व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट, तिसमें सन्निकृष्ट, कौन वातादिक समीपके कारणकरके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते है (सर्वेषामिति) । कुपितहुए जो मल (वात, पित्त, कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होतेहै और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेकप्रकारका अपथ्य सेवन करना है ॥

१ केचन ऋत्वशा वातिपयाहोरात्राणि वक्ष्यति यदुक्तं वाग्भटे—ऋत्वोरित्यादिसप्ताह-वृत्तसधिरितिसंस्मृत ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।
 तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥
 रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ।
 ग्रीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
 अर्शाभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ।
 प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥ १८ ॥
 क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ।

अर्थ—कोई प्रश्नकरे कि, जो पूर्व कहा है येही निदान है अथवा इसके व्य-
 तिरिक्त और भी है इसलिये कहते हैं कि, रोगका रोगभी निदान होता है ।
 अर्थात् जो निदानसे कार्य्य होता है वोही रोगसे भी होता है, इसवास्ते
 दृष्टांत देकर कहते है (तद्यथेति) जैसे ज्वरसतापसे रक्तपित्त प्रकट होता है
 और रक्तपित्तसे ज्वर, एवं रक्तपित्तज्वरसे श्वास प्रगट होता है और
 ग्रीहके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन और बवासीरसे
 जैसे उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, एवं पीनसरोगसे खांसी, तथा
 खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होता है और ये क्षयरोग राजयक्ष्मा
 जो सम्पूर्ण रोगोंमें राजा है उसको प्रगट करे है ॥

ते पूर्व केवला रोगाः पश्चाद्वैत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

अर्थ—वो रोग प्रथम स्वतंत्र थे और जब बल मिलगया तो वोही हेत्वर्थ-
 कारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते है जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ।

एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यंते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

अर्थ—अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते है
 जैसे कोई एक रोग दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगटकर आप
 शांत होजाता है, जैसे पीनसरोग आप शांत नहीं होनेपाता और खांसी
 उत्पन्न होती है और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगटकर आप जैसा का
 तैसा बना रहता है, जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदर रोग

पैदा होतेहैं । इस प्रकार मनुष्योंके घोरक्लेशदायक मिलेहुए रोग दिखाई देते हैं विशेषकरके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होजातेहैं ॥

तस्माद्यत्नेन सद्द्वैरिच्छद्भिः सिद्धिसुत्तमाम् ।

ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥२१॥

अर्थ—अब कहेहुये निदानादिपंचकद्वारा रोग निवृत्तिरूप सिद्धीकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यकी कहते हैं (तस्मादिति) इसीकारण उत्तम सिद्धी हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्द्वैयोंकी इच्छा है उनको ज्वरादि रोगोंका निदान जो आगे कहते है वो यत्नसे जानना चाहिये ॥

अथ ज्वरनिदानम् ।

अब सर्वदेहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे, बली देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसे जन्म मरणका कारण होनेसे स्थावर अंगम प्राणीनमें स्थिति होनेसे सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चरक सुश्रुतादि आचार्योंने ज्वर राजा कहाहै तदुक्तं चरके ।

देहोन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।

ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥

अर्थ—देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसे रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे बलवान् ज्वरको सब रोगोंमें प्रधानता कही है ॥

ज्वरकी उत्पत्ति ।

दक्षप्रजापतिके तिरस्कारसे^१ क्रोधित श्रीरुद्रभगवान्के श्वाससे

ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंधातागंतुजः स्मृतः ॥ २ ॥

उत्पन्न ज्वर आठप्रकारका है वात पित्त कफ इनसे^३, द्वंद्वज^३, सन्निपात^१ और आगंतुज^१ ऐसे मिलकर संक्षेपसे ज्वर आठप्रकारका है ॥

इस श्लोकमें [निश्वाससम्भवः] ये जो पद धराहै सो श्वास इस जगह क्रोधके लक्षण करके कहाहै किंतु ज्वरकी श्वाससे उत्पत्ति नहीं है जैसे (सुश्रुतमें) लिखाहै यथा “रुद्रकोपामिसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः” इति

अर्थात् क्रोधित रुदने ललाटस्थ तीसरे अग्रिमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्शकर आग्नेयबाण निर्माण किया (तथा च चरके) “ स्पृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः । बाणं क्रोधाग्निसंततममृजच्छुनाशनम् ” इत्यादिक वाक्योसे ज्वरमात्रकी पित्तप्रकृति जाननी, प्रयोजन यह है कि, सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न करे सो (वाग्भटने) कहा है (यथा— “ उष्मा पित्तादृते नास्ति नात्युष्माणं विना ज्वरः । तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ” इति । अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहींहोवे इसीसे ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया त्याज्य है ॥ अन्य आचार्य कहते हैं कि, श्रीरुद्रसे उत्पत्ति होनेसे ज्वर देवता है इस लिये ज्वरका पूजन करनेसे शांत होता है जैसे (विदेहका वाक्य) है “ ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति ” और ज्वरका स्वरूपभी (हरिवंशमें) लिखा है यथा— “ ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः पद्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ ” इति । अर्थात् ज्वरके तीन चरण तीन मस्तक छह भुजा नवनेत्र भस्मप्रहेती है शस्त्रजिसका यह रौद्रकाल घमराजके समान है ॥

ज्वरसंप्राप्तिः ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।

वाहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ ३ ॥

अर्थ—मिथ्या आहार (देश काल प्रकृति आदिसँ विरुद्ध और संयोग-विरुद्ध भोजन) मिथ्याविहार (देहके पुरुषार्थसे विशेष कामका करना) इन कारणोसे दुष्ट हुये जो दोष (वात पित्त कफ) सो नाभिस्तनके बीच आमाशयमें प्राप्त हो रसको विगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहके बाहर निकाल ज्वरके प्रगट करनेवाले होते हैं ॥*॥

ये संप्राप्ति शारीर रोगोंकी हैं आगंतुजकी नहीं हैं क्योंकि आगंतुक रोगोंका तो व्यथापूर्वक वातादिदोषोंके रोकनेसे प्रयोजन है जैसे (सुश्रुतमें) लिखा है श्रम और चोटके लगनेसे देहधारीयोंके देहमें कुपित हुई वात सबदेहको परिपूर्णकर ज्वरको पैदा करती है * और (चरक) में भी लिखा है

१ अकाले चातिमात्र च असाध्यं यच्च भोजनम् । विषमाशन च यद्भुक्त मिथ्याहारः स उच्यते ॥ १ ॥ इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी ऐक्यता दिखाई है । २ अशक्त कुस्ते कर्म शक्तिमात्र करोति च । मिथ्याविहार इत्युक्त सदा चैव विवर्जयेत् ॥ ३ नाभिस्तनान्तर बन्तोरामाशय इति स्मृतः ॥

कि, चोटके लगनेसे प्रगट वात रुधिरको विगाड़ व्यधा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करती है (शंका-क्यौजी आगंतुभी शारीररोगही है क्योंकि आगंतुज्वरमेंभी गरमी रहती है जैसे " उष्मा-पित्ताहते नास्ति " इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसे उत्तर-ये जो तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इन आगंतुरोगोमे पित्तकी पूर्वकालसेही उत्पात्ति नहीं होती पीछे उत्पात्ति होती है यासे आगंतुरोगोको शारीरत्व नहीं है ॥ इस श्लोकमें (कोष्ठाग्नि) यह जो पद धराहै सो धातुकी अभिक निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आय जावेगी तो दोषोंका पचना नहीं होसके और दोष पचेविना ज्वरशांति नहीं होवेगा इसलिये इसका अर्थ ऐसा न करना चाहिये " बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम् " कोठके अभिकी गरमीको बाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहियो ज्वरके लक्षण ।

स्वेदावरोधस्तप्तापः सर्वांगग्रहणं तथा ।

युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरोव्यपदिश्यते ॥ ४ ॥

अर्थ-जिस रोगमें पसीना न आवे, देहमे सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समें हो उसको ज्वर ऐसे कहतेहै ॥ (शंका-क्यौजी पित्तज्वरमें तो पसीने आतेहै इस श्लोकमें विरुद्धता आती है * इसपर जेजटादिक उत्तर लिखतेहैं कि, स्वेदावरोध कहिये " स्वियते अनेनेति स्वेदः " इस व्युत्पत्ति करके स्वेद कहिये अग्नि तिस्का अवरोध कहिये दोषकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेसे श्लोकार्थमें विरुद्ध नहीं पड़ता ॥

ज्वरका पूर्वरूप ।

श्रमोरतिविवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।

इच्छा द्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥

जृम्भांगमदौगुरुतारोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।

अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पित्ताति ज्वरे ॥ ६ ॥

अर्थ-कारण विनाही श्रम, कमंकरनेमें उत्साह नहो, अथवा खेलनेमें अरुची देहमें मलीनता, मुखमें विरसता, नेत्र अशुपातयुक्त, सर्दी, गर्मी पचन इनकी वारंवार इच्छा होना और वारंवार द्वेष ही । इस्में जो (आदि) शब्दहै उस्से जल और अभिका ग्रहणहै अर्थात् इनकी वार २ इच्छा और द्वेष ये (चरक) का मतहै तदुक्तं चरके- " ज्वलनातपवाय्वं बुभक्तद्वेषाभिलाषिता " इति । अन्ये तु शैत्योष्णसाधर्म्याज्जलाऽनलौ

गृह्णाति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यन्ते * अन्य आचार्य शर्दी गरमीके साधर्म्यसे जल अग्निको कहते हैं और आदिशब्दसे शयन आदि मानते हैं * जँभाई अंगोंका दृटना, देहभारी, रोमांचोंका खडा होना, अन्नमें, अरुचि, अँधेरोंका आना, आनंदकी निवृत्ति, शरदीका लगना, * (शंका) क्योंजी! पूर्व कहआये कि, शरदी गरमीको बार बार इच्छा और बार बार द्वेष फिर पुनः (शीत) पद क्यों धरा ? * उत्तर-इस पदके धरनेसे शरदीकी आधिक्यता दिखाई, अर्थात् शरदी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्व हीते हैं ये माधवाचार्यने सामान्यपूर्वरूपके लक्षण (सुश्रुतोक्त) लिखे हैं ॥ विशिष्टपूर्वरूपके लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थ समीरणात् ।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नात्राभिनन्दनम् ॥ ७ ॥

अर्थ-विशेषकरके वातज्वरमें जँभाई बहुत आती हैं. पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होती है, ये श्लोक क्षेपक हैं, परंतु बहुत पुस्तकोंमें मूलके साथ लिखा है इसवास्ते हमने भी मूलके साथ लिखदिया है ॥

अथज्वरचिकित्साप्रारंभः ।

इतिज्वराः समाख्याताः कर्मदानां प्रवक्ष्यते ॥

अर्थ-इसप्रकार ज्वरोंके निदान और लक्षण कहे अब सुश्रुतग्रंथसे उक्त ज्वरोंकी चिकित्सा कहते हैं ॥

वेद्यकोसाधारणक्रियाकीआज्ञा ।

दोषाणांचपरिज्ञानंयत्रसम्यक्नदृश्यते ।

क्रियांसाधारणांतत्रभिपक्वसम्यक्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ-जिसरोगमेंवातादि दोषोंका ज्ञान अच्छीरीतिसे नहोवे उस जगे वेद्य साधारण क्रिया (जो आगे लिखते हैं उसको) उत्तम रीतिसे करे । अर्थात् यह साधारण क्रिया किसी रोगमें करो उस रोगको नष्टहीकरे है बढाती नहीं है ॥

अंशांशंयत्रदोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात् ।

साधारणीक्रियांतत्रविदधीतचिकित्सकः ॥

अर्थ—वैद्य जिस रोगमें दोषोंके अंशांशको न जानसके उसजगे साधारण क्रियाकी विधि करके यत्नकरे ॥

ज्वरकीसामान्यचिकित्सा ।

ज्वरस्यपूर्वरूपेतुवर्तमानेसुबुद्धिमान् । पाययेत्घृतस्व-

च्छं ततः सलभतेमुखम् ॥ विधिमारुतजेचैवपैत्तिकेतुवि-

रेचनम् । मृदुप्रच्छर्दनंतद्भक्तफजेहिविधीयते ॥ सर्वद्वि-

दोषजेपूक्तंयथादोषं विकल्पयेत् ॥

अर्थ—ज्वरके पूर्वरूपमें यत्नकहते हैं । तहां वात ज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घृतपान करना चाहिये, पित्तप्रधान ज्वरमें मृदुविरेचन देना और कफ प्रधान ज्वरमें हलकी वमन करानी एवं द्विदोष और त्रिदोषमें उक्त दोनों वा तीनों यत्न यथा-संभव करने चाहिये ॥

ज्वरकेआदिमध्यऔरअंतमेंकर्त्तव्य ।

ज्वरादौलंघनंप्रोक्तंज्वरमध्येतुपाचनम् ।

ज्वरान्तरेरेचनं देयमेतज्ज्वरचिकित्सितम् ॥

अर्थ—वैद्य रोगीको ज्वरके आदिमें लंघन करावे और ज्वरके मध्य अवस्थामें ज्वरपाचक औषध देवे, एवं जब ज्वरशांति होजावे तब उस रोगीको दस्त करावे, यह संक्षेपसे ज्वरकी चिकित्सा कही है ॥

लंघन ।

ज्वरेलंघनमेवादावुपदिष्टमृतेज्वरात् ।

क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥

अर्थ—ज्वरमें प्रथम लंघन कराना वैद्यको उचित है, परंतु क्षयज्वर, वातज्वर, भयज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर, शोकज्वर, परिश्रमजन्यज्वर इनज्वरोंमें लंघन कदाचित् नहीं करना ॥

१ धातु क्षयज्वर अथवा राजपक्ष्माज्वर । २ वातज्वरकहनेसे यहांपर निरामवातका ग्रहण है यदि सामवातज्वर होवे तो लंघन अवश्य कराने चाहिये ॥

लंघनकरानेमें कारण ।

आमाशयस्थोहत्वाग्निं सामोमार्गान्पिधापयन् ।
विदधातिज्वरंदोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥

अर्थ-अब लंघन करानेमें कारण कहते हैं, जैसेकि, आमसे मिले हुए दोष आमाशयमें स्थित जठराग्निको नष्टकर और देहके भीतरके मार्गोंके (नसनाडी आदि) को ढकते हुए ज्वरको प्रगट करते हैं अतएव उस आमके पचानेको और रुके हुए मार्गोंके स्वच्छ करनेको वैद्य रोगीके वास्ते लंघन करावे । यहाँ जठराग्नि करके जठराग्निकी उष्मालेनी, समग्रजठराग्नि नहीं लेनी चाहिये ॥

अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनंदोषपाचनम् ।

ज्वरग्रंदीपनंकांक्षारुचिलाघवकारकम् ।

अर्थ-अपने २ स्थानपर नहीं स्थित ऐसे दोष और अग्निके विकार पचानेकी लंघन कराने चाहिये लंघन ज्वरको नाशकरते हैं, अग्निको दीप्तकरे, भोजनकी इच्छा, रुचि और देहमें हलकापना करते हैं ॥

प्राणाविरोधिनाचैवल्लंघनेनोपपादयेत् ।

बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥

अर्थ-वैद्यको चाहिये कि, रोगीका बल न दूटे इस प्रकार लंघन करावे क्योंकि आरोग्यता बलके आधीन है और उस आरोग्यताके अर्थ यह क्रियाका क्रम है ॥ उत्तमलंघनके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गो गात्रलाघवे ॥ हृदयोद्धारकंठा
स्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ स्वेदे जाते रुचौ चापिशुत्पिपा-
सासहोदये । कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चांतरात्मनि ॥

अर्थ-अधोवायु, मल, मूत्र इनका यथा समय निकलना, शरीरमें हलकापना, (हृदयका भारीपना) आदि, कंठमें फफका लिहसारहना, मुखमें विरसिता इत्यादि लक्षण रहित हृदय, कंठ और मुखका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका नाश, पसीनोंका आना, रुचिका चलना, एवं भूखप्यासका एक साथ लगना और मनमें किसी प्रकारकी व्यथाका न रहना ये लक्षण उत्तम लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥

अतिलंघनके दोष ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्चकासः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्रणाशोऽरु-

चिस्तृष्णादौर्वलयंश्रोत्रनेत्रयोः । मनसःसंभ्रमोऽभीक्ष्णं-
मूर्द्धवातन्तमोह्नादि । देहाग्निबलहानिश्चलंघनेतिकृतेभवेत् ॥

अर्थ-गांठोमे पीडा, देहकाटूटना, खांसी, मुखका सूखना, भूखका माराजाना, अरुचि, प्यास कर्णेन्द्री और नेत्रोंमें दुर्बलता, मनका डामा-डोलहोना-ऊर्ध्ववात (हिचकी, श्वास, कानोंमें शब्द और जंभाई आदिकाहोना)मोह, देह,अग्नि और बलका घटना,ये लक्षण अत्यंत लघन करनेवाले रोगीके होते हैं । मुख्य लंघन करानेका हेतु आमपचानेके वास्ते है, परंतु हमारे मथुरा आदिके ढपोल शंख वैद्य सब ज्वर वालोंको लंघन कराते हैं और फिर अंधेकी तरह उससे पूछते है कि, कहां अभी तुमको भूखलगी है या नहीं, यदि रोगीको भूख भी लगी हो तथापि उस रोगीको लंघनही कराते है कि, जिस्से उसका बलनष्टहो शीघ्रयमालयको चलाजावे और रोगोंसे बचभी गयातो निर्वलताके कारणसे प्रत्येक समय रोगी हो जावे ' हरीच्छा ! बलीयसी ' ॥

लंघनकेअयोग्यरोगी ।

नलंघयेन्मारुतज्वरेचक्षयोद्भवेचक्षुधितेचजन्तौ । नगु-
र्विणीदुर्बलवालवृद्धान्भीतांस्तृपात्तानपिसोर्ध्ववातात् ॥

अर्थ-निरामवात ज्वरमें, राजयक्ष्माके ज्वरमें, भूखमे, गर्भवती स्त्री, दुर्बल मनुष्य, बालक, बुद्धा, डरपोक, तृषार्त और उर्ध्व वातवाला रोगी इनकी वैद्य कदाचित् लंघन न करावे ॥

लंघनसहनकरनेमेंकारण ।

दोषाणामेवसाशक्तिर्लघनेयासहिष्णुता ।

नहिदोषक्षयेकश्चित्सहतेलंघनादिकम् ॥

अर्थ-लंघनका करना ये केवल दोषोंही की सामर्थ्य है, क्योंकि दोष क्षीण होनेपर कोईभी प्राणी लघनकी नहीं सहसकता, अतएव जबतक इसको लंघन करनेकी सामर्थ्य रहे तभीतक वैद्य लंघन करावे ॥

अस्नेहनीयोऽशोध्यश्चसंयोज्योलंघनादिना ।

रूपप्राग्पयोविद्यान्नानात्वंवद्विधूमवत् ॥

अर्थ-जो स्नेहन करनेके अयोग्य है और जिनको वमन विरेचनसे

शोधन नहीं करसकते, उनको लंघनादिक करानाही उत्तम है। तथा रूप और पूर्वरूपका अमि और धुआँके समान अनेकविधत्व वैद्यजाने अर्थात् जैसे धुआँहोनेसे अमिकी संभावना होती है उसी प्रकार पूर्वरूपसे रोगके रूपकी संभावना जाननी ॥

अव्यक्तरूपेषुहितमेकांतेनापतर्पणम् ।

आमाशयस्थेदोषेतुसोत्कृष्टेशेवमनंपरम् ॥

अर्थ—ज्वरके पूर्वरूपमें केवल लंघनादिक कराना। जो आमाशयमें दोष होय और जो मचलाता होवे उसको वमन कराना हित है ।

लंघनकीअवधी ।

आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावंतः कालमातुरः ।

कुर्यादनशनंतावत्ततः संसर्गमाचरेत् ॥

अर्थ—जबतक यह रोगी वातादिदोष अथवा वात मल मूत्रादिसे घिरारहे, अर्थात् अधोवायु, मल, मूत्र साफ न उतरे तबतक लंघनकरे फिर मिलेहुए अर्थात् औषधादि और लंघनादि दोनोउपाय करने चाहिये॥

वमनकरानेयोग्यरोगी ।

सद्योभुक्तस्यवाजातेज्वरेसंतर्पणोत्थिते ।

वमनंवमनार्हस्य शस्तमित्याहवाग्भटः ॥

अर्थ—तत्कालभोजन करनेवालेके ज्वर प्रगटहुआहो, अथवा संतर्पण कर्मकरनेसे यदि ज्वर प्रगट हुआ होवे, तथा जो वमन करानेके योग्य रोगी है उनको वमन करना उत्तमहै ऐसे वाग्भटाचार्य कहता है ॥

अवस्थाविशेषमेवमनकरानाकहतेहै ।

कफप्रधानानुत्कृष्टान्दोषानामाशयोत्थितान् ।

बुध्वाज्वरकरान्काले वम्यानावमनैर्हरेत् ॥

अर्थ—चरकऋषि लिखते है कि, जिन रोगोमे कफ प्रधान है और हृत्सादि करके जो बाहर निकलाचाहे तथा जो दोष आमाशयसे उठे हुए है और जो ज्वरके करने वाले दोष है, एवं जो वमन कराने योग्य है उनको वमनके समय वमन कराकर दोष दूरकरने चाहिये ॥

उक्तअवस्थाकेविनावमनकरानानिषेध ।

अनुपस्थितदोषाणां वमनंतरूपज्वरे ।

हृद्रोगंश्वासमानाहंमोहंचकुरुतेभृशम् ॥

अर्थ—वमन करनेको नहींउपस्थित ऐसे दोषोंमें और तरुणज्वरमें यदि वमन (रद्) करावे तो वह हृदयरोग, श्वास, अफरा और मोहको करे है । यह भी चरकमें लिखाहै ॥

निर्वातभवनावासमुष्णवारिनिपेवणम् ।

अभूरिजल्पनिःक्रोधं कामशोकंच रोगिणम् ॥

कुर्यादारोग्य संपन्नंशीघ्रं वैद्योविचक्षणः ।

कफमेदोऽनिलामघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥

अर्थ—जिसमें पवन न आती हो ऐसे मकानमें रहना, गरमजलपीना, थोडा बोलना, क्रोध का न करना, कामदेव, शोककरना इन सबको रोगी त्यागदे कि, जबतक आरोग्य न होवे ऐसा करनेसे कफ, मेदा और वादी नष्ट होवे, एव अग्निदीपन हो और वस्ति शुद्धि होती है । सर्वत्र रोगीके यत्नमें लिखा है कि, 'निदानपरिवर्जनम्' इसकारण ज्वरमें जो निदान त्याज्य है उसको कहते हैं ॥

चरके ।

नवज्वरेदिवास्वापस्नानभोजनमैथुनम् ।

क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्चविवर्जयेत् ॥

अर्थ—नवीन ज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, भोजन करना, मैथुन करना, क्रोध, हवाका खाना, व्यायामकरना और काढा आदिका देना निषेध कहा है ॥

उष्मापित्तादृतेनास्तिज्वरोनात्युष्मणोविना ।

तस्मात्पित्तविरुद्धानित्यजेत्पित्ताधिकेधिकम् ॥

स्नानाभ्यंगप्रदेहांश्चपरिपेकांश्चवर्जयेत् ॥

अर्थ—विनापित्तके गरमी नहीं और ज्वर विना मरमीके नहीं होता, अतएव सबज्वरोंमें पित्तके विरुद्ध चिकित्सा नहीं करना और पित्तज्वरमें तो विशेष करके पित्तविरुद्ध चिकित्सा त्याज्य है । तथा स्नान, मालिस, लेपन और जल आदिका तरडा देना वर्जित है ॥

जलकेगुण ।

पानीयंशीतलंरूक्षंहन्तिपित्तविषभ्रमम् । दाहाजीर्ण

श्रमच्छर्दिमोहमूर्च्छा मदात्ययान् ॥ मूर्च्छापित्तोष्म
दाहेषुविपेरक्ते मदात्यये । भ्रमकृमातिसारेषुमार्गोत्थव-
मथौतथा ॥ उर्ध्वगेरक्तपित्तेचशीतमंभःप्रशस्यते ॥

अर्थ—जल शीतल और रूखा है, तथा पित्त, विष, भ्रम, दाह, अजीर्ण,
श्रम, छर्दि, मोह, मूर्च्छा, मद्यपानके विकार, इनको नष्टकरे है ॥

मूर्च्छा, पित्तकी गरमी, दाह, विषजन्यरोग, रुधिरकी विमारी, मदा-
त्यय, भ्रम, कृम, अतिसार, मार्गचलनेसे हुआ परिश्रम, मद्यवाय, उर्ध्व-
गतरक्तपित्त इन सब रोगोंमें वैद्य रोगीको शीतलजल देवे ॥

उष्णजलकेगुण ।

यत्काथ्यमानंनिर्वेगनिष्फेनंनिर्मलंभवेत् । अर्द्धावशि-
ष्टंभवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ कफमेदोनीलामघ्नंदीप-
नंवस्तिशोधनम् । कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकंसदा ॥
तसंपाथःपादभागेनहीनं पथ्यंप्रोक्तंवातजातामयघ्नम् ।
अर्धांशोनेनाशयेद्वातपित्तं पादप्रायंतत्तुदोपत्रयघ्नम् ॥

तप्तायःपिंडसंसिक्तलोष्टनिर्वापितंजलम् ।

सर्वदोषहरं पथ्यंसदानैरुज्यकारकम् ॥

उष्णोदकंश्रेष्ठतमंवदंतिविश्वायवानीसहितंक्रमेण ।

कफेचवातेनचपित्तरोगेसर्वेषुरोगेषुनशीतलाम्बु ॥

अर्थ—जो औटानेसे निर्वेग, ज्ञागरहित, निर्मल और आधारहजावे
उसको उष्णोदक कहते हैं, यह कफ, मेदा, वादी, आम, श्वास, खाँसी, ज्वर
इनको दूरकरे, दीपन है और वास्तिको शुद्धकरे है, उष्णोदक प्राणीको
सदैव पथ्य है । तहाँ चतुर्थांश जलाहुआजल वातके रोगोंमें पथ्यहै, आधा-
जला हुआ जल वातपित्तविकारोंको नष्टकरे और जो जलकर चौथाई
रहगया हो ऐसा जल त्रिदोषनाशक जानना । लोहेके गोलेको अग्निमें
लाल करके अथवा ईंटको अग्निमें लाल करके जलमें बुझाय देवे, वह
जल सर्वदोष हरण कर्ता, पथ्य तथा सदैव आरोग्यकारी है । सोंठ अज-
मायनको डालके औटायहुआ जल सर्वोत्तमहै, तहाँ सोंठडाला जल क-

फरोगमें और अजमायनडाला हुआ वादीके रोगमें पथ्य है, परंतु ये दोनों जल पित्तरोगमें हितकारी नहीं हैं एवं सब रोगोंमें शीतलजल पथ्यनहीं है ॥

ऋतुविशेषमेंजलकाथकेनियम ।

शारदंचार्धपादोनंपादहीनंतुहैमतम् । शिशिरेचवसंतेच
श्रीष्मेचार्धावशोषितम् ॥ विपरीतेऋतौतद्वत्प्रावृष्यष्टा-
वशोषितम् ॥

अर्थ—शरद ऋतुमें आठवाँ भागजला, हेमंत ऋतुमें चतुर्थांशजला शिशिर वसंत और ग्रीष्मऋतुमें अर्धावशेष एवं ऋतुके विपरीततामें और चौमासेमें अष्टावशेष जल पीना परम उत्तम कहाहै ॥

रात्रिमेंसेवितउष्णजलकेगुण ।

भिनत्तिश्लेष्मसंघातंमारुतंचापकर्षति ।

अजीर्णंजरयत्याशुपीतमुष्णोदकंनिशि ॥

अर्थ—रात्रिमें गरम जलपिया हुआ कफके समूहको वादीको और अजीर्णको नष्टकरता है ॥

उष्णोदककाप्रयोग ।

पार्श्वशूलेप्रतिश्यायेवातरोगेगलग्रहे । आध्याने स्तिमि-
तेकोष्ठेसद्यःशुद्धेनवज्वरे ॥ द्विक्वायांस्नेह पीतेचशीता-
म्बुपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—पसवाढेके, दर्दमें सरेकमां, वादीका रोग, गलग्रह, अफरा, कौठेकी अशुद्धी जो वमन विरेचन द्वारा तत्काल शुद्ध हुआ हो, नवीनज्वर, हिचकी और, जिसने स्नेहपान कराहो, इन सबको शीतल जलपीना वर्जित है ॥

उष्णजलथोडापीना ।

अरोचकेप्रतिश्यायेप्रसेकेश्वयथुक्षये । मंदाग्नाबुदरे कोष्ठे
ज्वरेनेत्रामयेतथा ॥ व्रणेचमधुमेहेचपानीयंमंदमाचरेत् ॥

अर्थ—अरुचि, सरेकमां, प्रसेक, सूजन, क्षय, मंदाग्नि, उदररोग, कौठेका रोग, ज्वर, नेत्ररोग, व्रणरोग और मधुमेह इन रोगोंमें इस प्राणीको पानी थोडा पीना चाहिये ॥

शृतशीतजलकेगुण ।

गुल्माशौग्रहणीक्षयेषुजठरे मंदानलाध्मानके शोफेपां
डुगलग्रहे व्रणगदेमेहेचनेत्रामये । वातारुच्यतिसारके-
कफयुतेकुष्ठेप्रतिश्यायके उष्णवारिसुशीतलंशृतहिमं
स्वल्पंप्रदेयंजलम् ॥

अर्थ—गोला, बवासीर, सग्रहणी, क्षय, उदररोग, मदाभि, अफरा,
सूजन, पांडुरोग, गलग्रह व्रणरोग, प्रमेह, नेत्ररोग, वादीका रोग, अरुचि,
कफातिसार, कोठ, पीनस इन सब रोगोंमें औटेटुए जलको शीतल
करके थोडा २ पीनेको देवे ॥

अथउष्णजलविधिः ।

आमंजलंजीर्यतियाममात्रंतदर्धमात्रंशृतशीतलंच ।

तदर्धमात्रंतुशृतंकदुष्णंपयप्रपाकेत्रयएवकालाः ॥

अर्थ—चिना औटाजल १ प्रहरमें पचता है और औटायकर शीतल
कराडुआ जल आधे प्रहरमें पचता है, एव औटायके कुछ २ गरम पीनेसे
चौथाई प्रहरमे पचता है, ये जलपचनेके तीनही काल है ॥

अधिकजलपीनेकेदोष ।

जलाधिक्यान्मनुष्याणामामवृद्धिःप्रजायते। आमवृद्ध्या
तुमंदाग्निर्मंदाग्नीचाप्यजीर्णता ॥ अजीर्णेनज्वरोत्पत्ति
ज्वराद्वै धातुनाशनम् । धातुनाशात्सर्वरोगाजायंते
चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ—अधिक जलपीनेसे मनुष्योंके आम बढ़ती है, आमके बढ़नसे
मंदाभिहोती है, मदाभिसे अजीर्ण—अजीर्णसे ज्वरकी उत्पत्ति—ज्वरसे
सब धातुओका नाशहोता है, धातुनाश होनेसे सपूर्ण रोग एकके पीछे
दूसरा होता है अतएव अधिकजल पीना वर्जित है ॥

शर्बत ।

शर्करासहितंनीरं कफकृत्पवनापहम् । सितासितोप-
लायुक्तंशुक्रलं दीपनाशनम् ॥ सगुडंमूत्रकृच्छ्रघ्नंपित्तश्ले-

ष्मकरं भवेत् ॥ स्निग्धं स्वादुहिमं हृद्यं दीपनं वस्तिशोधनम् ।

वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नालिकेरोदकं लघु ॥

अर्थ—शरबत पीना कफकरै और वादीको हरै है, सपेद चीनीका शरबत वीर्यको बढावे और दोषोंका नाश करे है । गुडका शरबत मूत्रकृच्छ्रको नष्टकरे और पित्तकफको करै है । नारियलका जल चिकना, स्वादु, शीतल, हृदयको हितकारी, दीपन और वस्तीको शुद्धकरे है, वीर्यवर्द्धक, पित्त और प्यासको नष्टकरे एवं हलका है ॥

धारापातेन विष्टं भिदुर्जरं पवनाहतम् ।

शृतशीतं त्रिदोषघ्नं बाह्यान्तर्भावशीतलम् ॥

अर्थ—वर्षाका जल विष्टंभी होता है और पवनसे ताडितजल दुर्जरहोता है, एवं औटायाके शीतल कराहुआ जल त्रिदोषनाशक तथा वाहर भीतरसे शीतल होता है ॥

दिवाशृतं तु यत्तोयं रात्रौ तद्गुरुतां व्रजेत् ।

रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥

अर्थ—दिनका औटाहुआ जल रात्रिमें भारी होजाता है और रात्रिमें औटायाहुआ जल दिनमें भारी हो जाता है, इसी कारण दिनमें औटाहुआ जल दिनमें पीवे और रात्रिका औटाजल रात्रिमें पीवे ॥

जलशोधनविधि ।

जलके शोधनेको तीन लफडीकी और तीन खानेकी टिकटी बनवावे वह बीचमें छेदवाले हों उनमें क्रमसे छेददार चारघडा रखे ऊपरके घडेमें पक्केकौले भरके जल छोडदे, दूसरेमें पीली और चिकनी मिट्टीके कंकरभरे तीसरेमें बालूरेतभरे और नीचेके घडेको खाली रखे, उसमें क्रमसे जल टपक टपककर जमा होवेगा ये शुद्धजल करने की विधि है ॥

तरुणज्वरमें काटेका देना निषेध ।

न कपायं प्रशंसन्ति कदाचित् तरुणज्वरे ।

कपायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥

अर्थ—शुद्धिमान् वैद्य तरुण ज्वरमें कदाचित् काटा देना अच्छा नहीं कहते क्योंकि यदि तरुणज्वरमें कपाय दीनी जावे तो दोष व्याकुल हो जाते हैं उन व्याकुल दोषोंका जीतना बडा कठिन है ॥

कपायं यः प्रयुंजीतनराणांतरुणज्वरे ।

ससुतंकृष्णसर्पतुकरात्रेणपरामृशेत् ॥

अर्थ—जो वैद्य, रोगी मनुष्योंको तरुण ज्वरमें काढापानिको देता है वह सोते हुए कालियसांपको उंगलियोंसे छूकर जगाता है । अर्थात् जैसे काला सांप इसप्राणीको मारडालता है, उसी प्रकार तरुण-ज्वरमें काढा देना प्राणोंको हरण करता है ॥

चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणांभसा ।

सकपायः कपायः स्यात्सवर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ—जो सोलहगुने जलमें औटाया और चार भाग वाकी रहनेपर उतार लिया वह कपाय, कपाय कहलाती है इसको तरुणज्वरमें देना वर्जित है ॥

नवज्वरेमलस्तंभात्कपायोविषमज्वरम् ।

कुरुतेऽरुचिहृल्लासहिष्माध्मानादिकानपि ॥

अर्थ—नवीन ज्वरमें कपाय देनेसे वो मलकास्तंभन करती है, अतएव विषम ज्वरको करे है तथा अरुचि, हृल्लास, हिचकी और अफरा आदि रोगोंको करे है ॥

अजीर्णद्रवशूलाहचेसमितीव्ररुजिज्वरे ।

नपिबेदौषधंतद्धिभूयएवाममावहेत् ॥

अर्थ—अजीर्ण, द्रवपदार्यजन्यशूलमें, साम और तीव्रज्वरमें औषध कदाचित् नहीं पीवे, यदि पीवे तो वो नष्ट हुई आमको फिर प्रगट करती है ॥

परिपेकान्प्रदेहांश्चस्नानंसंशोधनानिच ।

दिवास्वापंव्यवायंचव्यायामंशिशिरंजलम् ।

क्रोधप्रवातभोज्यानिवर्जयेत्तरुणज्वरी ॥

अर्थ—जलका तरडा देना, चंदनादिकका लेप, स्नान, वमन, विरेचन द्वारा संशोधन, दिनमें सोना, मैथुन करना, दंडकसरत करना, शीतल जलका स्पर्श, क्रोध करना, हवामें बैठना और भोजन करना इन सब कर्मोंको तरुणज्वरवाला त्याग देवे ॥

शोषच्छदिमदंमूर्च्छाभ्रमत्तृष्णाद्यरोचकान् ।

प्राप्त्युपद्रवानेतान्परिपेकादिसेवनात् ॥

अर्थ—यदि तरुण ज्वरवाला उक्तपरिषेकादिकमोंकोकरे तो शोष, छर्दि, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा और अरुचि इत्यादि उपद्रवोंको प्राप्त होता है ॥

परिषेकादिप्रत्येककेदूषणहारीतसे ।

व्यायामाज्वरसंबृद्धिव्यवायात्स्तंभमूर्च्छनम् । मृतिश्व-
स्नेहपानात्तुमूर्च्छाछर्दिमदोरुचिः ॥ गुर्वन्नभोजनात्स्व
प्राद्विष्टंभो दोषकोपनम् । अग्निसादः खरत्वंचस्रो-
तसांचाप्रवर्तनम् ॥

अर्थ—ज्वरमे दंड कसरत करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है, स्त्रीसंगक-
रनेसे स्तंभ, मूर्च्छा और मृत्यु होती है, घृतादिपान करनेसे मूर्च्छा, वमन,
मस्तपना और अरुचि होती है, भारी अन्न भोजन करनेसे और दिनमें
सोनेसे अफरा और वातादिदोषोंका प्रकोपहोता है एवं अग्निकी शांति
होना, तथा खरत्व होना एवं नेत्र नासिका आदि छिद्रोंका रुकना
इत्यादि दुःख होते हैं ॥

आसप्तरात्रात्तरुणज्वरमाहुर्मनीषिणः ।

मध्यंचतुर्दशाहंच पुराणःस्यात्ततः परम् ॥

अर्थ—सातरात्रि पर्यंत ज्वरकी तरुणावस्था पंडितजन कहते हैं,
चौदह दिनपर्यंत ज्वरकी मध्यावस्था और चौदह दिनके उपरांत पुरा-
ना ज्वर ऐसे कहलाता है ॥

सप्ताहेनतुपच्यंतेसप्तधातुगतामलाः ।

निरामश्चाप्यतःप्रोक्तोज्वरःप्रायोष्टमेऽहनि ॥

अर्थ—सातदिनमें सात धातुओंके मल पचते हैं, अतएव प्रायः आठ-
वेंदिन ज्वर निराम कहलाता है ॥

ज्वरपाककी अवधी ।

वातजः सप्तरात्रेणदशरात्रेणपैत्तिकः ।

श्लेष्मजो द्वादशाहेनज्वरः पाकंप्रपद्यते ॥

अर्थ—वातजन्य ज्वरसातरात्रिकरके—पैत्तिकज्वर दशरात्रि करके एवं
कफजन्यज्वर चारह दिनमें पकता है ॥

वातेद्वेपित्तजेचैकंकफेदिनचतुष्टयम् ।

सप्ताहंवातपित्तेच कफपित्तेदशस्मृताः ॥

कफवातेद्वादशाहं त्रिदोषैवविंशतिः ॥

अर्थ—अब ग्रंथान्तरसे लिखते हैं कि, वातजन्य ज्वर २ दिनमें, पित्त-जन्य १ दिनमें, कफजन्य ४ दिनमें, वातपित्तज्वर ७ दिनमें, कफ पित्तज्वर १० दिनमें, कफवातज्वर १२ दिनमें एवं त्रिदोषज्वर २० दिनमें पचता है ॥

सप्ताहादौषधकेचिदाहुरन्येदशाहतः ।

केचिल्लघ्वन्नभुक्तस्यदेयमामोल्बणेनतु ॥

अर्थ—किसी आचार्यका मत है कि, सात दिनमें औषध देना, कोई दशादिनसे औषध देना कहते हैं, कोई कहता है कि, हलका अन्न देकर औषध देवे, परंतु आमोल्बणमें औषध कदाचित् न देवे ॥

अपच्यमानंभैषज्यंभूयोजनयतिज्वरम् ।

मृदुज्वरोलघुदेहश्वलितश्चमलोयदा ॥

अचिरज्वरितस्यापिभेषजंयोजयेत्तदा ॥

अर्थ—जो औषध नहीं पची वो फिर ज्वरको प्रगट करे है । अब औषध देनेका समय कहते हैं कि, जिस रोगीका ज्वर धीमा पडगया हो, देह हलकी हो, मल चलायमान होगए हों ऐसे तत्काल आए द्रुये ज्वरवालेको भी औषधी वैद्य निस्संदेह देवे ॥

वृद्धवाग्भटे ।

पद्दशद्वादशाहेषुव्यतीतिषुक्रमेणवै ।

वातपित्तकफातल्लेघ्वन्नकालाइमेत्रयः ॥

अर्थ—छः, दश, बारह इतने दिन व्यतीत होनेपर क्रमसे, वात, पित्त और कफके ज्वरमें रोगीको अन्न देना ये तीन काल अन्नके देनेमें कहे है ॥

द्वंद्वजेसंनिपातेचव्याधवारोग्यदर्शने ।

सतियवागुयूपादिकल्पयेदतिनैपुणात् ॥

मुद्गान्मसूरांश्वणकान्कुलत्थान्मकुष्टकान्पाचनयूपहेतून् ॥

हिताहितानांविहितांश्वपेयान्दद्याद्यवागूमपिपाचनैःस्वैः ॥

अर्थ—द्वंद्वज और संनिपातजन्य रोगोंमें जब आरोग्य ही जावे तब यवागू और यूपकी कल्पना वैद्य बुद्धिमानोंके साथ करे मूँग, मसूर, चना,

अर्थ—लघु (ह. अभि. पुष्य. अभि.) मृदु (मृ. रे. चि. अनु.) चर (स्वा. पुन. श्र. ध. श.) मूल इननक्षत्रोंमें द्विस्वभावलम (मिथुन, कन्या, धन, मीन) में शुक्र, चंद्र, गुरु, बुध और रविवारमें तथा १२-७ और ८ स्थान शुद्धलममें और उत्तम तिथिमें (अर्थात् रिक्ता, अमा आदि वर्जित तिथिमें) और जिसदिन जन्मका नक्षत्र न हो ऐसे शुभसमयमें प्रथम औषध सेवन करना शुभ है ॥

परंतु यह सुहृत् देखना साधारण रोगमें लेना और जो रोग होतेही घोर उपद्रवकारी शीघ्रबढनेवाले हे जैसे हैजा आदि उनमें वैद्यको कदाचित् सुहृत् नहीं देखना चाहिये ॥

औषधग्रहणमेंमंत्र ।

ॐ अमृतं भक्षयामि स्वाहा ॥

अच्युतानंतगोविंदनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यंतिसकलरोगाः सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥

इनको प्रथम पढकर फिर औषध पीवे तो वह बहुत जल्दी गुणकरेहै। तथा रोगी पडा २ इसश्लोकको मनमें जपाकरे तो रोग शीघ्र दूरहोवे ॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय च ।

प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमोनमः ॥

औषधग्रहणविधिः ।

तत्रोपविश्यविश्रांतः प्रसन्नवदनेक्षणः । औषधं हेमरजत
मृद्गाजनपरिष्ठितम् ॥ पिवेत्प्रसन्नवदनः पीत्वापात्रमधो
मुसम् । निक्षिप्यपात्रेसलिलं ताम्बूलाद्युपकल्पयेत् ॥

अर्थ—रोगी बैठकर और परिश्रमको दूरकर, प्रसन्नमुख और नेत्रकर सुवर्ण, चांदी अथवा मिट्टीके पात्रमें स्थित औषधको प्रसन्नमुखसे पीवे और औषधको पीकर उसपात्रको ओंधेमुख रखदेवे फिर जलसे हाथ धोकर पानकी बीडी आदिको चचावे ॥

गंडूयवर्जन ।

यमदूतपिशाचाद्यायक्षगंधर्वराक्षसाः ।

तेन्नन्त्यौषधवीर्याणिततो गंडूपवर्जनम् ॥

अर्थ—यमके दूत, पिशाच (आदिशब्दसे भूत, प्रेत, वेतालादिक) यक्ष, गंधर्व, राक्षस ये सब औषधके पराक्रमको नष्टकरदेते हैं इसीसे औषधको पीकर कुरला न करे ॥

काथस्य कल्कस्य रसस्य यामं मासत्रयं चाञ्जनचूर्णवीर्यम् ।

पण्मासकारुण्यं गुडलेहवीर्यसंवत्सरं तैलघृतस्य वीर्यम् ॥

अर्थ—काथ (काढा) कल्क, स्वरस इनमें १ प्रहर पर्यंत अपनी शक्ति रहती है और अंजन, सुरमा आदि चूर्ण (हिंमवाट्टकादि) इनकी तीनमहीने शक्ति रहती है, गुड (बाहुशालगुडादि) लेह (कल्याणावलेह आदि) इनमें छः महीने पर्यंत वीर्य रहता, एवं घृत और तैलमें १ वर्ष पर्यंत वीर्य रहता है, उपरांत हीनवीर्य होजाती है ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विपमो वेगः कंठोष्ठमुखशोषणम् ।

निद्रानाशः क्षवः स्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥

शिरोहृद्गात्ररुग्बक्रवैरस्यं गाढविद्धता ।

शूलाध्माने जृंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥

अर्थ—कंपहोना, ज्वरका विपमवेग, कंठ, होठ, मुख इनका सुखना, निद्राका नाश, छाँकका न आना, देहकारूखापना, चकारसे नेत्र, विष्टा, मूत्र इनका काला होना और आचारी “ रौक्ष्यमेवच ” इसजगे “ श्यावांगमलमूत्रता ” ऐसा पाठ कहते हैं और मस्तक, हृदय, गात्र इनमें पीडा। कोई (शंका) करे कि, गात्र पदके धरनेसे ही मस्तक हृदय आदिका बोध होगया फिर (मस्तक) और हृदय पद क्यों धरा ? उत्तर ये दोनों पदके धरनेसे इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय मुखकी विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा, जम्माई ये लक्षण वातज्वरके होते हैं ॥

वातज्वरपरशुंठ्यादिपाचन ।

विश्वभेषजकैरात कुरुविंदगुडूचिका । पाचनं स्मृतमेते-
पां देयं पवनजे ज्वरे ॥

अर्थ-सोंठ, चिरायता, नागरमोथा और गिलोय इनका काढा वातज्वरमें पाचनार्थ देवे ॥

शुद्ध्यादिपाचन ।

गुडूचिकोपणाजटामहौषधैश्च पाचनम् ।

मरुज्ज्वरे सर्लिंगके दिने च सप्तमे हितम् ॥

अर्थ-गिलोय, पीपल, जटामांसी, सोंठ इनका काढा वातज्वरका पूर्वरूपहोकर जाने उपरांत सातवेंदिन हितकारकहै ॥

शठचादिकाढा ।

शठीनिशाद्रथंदारुशुंठीपुष्करमूलकम् ॥ एलागुडूची

कटुकीर्पटश्चयवासकः ॥ शृंगीकिराततित्तंचदशमू-

लंतथैवच ॥ काथमेपांपिवन्कृष्णासिंधुचूर्णयुतंनरः ॥

ज्वरान्सर्वान्द्रुतंहन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ-कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, पोहकरमूल, इलायची, गिलोय, कुटकी, पित्तपापडा, जवासा, काकड़ासिंगी, चिरायता, कुटकी और दशमूल इनका काढा पीपल और संधानिमक डालके देवे तो सर्वज्वरोंका शीघ्र नाश करे इसमें संशय नहीं है ॥

श्रीपर्ण्यादिपाचन ।

श्रीपर्णीतर्कारीश्रीफलटिटूकपाटलामूलैः ।

पाचनमुचितंमारुतजनितज्वरहारिवारिभिःकथितैः ॥

अर्थ-श्रीपर्णी, अरनी, बेलगिरी, टेंदू, पाडर इनका काढा करके वातज्वरमें देवे यह पाचनहै ॥

शुद्ध्यादिकाढा ।

गुडूचीसारिवाद्राक्षाबलाचांशुमतीतथा ।

एपोपिपरमः सिद्धोवातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ-गिलोय, सरिचन, दाख, खिरंटी और शालपर्णी इनका काढा वातज्वरमें देवे यह उत्तम है ॥

दर्भमूलादिकाढा ।

दर्भबलागोक्षुरकंपचेत्पादावशेषितम् ।

शर्कराघृतसंयुक्तं पिवेद्वातज्वरापहम् ॥

अर्थ—कुशकीजड़, खिरंटी और गोखरू इनका काढा चतुर्धाशकरके शीतल होनेपर मिश्री तथा शहत मिलायके देवे तो वातज्वरको नाशकरे

त्रिफलादिकाढा ।

श्रीफलंसर्वतोभद्राकामदूतीचशोणकः । तर्कारीगोक्षुरः

क्षुद्रावृहतीकलशीस्थिरा ॥ रास्नाकणाकणामूलकुप्टंशुं

ठीकिरातकः । मुस्तामृतामृतावालंद्राक्षयासः शता-

ह्विका ॥ एपांक्राथोनिहंत्येवप्रभंजनकृतज्वरम् । सोपद्र-

वंचयोगोयंसर्वयोगवरःस्मृतः ॥

अर्थ—बेलगिरी, छोटीकंभारी, लालपाठर, टेंडू, अरनी, गोखरू, कटेरी, बडीकटेरी, पिठवन, सालपर्णी, रास्ना, पीपल, पीपरामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नामरमोथा, गिलोय, खिरंटी, नेत्रवाला, दाख, धमासा और सतावर इनका काढा वातज्वरका नाश करे ॥

भूनिंबादिकाढा ।

भूनिंबमुस्ताजलकंटकारिद्रयामृतागोक्षुरनागराणाम् ।

सशालिपर्णाद्वयपौष्कराणांक्राथंपिवेद्वातभवज्वरार्तः ॥

अर्थ—चिरायता, नामरमोथा, नेत्रवाला, कटेरीदोनों, गिलोय, गोखरू, सोंठ, सालपर्णी, पृष्ठपर्णी, पोहकरमूल इनका काढा जिसको वातज्वर आता हो उसको देवे ॥

दुरालभादिकाढा ।

दुरालभानागरतित्तपाठासठीवृषैरंडजटाकयायः ।

पीतः सशूलंशमयेज्वरंच सश्वासकासंपवनप्रसूतम् ॥

अर्थ—धमासा, सोंठ, कुटकी, पाठ, कचूर, अडूसा और अंडकी जड़ इनका काढा पित्त, शूल, श्वास, खांसी तथा वातज्वर इनका नाशकरे ॥

शुभ्यादिकाढा ।

विश्वामृताग्रंथिकसिद्धितोयंमरुज्ज्वरः स्यात्पिपवतःकुतोयम् ।
क्वाथोथकुस्तुंवरुदेवदारु शुद्रौषधैः पाचनमत्रचारु ॥

अर्थ—सोंठ, गिलोय और पीपरामूल इनका काढा पीनेवाले मनुष्योंके वातज्वर कहां रहता है और इस वातज्वरपर धनियां, देवदारु, कटेरी और मोंठके काढेका पाचन सुंदर है ॥

पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूलाविलारास्नाकुलित्सहपौष्करैः ।

क्वाथोहन्याच्छिरः कंपपर्वभेदमरुज्ज्वरम् ॥

अर्थ—पंचमूल, खरैटी, रास्ना, कुलथी और पोहकरमूल इनका काढा शिरःकंप, संधियोंकी पीड़ा और वातज्वर इनका नाश करे ॥

कणादिकाढा ।

कणारसोनामृतवल्लिविश्वानिदग्धिकासिंदुकभूमिनिवैः ।

समुस्तकैराचरितःकपायोहिताशिनांहंतिगदानिमांस्तु ॥

ज्वरंमरुत्कोपसमुद्भवंतथावलासजं चानलमंदतांच ।

कंठवारोधं हृदयावरोधंस्वेदंचद्विक्रान्चहिमत्वमोहान् ॥

अर्थ—पीपल, लहसन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सह्यालू, चिरायता और नागरमोथा इनका काढा लेकर पंथ्यसे रहे तो वातज्वर, कफज्वर, मंदामि, गला तथा हृदयकारुण्य, पसिने, हिचकी और शीत, मोह इनका नाश करे ॥

काकोल्यादिकाढा ।

काकोलीवृहतीसुस्ताकुष्टंदारुवृषामता ।

शुंठीक्वाथःसितायुक्तोहेतिवातज्वरंपरम् ॥

अर्थ—काकोली, कटेरी, नागरमोथा, बूठ, देवदारु, अहूसा और सोंठ इनका काढा मिश्री डालके देवे तो वातज्वर दूर हो ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतानागरंमुस्तानिंशाह्वयवासकैः ।

वातज्वरेप्रदातव्यः कृष्णायुक्तकपायकः ॥

अर्थ-गिलोय, सोंठ, नागरमोथा, हलदी और जवासा इनका काढा पीपरका चूर्ण डालके वातज्वरमें देवे ॥

अंध्यादिकाढा ।

अंधिकंपर्पटोवासाभांर्गींविश्वागुडूचिका ।

एभिःसुसाधितंतोयंतीव्रवातज्वरापहम् ॥

अर्थ-पीपरामूल, पित्तपापरा, अडूसा, भारंगी, सोंठ और गिलोय इनका काढा तीव्रवातका नाश करे ॥

शालिपर्ण्यादिकाढा ।

शालिपर्णीबलाद्राक्षागुडूचीसारिवातथा । आसांक्राथं-

पिवेत्कोष्णंतीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥ काश्मरीसारिवाद्रा-

क्षात्रायमाणामृताभवः । कपायःसगुडःपीतोवातज्वर-

विनाशनः ॥

अर्थ-शालपर्णी, खरैटी, दाख, गिलोय और सरिवन इनका काढा कुछ गरम पीवे तो तीव्र वातज्वर दूरहोकरंभारी,सरिवन,दाख,त्रायमाणा और विलोय इनके फाटेमें गुड डालके पीवे तो वातज्वर नाश होवे ॥

गुडूच्यादिपाचन ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैःपाचनंस्मृतम् ।

दद्याद्वातज्वरेपूर्णंलिंगेसप्तमवासरे ॥

अर्थ-गिलोय, पीपरामूल और सोंठ इन तीन औषधोका काढा ज्वर पूर्ण दशामें आनेसे सातवे दिन देवे तो वातज्वर नष्ट हो ॥

किरातादिकाढा ।

किराताब्दामृतोदीच्यवृहतीद्वयगोक्षुरैः ।

सस्थिराकलशीविश्वैःकाथोवातज्वरापहः ॥

अर्थ-चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, नेत्रवाला, दोनों कटेरी, गोखरू, पिठवन, सालपर्णी और सोंठ इनका काढा वातज्वरनाशक है ॥

पिप्पल्यादिकाढा ।

पिप्पलीसारिवाद्राक्षशतपुष्पाहरेणुभिः ।

कृतःकषायः सगुडोहन्यात्पवनजंज्वरम् ॥

अर्थ-पीपर, सारिवा, दाख, सौंफ, रेणुकाकेबीज इनका काढा कर गुड़ डालके देवेतो वातज्वर नष्ट हो ॥

उशीरादिकषाय ।

उशीरकलशीमहौषधकिरातकांभोधरस्थिरावृहतिकार्य-
यामृतलतात्रिकंठैःकृतम् । कषायकममुपिवेत्पवनजज्व-
रव्याकुलःपुमान्दशशतच्छदछदमदग्रसल्लोचने ॥

अर्थ-हे कमलदललोचने! नेत्रवाला, पिठवन, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा सालवन, कटेरी दोनों, गिलोय और गोखरू इनका काढा वातज्वरपीडितोंको देनेसे उनका ज्वर शांत होवे । यह वैद्यजीवनमें लिखा है ॥

मरीच्यादिकाढा ।

मरीचंरुचकंशुंठीकिरातंचहरातकी ।

पिप्पलीकटुकीचैववातज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ-कालीमिरच, अंडकी जड़, सोंठ, चिरायता, छोटी हरड़, पीपल, कुदकी इनका चूर्ण अथवा काढा पीनेसे वातज्वर दूर होवे ॥

त्रिफलादिचूर्ण ।

त्रिफलाव्योपगुडकंशर्करात्रिवृतार्धकम् । मोदकंभक्षयि-
त्वातु पिवेच्चोष्णजलंपुनः । पार्श्वशूलैःरुचौकासेज्वरेचा-
निलसंभवे ॥

अर्थ-त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण गुड़से अथवा निशो-
धके चूर्णमें दुग्नी खांड मिलाय भक्षण करे, ऊपरसे गरम जलपीवे तो पार्श्वशूल, अरुचि, खाँसी और वातज्वर इनका नाश होवे ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

तुल्यांशमर्दयेत्खल्वेपिप्पलीर्हिगुलंविषम् ॥

द्विगुंजमधुनादेयंवातज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ-पीपल, हिगुल तथा सिंगियाविष ये समान भागले खरल करे, फिर इस चूर्णको २ रत्ती शहतके साथ देवे तो वातज्वरका नाश होय ॥
द्राक्षादिचूर्ण ।

द्राक्षादुरालभापथ्याचिकणीसमभागतः ।

एतागुडान्वितानूनं नाशयंत्यनिलज्वरम् ॥

अर्थ-दाख, धमासा, छोटी हरड़ तथा चिकनी सुपारी इनको समभाग ले चूर्णकरे इसमेंसे २ तोले गुड़में मिलाकर देवे तो वातज्वर नष्ट होय ॥
शतावरीस्वरसः ।

सद्योवातज्वरंहन्ति शतावर्यामृतारसः ।

समासात्सगुडःपीतो बलहीनस्यदेहिनः ॥

अर्थ-सतावर, गिलोय इनका स्वरस गुड मिलाकर देनेसे निर्बल पुरुषका वातज्वर शांत होय

कल्पतरुरसः ।

शुद्धं शंकरशुक्रमक्षतुलितंमारारिनारीरजस्तावत्तावदु-
मापतिस्फुटगलालंकारवस्तुस्मृतम् । तावत्येवमनः
शिला च विमलातावत्तथाटकणं शुंठीद्व्यक्षमिताक-
णाचमरिचंदिक्पालसंख्याक्षकम् ॥ विपादिवस्तूनि-
शिलोपरिष्ठाद्विचूर्णयेद्वाससिशोधयेच्च । ततस्तुखल्वे
रसगंधकौचचूर्णंचतद्यामयुगंविमर्द्य ॥ कल्पतरुनामधेयो
यथार्थनामारसःश्रेष्ठः । सर्मारणश्लेष्मगदनहरतेमात्रा-
स्यगुंजैका ॥ आर्द्रकेणसममेपभक्षितोहन्तिवातकफसंभ-
वंज्वरम् । श्वासकासमुखसेकशीततावह्निमांध्यमरुचिच
नाशयेत् ॥ नस्येनाश्वेवहरति शिरोर्त्तिकफवातजाम् ।
मोहंमहांतमपिचप्रलापंक्षवधुग्रहम् ॥

अर्थ—पारा, गंधक, वच्छनागविष, मनसिल, सुहागा, प्रत्येक शुद्धकरे हुए एक २ तोले लेवे, उसमें सोंठ २ तोले, कालीमिरच ८ तोले, पीपल ८ तोले इस प्रमाण डालके वच्छनागादि औषधोंको बारीक कूट पीस कपड छानकर लेवे फिर पारिगंधककी कजलीकर उसमें उक्त औषधोंके चूर्णको मिलाय देवे सबको एकत्र कर दो प्रहर खरल करके जलसे एक २ मासिकी गोली बनावे, तो यह कल्पतरु नामक श्रेष्ठ रस बनकर तयार हो, इसमेंसे १ गोली प्रातःकाल सेवन करे तो वात कफके रोग दूर होंगे इस रसकी अदरखके रससे खाय तो वात कफज्वरका नाश करे तथा श्वास, खांसी, मुखसे लारका बहना, शीत, मंदाग्नि और अरुचि इनका नाशकहै, एवं इस रसकी नस्य लेनेसे कफवातसे प्रगट हुई मस्तकपीडाकी हरणकरे। उसीप्रकार बडाभारी मोह, प्रलाप और छींकका न आना इनको नाश करे ॥

भैरवरसः ।

विषमहौषधिमागधिकोपणद्युमणिरक्तकमार्द्रकमर्दितम् ।

क्रमविवर्द्धितमुद्गलितज्वरं हरतिभैरवपरसोवरः ॥

अर्थ—सिगियाविष, सोंठ, पीपल, कालीमिरच ये औषध प्रत्येक एकसे दूसरी अधिक भाग लेवे, सबको कूट पीस आकके दूध और अदरखके रससे खरलकर गोली बनावे तो यह भैरवरससिद्ध होवे, इसको बलाबल देखके देवे तो घोर वातज्वरको दूर करे ॥

शीतभंजीरसः ।

पारदंसकंतालंशिखितुथंचटकणम् । गंधकंचसमपि-
द्वाकारवेष्टरसैर्दिनम् ॥ ताम्रपात्रोदरेलेप्यंयंत्रेपात्रंत्वधो-
मुखम् । दत्वारुध्वा विशोष्याथवल्कलाभिःप्रपूरयेत् ॥
पचेद्दार्वाग्निनाचुल्यांताम्रपृष्ठगतायदा । स्फुटंतिव्रीहयः
शुद्धोरसस्तंस्वांगशीतलम् ॥ ताम्रपात्रात्समुद्धृत्यचूर्ण-
यन्मरिचैःसमम् । शीतभंजीरसोनाम द्विगुंजवातकेज्वरे ॥
दातव्यःपर्णखंडेन तत्क्षणात्नाशयेज्ज्वरम् । त्रैदिनंविष-
मंतीव्रंएकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥

अर्थ-पारा, खपरिया, हरताल, लीलाथोथा, सुहागा और गंधक ये औषध समभाग लेकर करलेके रसमें १ दिन खरलकरे, फिर उस पिट्टीको ताम्रके पात्रके भीतर लेप करके और उस पात्रके ऊपर दूसरा अधोमुख ताम्रके पात्रमें दावकर सात कपड मिट्टी कर धूपमें सुखाय चूहेपर रख बालुकायंत्रमें तीव्राग्निसे पचन करावे, जब बालूके ऊपर रखेहुए धान खिलजावे तब अग्नि भेद कर शीतल करें और औषधको पात्रमेंसे निकाल बराबरकी कालीमिरच मिलायके पिसे २ रत्ती पानमें धरके देवे तो तत्क्षण वातज्वर नाश होवे तथा यह शीतभंजी रस तीनदिन सेवन करे तो, तीव्र विषमवर, एकाहिक, व्याहिक और चातुर्थिक ज्वरोंको शांत करे ॥

मातुलंगादिगुटिका ।

मातुलुंगफलकेसरोद्धृतःसिंधुजन्ममरिचान्वितोमुखे ।

हंतिवातकफरोगमास्यगंशोपमाशुजडतामरोचकम् ॥

शर्करादाडिमाभ्यांचद्राक्षादाडिमयोस्तथा ॥

कल्कंविधारयेदास्येशोषवैरस्यनाशनम् ॥

अर्थ-विजोरेकी केशर, सैधानिमक, कालीमिरच, ये तीनों औषध एकत्र खरलकर गोली कर मुखमें रक्खे, इससे मुखसंबंधी कफ वातरोग, शोष, जडता और अरुचि दूर होवे । खांड और अनार अथवा दाख और अनार इनका कल्क शोष तथा मुखकी विरसता दूर होनेके लिये सेवन करे ॥

द्राक्षादिप्रतिसारण ।

द्राक्षामलकयोः कल्कंसघृतं वदनेक्षिपेत् । तेनघृष्टामु

खस्यांतः कुर्वीतप्रतिसारणम् ॥ जिह्वातालुगलांतस्थः

संशोपस्तेनशाम्यति । सुरसंजायतेवक्रंरुचिर्भवति

भोजने ॥

अर्थ-दाख और आमले इनका कल्क चीके साथ मिलाय उसको मुखके भीतर फेरे, उसकी प्रतिसारण कहते है, यह करके उक्त दाख आदिकी गोली मुखमें रक्खेतो जिह्वा, तालु, तथा गला इनका सूखना शांत होय और मुख सुरस होकर भोजनमें रुचि होवे ॥

हरीतक्यादिशुटिका ।

हरीतकीत्रिवृच्चैवदारुकाणांपृथग्भवेत् ॥ पलद्वयंकणांशुं
ठीगुडूचीगोक्षुरोवरी । सहदेवीविडंगचप्रत्येकंपलसं
मितम् । मधुनावटिकांकृत्वाखादञ्ज्वरमपोहति ॥ का
संश्वासंमलस्तंभं वह्निमाद्यंनियच्छति ॥

अर्थ—हरडकी छाल, निसोथ, विधायरा, प्रत्येक ८ तोले, पीपर, सोंठ, गिलोय, गोखरू, सतावर, सहदेई, वायविडंग ये प्रत्येक तोले ४ प्रमाण लेकर चूर्ण कर शहतसे गोली बनावे यह ज्वर, खांसी, श्वास, मलावरोध और अग्निमांघ इनका नाश करे ॥

स्वेदकाठनेकेविषयमेंप्रमाणकहतेहैं ।

वातश्लेष्मज्वरेस्वेदंजंघापाश्र्वांस्थिशूलिनि । पीन
सश्वासवाधिर्येकारयेत्तद्विधानवित् । स्रोतसांमार्दवंकृ
त्वानीत्वापावकमाशयम् । हत्वावातकफस्तंभंस्वेदो
ज्वरमपोहति ॥

अर्थ—वातकफज्वरमें, जंघा, पार्श्वभाग और हड्डी इनमें शूल होनेसे तथा पीनस, श्वास तथा वधिरता ये विकार होनेसे पसीने काठने चाहिये अर्थात् पसीने निकालनेसे इतने गुण होते हैं, रसवाहिनी नाडियोंका नष्ट होना तथा अग्निको स्वस्थानमें लावे और वात तथा कफ संबंधी जडत्वको नाशकर ज्वरका नाश करे है ॥

खर्परभृष्टवालुकास्वेदयोग ।

खर्परभ्रष्टपरास्थितकांतिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ।

शमयतिवातकफामयमस्तकशूलांगभंगादीन् ॥

अर्थ—वालूको खिपडेमें तपाय उसपर कांजीडाल उसका बफारा देय तो वात कफ रोग, मस्तकशूल तथा अंगोंका टूटना इससे शांत होता है ॥

निद्रानाशनिदान ।

नावनंलंघनंचिताव्यायामः शोकभक्तिधुः ॥

एभिरेवभवेन्निद्रानाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ॥

अर्थ—नस्य, लंघन, चिंता, दंडकसरत, शोक, भय और क्रोध इन कारणोंसे अत्यंत कफनाश होनेसे निद्रा नहीं आती ॥

विजयाचूर्णयोग ।

भ्रष्टं तु विजयाचूर्णमधुनानिशिभक्षयेत् ।

निद्रानाशेति सारे च ग्रहण्यां पावकक्षये ॥

अर्थ—रात्रिमें भांगको भून उसके चूर्णको शहतके साथ देवे तो निद्रानाश, अतिसार, संग्रहणी तथा मंदाग्नि इत्यादि रोग नष्ट होवे ॥

सगुडादिचूर्ण ।

गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहन् ।

चिरादपि च संनष्टानिद्रामाप्नोति मानवः ॥

अर्थ—पीपरामूलके चूर्णको गुडके साथ खानेसे बहुत दिनका निद्रानाश हुआ होय वो नष्ट होवे ॥

निद्रालानेकी औषध ।

मूलं तु काकमाच्यावद्धं सूत्रेण मस्तकेनियतम् ।

विदधाति नष्टानिद्रानिद्रायाश्चैव सिद्धमिदम् ॥

अर्थ—काकमाची (मकोय) की जड़ सूतसे मस्तकमें बांधे तो निद्रा तत्काल आवे यह अनुभवसिद्ध है ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णेतिसारश्चानिद्रालपत्वं तथा वमिः । कंठोष्ठमु-

खनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ प्रलापो वक्रकटुतामू-

र्छादाहोमदस्तृषा । पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्पैत्तिके भ्रम एव च ॥

अर्थ—ज्वरका तीक्ष्णवेग हो अतिसार (यानी पित्तके वेगसे दस्तका पतला होना न कि, अतिसार रोगहो) थोड़ी निद्रा आवे, पित्तको कफके स्थानमें पहुँचनेसे वमनका होना, कठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना और पसीनोंका आना बडबडाना मुखमें कड़ुआपन, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्टा, मूत्र, नेत्र, देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं = शंका ॥ क्योंजी भ्रमको वात

विकारमें लिखा है यासे ये तो वातका धर्म हैं फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द क्यों कहा ? * उत्तर तुमने कहा सो ठीक है, परंतु रोग एकही दोषसेही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसे होय है जैसे लिखा है " न रोगोप्येकदोषजः इति " और " पैत्तिके भ्रम एवच " इस पदमें चकार जो पडा है इससे इस श्लोकमें जो नहीं कहे कोन तीव्रगरमी, लालचकते, शीतकी इच्छा, दाह, अरुचि, इत्यादि जानने ॥

छिन्नादिपाचन ।

छिन्नरुहापिचुमंदकधान्यंविश्वनिशाजनितश्चकपायः ।

पाचनकंगुडमिश्रितमेवपित्तभवेज्वरएवाहिपेयम् ॥

अर्थ-गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, सोंठ तथा हलदी इनका काढा गुड डालकर देवे यह पित्तज्वरपर पाचन है ॥

दुस्पशादिकाढा ।

दुस्पर्शवासाकटुकाहरेणुप्रियंगुभूर्निवकृतःकपायः ।

पीतोहिपित्तप्रभवंसदाहंज्वरंजयेदाशुसितासमेतः ॥

अर्थ-धमासा, अहूसा, कुटकी, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु और चिरायता इनका काढा खांड डालकर पीवे तो दाहयुक्त पित्तज्वरका नाश करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षापटोलीपिचुमंदतित्ताहरीतकीसिंहमुखीजलंच ।

धान्याकलोध्रांबुदनागरंचपित्तज्वरांभोनिधिवाडवाग्निः ॥

अर्थ-दाख, पटोलपत्र, नीमकी छाल, कुटकी, छोट्टीहरड, कटेरी, नेत्रवाला धनियां, लोध, नागरमोथा और सोंठ इनका काढा पित्तज्वररूप समुद्रको बडवाग्निके समान है ॥

पित्तज्वरप्रतीकार ।

अमलैःकमलैरथानिलैरलसैःपुष्परजःसमन्वितैः ।

जलकेलिकथाकुतूहलैरपिपित्तज्वरजारुजो जयेत् ॥

अर्थ-श्वेतकमल, सुगंधित पुष्पोंमें होकर आया मंद सुगंध वायु और जल क्रीडा इन करके वैद्योंको पित्तज्वरजनित पीडा जीतनी चाहिये ॥

तित्तादिकाढा ।

तित्तामुस्तायवैःपाठाकट्फलाभ्यांसहोदकम् ॥

पक्वसशर्करंपीतंपाचनं पैत्तिकज्वरे ॥

अर्थ-कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाठ, कायफल और नेत्रवाला इनका काढा खांड डालके पीवे यह पित्तज्वरको पाचक है ॥

पपर्तादिकाढा ।

पर्पटोवासकस्तित्ताकिरातोधन्वयासकः ॥

प्रियंगुश्चकृतःक्वाथएपशर्करयापुनः ॥

पिपासादाहपित्तास्रयुक्तंपि त्तज्वरंहरेत् ॥

अर्थ-पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, धमासा, फूलप्रयंगु इनका काढा खांड डालकर लेय तो प्यास, दाह तथा रक्तपित्त इन सहित पित्तज्वरको दूर करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाहरीतकीमुस्ताकटुकीकृतमालकः । पर्पटश्चकृतः

क्वाथएपपित्तज्वरापहः ॥ मुखशोषप्रलापांतर्दाहमूच्छा-

भ्रमप्रणुत् । पिपासारक्तपित्तानांशमनोभेदनोमतः ॥

अर्थ-दाख, छोटी हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गूदा और पित्तपापडा इनका काढा लेय तो मुखशोष, चकवाद, अंतर्दाह, मूच्छा तथा भ्रम इनको नाश करे और प्यास तथा रक्तपित्त इनको शमन करे तथा मलको निकाले ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवधान्याकमधुकंमधुसंयुतम् ।

हंतिपित्तज्वरंदाहंतृष्णां चातिप्रमाथिनीम् ॥

अर्थ-पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियो, मुलहठी इनका काढा शहत डालके पीवे तो पित्तज्वर, दाह तथा प्यास शांत हो ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूच्यामलकीयुक्तः केवलोवापिपर्पटः ।

पित्तज्वरं हरेत्तूर्णपित्तशोपभ्रमान्वितम् ॥

अर्थ—गिलोय, आमले तथा पित्तपापडा इनका अथवा केवल पित्त-पापडेका काढा लेनेसे शोष तथा भ्रम युक्त पित्तज्वरको हरण करे ॥

ह्रीवैरादिकाढा ।

ह्रीवैरचंदनोशीरघनपर्पटसाधितम् ।

दद्यात्तुशीतलंवारितृड्वृद्धिज्वरदाहनुत् ॥

अर्थ—नेत्रवाला, लाल चंदन, खस, नागरमोथा, और पित्तपापडा इनका काढा शीतल करके देय तो अत्यंत प्यास, ज्वर तथा दाह इनको दूर करे ॥

भूनिंवादिकाढा ।

भूनिंवातिविपालोध्रमुस्तकेंद्रयवाः स्मृताः ।

वालकंधान्यकं विल्वंकपायोमाक्षिकान्वितः ॥

भिनत्तिश्वासकासांश्चरक्तंपित्तज्वरं हरेत् ॥

अर्थ—चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजव, नेत्रवाला, धनियॉ और बेलगिरी इनका काढा शहत डालके लेयतो अतिसार, श्वास, खांसी, रक्त, पित्त, ज्वर इनको दूर करे ॥

कट्फलादिकाढा ।

कट्फलेंद्रयवांवष्टात्तित्तामुस्तैः शृतंजलम् ।

पाचनं दशमेद्विस्यात्त्रिपित्तज्वरे नृणाम् ॥

अर्थ—कायफल, इन्द्रजौ, पाठ, कुटकी और नागरमोथा इनका काढा तीव्र पित्तज्वरवालेको दशमेंदिन दे (अर्थात् पित्तज्वर दशमेंदिन पाचन होता है) इसीवास्ते दशमें दिन देय तो पित्तज्वर दूर हो ॥

पंचमद्रादिकाढा ।

पर्पटाद्रामृताविश्वाकैरातैः साधितंजलम् ।

पंचमद्रामिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ—पित्तपापडा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता इनका काढा वातपित्तज्वरको दूरकरे इसे पंचभद्र काथ कहते हैं ॥

कालिंगादिकाढा ।

कालिंगकटुफलश्रंपाठाकटुकरोहिणी ।

पक्वसशर्करं पीतंपाचनंपित्तकेज्वरे ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, कायफल, लोध, पाठ और कुटकी इनका काढा खांड डालके पीवे तो पित्तज्वरको पचावे ॥

शर्करादिकाढा ।

शर्करामधुरोहंतिकपायः पैतिकंज्वरम् ।

चंदनोशीरश्रीपर्णीपुरूवकमधूकजः ॥

अर्थ—लालचदन, नेत्रवाला, कायफल, फालसे, मुलहठी इनका काढा खांड डालकर देय तो पित्तज्वरका नाश करे ॥

क्षुद्रादिकाढा ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः । रक्तचंदनभू-

निवपटोलवृषपौष्करैः ॥ कटुकैद्रयवारिष्टभांगीपर्पटकैः

समैः । काथंप्रातर्निपेवेतशीतंसर्वज्वरच्छिदम् ॥

अर्थ—फटेरी, धनियां, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, पन्नाख, लालचंदन, चिरायता, पटोलपत्र, अडूसा, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजव, वूठ, भारंगी और पित्तपापडा इनका काढा पीवे तो सर्वप्रकारके शीतज्वर दूर होय ॥

लोधादिकाढा ।

लोध्रोत्पलामृतापद्मसारिवाणांसशर्करः ।

काथःपित्तज्वरंहन्यादथवापर्पटोद्भवाः ॥

अर्थ—लोध, कमलगट्टेकी गिरी, गिलोय, पन्नाख और सरिवन इनका काढा खांड डालके पीवे अथवा पित्तपापडेकाही काढा पित्तज्वरको दूर करता है ॥

पर्पटादिकाढा ।

पर्पटामृतधात्रीणांकाथपित्तज्वरंजयेत् ।

द्राक्षारग्वधयोश्चापिकाश्मर्याश्चापिवापुनः ॥

अर्थ-पित्तपापडा, गिलोय और आमले इनका काढा पित्तज्वरको दूर करे अथवा दाख, अमलतासका गूदा इनका अथवा केवल कंभा रीका काढा पित्तज्वरको जीतता है ॥

विश्वादिकाढा ।

विश्वपर्पटकोशीरघनचंदनसाधितम् ।

दद्यात्सुशीतलंवारितृच्छर्दिज्वरदाहनुव ॥

अर्थ-सोंठ, पित्तपापडा, नेत्रवाला, नागर मोथा और लालचंदन इनका काढा शीतलकर देवे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह इनको नाशकरे ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीमुस्तधान्याकमधुकंकटुरोहिणी ।

तृष्णाशूलरुचिच्छर्दिपित्तज्वरहरोगणः ॥

अर्थ-गिलोय, नागरमोथा, धनियां, मुलहटी और कुटकी इनका काढा प्यास, शूल, अरुचि, वमन और पित्तज्वर इनको नाशकरे ॥

किरातादिकाढा ।

किरातामृतधान्याकचंदनोशीरपर्पटैः ।

सपद्मकैःकृतःकाथोहंतिपित्तभवंज्वरम् ॥

दाहतृष्णाश्रमारुचिमुत्केशं वमथुं कुमम् ॥

अर्थ-चिरायता, गिलोय, धनियां, चंदन, नेत्रवाला, पित्तपापडा और पद्मास इनका काढा पित्तज्वर, दाह, तृष्णा, श्रम, अरुचि, मुखसे पानी बूटना वमन और ग्लानि इनका नाश करे ॥

चंदनादिकाढा ।

चंदनमधुकंद्राक्षांकटुकांसदुरालभाम् ।

चंदनादिर्गणःप्रोक्तोहन्यादाहज्वरारुचिः ॥

अर्थ-चंदन, मुलहटी, दाख, कुटकी और धमासा यह चंदनादि गण दाह, अरुचि और ज्वर इनका नाशकरे ॥

पर्पटादिकाढा ।

एकएवसलुपैत्तिकज्वरंहंतिपर्पटकृतः कपायकः ।

चंदनोदकमहोपधान्वितश्चेत्तदाकिमुपुनर्विचारणा ॥

अर्थ—केवल एकही पित्तपापडेका काढा पित्तज्वरको नष्ट करता है यदि उसमें ललाचदन, नेत्रवाला और सोंठ मिलायकर काढा कराजावे तो पित्तज्वर दूरकरे इसमें क्या संदेह है ॥

उदुंबररादिहिम ।

उदुंबरशिफाछिन्नातज्जलंसितयान्वितम् ।

पीतपित्तज्वरंहन्तिपटोल्यावाशिफाजलम् ॥

अर्थ—गूलरकी छालके पानीमें खांड मिलायकर पीनेसे अथवा पटोल पत्रकी जडका पानी खांडके साथ पीवे तो पित्तज्वरको नाशकरे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिकाक्वाथःससंपाकफलोविद्ध्यत् ।

प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोपतृष्णाण्वितोपित्तभवज्वरेच ॥

अर्थ—मुनक्का, (दाख) हरडजंगी, पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी और अमलतासका गूदा इनका काढा करके पीवे तो प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, शोप और तृषा इन करके युक्त जो पित्तज्वर उसका नाशकरे ॥

दुरालभादिकाढा ।

दुरालभापर्पटकप्रियंगुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम् ।

क्वाथपिवेच्छर्करयावगाढंतृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥

अर्थ—धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, चिरायता, अडूसा और कुटकी इनका काढा करके उसमें खांड डालके तृषा, रक्तपित्तज्वर और दाह इनकरके युक्त जो रोगी होवे उसको पीना चाहिये ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षापर्पटराजवृक्षकटुकासुस्ताभयानांजलं

मूर्च्छाशोपनिदाघतृप्प्रलपनभ्रांत्याढ्यपित्तज्वरे ।

दुस्पर्शप्रमदाकिरातकटुकासिहास्यरेणूद्रवः

क्वाथः शर्करयान्वितोहरतितृप्दाहाख्यापित्तज्वरान् ॥

अर्थ—मुनक्का (दाख), पित्तपापडा, अमलतासका गूदा, कुटकी, नागरमोथा और हरडकी छाल इनका काढा पीवे तो पित्तज्वरजनित जो मूर्च्छा शोप, दाह, प्यास, प्रलाप और भ्रांति इनका नाश होवे, जवासा, अतीस

चिरायता, कुटकी, अडूसेके पत्ते और पित्तपापडा इनका काढा करके उसमें मिश्री डालके पीवे तो तृषा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर इनका नाशहोवे ॥
छिन्नादिकाढा ।

अहोकिमर्थवहुभिः कषायैः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रदिष्टैः ।
छिन्नाशिवापर्षटतोयपानात्पित्तज्वरः किंनसरीसरीति ॥

अर्थ—पाराशरादि ऋषियोंने इतने काढे काहेके वास्ते कहे ? गिलोय, हरड और पित्तपापडा इनका काढा सेवन करनेसे क्या पित्त ज्वर नहीं जाता है ? ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाचंदनपद्मानिमुस्तातिक्तामृतापिच । धात्रीवा
लमुशीरंचलोध्रेन्द्रयवपर्षटाः ॥ परूपकंप्रियंगुश्चयवा
सोवासकस्तथा । मधुकंकुलकंचापिकिरातोधान्यक
स्तथा ॥ एपांकाथोनिदंत्येवज्वरंपित्तसमुत्थितम् ॥ तृष्णां-
दाहप्रलापंचरक्तपित्तंभ्रमंकुमम् ॥ मूर्च्छांछर्दितथाशूलं
मुखशोपमरोचकम् । कासंश्वासंचहृष्टासंनाशयेन्नात्रसंशयः ॥

अर्थ—दाख, लालचंदन, कमलगट्टकी भिंगी, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, नेत्रवाला, खस, लोध, इन्द्रजों, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगु, धमासा, अडूसा, मुलहठी, पटोलपत्र, चिरायता और धनियाँ इनका काढा लेनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोप, अरुचि, खांसी, प्यास, मुखसे पानी गिरना इन सबका नाश निस्संदेहकरे ॥

ससितादिकाढा ।

ससितोनिशिपर्युपितः प्रातर्धान्याकतंहुलकाथः ।
पीतः शमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंपैत्तम् ॥

अर्थ—धनियाँ और चावलको रात्रिमें धरे मटकनेमें भिंगोदे और प्रातःकाल काथकर उसमें खांड मिलाय पीवे तो अंतर्दाह तथा पित्तज्वरको दूरकरे ॥

मुद्गादिकाढा ।

मुद्गानामंजलिचूर्णैयष्टीमधुकसाधितम् ।

पाक्यंशीतकपायंवापिवेत्पित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ-मुलहठी और मूंगका आठ तोले चूर्णका काढा कर और शीतल पीवे तो पित्तज्वरका नाशहो ॥

द्वीधेरादिकाढा ।

द्वीधेरंमुस्तकंधान्यंचंदनंयष्टिकामृता । वृषोशीरयुतः

क्वाथः शर्करामधुसंयुतः ॥ रक्तपित्तंजयत्युग्रंतृष्णादाह-

ज्वरापहः ॥

अर्थ-नेत्रवाला, नागरमोथा, धनियां, लालचंदन, मुलहठी, गिलोय, अडूसा और खस इनके काढेमे खांड और शहत मिलाय पीनेसे रक्तपित्त, तृष्णा, दाह और नित्तज्वरको दूरकरे ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तायासकभूनिवश्यामापर्षट्वासकैः ।

सृतंजलंसितायुक्तंरक्तपित्तज्वरंजयेत् ॥

अर्थ-कुटकी, धमासा, चिरायता, पीपल, गिलोय, पित्तपापडा और अडूसा इनका काढा मिश्री मिलाय पीनेसे रक्तपित्त और ज्वरको जीते ॥

पथ्यादिकाढा ।

पथ्यांतैलघृतक्षौद्रैर्लिहेदाहज्वरापहम् ।

कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासंहंतिवमिमपि ॥

अर्थ-हरडका चूर्ण, तेल अथवा घी अथवा शहतके साथ चाटेतो दाह, ज्वर, खांसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन इनका नाशकरे ॥

आम्रादिफांट ।

आम्रजंबूकिसलयैर्वटशृंगप्ररोहकैः । उशरिणकृतःफांटः

सक्षौद्रोज्वरनाशनः ॥ पिपासाच्छर्द्यतीसारान्मूच्छांजय-

तिदुस्तराम् ॥

अर्थ-आम तथा जामुन इनके फौमल पत्ते तथा बडकी फौमल पत्ती

तथा तत्काल निकले हुये पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंको पूर्वरीतिसे फांटकर पीनेसे ज्वर, प्यास, वमन, अतिसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छा ये दूरहों ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीपद्मलोध्राणांसारिवोत्पलयोस्तथा ।

शर्करामधुरःकाथःपीतःपित्तज्वरापहः ॥

अर्थ—गिलोय, पन्नाख, लोध, सरवन और कमलगट्टा इनका काढा शीतल कर मिश्री मिलाय पीनेसे पित्तज्वरको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवनिकाथोमधुनामधुरीकृतः ।

तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दापानात्तृडदाहनाशनः ॥

अर्थ—पटोलपत्र और जों इनका काढाकर उसमें शहत मिलाय शीतलकर पीवे तो तीव्रपित्त ज्वर, तृषा, दाह इनका नाश करे ॥

केसरमातुलिंगादियोग ।

जिह्वातालुगलक्लोमशोपेसूर्ध्विचदापयेत् ।

केसरमातुलिंगस्यमधुसंधवसंयुतम् ॥

अर्थ—जीभ, तालू; गला, क्लोम (तृषा लगनेका स्थान) और मस्तक इनमें शोष होनेसे विजोरेकी केशर, शहत और सेंधानिमक, मिलायकर मालिशकरे ॥

दूसराप्रकार ।

केसरमातुलिंगस्यमधुसंधवसंयुतम् । हरीतकीप्रियंगुश्च
पिप्पलीलोध्रमेवच ॥ दार्वीहरिद्रातेजोह्वासक्षौद्रंमुखधा-
वनम् । एतेनकटुभावश्चमुखरोगश्चशाम्यति ॥ वक्रंवि-
शदतामेतिभक्तछंदश्चजायते । मुद्गयूपोदनोदेयः सित-
यापैतिकेज्वरे ॥

अर्थ—विजोरेकी केशर, शहत और सेंधानिमक इनका अथवा हरड, प्रियंगु, पीपल, लोध, दासुहलदी, हलदी, तेजवल इनका चूर्ण शहतसे मिलाय जलमें डाल कुरला करे तो मुखकी कटुता तथा मुखरोग, शांत होय और मुख स्वच्छहो रुचि होयहै; उसरोगीको मूंगका यूप और भात तथा घृता मिलाय पच्य देवे ॥

रसपर्पटी ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं मर्द्यं भृंगीरसैः क्षणम् । पाचयेच्छोहपात्र-
स्थं चालयंतु चुटकेन च ॥ लोहभस्माथवा ताम्रं पादांशेन वि-
निक्षिपेत् । पाच्यं प्रचालयेन्नैव यामार्धं मृदुवह्निना ॥
तत्क्षिपेत्कदलीपत्रे गोमयस्योपरि स्थिते । तत्पत्रंधार-
येदूर्ध्वं तदूर्ध्वं गोमयं क्षिपेत् ॥ ततः संचूर्णयेत्खल्वेनिर्गु-
ह्याभावयेद्दिनम् । जयंती त्रिफला कन्या वासा भार्ङ्गी-
कटुत्रयैः ॥ भृंग्यग्निमुनिमुंडीभिर्भावयेत्प्रत्यहं पृथक् ।
आर्द्रकस्य द्रवैः पश्चाद्भावयेद्दिनसप्तकम् ॥ अंगारैः स्वेद-
येत्पश्चात्पपञ्चारुयोमहारसः । चतुर्गुणामितो देयः स-
म्यक्श्लेष्माधिके ज्वरे ॥ वासाशुंठीभयाक्वाथमनुपानं प्र-
कल्पयेत् । चव्यकस्वरसैर्वाथपेयं श्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग इनकी कजली करके
भांगरेके रसकी भावनादे फिर उसको मंदाग्निवाले चूल्हेपर लोहेके पात्रमें
धीरे २ हिलाता हुआ पचन करावे, पीछे ताम्र तथा लोह की भस्म
चतुर्थांश डाल फिर चार घडी बिना हिलाए मंदाग्निपर पचन करावे
जब पतला होकर सब एक रस हो जाय तब केलके पत्तेपर उलट देवे
और दूसरा पत्ता ढककर दाहिदेवे जब शीतल होजावे तब खरलमें
घोट सल्लालूके रसकी ३ पुटदेवे फिर जयंती, त्रिफला, धीकुवार, अडूसा,
भारंगी, त्रिकुटा, भांगरा, चीता, अगस्तिया और मुंडी इनके रसकी
प्रहर २ तक भावनादेवे फिर अदरकके रसकी सातदिन भावनादेवे
और अंगारोंके ऊपर भूने यह पर्पटी रस ४ रत्नी अडूसा, साँठ तथा हरद
इनके काढ़ेसे अथवा चव्यके रससे देवे तो कफज्वरको हरण करे ॥

उत्तानसुप्तयोग ।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ ।

शीतांबुधारा बहुलापतंतीनिहंति दाहं ज्वरितज्वरंच ॥

अर्थ—ज्वरवाले मनुष्यको चित्त सुलाय उसकी नाभी (तोंदी) पर ता-

मेका अथवा फासिका औंधा पात्र धर उसमें शीतल जलकी बडी धार डाले तो दाहज्वरको तत्काल नाश करे ॥

औदुंबरादियोग ।

औदुंबरस्यनिर्यासःसितयादाहनाशनः ।

छिन्नासारःसितायुक्तःपित्तज्वरनिषूदनः ॥

अर्थ—गूलरका गोंद खांड मिलायकर लेवे तो दाहको नाश करे और गिलोयका सत्व खांड मिलाय कर ले यह पित्तज्वरनाशक है ॥

धर्म ।

अथगोतक्रसंसिक्तशीतलीकृतवाससा ।

कांजिकार्द्रपटेनावगुंठनंदाहनाशनम् ॥

अर्थ—गौकी छालमें किंवा कांजीमें वस्त्र भिगोय उस वस्त्रसे रोगीको उढावे तो दाह नष्ट हो ॥

द्राक्षादिकल्क ।

द्राक्षामलककल्केनकवलोत्रहितोमतः ।

पक्वदाडिमजैर्वाथधानाकल्केनचक्वचित् ॥

अर्थ—दाख और आमले इनके कल्कका अथवा पके हुए अनारका अथवा धनियेका हिम करके मुखमें कवल देवे तो हित है ॥

मुद्गयूप ।

दाहवम्यर्दितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितम् ।

शर्करामधुसंयुक्तंपाययेल्लजतर्पणम् ॥

मुद्गयूपौदनोदेयः सितयापैत्तिकेज्वरे ॥

अर्थ—यदि दाह और वमन इनसे पीडित कृपकृच्छ्र खाय नहीं प्यास अधिक लगे उसको चावलोंका मंड मिश्री और शहत डालके देवे और मूंगका यूप भात और खांड ये पदार्थ भक्षणार्थ देवे तो पित्तज्वर शांति हो ॥

अमृतादिहिम ।

अमृतायाहिमःप्रातःससितःपैत्तिकंज्वरम् ।

वासायाश्चतथाकासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥

अर्थ—गिलोयको रात्रिमें कूट पानीमें भिगोदेवे प्रातःकाल 'उस पानीको छान मिश्री मिलायके पीवे तो पित्तज्वरनाशक है, इसी प्रकार अडूसाके हिम खांसी, रक्त, पित्तज्वर इनका नाशक है ॥

कफज्वरकेलक्षण ।

स्तैमित्यंस्तिमितोवेगआलस्यंमधुरास्यता। शुक्लमूत्रपु-
रीपत्वक्स्तंभस्तृप्तिरथापिवा ॥ नात्युष्णगात्रताछर्दिरं-
गसादोविपाकता । गौरवंशीतमुत्केदोरोमहर्षोतिनि-
द्रता ॥ प्रतिश्यायोरुचिःकासः कफजेक्ष्णोश्चशुक्लता ॥

अर्थ—स्तैमित्य (गीले कपडेसे देहको आच्छादित कर देनेसे जैसा हो ऐसा मालूमहो) ज्वरका मंदवेग, आलस्य, मुख भीठा, मलमूत्र, सफेद, देहका जकडना, तृप्तसरीखा, अन्नमें अरुचि, पेट भरासारहे, देह-
बहुत गरम नहोवे, अंगरहजावे, देहभारी शीतल, शीतलगे, ओकारी आवे * अन्य आचार्य कहतेहैं कि, कफका थूकना, रोमांचका होना अतिनिद्रा, रसके बहनेवाली नाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोडा उतरना, पसीना, मुखमें नोनकासा सवाद, देहका थोडा गरमहोना, रक्का होना, लारका गिरना, मुखपाक तथा मुखनाकमे कफका पडना, अरुचि, खांसी, नेत्र श्वेतहो ये लक्षण कफज्वरमे होते है " स्तंभस्तृप्तिरथापि च " इस पदमे जो चकार है उससे देहमे पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना, वमन, तंत्रिकरोग, हृदयल्हिसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादि जानने ॥

कलिंगादिचूर्ण ।

कलिंगरोहिणीनिशाकटुत्रिकेभकेसरम् ।

विचूर्णितंकफज्वरेनिहंतिकोष्णवारिणा ॥

अर्थ—इन्द्रजो, कुटकी, हलदी, नागकेशर और त्रिकटु इनका चूर्ण गरम जलसे लेवे तो कफज्वर दूरहो ॥

शृंग्यादिअवलेह ।

शृंगीकणाकटुफलपौष्कराणांक्षौद्रान्वितानांविहितोवलेहः ।

श्वसेनकासेनयुतं वलासंज्वरं जयेदत्र नकापिशंका ॥

अर्थ—काकडासिंगी, पीपल, कायफर, पोहकरमूल इनका अवलेह शहत मिलायकर देवे तो श्वास, खांसीयुक्तकफ और ज्वरको दूर करे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥

सिंधुकवल ।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकैफेहितः ॥ कवलइतिशेषः ॥

अर्थ—सैंधानिमक, त्रिकुटा, राई और अदरख इनको एकत्र पीस उसकी कवल करके मुखमें धारण करे यह कवल कफपर प्रशस्त है ॥

मुद्गयूप ।

मुद्गयूपौदनोदेयो ज्वरे कफसमुत्थिते ॥

अर्थ—कफज्वरमें मूंगका यूप और भात पथ्यदेना चाहिये ॥

त्रिफलादिचूर्ण ।

लिहञ्ज्वरार्तस्त्रिफलापिप्पलीचसमाक्षिकाम् ।

कासेश्वासेचमधुना सर्पिपाचसुखी भवेत् ॥

अर्थ—कफज्वरवाले रोगीको त्रिफला तथा पीपलका चूर्ण शहतसे देवे और खांसी तथा श्वास पर वही चूर्ण शहत और घृतके साथ देवे ॥

अजाजियोग ।

अजाजिशर्करायुक्तो दाडिमस्वरसेनतु ।

रुचिष्यो मधुना युक्तः कर्तव्यः कवलग्रहः ॥

मुद्गयूपौदनश्चापि देयः कफसमुत्थिते ॥

अर्थ—जीरा और खांड अथवा अनारकारस तथा शहत ये रुचिकारी हैं इनको मुखमें धारण करे और मूंगभात पथ्य देवे ॥

चंदनादिकाढा ।

चंदनं च सुगंधं च वालकोशीरपर्पटाः ।

मुस्ताशुंठीसमायुक्तः पित्तज्वरनिपूदनाः ॥

अर्थ—लालचंदन, रोहिपतृण, नेत्रवाला, पित्तपापडा, नागरमोथा और सोंठ इनका फाटा पित्तज्वरनाशक है ॥

शतधौतघृत ।

शतधौतघृतस्यलेपतोदवथुर्नाशमुपैतितत्क्षणात् ।

अथवापिचुमंदपत्रजस्वरसप्रोत्थितफेनलेपतः ॥

अर्थ-सौवार धुलेहुए पीको शरीरमें लगानेसे अथवा नीमका रस फेन-युक्त करके अंगोंमें लेप करनेसे दाह शांति होता है ॥

पलाशादिलेप ।

पलाशस्यवदर्यावानिवस्यमृदुपल्लवैः ।

अम्लपिष्टैःप्रलेपोयंहन्याद्दाहयुतंज्वरम् ॥

अर्थ-ढाककी, बेरकी किंवा नींबूके फोमलपत्ते छॉछमें अथवा नींबूके रसमें पीस लेप करे तो दाहयुक्त ज्वर दूर हो ॥

नीरदादिपाचन ।

नीरदविश्वदुरालभवासासाधितमंबुहिपाचनमेवम् ।

पेयमिदंज्वरएवकफाख्येश्वासकासघनशूलहरंच ॥

अर्थ-नागरमोथा, सोंठ, धमासा, अदूसा इनका काठा पाचक होकर ज्वरनाशक, श्वास, खाँसी, शूल, कफज्वर इनका नाश करे ॥

पिप्पल्यादिपाचन ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंमरिचंगजपिप्पली । नागरंचित्रकं-

चव्यरेणुकाचाजमोदिका ॥ सर्पपौर्हिगुभांगीचपाठेंद्रय-

वजीरकामहानिवश्वमूर्वाचविपातिकाविडंगकाः॥पिप्प-

ल्यादिगणोह्येष कफवातातिनाशनः ॥ गुल्मशूलज्वर-

हरोदीपनश्चामपाचनः ॥

अर्थ-पीपर, पीपरामूल, कालीमिरच, गजपीपर, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुकाबीज, अजमोद, सरसो, हींग, भारंगी, पाठ, इन्द्रजो, जीरा, वका-यन, मूर्वा, अतीस, कुटकी, वापविडंग यह पिप्पलादिगण कफ और वादी-को दूर करे गोला, शूल, ज्वरको हरण करे तथा दीपन और आमको पचावे ॥

क्षौद्रादिकाटा ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगःश्वासकासज्वरापहः ।

प्लीहानंहतिहिक्रांचवालानामपिशस्यते ॥

अर्थ—पीपर और शहतका योग, खांसी, श्वास, ज्वर, प्लीहा, हिचकी इनका नाश करनेवाला है और बालकोंको उत्तम है ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

पिप्पलीत्रिफलांचापिसमभागांज्वरीलिहन् ।

मधुनासर्पिपावापिकासीश्वासीसुखीभवेत् ॥

अर्थ—पीपर, त्रिफला ये समान भागले वा शहत घृतके साथ चाटे तो खांसी, श्वास और ज्वर दूर हो ॥

कट्फलादिलेह ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीकृष्णाचमधुनासह ।

कासश्वासज्वरहरोलेहोयंकफनाशनः ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी और पीपर इनका चूर्ण शहत के साथ खाय तो श्वास, खांसी, ज्वर और कफको नाशकरे ॥

कट्फलादिचूर्ण ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीयवानीकारवीतथा । कटुत्रयंचसर्वा-
णिसमभागानिचूर्णयेत् ॥ आर्द्रकस्वरसैर्लिह्यान्मधुनावा-
कफज्वरी । कासश्वासारुचिच्छर्दीश्लेष्मानिलनिवृत्तये ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, अजवायन, अजमोद, त्रिकुटा इनका चूर्ण अदरखके रससे अथवा शहतके साथ देवे तो खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, शर्दी, वायु, कफज्वर इनका नाश करे ॥

निर्गुड्यादिकाढा ।

सिंदुवारदलकाथंकणाढ्यंकफजेज्वरे ।

जंघयोश्चत्रलेक्षीणेकर्णेचपिहितेपिबेत् ॥

अर्थ—कफज्वर तथा जाँघोंकी निर्बलता और कानोंका बंद हो जाना इनपर सम्हालूके पत्तोंका काढा पीपलका चूर्ण ढालके पीवे ॥

यवान्यादिकाढा ।

यवानीपिप्पलीवासातथाखरखसवलकलाम् ।

एपांक्राथंपिवेत्कासेश्वासेचकफजेज्वरे ॥

अर्थ-अजवायन, पीपल, अडूसा और खसखसके डोडे इनका काढा पीनेसे खांसी, श्वास तथा कफज्वर इनका नाश होय ॥

वासादिकाढा ।

वासाक्षुद्रामृताक्राथःक्षौद्रेणज्वरकासहृत् ॥

अर्थ-अडूसा, कटेरी, गिलोय इनका काढा शहतके साथ पीनेसे कफज्वर और खांसीको दूर करे ॥

निंवादिकाढा ।

निंविश्वामृताभीरुयासभूनिंवपौष्करम् ।

पिप्पल्योवृहतीचेतिक्राथोहंतिकफज्वरे ॥

अर्थ-नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, शतावर, जवासा, चिरायता पोहकरमूल, पीपर और कटेरीकी जड इनका काढा कफज्वरकोनाशकरे ॥

मरीच्यादिकाढा ।

मरीचंपिप्पलीमूलंनागरंकारवीकणा ।

चित्रकंकटूफलंकुष्ठंसुगंधिवचाशिवा ॥

कंटकारीजटाशृंगीयवानीपिचुमंदकः ।

एपांक्राथोहरत्येवज्वरंसोपद्रवंकफात् ॥

अर्थ-कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, सौफ, पीपल, चीता, कायफल कूठ, निर्गुडी, वच, हरड, कटेरीकी जड, जटामांसी, काकडासिगी, अजवायन और नीमकी छाल इनका काढा उपद्रव सहित कफज्वरका नाश करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा ।

निदिग्धिकाच्छिन्नरुहोपकुल्याविश्वौषधैःसाधितमंबुपीतम् ।

हंतिज्वरंश्वासबलासकासशूलाग्निमाद्यंजठरानिलंच ॥

अर्थ-कटेरीकी जड, गिलोय, पीपल और सोंठ इनका काढा ज्वर, श्वास, कफ, खांसी, शूल, मंदाग्नि इनको दूरकरे ॥

भांग्यादिकाढा ।

भांगीगुडूचीघनदारुसिंहोशुंठीकणापुष्करजःकषायः ।

ज्वरनिहंतिश्वसनंक्षिणोतिक्षुधां करोति प्ररुचिंतनोति ॥

अर्थ-भांगी, गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, कटेरी, सोंठ, पीपल और पीहकरमूल इनका काढा ज्वर और श्वासकी नष्टकरे एवं क्षुधाकरे अन्नमें रुचि प्रगटकरे है ॥

मातुलिंगादिकाढा ।

मातुलिंगशिफाविश्ववयस्थाग्रंथिकोद्भवम् ।

कफज्वरेपुसक्षारंपाचनंवाकणादिकम् ॥

अर्थ-विजोरेकी जड, सोंठ, गिलोय, पीपरामूल इनके काढेमें जवा-
खार अथवा पीपर डालके पीवे तो कफज्वर दूर हो तथा पाचन हो ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलात्रिवृतामुस्तंकटुकंसकलिंगकम् ॥

पटोलारग्वधंचैवरोहिणीचित्रकंसम ॥

काथःक्षौद्रयुतःश्लेष्मज्वरकासगतामये ॥

अर्थ-त्रिफला, निसोथ, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजों, पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चीता ये समभागले काढाकर शहत डालके पीवे तो कफज्वर, खांसी तथा कंठरोग दूर होंगे ॥

पिप्पल्यादिगण ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् । मरीचैलाजमो

देंद्रपाठारेणुकजीरकम् ॥ भाङ्गीमहानिवफलंहिंगुरोहिणि-

सर्पपम् । विडंगातिविषामूर्वागणोयंकफनाशनः ॥

अर्थ-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिरच, छोटी-
इलायची, अजमोद, इन्द्रजों, पाठ, रेणुका, जीरा, भांगी, वकायनके
फल, हींग, कुटकी, सरसों, वायविडंग, अतीस और मूर्वा यह औषधों-
का गण कफनाशक है अतएव कफज्वरपर इसका काढा देवे ॥

पंचकोलं ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् ।

पंचकोलमिदं प्रोक्तं शोधनं कफनाशनम् ॥

अर्थ—पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ यह पंचकोल शोधन तथा कफनाशक है ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलत्रिफलातिकासठीवासामृताभवः ।

काथोमधुयुतः पीतोहन्यात्कफकृतं ज्वरम् ॥

अर्थ—पटोलपत्र, त्रिफला, कुटकी, कचूर, अहूसा और गिलोय इनका काथ सहकके साथ पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

बीजपूरादिकाढा ।

बीजपूरशिवापथ्यानाग्रग्रंथिकैः शृतम् ।

सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ॥

अर्थ—विजोरेकी जड़, छोटीहरड, सोंठ और पीपरामूल इन औषधोंका काढा कर उसमें जवाखार मिलाय बारहवेदिन कफज्वर पर पाचन देवेतो कफज्वर दूर होय ॥

भूनिंबादिकाढा ।

भूनिंबनिंबपिप्पल्यः सठीशुंठीशतावरी ।

गुडूचीवृहतीचेतिक्वाथोहन्यात्कफज्वरम् ॥

अर्थ—चिरायता, नीमकी छाल, पीपल, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय और कटेरी इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

कटुक्यादिकाढा ।

कटुकीचित्रकंनिंबहरिद्रातिषिपंवचा ।

सप्तपण्यमृतानिंबस्तुह्यकैः साधितं जलम् ॥

पेयं माक्षिकसंयुक्तं बलासज्वरशांतये ॥

अर्थ—कुटकी, चीतिकीछाल, नीमकीछाल, हलदी, अतीस, वच, सतोनाकी छाल, गिलोय, चिरायता, पृहर और आक इनके काढेमें शहत मिला कर पीवेतो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिकंटकादिकाढा ।

त्रिकंटकवलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।

वर्चोमूत्रविबंधघ्नकफज्वरहरंपयः ॥

अर्थ-गोखरू, गंगेरन, कटेरी, गुड और सोंठ इनका काढा मलम्-त्रके रुकनेको और कफज्वरको दूर करे, परंतु इसकाढेमें औषधोंसे अठ गुना दूध और दूधसे चौगुना पानी डालके औंटावे ॥

कुष्ठादिकाढा ।

कुष्ठमिंद्रयवमूर्वापटोलेनापिसाधितम् ।

पिवेन्मरीचसंयुक्तसक्षौद्रकफजेज्वरे ॥

अर्थ-कूठ, इन्द्रजों, मूर्वा, पटोलपत्र इनका काढा शहत और काली मिरच डालके पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलापटोलवासाछिन्नरुवारोहिणिविचाशुंठी ।

मधुनाश्लेष्मसमुत्थदशमूलीवासकस्यचक्राथः ॥

अर्थ-हरड, बहेडा, आमला, पटोलपत्र, अडूसा, गिलोय, कुटफी, वच और सोंठ इनका अथवा दशमूल और अडूसेका काढा शहतके साथ कफज्वरपर देवे ॥

सप्तच्छदादिकाढा ।

सप्तच्छदगुडूचीचनिंबल्फूर्जकमेवच ।

क्वाथंकृत्वापिवेत्तोयंसक्षौद्रकफजेज्वरे ॥

अर्थ-सतोना, गिलोय, नींबकीछाल और स्फूर्जक इनका काढा शहतके साथ पीवे तो कफज्वर दूर होय ॥

आमलक्यादिकाढा ।

आमलक्यभयाकृष्णाचित्रकश्चेत्ययंगणः ।

सर्वज्वरकफातंकेभेदीदीपनपाचनः ॥

अर्थ-आमले, हरडकी छाल, पीपल और चित्रक यह औषधोंका गण सर्व ज्वर और कफके रोगोंको दीपन और पाचन कर्ता है ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तानिवविषाव्योपशक्राह्वाभिःसूतंजलम् ।

पिवेत्कफज्वरंहंतिहिक्काकाससमन्वितम् ॥

अर्थ-कुटकी, नीमकी छाल, अतीस, त्रिकुटा, इन्द्रजों और नेत्रवाला इनका काढा हिचकी और खांसी युक्त कफज्वरको दूर करे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तंमधुकवीजानित्रिफलाकटुरोहिणी ।

परूपकाणिचक्राथःकफज्वरविनाशनः ॥

अर्थ-नारगमोथा, महुआकेबीज, त्रिफाला, कुटकी और फालसे इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

चपलादिकाढा ।

चपलाचपलापदनागरिकाचवकानलसंजनितंसलिलम् ।

कसनेश्वसनेहृदयोल्लसनेकफजूर्तिगदेप्रापिवेचपुदे ॥

अर्थ-पीपल, गजपीपल, सोंठ, चव्य, चीतेकी छाल इनका काढा श्वास, खांसी, हल्लास इत्यादि रोगयुक्त कफज्वर दूर हो ॥

पिचुमंदादिकाढा ।

पिचुमंदमहौपधान्वितावृहतीपौष्करतित्तकंसठी ।

वृषकट्फलकंकणावरीकथितंवारिकफज्वरंजयेत् ॥

अर्थ-नीमकीछाल, सोंठ, कटेरीकी जड, पोहकरमूल, चिरायता, कनूर, अडूसा, कायफर, पीपल और शतावर इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

वासादिकाढा ।

वासाविशालादशमूलगौरीमहौपधंपुष्करभार्गियुक्ता ।

एपांकपायोविनिहंतिकासंकफज्वरंशूलनिवर्त्तनंच ॥

अर्थ-अडूसा, इन्द्रायणकागूदा, दशमूल, तुलसी, सोंठ, पोहकरमूल और भारंगी इनका काढा कास और कफज्वर तथा शूल इनका नाश करे ॥

कंटकार्यादिकाढा ।

कंटकार्यमृतादारुवृषविश्वामाश्रितः ।

क्वाथःकणारजोयुक्तःसद्यःश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-कटेरी, लिंगोय, देवदारु, अडूसा, सोंठ इनका काढा पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तो तत्काल कफज्वर दूर हो ॥

कणादिकाढा ।

कणाविश्वामृतादारुकिरातैरंडमूलकः ।

निवर्णपांकृतःक्वाथःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-पीपल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, चिरायता अंडकी जड़ और नीमकी छाल इनका काढा पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तादुरालभाशुंठीक्वाथेषांसमांशतः ।

हंतिश्लेष्मज्वरं तत्रिनिपीतःपथ्यभोजने ॥

अर्थ-नागरमोथा, धमासा, बराबर ले काढाकरके पीवे और पथ्यसे रहे तो तीव्र कफज्वर दूर हो ॥

वातपित्तज्वरलक्षण ।

तृष्णामूर्च्छाभ्रमोदाहःस्वप्ननाशःशिरोरुजः ।

कंठास्यशोषोवमथूरोमहर्षोरुचिस्तमः ॥

पर्वभेदश्चजृम्भाचवातपित्तज्वराकृति ॥

अर्थ-प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, फंठ, मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण है ॥

नीलोत्पलादिहिम ।

नीलोत्पलंबलाद्राक्षामधुकंमधुकंतथा । लशीरंपद्मकंचै-

वकाश्मरीचपरूपकम् ॥ एतच्छीतकपायश्चवातपित्त-

ज्वरं हरेत् । विप्रलापभ्रमच्छर्दीमोहत्ृष्णानिवारणः ॥

अर्थ-नीलमूल, गगेरन, दास, मुलहटी, महुआ, खस, पद्मास,

कंभारी और फालसे इन औषधोका पूर्वरीतिसे हिमकरके पीवे तो वात-पित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मोह और तृष्णा इनको दूर करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा ।

निदिग्धिकामृतारास्रात्रायमाणामृतायुतः ।

मसूरविदलकाथोवातपित्तज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, रास्ना, त्रायमाण, हरड और मसूरकीदाल इनका काढा वात पित्तज्वरको दूर करे ॥

विश्वादिकाढा ।

विश्वामृताब्दभूर्निवपंचमूलसमन्वितः ।

कृतःकषायोहंत्याशुवातपित्तभवंज्वरम् ॥

अर्थ—सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, पंचमूल इनका काढा तत्काल वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

नीलोत्पलादिकाढा ।

नीलोत्पलमुशीराणिपद्मकामलकानिच । काश्मीरमधुक-

द्राक्षामधूकानिपरूपकान् ॥ पिवेच्छीतंकषायंचवानपि-

त्तज्वरापहम् । संप्रलापंचसंमोहंशमयेत्पैत्तिकंज्वरम् ॥

अर्थ—नीलकमल, खस, पद्माख, आमले, कंभारी, मुलहदी, दाख, महुआके फूल और फालसे इनके काढेको शीतलकर पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, मोह और पित्तज्वर इनको शमन करे ॥

आरग्वधादिकाढा ।

आरग्वधफलंमुस्तंयष्टीमधुकमेवच । उशीरमभयाचैव-

हरिद्रादारुसाह्वया ॥ पटोलंपिचुमदंचअमृताकटुरोहि-

णी । एषांपीतःकषायःस्याद्वातपित्तभवेज्वरे ॥

अर्थ—अमलतासका गृदा, नागरमोथा, मुलहदी, महुआके फूल, खस, हरड, हलदी, देवदारु, पटोलपत्र, नीमकी छाल, गिलोय और कुटकी इनका काढा वातपित्तज्वरको शांतकरे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाकिरातामृतवासकासठीक्रार्थपिवेत्पित्तमरुज्वरं हरेत् ॥

अर्थ—दाख, चिरायता, गिलोय, अडूसा और कचूर इनका काढा पीवे तो वातपित्तज्वर दूर हो ॥

पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूल्यमृतामुस्ताविश्वाम्भूनिवसाधितः ।

कपायः श्मयत्याशुवायुमायुभवंज्वरम् ॥

अर्थ—पंचमूल, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इनका काढा वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

मुद्गादियूप ।

मुद्गामलकयूपस्तुवातपित्तज्वरेहितः ।

महादाहेप्रदातव्योयूपश्चणकसंभवः ॥

दाडिमामलकमुद्गसंभवोयूपउक्तइहवातपैतिके ॥

अर्थ—मूंग और आमलेका यूप वातपित्तज्वरमें हित है । अत्यंत दाहमें चनेका यूप देना चाहिये और अनारदाने, आमले तथा मूंगका यूप वातपित्तमें देना ॥

मुद्गादियोग ।

कफपित्तहरामुद्गाकारवेलादयस्तथा । प्रायेणनचतेदेया-

वातपित्तोत्तरेज्वरे ॥ दत्तास्तुज्वरविष्टंभशूलोदावर्तकारिणः ॥

अर्थ—वातपित्तज्वरपर मूंग तथा करेले इत्यादि न देवे, ये कफपित्त-हारक है इनके देनेसे ज्वर, मलावष्टंभ, शूल तथा उदावर्त होता है ॥

मधुकादिकपाय ।

मधुकंसारिवाद्राक्षामधुकंचंदनोत्पलम् ।

काश्मरीफलकंलोभ्रंत्रिफलापद्मकेसरम् ॥

परूपकंमृणालंचक्षिपेत्संचूर्ण्यवारिणा । निशोपितांसित-

क्षौद्रलाजयुक्तं तु तत्पिबेत् ॥ वातपित्तज्वरंदाहंतृष्णामू-

च्छारुचिभ्रमान् । श्मयेद्रक्तपित्तंचजीमूतमिवमारुतः ॥

अर्थ—मुलहठी, सारिवा, दाख, महुआके फूल, लालचदन, कमलगट्टा, कंभारी, लोध, त्रिफला, कूठ, नागकेशर, फालसे और भसींडे कि, जिनको कमलकी जड कहते हैं इनका काढा खाँड और शहद तथा खील मिलायकर देवे तो वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम तथा रक्तपित्त इनको शमन करे इसमें दृष्टांत है कि जैसे बादलोंको पवन दूर करता है ॥

पचभद्रकषाय ।

छिन्नोद्भवापर्पटवारिवाहभूनिवशुंठीजनितःकषायः ।

समीरपित्तज्वरजर्जराणां करोति भद्रं खलु पंचभद्रः ॥

अर्थ—गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोठ इनका काढा वात पित्तज्वरको नाश करे इस कषायको पचभद्र कहते हैं ॥

दुरालभादिकषाय ।

दुरालभामृताधनोजलंचरोहिणरिजो ।

ज्वरंचवातपित्तजनिहंत्यसौकषायकः ॥

अर्थ—धमासा, गिलोय, नागरमोथा, नेत्रवाला, कुटकी और पित्तपापडा इनका काढा वातपित्तज्वरका नाश करता है ॥

भूनिंबादिकषाय ।

भूनिवतिक्ताजलचंदनंचधानेयपथ्यादशमूलसंघाः ।

ह्रीविरविश्वाकरमर्दकाचएपांश्रुतांपित्तमरुज्वरेष्टम् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, नेत्रवाला, लालचदन, धनियाँ, हरड, दशमूल, खस, सोठ और कमरख इनका काढा वातपित्तज्वर पर हितकारी है ॥

त्रिफलादिकषाय ।

त्रिफलाशाल्मलीरास्त्राराजवृक्षाढरूपकैः ।

शृतमंबुहरत्याशुवातपित्तभवंज्वरम् ॥

अर्थ—त्रिफला, सेमरका मूसला, रास्ना, अमलतासका गूदा और अडूसा इनका काढा वातपित्तज्वरका नाश करे ॥

मधुकादिफाट ।

मधुपुष्पमधूकंचचंदनंसपरूपकम् । मृणालंकमललोध्रं

कंभारीनागकेसरम् ॥ त्रिफलासारिवाद्राक्षालाजान्कोष्णे
जलेक्षिपेत् । सितामधुयुतःपेयःफांटोवासोहिमोथवा ॥
वातपित्तज्वरंदाहंतृषामूच्छरत्तिभ्रमान् । रक्तपित्तमदं
हन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ—महुआके फूल, मुलहठी, लालचंदन फालसे, कमलकीजड, कमल
गट्टा, लोध्र कंभारी, नागकेशर, त्रिफला, सरिवन, दाख और खील, इनका
फांटकरके खांडसे अथवा शहदसे देवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास,
अरुचि, भ्रम, रक्तपित्त और मद ये दूरहों अथवा पाच औषधोंका
हिम करकेलेवे तो उक्तगुण करे ॥

द्राक्षादिकाठा ।

द्राक्षाकिरातकंधात्रीकंपूरामृतवल्लरी ।

काथएपांगुडयुतःपीतोद्वंद्वज्वरोगहृत् ॥

अर्थ—दाख, चिरायता, आमले, कपूर और गिलोय, इनका काठा
गुडामिलाके पीवे तो द्वंद्वज्वरका नाश करे ॥

व्याघ्र्यादिकाठा ।

व्याघ्रीभाङ्गीसिंहवक्राचरास्रादुस्पर्शपाशाल्मलीराजवृक्षः
तद्वज्ज्येयत्रैफलंकाथएपांशस्तः कासेवातपित्तज्वरेच ॥

अर्थ—फटेरी, भारंगी, अडूसा, रास्ता, धमासा, सेमर, अमलतास
और त्रिफला इनका काठा वातपित्तज्वरपर हितकारी है ॥

मुस्तादिकाठा ।

जलदधान्यकिरातगुडूचिकानियमनंकटुकीचपटोलिका ।

क्वथितमेभिरिदंतुजलंहरत्पवनपित्तभवंज्वरमुन्नतम् ॥

अर्थ—नागरमोषा, धनियाँ, चिरायता, गिलोय, नीम, कुटकी और
पटोलपत्र इनका काठा वातपित्तज्वरनाशक है ॥

बलादिकाठा ।

बलामृतैरंडजलाब्दपद्मकभांगीकणोशीरयुतैः सचंदनैः ।

संकाथ्यतोयंकफपित्तज्वरप्रणाशनंवाह्निविवृद्धिकारकम् ॥

अर्थ—गगेरन, गिलोय, अंडकीजड, नेत्रवाला, नागरमोथा, पद्मास, भारंगी, पीपर, खस और लालचंदन इनका काटा घातपित्तज्वरनाशक तथा अभिवृद्धिकारक है ॥

रसायन ।

त्रिफलामृतलोहचभृंगराजंचूर्णीतम् । चूर्णमर्जुनपत्रस्य
त्रिजातकशिलाजतु ॥ त्र्युपणंतुल्यतुल्यांशंसर्वेषांचस-
मासिता । क्षौद्रेणवटिकाकार्याकर्षमात्रंचभावयेत् ॥
वातपित्तज्वरंहंतिअनुपानंचकल्पयेत् ॥

अर्थ—त्रिफला, लोहभस्म, भांगरा, लोहवृक्षकेपत्र, त्रिजातक, शिला-
जीत और त्रिकुटा इनका चूर्ण करके सब चूर्णके समान मिश्री मिलाय
शहदसे १ तोलेकी गोली करे १ गोली अनुपानके साथ देवे तो घातपित्त
ज्वरको दूर करे ॥

वातकफज्वरलक्षण ।

स्तैमित्यंपर्वणांभेदोनिद्रागौरवमेवच ।
शिरोग्रहःप्रतिश्यायःकासः स्वेदप्रवर्तनम् ॥
संतापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ—स्तैमित्य नाम (गीले कपडेसे देहको टकनेसे जैसा हो ऐसा
मालुमहो) संधियोंमे फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसे
पानी गिरे, खाँसी, पसीनोका आना, शरीरमे दाह, ज्वरका मध्यवेग ये
वातश्लेष्मज्वरके लक्षण है ॥

चिकित्सा ।

वातश्लेष्मज्वरेदेयमौषधंनवमेहनि ।

अर्थ—वातकफज्वरमे नवमदिन औषधी वैद्यको देनी चाहिये ॥

यूप ।

शुष्कमूलकयूपस्तुवातश्लेष्माधिकेहितः ॥

अर्थ—सूखीमूलीका यूप, वात कफ ज्वरमे हितकारी है ॥

पंचकोल ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरैः । दीपनीयः

स्मृतोवर्गोवातश्लेष्मज्वरापहः ॥ कोलमात्रोपयोगित्वा-
त्पंचकोलमिदंस्मृतम् । तीक्ष्णोष्णपाचनश्रेष्ठं दीपनं क-
फवातनुत् ॥ गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ, यह वर्ग अमि-
दीपक तथा वातकफज्वरनाशक है । ये सर्व औषधी पंचकोल (आठ-
मासे) लीजाती हैं इसीसे इसको पंचकोल कहते हैं यह तीक्ष्ण, गरम,
पाचन, दीपन, कफवात, गोला, प्लीह, उदर, अफारा और शूल इनको नाश
करे तथा पित्तको कुपित करता है ॥

निंबादिकपाय ।

निंबामृताविश्वदारुकट्फलंकटुकावचा ।
कपायंपाययेदाशुवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥
पर्वभेदाशिरःशूलंकासारोचकपीडितम् ॥

अर्थ—नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल और वच इनका
काठा पीनेसे संधिपीडा, मस्तकशूल, खांसी, अरुचि तथा वातकफज्वर इन
का नाश करे ॥

किरातादिकपाय ।

किरातविश्वामृतवलिंसिंहिकाकणाकणामूलरसोनसिंदुकः ।
कृतःकपायोविनिहंतिसत्वरंज्वरंसमीरात्सकफात्समुत्थितम् ॥

अर्थ—चिरायता, सोंठ, गिलोय, कटेरीकीजड़, पीपल, पीपरामूल,
लहसन, सह्यालू इनका काठा वातकफज्वर नाशक है ॥

बृहत्पिप्पल्यादिकाढा ।

पिप्पल्यादिगणक्वाथंपिवेद्वातकफज्वरीनातःपरंकिञ्चि-
दास्मिञ्ज्वरेभेजमुत्तमम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्य-
चित्रकनागरम् । वचासातिविपाजाजिपाठावत्सकरेणु-
कम् ॥ किराततिक्तकोमूर्वासर्पपामरिचानिच । कट्फ-
लंपुष्करंभार्गीविडंगं कर्कटाह्वयम् ॥ अर्कमूलंबृहत्सिंहि-
श्रेयसीसदुरालभा । दीपकश्चाजमोदश्चशुकनासासहि-
गुका ॥ एषांक्वाथोनिपीतःस्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः ॥

हंतिवातंतथाशीतंप्रस्वेदमतिवेषधुम् । प्रलापंचातितं
द्रांचरोमहर्षोरुचिस्तथा ॥ महावातेपतंत्रेचशून्यत्वेसर्व-
गात्रजे । पिप्पल्यादिर्महाकाथोज्वरेसर्वत्रपूजितः ॥

अर्थ—पिप्पल्यादिगणका काढा वातकफज्वरी रोगीको पिवावे,इस्से
इसज्वरके ऊपर दूसरी उत्तम औषधी नहीं है पीपल, पीपरामूल,चव्य,
चित्रक, सोठ, वच, अतीस,जीरा,पाठ,डुडाकीछाल,रेणुकबीज,चिरायता,
कुटकी, मूर्वा, सरसों, कालीमिरच,कायफर,पोहकरमूल, भारंभी,वायवि-
डग, काकडासिंगी, आककी जड,बडीकटेरी,रास्ना,धमासा,अजवायन,
अजमोद, टिडुककी छाल और हींग ये औषध समान भाग लेकर
काढाकर पीवे तो वातकफज्वर,वाय, शीत, पसीने, कंप, प्रलाप, अत्य-
तनिद्रा, रोमांच, अरुचि, महावात, अपतंत्रवात, सर्वदेहकी शून्यता
और सपूर्ण ज्वर इनका नाश करे यह पिप्पल्यादि गण सर्व ज्वरपर
प्रशस्त है ॥

सिंहिकादिकपाय ।

सिंहीयवानीछिन्नानांकाथश्चपलयायुतः ।

कफवातज्वरश्वासशूलपीनसकासजित् ॥

अर्थ—करेटीकी जड, अजवायन और गिलोय इनका काढा पीपलका
चूर्ण डालके पीवे, तो वात कफ ज्वर,श्वास, शूल, पीनस और सांसीको
दूर करे ॥

कट्फलादिकपाय ।

कट्फलविश्ववचाघनपांशुधान्यशिवाजलशृंगिसुराह्वैः ।

भांर्गीयुतैःकथनंकिलपेयंवातकफप्रगणोननुचैपाम् ॥

अर्थ—कायफर, सोठ,वच,नागरमोथा, पित्तपापडा, धनियाँ,हरड,नेत्र
वाला,काकाडासिंगी,देवदारु और भारंगी इनका काढा वात कफनाशकहै।

दशमूलीकाढा ।

दशमूलीरसःपेयःकणाद्य-कफवातजे ।

ज्वरेविपाकेतंद्रायांपार्श्वरुक्श्वासकासके ॥

अर्थ—दशमूलके रसमें पीपरका चूर्ण मिलाय पीवे तो ज्वर, अजीर्ण, तंदा, पार्श्वशूल, श्वास और खांसी इनका नाशकरे ॥

पिप्पल्यादिकाढा ।

पिप्पलीभिः शृतंतोयमनभिष्यंदिदीपनम् ।

वातश्लेष्मज्वरंहंतिसेवितंग्रीहनाशनम् ॥

अर्थ—पीपलकां काढा सेवन करनेसे कफको दूर करे अग्निदीपक और वातकफज्वर तथा ग्रीहा इनका नाश करनेवाला है ॥

दार्वादिकाढा ।

दारुपर्पटभांग्यन्दवचाधान्यककट्फलैः । साभयाविश्व-
पूतकैःकाथोहिगुमधूतकटः ॥ कफवातज्वरेपीतोहिका
शोपगलग्रहान् । श्वासकासप्रमेहांश्चहन्यात्तरुमिवाशानिः ॥

अर्थ—देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियों, कायफर, हरड, सोंठ तथा कंजा इनका काढा हींग तथा शहद मिलायके देवे तो कफवातज्वर, हिचकी, शोप, गलरोग, श्वास, खांसी और प्रमेह इनका नाशकरे जैसे वृक्षको वज्र नाश करता है ॥

पटोलादिकाढा ।

तृष्णान्वितेवातकफार्तिशूलेसश्वासकासारुचिविट्ठिविंधो

हितंजलंदीपनपाचनंचपटोलशुंठीयवपिप्पलीनाम् ॥

अर्थ—प्यास, वात, कफरोग, शूल, श्वास, खांसी अरुचि तथा बद्धकोष्ठ इनपर पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजों और पीपल इनका काढा दीपन पाचन और हितकारी है ॥

धुद्रादिकाढा ।

धुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैःकृतःकपायःकफमारुतोत्तरे ।

सश्वासकासारुचिपार्श्वशूलेज्वरेत्रिदोषप्रभवेपिज्ञस्ते ॥

अर्थ—फटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल इनका काढा कफवातज्वर, श्वास, खांसी, अरुचि, पार्श्वशूल और त्रिदोषजनित ज्वर इनपर हितकारी है ॥

आरग्वधादिकाढा ।

आरग्वधकणामूलंमुस्तातिक्ताभयाकृतः ।

क्वाथःशमयतिक्षिप्रंज्वरंवातकफोद्भवम् ॥

अर्थ-अमलतासका गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका काढा तत्काल वातकफज्वरको शमन करे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तापर्पटकंशुंठीगुडूचीसदुरालभा ।

कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहः ॥

अर्थ-नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय और धमासा इनका काढा कफवात, अरुचि, वमन, दाह, शोष और ज्वर इनका नाश करे ॥

भूर्निवादिकाढा ।

भूर्निवमुस्ताकटुकागुडूचीदुरालभापर्पटनागराख्यः ।

क्वाथोनिलश्लेष्महरोवदंतिसूर्योयथानाशयतंधकारम् ॥

अर्थ-चिरायता, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, धमासा, पित्तपापडा और सोंठ इनका काढा वातकफको हरण करे जैसे सूर्य अंधकारको ॥

चातुर्भद्रादिकाढा ।

किरातंतित्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहन् ॥

अर्थ-कडुआचिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह चातुर्भद्रकाढा वातकफज्वरको दूर करे ॥

स्वेदशोषकचूर्ण ।

स्वेदोद्गमेध्रष्टकुलित्थचूर्णनिर्यातनंशस्तमितिव्रुवन्ति ।

जीर्णशकृद्गोलवर्णस्यभाजनंसंचूर्णितंस्वेदहरंसुधूलनात् ॥

अर्थ-पसीनेआनेपर कुलथीको भूनकर पीसे, इस चूर्णको देहमें मालिश करे अथवा गौका पुराना गोबर और नोनके पात्रको पीसके मालिश करे तो पसीना आना दूर होवे ॥

मरिचाशुद्धूलन ।

मरिचंपिप्पलीशुंठीपथ्यालोध्रश्चपुष्करम् । भूनिवःकटु-
काकुपुंक्चूर्णोलिगिकासठी ॥ एतानिसमभागानिसूक्ष्मचू-
र्णानिकारयेत् । एतदुद्धूलनंश्रेष्ठंस्त्रोतेवस्वेदनिर्गमे ॥

अर्थ-काली मिरच, पीपल, सोंठ, हरड़, लोध, पोहकरमूल, कडुआ,
चिरायता, कूट, कचूर, शिवालिंगी और कपूरकचरी ये औषध समान
भागले कपड छान चूर्णकरके देहमे लगावे तो पसीनेकी झडीवी लगरही
हो उसकी बंद करे ॥

भूनिवाशुद्धूलन ।

भूनिवकारवीतिकावचाकटुफलजंरजः ।

एपासुद्धूलनंश्रेष्ठंस्ततस्वेदसंप्लवे ॥

अर्थ-चिरायता, अजवायन, कूटकी, वच और कायफल इनका चूर्ण
अगमें लगावे तो निरंतर आनिघाले पसीनेकी उत्तमहै ॥

सूतशेखररस ।

सूतकंटकणभ्रष्टगंधशुद्धंसमंसमम् । द्विगुणंसूतकादेयंजै-
पालंतुपवर्जितम् ॥ सैधवंमरिचंचिचात्वक्क्षारःशर्करापि-
च ॥ प्रत्येकंसूततुल्यस्याज्वरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ सूर्यशेख-
रनामायंरसोगुंजाद्वयोन्मितः । भक्षितस्तप्ततोयेनवात-
श्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, भुनासुहागा, शुद्धगंधक, सैधानिमक, मिरच, इमली-
का खार और मिश्री प्रत्येक एक एक टके भरशुद्ध जमालगोटा २ टके भर
इन सबकी कूट पीस नीचूके रसमें १ दिन खरलकरे यह सूर्यशेखर नाम-
क रस दो रत्ती गरम जलसे लेंय तो वातकफज्वर दूर हो ॥

कफपित्तज्वरलक्षण ।

लित्तित्तास्यतातंद्रामोहःकासोऽरुचिस्तृपा ।

तथास्तंभश्चसंस्वेदःकफपित्तप्रवर्तनम् ॥

मुहुर्दाहोमुहुःशीतंपित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ—मुखकफसे लितहो तथा पित्तके जोरसे मुखमें कड़ुआ, तंद्रा, मूच्छा, खाँसी, अरुचि, प्यास, स्तंभ (देहका जकडना) पसीना, कफ पित्तका गिरना, वारंवार दाहहो और वारंवार शीतका लगना ये कफपित्तज्वरके लक्षण है ॥

कफपित्तज्वरप्रक्रिया ।

पित्तश्लेष्मज्वरेदेयमौषधंदशमेहनि ॥

अर्थ—पित्त ज्वरमे औषधी दशमें दिन देनी चाहिये ॥

कंटकार्यादिकाढा ।

कंटकार्यमृताभाङ्गीविश्वेन्द्रयववासकम् । भूनिचचंदनमु
स्तंपटोलंकटुरोहिणी ॥ विपाच्यपाययेत्काथंपित्तश्ले-

ष्मज्वरापहम् ॥ दाहत्पणारुचिच्छादिकासशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजो, अदुसा, चिरायता, लालचंदन, मोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका काढा पित्तकफज्वर, दाह, प्यास, अरुचि, वमन, खाँसी और शूल इनको दूर करे ॥

नागरादिकाढा ।

नागरोशीरविल्वाब्दधान्यमोचरसांबुभिः ।

कृतःकाथोभवेद्ग्राहीपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—सोठ, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियो, मोचरस और नेत्र-वाला इनका काढा ग्राही और पित्त कफज्वरका नाशक है ॥

शृंगवेरादिकाढा ।

कपायःपरिपीत्तस्तुशृंगवेरपटोलयोः ।

पित्तश्लेष्मज्वरवर्मादाहकंडूविसर्पनुत् ॥

अर्थ—अदरख और पटोलपत्रका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर, वमन, दाह, खुजली और विसर्प ये दूर हो ॥

पटोलादियूष ।

पटोलधान्ययोर्यूषःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ।

दीपनःकफविच्छेदीपित्तवातानुलोमनः ॥

अर्थ—पटोलपत्र और धनियेका यूष पित्तकफज्वर को दूरकरके दीपन और कफको छुटानेवाला तथा पित्तवातको अनुलोमकरता है ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलंपिचुमंदश्चत्रिफलामधुकंवला ।

साधितोयंकषायःस्यात्पित्तश्लेष्मभवेज्वरे ॥

अर्थ—पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलहठी और गंगेरन इनका काढा पीनेसे पित्तकफज्वर दूर हो ॥

तित्तादिकाढा ।

तित्तोशीरवलाधान्यपर्पटांभोधरैःकृतः ।

क्वाथःपुनःसमायातंज्वरंशीघ्रंनिवारयेत् ॥

अर्थ—कुटकी, स्वस, गंगेरन, धनियाँ, पित्तपापडा और नागरमोथा इनका काढा उलटकर आनेवाले ज्वरको तत्काल दूर करे ॥

लोहितचंदनादिकाढा ।

लोहितचंदनपद्मकधान्यछिन्नरुहापिचुमंदकषायः ।

पित्तकफज्वरदाहपिपासावांतिविनाशहुताशकरःस्यात् ॥

अर्थ—लालचंदन, पद्मास, धनियाँ, गिलोय और नीमकीछाल इनका काढा पित्त, कफज्वर, दाह, प्यास, वमन इनको दूर करे और अमिको बढावे ॥

जीरकादिकाढा ।

जीरकंकारवेल्यंबुशीतपूर्वज्वरेहितम् ।

पाक्यंशीतकषायंचमुस्तापर्पटकंभवेत् ॥

अर्थ—जीरा और करेलेका रस देनेसे शीतज्वरका नाश करे एवं नागर मोथा और पित्तपापडा इनका काढा शीतल देनेसे पाचक है ॥

यवादिकाढा ।

यवःपर्पटकंधान्यंपटोलारिष्टसाधितम् ।

पिवेत्सशर्करक्षौद्रंपित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ—जो पित्तपापडा, धनियाँ, पटोलपत्र, नीमकीछाल इनका काढा शहद और मिश्री मिलाकर पीवे तो पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

नागरादिकाढा ।

नागरेद्रयवंमुस्तंचंदनंकटुरोहिणी । पिप्पलीचूर्णसं-

युक्तंकपायंतुपिवेत्रः । भ्रममूर्च्छारुचिच्छर्दिपित्तश्ले-
ष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ-सोंठ, इन्द्रजों, नागरमोथा, लालचंदन और कुटकी इनका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डाल पीवे तो भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, पित्तकफज्वर इनका नाश करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाशम्पाककटुकामुस्तंत्रथिकधान्यकम् ।

पक्वंहन्यादुदावर्तशूलंपित्तकफज्वरम् ॥

अर्थ-दाख, अमलतासका गूदा, कुटकी, मोथा, पीपरामूल और धनियाँ इनका काढा देवे तो उदावर्त, शूल और पित्तकफज्वर ये दूर हों ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवधान्याकमुस्तामलकचंदनम् ।

श्लेष्मकश्लेष्मपित्तोत्थज्वरतृच्छर्दिदाहनुत् ॥

अर्थ-पटोलपत्र, इन्द्रजों, धनियाँ, नागरमोथा, आमले और लाल-चंदन इनका काढा कफपित्तज्वर, कफज्वर, प्यास, वमन और दाह इनको नाश करे ॥

यवादिकाढा ।

यवपद्मकधान्याकंद्रेहरिद्रेसचंदने । गुडूचीदेवकाष्ठंच

तेजोह्वासदुरालभा ॥ श्रपयित्वापिवेत्कार्यकफपित्तज्व-

रापहम् । पिपासाच्छर्दिदाहग्रंवृष्यंवह्निषिदीपनम् ॥

अर्थ-इन्द्रजों, पद्माख, धनियाँ, हलदी, दारुहलदी, रक्तचंदन, गिलोय, देवदारु, तेजबल और जवासा इनका काढा कफपित्तज्वर तथा प्यास, वमन, दाह इनको नाश करे और अग्निको दीपन करे ॥

त्रायंत्यादिकाढा ।

त्रायंतीभेधकटुकारामसेनापटोलिका ।

ज्वरपैत्तकफेह्येतदेयं दीपनपाचनम् ॥

अर्थ-त्रायमाण, मोथा कुटकी, सपेदकटेली और पटोलपत्र इनका काढा पित्तकफज्वरपर दीपन और पाचनार्थ देवे ॥

किरमालादिकाढा ।

किरमालोवचाहिं गुवालकंधान्यकं निशा । मुस्तायष्टिस्त-
थाभांगीपपटः समभागतः ॥ अष्टावशेषितः काथोमधु-
नाप्रतिपाकतः श्लेष्मपित्तज्वरंहंतिरोगिणः पथ्यभोजिनः ॥

अर्थ—अमलतासका गृदा, वच, हींग, नेत्रवाला, धनिया, हलदी, नागरमोथा, मुलहठी, भारंगी और पित्तपापडा ये समभागलेके अष्टाव-
शेष काढाकरे उसमे शहद डालके पीवे और पथ्यसे रहे तो कफपि-
त्तज्वरका नाश हो ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलमुस्ताजलरक्तचंदनंतिक्कारजोविश्वमुशीरवासकम् ।
संक्वाथ्यतोयंकफपित्तजंज्वरंनिहंतिचारात्त्वरितंतृपायुतम् ॥

अर्थ—पटोलपत्र, नागरमोथा, नेत्रवाला, रक्तचंदन, कुटकी, पित्तपा-
पडा, सोठ, खस और अडूसा इनका काढा कफपित्तज्वर और तृपा
इनका नाश करे

शुद्ध्यादिकाढा ।

गुडूचीनिवधान्याकपद्मकंचंदनान्वितम् ।
तृष्णादाहरुचिच्छर्दिंसर्वज्वरहरोगणः ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, पन्नाख, रक्तचंदन इनका काढा
तृपा, दाह, अरुचि, वमन और संपूर्ण ज्वरोंको नाश करे ॥

शुक्र्यादिकाढा ।

सनागरंपपटकंपिवेद्रासदुरालभम् ।
किराततित्तकंमुस्तंगुडूचींसदुरालभाम् ॥

अर्थ—सोठ, पित्तपापडा अथवा धमासा इनका काढा अथवा किरायता,
नागरमोथा, गिलोय और धमासा इनका काढा पित्तकफज्वरवालेको देवे ॥

क्षुद्रादिकपंचतित्तकाढा ।

क्षुद्रामृताभ्यांसहनागरेणसपुष्करचैवकिराततित्तम् ।
पिवेत्कपायंभुविपंचतित्तंविधिः समस्तज्वरमाशुहंति ॥

अर्थ-कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरामता इनका पंच-
तिक्तनामक काढा सर्वज्वरोंको तत्काल दूर करे ॥

भांग्यादिकाढा ।

भांगीपुष्करमूलंचमुस्तकंकटकारिका । त्रिकंटकवृह
त्यौचकर्णिनीनागरैःश्रुता॥गणोभांग्यादिकोनामपित्तश्ले
ष्मज्वरापहः।कासश्वासारुचिहरःपार्श्वशूलनिवारणः ॥

अर्थ-भांगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरू, बडीकटेरी,
अमलतासका गूदा और सोंठ इन औषधोंका काढा पित्तकफज्वर,
खांसी, श्वास, अरुचि और पसवाडोंका दरद इन रोगोंको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलंचंदनमूर्वातिकापाठामृताकणाः ।

पित्तश्लेष्मारुचिच्छार्दिज्वरकंडूविषापहाः ॥

अर्थ-पटोलपत्र, लालचंदन, मूर्वा, कुटकी, पाठ, गिलोय और पीपल
इनका काढा पित्त, कफ, अरुचि, वमन, ज्वर, सुजली और विष इनको
नाशकरे ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलात्रायमाणचमृद्धीकाकटुरोहिणी ।

पित्तश्लेष्मज्वरेद्येपकपायोद्धानुलोभिकः ॥

अर्थ-त्रिफला, त्रायमाण, दास और कुटकी इनका काढा पित्तक-
फज्वरके दूर करनेको देवे ॥

वत्सकादिकाढा ।

वत्सकंपद्मकाष्ठंचनागरंचंदनामृते । पटोलंधान्यकंचैव
मुस्तकंरक्तचंदनम् ॥ पाठांमूर्वामृतांशुंठीमुशीरंकटुरो-
हिणीमासमभागश्रुतंतोयंसर्वज्वरहरंपिबेत् ॥ पित्तासृक्
दाहशूलघ्नयम्लपित्तविनाशनम् ॥

अर्थ-कुडाकी छाल, पन्नास, सोंठ, रक्तचंदन, गिलोय, पटोलपत्र,
धनियाँ, नागरमोथा, सपेदचंदन, पाठ, मूर्वा, सस और कुटकी ये समा-

न भागलेके काढा करे यह सर्वज्वर, रक्तपित्त, दाह, शूल और अम्लपित्तको दूर करे ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेद्रयवनागरैः । पटोलचंदनाभ्यां
चापिप्पलीचूर्णयुक्कृतम् ॥ अमृताष्टकमेतच्चपित्तश्लेष्म
ज्वरापहम् । छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकी छाल, कुटकी, नागरमोथा, सोंठ, पटोलपत्र और दोनों चंदन इनके काढेमें पीपलकाचूर्ण मिलायके पीवे तो यह अमृताष्टक पित्तकफज्वर, वमन, अरुचि, हृल्लास, दाह और प्यासको दूर करे ॥

वासास्वरस ।

सपत्रपुष्पवासायारसःशौद्रसितायुतः ।

कफपित्तज्वरंहंतिसाम्नपित्तसकामलम् ॥

अर्थ—पत्ते और फूल सह अइसेका रस लेवे उसमें मिश्री और शहद मिलाय पीवे तो कफपित्तज्वर, रक्तपित्त और कामला दूर हो ॥

कटुकीचूर्ण ।

सशर्करामक्षमात्रांकटुकीचोष्णवारिणा ।

पीत्वाज्वरंजयेज्जंतुःपित्तश्लेष्मसमुद्भवम् ॥

अर्थ—कुटकीका चूर्ण एक तोला ले उसमें चार मासे मिश्री मिलाय गरम जलसे लेवे तो पित्तकफज्वर दूर हो ॥

लाजमंड ।

लाजैर्वातंडुलेभ्रैर्लाजमंडःप्रकीर्तितः ।

श्लेष्मपित्तहरोग्राहीपिपासाज्वरजिन्मतः ॥

अर्थ—खीलोंका अथवा भुने चावलोंका मांड निकालकर देवे यह कफ, पित्त, प्यास, ज्वर इनको, दूर करे और ग्राही है ॥

वाटचमंड ।

सुकंडितैस्तथाभ्रैर्वाटचमंडोपवैर्भवेत् ।

कफपित्तहरःकंठ्योरक्तपित्तप्रसादनः ॥

अर्थ-जवोंको अच्छीरीतिसे बिन छरके मिगी निकालले फिर चौदह गुनेजलमें पककरे जब जो सौज जाय तब उस पानीको छानके प्यावे इसको वाटचमंड कहते है यह कफपित्तकी दूरकरे कंठको हितकारी और रक्तपित्तको दूर करे ॥

सुस्तादिनिर्यूह ।

सुस्तापर्पटकैरातनिर्यूहेनप्रसाधितः ।

कफपित्तज्वरहरोयूपोधान्यपटोलयोः ॥

अर्थ-नागरमोथा, पित्तपापडा और चिरायता इनका निर्यूह अथवा धनियाँ और पित्तपापडा इनका यूप कफपित्तज्वरका नाश करे ॥

निंबादियूष ।

निंबकुलकयूपस्तुहितः पित्तकफात्मके ॥

अर्थ-नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका यूप पित्तकफका नाश करताहै ॥

चंद्रशेखररस ।

शुद्धंसूतंसमंगंधमरिचं कण्ठतथा । चतुस्तुल्याशिला
योज्यामत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ त्रिदिनं भावयेत्तेन रसोयं
चंद्रशेखरः । द्विगुंजमार्द्रकद्रवैर्दयं शीतोदकंपुनः ॥
तक्रौदनंचवृंताकंपथ्यंतत्रनिवेदयेत् । त्रिदिनाच्छ्लेष्म
पित्तोत्थमत्युष्णं नाशयेज्वरम् ॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, कालीमिरच, सुहागा तथा इन चारोंके बरोबर मनसिल ले सबको एकत्रकर मछलीके पित्तेसे तीनदिन खरल करे तो यह चंद्रशेखर रस बनकर तयारहो, इसको २ रत्ती अदरखके रससे देवे और ऊपर शीतलजलपीवे तथा दही भात और बैगन ये पथ्यसे देतो तीनदिनमें कफपित्तज्वर नाश हो ॥

सन्निपातज्वरलक्षण ॥

क्षणेदाहक्षणेशीतमीस्थसंधिशिरोरुजः । सप्तावेकलुपे
रक्तेनिर्भुग्नेचापिलोचने ॥ सस्वनौसरुजौकर्णौकंठःशूकं
रिवावृतः । तंद्रामोहःप्रलापश्चकासःश्वासाोरुचिर्भ्रमः ॥
परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वास्तंगातापरम् । घृविनं

रक्तपित्तस्यकफेनोन्मिथ्रितस्यच ॥ शिरसोलोड
नंतृष्णानेद्रानाशोहृदिव्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिरा
द्दर्शनमल्पशः॥ कृशत्वंनातिगात्राणांसततंकंठकूजनम् ।
कोष्ठानांश्यावरक्तानांमंडलानांचदर्शनम् ॥ मूकत्वंस्तौ
तसांपाकोगुरुत्वमुदरस्यच । चिरात्पाकस्तुदोषाणां
संनिपातज्वराकृतिः ॥

अर्थ—अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें सीत लगे, हाड, संधि, मस्तक
इनमें शूल, अक्षुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र होजावे (अथवा
टेटे नेत्र हो ये जेज्जटका मत है) कानोंमें शब्द और पीडाहो, कंठमें फाटे
पडजाय; तंद्रा, बेहोशी हो, अनर्थ बोले, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हो
जीभ परिदग्धवत् (काली) और खर्दरी गो जीभके समान तथा शिथिल
(लठर)हो पित्त और रुधिरमिला कफ थूके, शिरको इधर उधर पटके, तृषा
वहुत लगे, निद्राका नाशहो, हृदयमें पीडा, पसीना, मूत्र, मल इनका
वहुतकालमें थोडा उतरना, दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना, कंठमें
कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले, लालधोठे और चकत्तोंका होना
शब्द बहुत मन्द निकले, कान, नाक, मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका
भारी होना, वात, पित्त, कफ इनका देरमें पाकहो (उदरस्य च) इस पदमें
जो चकार है यासे वाग्भटने जो लिखेहै कौन शीतका लगना, दिनमें
घोर निद्राका आना, नित्यरात्रिमें जागना अथवा निद्रा कभी आवेही
नहीं, पसीना बहुत आवे और नहीं आवे, कभी गानकरे, कभी नाचे,
हँसे, रोवे और चोष्टा पलटजाना इत्यादि जानने ये सन्निपातज्वरके लक्षण
जानने सुश्रुत वाग्भटके मतसे सन्निपात एकही प्रकारका है, परंतु और
आचार्यनके मतसे उत्त्वणादि भेद करके ५२ प्रकारका है ॥

धातुपाकलक्षण ।

निद्राबलौजोरुचिर्वीर्यनाशो हृद्वेदनागोरवतालपचेष्टा ।

विष्टंभतायस्यकिलारतिःस्यात्सधातुपाकीमुनिभिःप्रदिष्टः॥

अर्थ—निद्रा, बल, तेज, रुचि, वीर्य इनका नाश, हृदयमें पीडा,
देह भारी, हीनचोष्टा अफरां मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको

१ कोठक रक्षण भाट्टिकने कहें पथा "परदीदशहारादा कडमान लोदितोभ्राप-
पिपवाद् क्षणिकेत्तत्तविनाशो कौट इत्यभिधीयते सद्भिः" इति ।

धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहा है (धातुपाक) कहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे (धातुपाक) कहते हैं ॥

दोषपाकलक्षण ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यंलघुताज्वरदेहयोः ।

इन्द्रियाणांचवैमल्यंदोषाणांपाकलक्षणम् ॥

अर्थ—दोषोंका स्वभाव पलटजाय, ज्वरका हलका होना, देह हलकी हो, इन्द्रियोंका निर्मल होना ये (मलपाक) के लक्षण जानने (धातुपाक) और (मलपाक) होना केवल ईश्वरपर है इसमें दूसरा कोई हेतु नहीं है ॥

सन्निपातज्वरकेविशेषलक्षण ।

संनिपातज्वरस्यातिकर्णमूलेसुदारुणः । शोथःसंजाय-
तेतेनकश्चिदेवप्रमुच्यते ॥ ज्वरस्यपूर्वज्वरमध्यतोवा
ज्वरांततोवाश्रुतिमूलशोथः । क्रमादसाध्यः खलुकष्ट-
साध्यः सुखेनसाध्योमुनिभिः प्रदिष्टः ॥

अर्थ—संनिपातज्वर शांति होनेके पीछे कानकी जड़में दारुण सूजन पैदा होती है उस सूजनसे कोई रोगी बचे है प्रायः यह मारही डाले है ॥ यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तो असाध्यहै ज्वरके मध्यमे होय तो कष्टसाध्य है और ज्वरके अतमे होय तो सुखसाध्य है ऐसे मुनीश्वरोंने कहा है ॥

साध्यासाध्यलक्षण ।

दोषेविवृद्धेनष्टेभ्रौसर्वसम्पूर्णलक्षणः ।

सन्निपातज्वरोसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमें दोष (वात पित्त कफ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलतेहो और अग्नि शांति होगई हो वो सन्निपातज्वर असाध्य है और इससे विपरीत अर्थात् दोष बढे नहीं अल्प लक्षण हो अग्नि थोड़ी दीप्त हो वो सन्निपातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥

संनिपातकीकालमर्यादा ।

सप्तमेदिवसेप्राप्तेनवमेकादशेपिवा । पुनर्घोरतराभूत्वा-
प्रशमंयातिहंतिवा ॥ सप्तर्माद्विगुणायान्नवम्येकादशी-

तथा ॥ एपात्रिदोषमर्यादामोक्षायचवधायच ॥

अर्थ—संनिपातज्वर यदि सातवें, नवें, ग्यारवें, चौदहवें, अठारवें और बाईसवें दिन ज्यादा होवे तो रोगी इस मर्यादाके दिवसोंमें मरे और मर्यादा चूक जावे तो रोगी जीवे, यह त्रिदोषकी मर्यादा है । जबसे त्रिदोष प्रकटहो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोष ज्वरोंकी मर्यादा है इस अवधिमें ज्वर जाता रहै अथवा मृत्युहोय ॥

दोषजनितकालमर्यादा ।

पित्तकफाऽनिलवृद्ध्यादशदिवसद्वादशाहसप्ताहान् ।

हंतिविमुंचत्याशुत्रिदोषजोधातुमलपाकात् ॥

अर्थ—पित्तकफ और दात इनके पाकहोनेकी मर्यादा अनुक्रमसे दशमें, बारहमें और सातवें दिवस होती है अतएव उसीठसी दिनमें धातुपाक होनेसे रोगी मरे मलपाक होनेसे रोगी रोगरहित होवे ॥

कट्फलादिपानम् ।

कट्फलं त्रिफलादारुचंदनं सरूपकम् । कटुकापद्मकोशी-

रं विपचेत्कार्षिकं जले ॥ त्रिदोषदाहतृष्णाशं पानमात्रेण

पूजितम् । दीर्घकालज्वरार्तानामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ—कायफल, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, कुटकी, पद्मास और खस इन औषधोंको एक २ तोलालेकर काढा करके पवित्रो त्रिदोष दाह और तृष्णा इनको शांत करे और दीर्घकालसे आनेवाले ज्वररोगीको अमृतके तुल्य है ॥

दशमूलादिमंड ।

पाचनोदीपनः सोष्णोलाजमंडोयतः स्मृतः ।

दशमूलादिसिद्धः संनिपातज्वरोहितः ॥

अर्थ—दशमूलके काढसे सिद्ध कराहुआ खीलोंका मांड पाचन, दीपन और गरम है अतएव संनिपातज्वरपर हित है ॥

दुःस्पर्शादिसिद्धात्र ।

दुस्पर्शगोक्षुरक्षुद्रासिद्धमाहारमर्पयेत् ।

दोषशांतिवलाभ्यर्थं त्रिदोषज्वरिणे पृथक् ॥

अर्थ—धमासा, गोखरू और फंटेरी इनके काठेमे सिद्ध कराडुआ आहार देवे। इससे दोष शांतिहो तथा बल और अग्नि ये बढे और त्रिदोष रोग-वालेको हित है ॥

लाजसक्तुक ।

लाजसक्तून्समश्रीयात्सैधवेनसमन्वितान् ।

तच्चेर्जीर्यत्यविघ्नेनज्वरीजवित्तदाध्रुवम् ॥

अर्थ—त्रिदोषज्वरवालेको खीलका सत्तू सैधानोन डालके देवे तो यदि यह निर्विघ्न पचजावे तो रोगी निश्चय जीवे ॥

लाजसक्तुनिषेध ।

रक्तपित्तहितत्वेनतृष्णादाहज्वरेषुच ।

लाजानांसक्तवः शीतानचतेत्रहितामताः ॥

अर्थ—खीलका सत्तू शीतल है यह रक्तपित्त, प्यास दाह और ज्वर इनपर हित है, परंतु संनिपातपर नहीं देना चाहिये ॥

पित्तशमनकरनेकेकारण ।

निर्हरेत्पित्तमेवादौज्वरेषुसमवायिषु ।

दुर्निवारतरंतद्धिज्वरातेषुविशेषतः ॥

अर्थ—समवायि संनिपात ज्वरमे प्रथम पित्तका हरण करे क्योंकि, यह दुर्निवार है ॥

शीतोदकसेचनकानिषेध ।

संनिपातेतुदाहार्तयःसिंचेच्छीतवारिणा ।

आतुरः सकथंजीवेद्भिषग्वासकथंभवेत् ॥

अर्थ—जो वैद्य संनिपातके दाहमे शीतल जलसे सिंचन करता है उसको वैद्य कैसे कहना चाहिये और वह रोगी कैसे बचेगा ॥

शिरीषाद्यंजन ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैधवैः ।

अंजनंस्यात्प्रबोधायसरसोनशिलारसैः ॥

अर्थ—सिरसके बीज, गोमूत्र, पीपर, कालीमिरच और सैधानिमक इनको एकत्र पीस अंजनकरे तो संनिपातकी मूर्च्छा जाय अथवा मनशिल और वच इनका लहसनके रसमें अंजन करे ॥

कस्तूरिकाद्यंजन ।

कस्तूरीमरिचंवाजिलालाचमधुनांजनम् ।
तंद्रानिवारयत्याशुव्यूपंक्षितंयथानसि ॥

अर्थ—कस्तूरी और मिरच इनको थोड़ेकी लारमें पीस शहद डालके अंजन करे तो तंद्रा शीघ्र दूर होवे । उसी प्रकार त्रिकुटाके चूर्णकी नास लेनेसे तंद्रा दूर होय ॥

लंघन ।

सन्निपातज्वरीपूर्वसम्यग्लंघनमाचरेत् ।
शृतशीतंपिवेदंभः समयेद्रेपजंभजेत् ॥

अर्थ—संनिपातज्वरवाला प्रथम उत्तम लंघन करे और पानीको ओटाय शीतल करके बहुत प्यासमें पिवावे और समय २ पर औषधि देवे ॥

शीतजलपाननिषेध ।

सन्निपातेनतृप्यंतंपार्श्वरुक्तालुशोपिणम् ।
यः पाययेज्जलंशीतंसमृत्युर्नरविग्रहः ॥

अर्थ—संनिपातज्वरवाले रोगीके शोष होय और कूखमें शूल तथा तालुआ सूखताहो इसमें जो वैद्य बिना ओटाहुआ जल देवे वह मनुष्यरूप मृत्यु जानना ॥

वालुकास्वेद ।

वातश्लेष्मकृतेस्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान् ।
स्निग्धस्वेदोनिपिद्धोत्रविनाकेवलवातजात् ॥

अर्थ—वातकफके विकारमें रूक्ष औषधोंसे स्वेद विधि करे किन्तु स्निग्ध स्वेद केवल वात रोग बिना अन्यत्र निषेध है ॥

सैंधवादिनस्य ।

सैंधवंश्वेतमरिचंसर्पपाः कुष्ठमेवच ।
वस्तमूत्रेणसंपिष्टंनस्यंतंद्रानिवारणम् ॥

अर्थ—सैंधानिमक, सपेदमिरच, सरसों और कूठ इनको चकरके मूत्रमें पीस नास देवे तो संनिपातकी तन्द्रा जाय ॥

मातुलिंगादिनस्य ।

मातुलिंगार्द्रकरसंकोष्णत्रिलवणान्वितम् ।
अन्यद्रासिद्धविहितं नस्यंतीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥
तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते ।
शिरोहृदयकंठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥

अर्थ—विजौरेकारस और अदरखकारस इनको गरम कर तीनो नोन (संचर साक्षर खारी) मिलायके नस्यदेवे अथवा और जो सिद्धवैद्योंकी कही हुई तीक्ष्ण औषधोंकी नस्यदेवे तो इससे कफ फटजावे और फटकर दब-जाय कि, जिस्से शिर, हृदय, कंठ, मुख और पसवाडोंकी पीडा शांति हो ॥

कल्पतरुनस्य ।

मोहामयेनमुग्धं बोधयितुं यादृशः शक्तः ।
कल्पतरुनामधेयोरसोगतादृक्परं किंचित् ॥

अर्थ—जो मोहरूप रोगसे मूढ हो रहा है उसके चैतन्य करनेमें जैसा कल्पतरुस सामर्थ्य रखता है ऐसा अन्य नहीं है ॥

द्राक्षादिलेपजिह्वापर ।

जिह्वातालुगलक्लोममरुत्पित्तेन वोच्छ्रितः ।
तदासचाचरेच्छोपं जिह्वायाः खरतां तथा ।
स्फुटनंचतदा जिह्वालेपयेन्मधुपिष्टया ॥
द्राक्षयासाज्ययातेन जिह्वास्यात्सरसामृदुः ॥

अर्थ—यदि वातपित्तके प्रभावसे जीभ, तालु, गला और क्लोम (पिपासास्थान) ये उठ आवे तो ये शोषको करते हैं और जीभको खरदरीकरे तथा जीभ फटजावे, इसमें जीभपर दास और घृत मिलाय शहदका लेपकरे तो जीभ रसयुक्त नम्र हो जावे ॥

आर्द्रकादिकवलग्रह ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैधवं कटुकत्रयम् । आकंठाद्धारयेदास्ये-
निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ तेनास्यहृदयक्लोममन्यापार्श्वशिरो-
गलान्गलानोप्याकृष्यते श्लेष्मालाघवं चास्यजायते ॥ पर्व-
भेदोज्वरोमूर्च्छानिद्राश्वासगलामयाः । मुखाक्षिगौरवंजा-

ड्यमुत्केशश्चोपशाम्यति ॥ सकृद्वित्रिचतुःकुर्याद्दृष्ट्वा-
रोगबलावलम् । एतद्धिपरमंप्राहुर्भेषजसन्निपातिनाम् ॥

अर्थ—अदरखके स्वरसमें सैधानिमक और त्रिकुटा मिलायके गोलीकरे, इस गोलीको मुखमें रखके, बारंबार कफ आवे उसको थूक देवे इस प्रकार करनेसे मुख, हृदय, क्लोम, मन्यानाडी, पसवाडेके भाग और गला इनके लिहसा हुआ कफ निकले और शरीरमें हलका पना आवे और गांठोंका दूखना, ज्वर, मूर्च्छा, श्वास, गलेका रोग, मुख नेत्र इनकी जडता, मुखसे पानीका गिरना ये सब रोग दूर हों । यह प्रकार दोषोंको बलावल देखकर दो चारवार करे यह सन्निपात रोगमें उत्तम है ॥

अष्टांगावलेह ।

ऊर्ध्वजञ्जुगदघ्नीयासासायमवलेहिका ।

अधोरोगहरीयासाभोजनात्प्राक्प्रयुज्यते ॥

अर्थ—जञ्जुके ऊपरके रोगोंमें सायंकालमें अवलेह लेवे और अधोभागके रोगोंमें भोजनके पूर्व लेनी चाहिये ॥

कद्रूफलादिवलेह ।

कद्रूफलंपुष्करंशुंगीव्योपंयासश्चकारवी ।

शुष्णचूर्णकृतंचैतन्मधुनासहलेहयेत् ॥

एपावलेहिकाहंतिसंनिपातंसुदारुणम् ।

हिक्कांश्वासंचकासंचकंठरोगंचनाशयेत् ॥

एतद्योज्यंकफोद्रेकेचूर्णमाद्रकजैरसैः ॥

अर्थ—कायफर, पीहकरमूल, फाकडासिंगी, त्रिकुटा, धमासा और अजमोद इनका कपडछन चूर्णकर शहदसे चाटे तो यह दारुण संनिपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और कंठरोग इनको दूरकरे । यदि कफ अधिक होवे तो इसी चूर्णको अदरखके रसके साथ चाटना चाहिये ॥

आर्द्रकादिस्वरस ।

अष्टांगमधुनालिह्यादाद्रकस्यरसेनवा ।

संमोहदारुणंहन्यात्तद्राकाससमन्वितम् ॥

अर्थ—ऊपर कहा अष्टांग अवलेह शहदसे किवा अदरखके रससे चाटे तो खांसी, तंद्रा और अत्यंत मोह इनका नाशकरे, ॥

मधुनिषेध ।

सर्वेषुसंनिपातेषुनक्षौद्रमवचारयेत् । शीतोपचारिक्षौद्रं
स्याच्छीतंचात्रविरुध्यते ॥ उष्णैर्विरुध्यतेसर्वविषान्वय-
तयामधु । उष्णार्तमुष्णैरुष्णंचतन्निहंतियथाविषम् ॥

अर्थ—संपूर्ण संनिपातोंमें शहद न देवे कारण कि, शहद भक्षण करनेसे उसपर शीतल उपचार करने चाहिये और संनिपातोंमें शीतल चिकित्सा विरुद्ध है तथा सर्व उष्णपदार्थोंसे शहदका विषके सदृश विरोध है अतएव जो मनुष्य असलमें गरमीसे पीडित होय और फिर उसके ऊपर गरम उपचार होय तो वो विषके समान मारने वाले होते हैं ॥

प्रक्रिया ।

संनिपातज्वरेपूर्वकुर्यादामकफापहम् ।

पश्चाच्छ्लेष्मणिसंक्षीणेशमयेत्पित्तमारुतौ ॥

अर्थ—संनिपातज्वरपर प्रथम आम और कफनाशक औषधी देवे जब कफक्षीण हो जावे तब पित्तवातको शमन करे ॥

दूसराप्रकार ।

लंघनंवालुकास्वेदोनस्यंनिष्टीवनंतथा ।

अवलेह्यंजनंचैवप्राक्प्रयोज्यंत्रिदोषजे ॥

अर्थ—संनिपातमें लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, थूकना, अवलेह और अंजन ये प्रथम करने चाहिये ॥

लंघनकासहन ।

दोषाणामेवसाशक्तिर्लघनेयासहिष्णुता ।

कश्चिदोषविमुक्तोन लंघनंसहतेनरः ॥

अर्थ—लंघनोंका सहन होना यह दोषोंकीही शक्ती है दोषमुक्त होनेपर रोगीको लंघन सहन नहीं होते ।

एककालमेंदोषप्रकारकीऔषधदेनेकानिषेध ।

क्रियायास्तुगुणालाभेक्रियामन्यांप्रयोजयेत् ।

पूर्वस्यांशांतवेगायांनक्रियासंकरोहितः ॥

अर्थ—एक औषधक्रियाका गुण न होय तो दूसरी औषधक्रिया करनी चाहिये, परंतु पूर्वऔषधका वेग नष्ट हो जानेपर करे एककालमें दो औषधक्रिया हितकारी नहीं हैं ॥

अन्यप्रतीकार ।

तप्तायोलांछनंपंचताल्लादिपुत्रिदोपजे । रुद्राभिपेकोभू-
देवभोजनंग्रहजाप्यतः ॥ मंत्ररक्षादिभिःकार्यासंनिपा-
तेप्रतिक्रिया ॥

अर्थ—सन्निपातमें तालु आदि पांचस्थानोंमें तत्ते लोहकी सलाई आदिसे दागदेवे और रुद्राभिपेक, ब्राह्मणभोजन, ग्रहोंका जप तथा मंत्ररक्षादिक रोगनाशार्थ अन्यउपाय कराने चाहिये ॥

कंटकार्यादिपाचन ।

कंटकारिद्वयंशुंठीधान्यकंसुरदारुच ।

एभिःशृतंपाचनंस्यात्सर्वज्वरनिवारणम् ॥

अर्थ—दोनोंकटेरी, सोंठ, धनियाँ और देन्दारु इनका काठा सर्वज्वरमें पाचक तथा ज्वरनाशक है ॥

मनःशिलादिअजन ।

तुरंगलालासहितामनःशिलानिहंतितंद्रासकृदंजनेन ।

बन्धूलपत्राणिहरीतकीचसंस्वेदितास्वेदविकारहन्त्री ॥

अर्थ—मनसिलको घोंडेकी लारमें घिसके अंजन करावे तो तंद्राका आना दूर हो और बच्चुरके पत्ते और हरड इनकी वाफ स्वेदहरणकर्ता जाननी ॥

भूनिवादिमर्दन व उष्णलन ।

भूनिवकटुकाकुष्ठंकारवींद्रयवाःसठी । एतानिसमभागा

निसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ प्रस्वेदेकंठरोधेचसंधीमर्दन

मिप्यते । एतदुष्णलनंश्रेष्ठंसंनिपातहरंपरम् ॥

अर्थ—चिरामता, कूटकी, पूठ, अजवायन, इन्द्रजों और पचूर इनका

समभाग चूर्णलेकर देहमें लगावे तथा, संधीनमें विशेष मालिशकरे तो कफसे हुआ कंठावरोध और संनिपातज्वर ये शांत हों ॥

यवानिकाद्युद्धूलन ।

यवानिकावचाशुंठीपिप्पलीकारवीतथा ।

एतैरुद्धूलनंश्रेष्ठंत्रिदोषोत्थेज्वरेनृणाम् ॥

अर्थ—अजवायन, वच, सोंठ, पीपर और अजमोद, इनका चूर्ण संनिपातज्वर वालेके पसीने आनेमें लगाना उत्तम कहा है ॥

विषाद्युद्धूलन ।

विषभागोभवेदेकोमरीचंत्रिगुणंमतम् । आरण्योपलजं

भस्मपोडशांशसमन्वितम् ॥ एकत्रमीलितंचूर्णधूर्त्तस्व

रसभावितम् । आतपेशोपितंतच्चशीतस्वेदहरंपरम् ॥

अर्थ—विष १ भाग, कालीमिरच ३ भाग, आरनेउपलोंकी भस्म १६ भाग, सबको मिलाय अंगोंमें लगावे तो पसीने बंदहोय ॥

चणकाद्युद्धूलन ।

अथवाचणकाभ्रष्टायवानीचूर्णमिश्रिताः ।

वचोपणारजोयुक्ताःस्वेदसंशोपणामताः ॥

अर्थ—धुनेहुए चनावा चून, आजवायन, वच और काली मिरच इनको मिलाय देहमें मालिशकरे तो पसीने आते हुए बंद हो जावें ॥

चटनी ।

सुरसार्जकनिर्याससमधुव्योपसंधवः ।

महच्छेष्मानिलोद्रेकेसंज्ञानाशविनाशनः ॥

अर्थ—तुलसीकारस, राठ, त्रिकुटा, सैधानिमक और शहद इनको मिलायके चाटेतो कफवातादिक ज्वरको और सून्डाको नष्ट करे ॥

लंघनविधि ।

त्रिरात्रंपंचरात्रंवादशरात्रमथापिवा ।

लंघनंसत्रिपातेषुकुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥

अर्थ—संनिपातरोगीके अच्छाकरनेको तीन, पांच, किंवा दशदिन लघन करावे ॥

लंघन ।

शस्तंसुलंघितस्यादौविधायकवलग्रहम् ॥

अर्थ—रोगीको लंघन करनेपर पूर्वोक्त कवल मुखमें धरना चाहिये ॥
अतिलंघनकेविचार ।

कफपित्तद्रवौधातूसहेतेलंघनमहत् ।

आमक्षयादूर्ध्वमपिवायुर्नसहतेक्षणम् ॥

अर्थ—कफ और पित्त ये द्रवधातु हैं अतएव आमके क्षयपर्यंत बहुत लंघन सहन होते हैं, परंतु वादीवालेको बहुत लंघन क्षणमात्र सहन नहीं होते ॥
लंघितकोअन्न ।

ग्राम्येगुरुत्वंश्रद्धाचविकृतिर्हीनलंघिते । प्रकांशालाघवं

ग्लानिःस्वच्छतासुप्रसन्नता ॥ उपद्रवनिवृत्तिश्चसम्यक्लं-

घितलक्षणम् । संमोहःसंधिशैथिल्यंवातरुक्चातिलंघिते ॥

अर्थ—हीनलंघन होनेसे मैथुन करनेमें अश्रद्धा तथा अंगोंमें भारीपना एलक्षण होते हैं । उत्तम लंघन होनेसे अन्नकी इच्छा अंगोंका हलका होना, ग्लानि, स्वस्थता, सुप्रसन्नता तथा ज्वरोपद्रवोंका नाश ये लक्षण होते हैं और अतिलंघन होनेसे मोह, संधीका शिथिलपना, वायुके विकार ये होते हैं ॥

पंचमुष्टिकयूप ।

पंचमुष्टिकयूपेणत्रिकंठककृतेनच । आदोपशमनात्रि-

त्यंभिपक्वश्रेष्ठस्तुसाधयेत् ॥ यवकोलकुलित्यानांसुद्रमू-

लकशुंठिनाम् । एकैकमुष्टिमादायपचेदष्टगुणेजले ॥ पंचमु-

ष्टिकइत्येपवातपित्तकफापहः । शस्यतेशूलगुल्मेचश्वासे

कासेज्वरेक्षये ॥

अर्थ—गोखरू डालके पंचमुष्टिकयूप दोपशमन पर्यंत देवे, पंचमुष्टिकको कहते हैं—जौ, बेरकी गुठली, कुलथी, मूंग, मूली और सोंठ ये चार २ तोले लेय तथा अठगुने पानीमें फाटा करे उसकी पंचमुष्टिकयूप संज्ञा है, यह वात पित्त कफ इनका नाशक और शूल, गुल्म, श्वास, खाँसी और क्षय इनपर उत्तम है ॥

सप्तमुष्टिकयूप ।

यवकोलकुलित्यैश्वशुष्कमूलकमुद्गैः । धान्याकैर्विश्व
युक्तैश्चयूपोवातज्वरापहः ॥ सप्तमुष्टिकइत्येषसंनिपात-
ज्वरापहः । कफवातामदोषघ्नःकंठहृद्द्रक्त्रशोधनः ॥

अर्थ—जौ, बेरकी गुठली, कुलथी, मूंग, सूखीमूली और सोठ, धनियाँ
ये प्रत्येक चार ४ तोले लेकर यूप बनावे, तो सप्तमुष्टिक संज्ञक यूप वात
ज्वर, सन्निपातज्वर, कफ, वायु और आमदोष इनको नाशकरे और
गला, छाती तथा मुख इनको स्वच्छ करे ॥

कंपादिककीचिकित्सा ।

सन्निपातज्वरेयस्तुकंपतेप्रलपत्यपि ।

किंचिदेवनजानातिचिकित्सातस्यकथ्यते ॥

अर्थ—संनिपातज्वरमें कंप होय वकवादकरे और बेहोप होय तो उस
की चिकित्सा कहते हैं ॥

अभ्यंजन ।

अभ्यंजयेत्पुराणेनसर्पिंपापूर्वमेवतम् ।

बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तेलेश्चपरिपेचयेत् ॥

अर्थ—प्रथम संनिपातवाले रोगीके अंगमें पुराना घी लगावे किंवा
बला, रास्ना, गिलोय इनका तेल अंगमें लगावे ॥

वर्तकादिरस ।

वर्तकोवर्तकालावोवर्तीकस्तित्तिरीःशशाः ।

कुर्लिंगश्चरसेनैपांतर्पयेतयथानलम् ॥

अर्थ—वतक, विचित्ररंगका चिडा, लवा, बटेर, तीतर, शशा और
विडा इनके मांसका रस रोगीका अग्निबल देखके देवे ॥

सन्निपातीमांसनिषेध ।

सन्निपातेक्षुधार्तयोभोजयेत्पिशितौदनैः ।

सकथंभिषगाख्यातिलभतेभिषजाधमः ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें क्षुधितरोगीको जो वैद्य मांस और भात खा-
नेको देता है, वह अधम वैद्य लोकमें प्रतिष्ठाको कैसे प्राप्त होगा ॥

सुवर्णादिलेप ।

सुवर्णमुक्तारजतप्रवालंकस्तूरिकाकुंकुमरोचनंच । वराट
रुद्राक्षमधूकविल्वंकुष्ठंचखजूरपुनर्नवाच ॥ द्राक्षाकणा-
नागरपुत्रजीवीसारंगशृंगकतकस्यबीजम् । एरंडमूलंशर-
शीर्षकंचमयूरिकाश्वेतपुनर्नवाच ॥ स्तन्येनपिद्वाकुरु
सन्निपातेलेपःसदासर्वगदान्निहंति ॥

अर्थ—सोना, मोती, चांदी, मूंगा, कस्तूरी, केशर, गोरोचन, फौडी,
रुद्राक्ष, मुलहदी, बेलगिरी, कूठ, खजूर, सोंठ, दाख, पीपल, सोंठ,
जीयापोता, हरणके साँग, निर्मलीके बीज, अंडकीजड, सरपतेकी जड,
अंबाडा और विसखपरा ये सब औषधस्त्रीके दूधसे पीस लेपकरे तो
सर्व सन्निपातके विकार दूर हो ॥

चिकित्साप्रक्रिया ।

श्लेष्मनिग्रहमेवादौकुर्याद्विद्यादौत्रिदोपजे । निरस्तेश्ले-
ष्मणिह्यस्यस्रोतःसूद्धादितेषुच ॥ लाघवंजायतेसद्य
स्तृष्णाचैवोपशाम्यति ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको जीते कफके घटनेपर तथा शिरा
ओके मार्ग खुलनेपर शरीरमें हलकापना आता है और प्यास दूर होय ॥

अन्यसन्निपातनिदाने ।

एकोल्वणास्त्रयस्तेस्युर्ध्वल्वणाश्चतयेतिपद् । उल्वणश्चभ
वेदेकोविज्ञेयःसतुसप्तमः॥प्रवृद्धमध्यहीनाश्चवातपित्तकफे
श्चपद् । सन्निपातज्वरस्येवंस्युर्विंशेपास्त्रयोदश ॥

अर्थ—सन्निपातमें कफ, वात और पित्त इन प्रत्येक दोषोंके उल्वण
होनेसे तीन, दोषोंके उल्वण होनेसे तीन तथा तीन दोषोंके उल्वणोंके मिल
नेसे एक, सब सातद्वय और प्रवृद्ध, मध्य और हीन जे वात, पित्त और
कफदोष इनके पर्याय करके छः ऐसे सन्निपातके तरह भेद होते हैं ॥

वातोल्वणसन्निपात ।

संध्यस्थिशिरसः शूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः ।

वातोल्बणस्याद्वचनुगेतृष्णाकंठास्यशुष्कता ॥

अर्थ-वाताधिक्य और कफपित्तहीन ऐसे सन्निपातमें संधि, हड्डी और मस्तकमें शूल, प्रलाप, देहमें गौरव, भ्रम, प्यास तथा गन्ना और मुखका सुखना ये लक्षण होतेहैं ॥

वातोल्बणसंनिपातकीचिकित्सा ।

पंचमूलीकपायंतुदद्याद्वातोत्तरेज्वरे ।

भृशोष्णवासुखोष्णवाटद्वादोपबलावलम् ॥

अर्थ-वाताधिक्य संनिपातमें पंचमूलका काढा गरम अथवा सुखोष्ण ऐसे दोषोंका बलावल विचारके देवे ॥

मुस्तादिकाढा ।

समुस्तंपंचमूलंचदद्याद्वातोत्तरेज्वरे ।

भृशोष्णवासुखोष्णवाटद्वादोपबलावलम् ॥

अर्थ-नागरमोषा और पंचमूल इनका काढा करके इसे दोषबली होय तो गरम और निर्वल होय तो सुखोष्ण देवे ॥

कट्फलादिकाढा ।

कट्फलाद्दवचापाठपुष्कराजाजिपर्पटैः ॥ देवदार्वभया-
शृंगीकणाभूनिवनागरैः ॥ भार्गीकलिंगकटुकासठीकट्-
तृणधान्यकैः ॥ समांशैः साधितः काथोहिग्वार्द्रकरसै
र्युतः ॥ कर्णमूलोद्भवंशोथंहितं मन्यागलाश्रयम् । कफवा-
तज्वरंश्वासंकासंहिकां हनुग्रहम् ॥ गलगंडगंडमालांस्वरभे
दंकफात्मकम् । शिरोगुरुत्वंवाधिर्यवृद्धिचकफमेदसोः ॥
दशमूलज्वरान्क्षेपः सन्निपातज्वराञ्जयेत् । अभिन्यासम
संज्ञांचकट्फलादिर्निहंतिच ॥

अर्थ-कायफर, नागरमोषा, वच, पाठ, पोहकरमूल, जीरा, पित्तपापडा, देवदार, हरड, काकडासिंगी, पीपर, चिरायता, सोंठ, भारगी, इन्द्रजों कुटकी, कचूर, रोहिषतृण और धनियों ये औषध समान भागले काढा, करके, उसमें हींग और अदरखका रस डालके पीये तो कर्णमूल, गर्दन

और गला इनकी सूजन, कफवातज्वर, श्वास, खांसी, हिचकी, हनुग्रह, गलगंड, गंडमाला, कफजन्यस्वरभेद, मस्तककी पीडा, बहरापना, कफ और भेद इनकी वृद्धि, दशमकारका ज्वर, सन्निपात, अभिन्यास और संज्ञानाश इनको यह कट्फलादिकाठा नाश करता है ॥

पित्तोल्बणसन्निपातनिदान ।

रक्तविण्मूत्रतादाहोस्वेदस्तृड्बलसंक्षयम् ।

मूर्च्छांचेतित्रिदोषेस्याल्लिंगंपित्तगरीयसि ॥

अर्थ—पित्तोल्बणसन्निपात होनेसे मलमूत्रका लालहोना, दाह, पसीने, प्यास, बलक्षय और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ॥

पित्तोल्बणसं० चिकि० काठा ।

परूपकाणित्रिफलादेवदारुसकट्फलमाचंदनंपद्मकंचैव-
तथाकटुकरोहिणी॥पृश्निपर्णीशतंत्वोभिस्त्रापितंशतिलंज्व-
रम् ॥ पित्तोत्तरेनृणामेतत्सन्निपातेचिकित्सितम् ॥

अर्थ—फालसे, त्रिफला, देवदारु, कायफर, लालचंदन, पद्मास, कुटकी और पिठवन ये औषध समान भागले रात्रिको शीतल जलमें भिगोयदेवे, प्रातःकाल काठाकर शीतल होनेपर पीवे तो पित्ताधिकसंनिपात दूरहो ॥

चंदनादिपानी ।

चंदनंपद्मकंचैवतथाकटुकरोहिणी ।

पृथक्पर्णीसमंसिद्धमुपितंशीतलंजलम् ॥

पित्तोत्तरेनृणामेतत्सन्निपातेचिकित्सिते ॥

अर्थ—लालचंदन, पद्मास, कुटकी और पृष्टिपर्णी, ये समानभागले रात्रिमें शीतल जलमें भिगोयदेवे, प्रातःकाल इस जलको छानके पीवे तो पित्ताधिक सन्निपात-दूरहो ॥

मुस्ताद्यष्टादशांगः ।

मुस्तापर्यटकोशीरदेवदारुमहौषधम् ।

त्रिफलाधन्वयासश्चनीलीकंपिल्लकंविबृत् ॥

किराततिक्तकंपाठावलाकटुकरोहिणी ।

मधुकंपिप्पलीमूलंमुस्ताद्योगणउच्यते ॥

अष्टादशांगमुदकंसन्निपातज्वरापहम् ॥
 पित्तोत्तरेसन्निपातेहितमुक्तमनीपिभिः ॥
 मन्यास्तंभेउरोघातेहनुस्तंभेशिरोग्रहे ॥

अर्थ—नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, देवदारु, त्रिफला, धमासा, नीली, कबीला, निसोय, चिरायता, पाठ, खरेटी, कुटकी, मुलहटी, पीपरामूल यह मुस्तादि अष्टादशांगगण इसका शीतलकाठा सन्निपातज्वरका नाशकरे और यह ऋषियोंने पित्ताधिक सन्निपात, मन्यानाडीके स्तभ, उरोघात, हनुस्तभ इनपर कहा है ॥

किरातादिकाठा ।

किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।
 पाठोदीच्यंमृणालंचशृतंपित्ताधिकेपिवेत् ॥

अर्थ—पित्ताधिक संनिपातमे चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाठ, नेत्रवाला और कमलगट्टा इनका शीत काठादेवे ॥

शक्यादिकाठा ।

शठीपुष्करमूलंचव्याघ्रीशृंगीदुरालभा ॥ वत्सकस्यच
 बीजानिपटोलंकटुरोहणी ॥ एपशक्यादिकोवर्गःसन्नि
 पातज्वरापहः । कासंश्वासंदिवानिद्रांरात्रौजागरणं
 तथा ॥ मुखशोषंतृपांदाहंत्रिदोषंचनियच्छति ॥

अर्थ—कचूर, पुहकरमूल, कटेरी, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजो, पटोलपत्र और कुटकी यह शक्यादिवर्ग सन्निपातज्वर, दमा, खांसी, दिनकी निद्रा, रात्रिमे जागना, मुखशोष, प्यास, दाह और त्रिदोष इनका नाशकरे ॥

कफोल्बणसन्निपातनिदान ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः ।
 कफोल्बणंसन्निपातंतंद्राकासेनचादिशेत् ॥

अर्थ—कफाधिक संनिपातमे आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह, वमन, बेचैनी, भ्रम, तन्द्रा और खांसी ये लक्षण होते हैं ॥

कफोल्बणचिकित्सा ।

बृहत्यौपुष्करंभांगीशठीशृंगीदुरालभा ।

वत्सकस्यचवीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥

बृहत्यादिगणः शस्तःसन्निपातेकफोत्तरे ।

श्वासादिपुचसर्वेषुहितः सोपद्रवेषुच ॥

अर्थ-दोनो कटेरी, पुहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी यह बृहत्यादिगण कफादिकसंनिपात, दम और सर्व उपद्रवपर हितकारक है ॥

कफोल्बणोपरकाथ ।

कफोत्तरेबृहत्यादिगणश्चदशमूलजः ।

परूपकाणित्रिफलादेवदारुसकटफलम् ॥

अर्थ-कफाधिक संनिपातपर बृहत्यादिगण, दशमूल, फालसे, त्रिफला, देवदारु और कायफल इनका काठा देय ॥

त्र्युल्बणसन्निपात । .

सर्वलक्षणसंयुक्तरुयुल्बणस्तुमतोबुधैः ॥

अर्थ-सर्वलक्षणोंके युक्त होय उसको त्र्युल्बणसंनिपात जानना ॥

नागरादिकाठा ।

नागरंधान्यकंभांगीपद्मकरंक्तचंदनम् । पटोलःपिचुमंद-

श्चत्रिफलामधुकंवला ॥शर्कराकटुकामुस्तागजाह्वाव्या-

धिघातकः । किराततिक्तममृतादशमूलीनिदिग्धिका ॥

योगराजोनिहंत्येपःसन्निपातज्वरापहः । सन्निपातसमु-

त्यानंसृत्युमप्यागतंजयेत् ॥

अर्थ-सोठ, धनियाँ, भांगी, पद्माख, लालचंदन, पटोलपत्र, नीमकी-छाल, त्रिफला, मुलहठी, खटेरी, मिश्री, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, कटुआ चिरायता, गिलोप, दशमूल और कटेली इनका काठा नृत्युसमानभी संनिपातका नाशकरे ॥

व्योपादिकाठा ।

व्योपाब्दत्रिफलारिष्टपटोलीतिक्तवत्सकैः ।

सभूर्निवामृतापाठैस्त्रिदोषज्वराजिज्वलम् ॥

अर्थ-सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोया, हरड, बहेडा, आँवला, नीम कीछाल, पटोलपत्र, कुटकी, इंद्रजों, चिरायता, गिलोय और पाठ इनका काठा त्रिदोषज्वरका नाशकरे ॥

वातपित्तोल्बणसन्निपात ।

भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोतिरुकू ।

वातपित्तोल्बणेर्विद्याल्लिंगमंदकफज्वरे ॥

अर्थ-भ्रम, प्यास, दाह, गौरव, मस्तकपीडा ये वातपित्तोल्बण और हीनकफ ऐसे सन्निपातमें लक्षण होते हैं ॥

वातपित्तोल्बणचिकित्सा ।

वातपित्तहरंवृष्यंकनीयःपंचमूलकम् ।

तत्काथोमधुनाहंतिवातपित्तोल्बणज्वरम् ॥

अर्थ-वातपित्तनाशक और वृष्य ऐसी लघुपंचमूल है अतएव इसका काठा शहद डालके देय तो वातपित्तोल्बण सन्निपातका नाशहोय ॥

वातश्लेष्मोल्बण ।

शैत्यंकासोरुचिस्तंद्रापिपासादाहरुक्तथा ।

वातश्लेष्मोल्बणेव्याधौलिंगंपित्तवरेविदुः ॥

अर्थ-वातकफाधिक और हीनपित्त ऐसा सन्निपात होनेसे शरदा, लांसी, अरुचि, तंद्रा, प्यास, दाह और पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

चिकित्सा ।

किराततित्तकंमुस्तंगुडूचाविश्वभेषजम् ।

चातुर्भद्रकभित्याहुवांतश्लेष्मोल्बणेज्वरे ॥

अर्थ-फुडुआ चिरायता, नागरमोया, गिलोय और सोंठ इनका काठा करके वातकफोल्बणज्वर वालेको देय इसको चातुर्भद्र कहते है ॥

पित्तकफोत्वण ।

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोस्थिवेदना ।

मंदेवातेव्यवस्यंतिलिंगंपित्तकफोत्वणे ॥

अर्थ—पित्तकफाधिक और हीनवात ऐसे संनिपातके होनेसे वांति, शीत, चारंवार दाह, प्यास, मोह और हड्डियोंमें पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

चिकित्सा ।

पर्पटःकटूफलंकुष्ठमुशीरंचंदनंजलम् । नागरंमुस्तकंशृं
गीपिप्पल्येषांशृतहितम् ॥ तृष्णादाहाग्निमांद्येषुपित्तश्ले
ष्मोत्वणेज्वरे ॥

अर्थ—पित्तपापडा, फायफर, कूठ, खस, लालचंदन, नेत्रवाला, नागर-
मोथा, सोठ, काकडासिंगी और पीपल इनका काढा प्यास, दाह, मदा-
मि और पित्तकफात्मकज्वर इनका नाश करे ॥

हीनवातमध्यपित्तवश्लेष्माधिकसं० ।

प्रतिश्याछर्दिरालस्यंतंद्रारुच्यग्निमार्दवम् ।

हीनवातेमध्यपित्तेचिह्नंश्लेष्माधिकेमत्तम् ॥

अर्थ—कफाधिक हीनवायु और मध्यपित्त ऐसे संनिपात होनेसे, सरक-
मा, घमन, आलस्य, तंद्रा, अरुचि और मदामि ये लक्षण होते हैं ॥

हीनवातमध्यकफवपित्ताधिकसं० ।

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्दाहस्तृष्णाभ्रमोरुचिः ।

हीनवातेमध्यकफेलिंगंपित्ताधिकेमत्तम् ॥

अर्थ—पित्ताधिक, हीनवायु और मध्यकफ ऐसे संनिपातके होनेसे नेत्र,
मूत्र और त्वचा ये पीलेहो तथा दाह, प्यास, भ्रम और अरुचि ये
लक्षण होते हैं ॥

हीनपित्तमध्यकफववाताधिकसं० ।

शिरोरुग्वेपथुश्वासप्रलापच्छर्द्यरोचकाः ।

हीनपित्तेमध्यकफेलिंगंवाताधिकेमत्तम् ॥

अर्थ—हीनपित्त, मध्यकफ और वाताधिक ऐसे संनिपातमें मस्तकशूल
कंपन, श्वास, प्रलाप, घमन और अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

हीनपित्तमध्यकफश्लेष्माधिकसं० ।

शीतगौरवतंद्राश्वप्रलापोस्थिशिरोतिरुक् ।

हीनपित्तमध्यवातेलिंगंश्लेष्माधिकेमतम् ॥

अर्थ—हीनपित्त, मध्यवात और कफाधिक संनिपात होनेसे शीतलने, अंगोंमें गौरवता, तन्द्रा, प्रलाप, हड्डी और मस्तकमें पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

कफहीनमध्यवातवपित्ताधिकसं० ।

पर्वभेदोग्निदौर्वल्यंतृष्णादाहोरुचिभ्रमः ।

कफेहीनेमध्यवातेलिंगंपित्ताधिकेविदुः ॥

अर्थ—कफहीन, मध्यवात और पित्ताधिक संनिपातमें संधियोमें पीडा, मंदाग्नि, प्यास, दाह, अरुचि और भ्रम ये लक्षण होते हैं ॥

हीनकफमध्यपित्तघवाताधिकसं० ।

कासश्वासप्रतिश्यायमुखशोपोतिपाइर्वरुक् ।

कफेहीनेमध्यपित्तैलिंगंवाताधिकेस्मृतम् ॥

अर्थ—हीनकफ, मध्यपित्त और वाताधिक संनिपातमें खाँसी, श्वास, सरे-कमा, मुखशोष और पसवाडोंमें अत्यंत पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

छहोंकीएकश्लोकसेचिकित्सा ।

प्रवृद्धं कर्पयेद्दोषं क्षीणं संवर्द्धयेद्भिपक् ।

चिकित्सेयां विधातव्यादोषयोर्हीनवृद्धयोः ॥

अर्थ—जो दोष बढाहो उसको क्षीण करे और क्षीणदोषको बढावे, इस प्रकार वैद्य क्षीण वृद्धदोषोंकी चिकित्सा करे ॥

प्रवृद्धेशमितेदोषे मध्यमः स्वयमेवाहि ।

शांतियातिशमनीते त्वनुबंध्यनुबंधवत् ॥

अर्थ—बढे दोषके शांतिहोनेसे मध्यम जो दोष है सो स्वयं शांति होजाते हैं जैसे सायीका शांतहोनेसे अर्थात् दूसरा दुर्बलहोनेसे आपभी शांति होजाता है ॥

द्वात्रिंशांगकाथ ।

भाङ्गीभूर्निवनिवायनकटुकवचाव्योपवासाविशालाराम्ना-
नंतापटोलीसुरतरुजनीपाटलातिदुकैश्च । ब्राह्मीदार्वागु-

डूचीत्रिवृतमतिविपापुष्करत्रायमाणैर्व्याघ्रीसिंहीकलिंगै-
 स्त्रिफलशठियुतैःकल्पितस्तुल्यभागैः ॥ काथोद्वात्रिश-
 नामात्रिभिरधिकदशान्सन्निपातात्रिहन्ति शूलंकासादि-
 हिक्काश्वसनगदरुजाध्यानविध्वंसकारी । ऊरुस्तंभांत्रवृ-
 द्धीगलगदमरुचिसर्वसंधिग्रहातिमातंगौघात्रिहन्यान्मृग-
 रिपुरिहचेद्रोगजालंतथैव ॥

अर्थ-भारंगी, चिरायता, नीमकी छाल, नागरमोथा, कुटकी, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, अहूसा, इंद्रायणका गूदा, रासना, धमासा, पटोलपत्र, देवदारु, हलदी, पाठल, कुचला, ब्राह्मी, दारुहलदी, गिलोय, निसोथ, अतीस, पोहकरमूल, त्रायमाण, दोनोंकटेरी, इन्द्रजौं, हरड, बहेडा, आमला और कचूर ये सब औषध समानभागले काढाकरे इसको द्वात्रिंशनामकाथ कहते हैं यह तेरह प्रकारके संनिपात, शूल, खाँसी, हिचकी, श्वास, अफरा, ऊरुस्तंभ, अंत्रवृद्धि, गलेका रोग अरुचि और संधिग्रह इनको जैसे हाथियोंकी पंक्तिकी सिंह नाश करताहै इसप्रकार यह काढा नाशकरे ॥

अष्टादशांगकाढा ।

भूनिवदारुदशमूलमहौषधाव्दतिक्तद्रवीजधनिकेभक्-
 णाकपायः । तंद्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियु-
 क्तमखिलज्वरमाशुहन्ति ॥ अष्टादशांगइत्येपमृत्युकल्पं-
 ज्वरंजयेत् ॥

अर्थ-चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौं, धनियाँ और गजपीपल इनका काढा करके पीवे तो तंद्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मोह, श्वास इनकरके युक्त सर्वज्वरोंका नाशकरे यह अष्टादशांग काढा मृत्युतुल्य ज्वरका नाशकरे ॥

द्वादशांग ।

दशमूलीकपायस्तुसपोष्करकणान्वितः ।

सन्निपातज्वरेदेयःश्वासकाससमन्विते ॥

अर्थ-दशमूल, पोहकरमूल और पीपल इनका काढा सन्निपात ज्वरपर देये तो श्वास, खाँसी और सन्निपात इनका नाशकरे ॥

सन्निपातपररेचन ।

विल्वकंत्रिवृतादंतीसमूलंचतुरंगुलम् । पक्कंपायंविस्त्रा-
व्यनीलीचूर्णविमिश्रितम् ॥ ससर्पिष्कंपिवेत्तूर्णसंनि-
पातेविरेचनम् ॥

अर्थ—बेलगिरी, निसोथ, दंती और अमलतासका गूदा इनका काटा करके इसमें नीलकाचूरा और घी मिलाय देवेतो यह सन्निपातका नाशकरे ॥

संज्ञानाशाचिकित्सा ।

कंपः प्रलपनंयस्यसंज्ञानाशश्चदारुणः । रसैश्चलाववर्तै-
श्चकुलिंगैःशशतित्तिरैः ॥ तर्पयेत्प्राक्पुराणेनसर्पिषाभ्यं-
जयेन्नरम् । बलारास्त्रागुडूच्याद्यैस्तैलैश्चपरिपेचयेत् ॥

अर्थ—जो रोगी कंप, प्रलाप और संज्ञानाश इनके युक्तहो इसको लवा, बटेर, चिड़ा, कबूतर और तीतर इनके मांसरस प्रथम पिलायके फिर अंगोंमें पुरानेघीकी मालिश करावे । तथा खरेटी, रासना और गिलोय इनका तेल देहमें लगावे ॥

विल्वादिकाढा ।

विल्वाग्निमंथः स्योनाकः काश्मरीपाटलातथा । शालि-
पर्णीपृथ्रिपर्णीवृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ उभयंदशमूलंस्या-
त्सन्निपातहरोगणः ॥

अर्थ—बेलगिरी, अरनी, टेढ़, कंभारी, पाठ, शालिपर्णी, पृष्टपर्णी, दो-
नोंफटेरी और गोतरू ये दशमूल है इनका काटा सन्निपातनाशक है ॥

शुंघ्यादिकाढा ।

शुंठीदारुशठीरजोवृहतिकार्तिकाकिरातांबुदानंताभिर्ज-
नितः कषायकवरः कृष्णामधुभ्यांयुतः । निःशेषांत्रि-
तयोद्भवज्वरहरोजीर्णज्वरस्यांतकृत्कासारिर्वीपमापहो-
निगदितः शुंघ्यादिकः सूरिभिः ॥

अर्थ—सोंठ, देवदारु, कचूर, पित्तपापडा, फटेरी, कुटफी, चिरायता,
नागरमोथा और धमासा इनका काटा पीपलका चूर्ण और शहद डालके

देवे तो निःशेष सन्निपात, जीर्णज्वर और खाँसी इनको यह शुंठ्यादि काटा नाशकरे ॥

अर्कादिकाटा ।

अर्कानंताकिरातामरतरुरसनासिंधुवारोग्रगंधातर्कारी-
शिग्रुपंचोषणधुणदायितामार्कवाणांकषायः । सद्यस्ती-
त्रान्त्रिदोपानपहरतितथामारुतंदंतबंधं शैत्यंगान्नेषुगाढं-
श्वसनकसनकंसूतिकावातरोगान् ॥

अर्थ—आककीजड, धमासा, चिरायता, देवदारु, रासना, निर्गुंडी, वच, अरनी, सहेजना, पीपरी पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अतीस और भोंगरा इनका काटा देय तो घोर त्रिदोष, धनुर्वात, वत्तिसीकाभिचना, देहकी अत्यंत शरीदी, श्वास, खाँसी, प्रसूतके और वादीके सर्वरोगोंको नाशकरे ॥

तिक्तादिकाटा ।

तिक्तातिक्तकपर्पटामृतशठीरास्नाकणापौष्करंत्रायंतीवृ-
हतीसुरौपधशिवादुःस्पर्शभांगीकृतः । क्वाथोनाशय-
तित्रिदोपनिकरंस्वापंदिवाजागरंनक्तंतृण्मुखशीपदाहक-
सनश्वासानशेषानपि ॥

अर्थ—कुटकी, चिरायता, पित्तपापडा, गिलोय, कचूर, रास्ना, पीपल, पोहकरमूल, त्रायमाण, कटेरी, देवदारु, सोंठ, हरड, धमासा और भारंगी इनका काटा करके देवे तो त्रिदोष, दिनकीनिद्रा, रात्रिका जागना, प्यास, मुखशोष, दाह, खाँसी और संपूर्णश्वास इनका नाशकरे ॥

त्रिदोषपर ।

पित्तप्रायेचशठ्यादिर्वृहत्यादिःकफादिके ।

वातोत्तरेसन्निपातेकट्फलादिः प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—पित्ताधिक संनिपातवालेको शठ्यादिकाटा और कफाधिकवा-
लेको बृहत्यादिकाटा एवं वाताधिक्य संनिपातवालेको कट्फलादिका-
टेकी योजना करे ॥

दाव्याद्यष्टादशांग ।

दारुनागरभूनिवधान्यतिकाकालिंगजैः । गजाह्वादशमू-
लाब्देर्मृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥ अष्टादशांगइत्येषःसन्निपा-
तज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥

अर्थ-देवदारु, सोंठ, चिरायता, धनियाँ, कुटकी, इन्द्रजों, गजपीपल,
दशमूल और नागरमोथा इन अठारह औषधोंका काढा देप तो अत्यंत
कठिन, मृत्युके समान ज्वर, सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयशूल, पसवाडे-
की पीडा, श्वास, हिचकी और वमन इनका नाशकरे ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीचंदनंपद्मनागरेंद्रयवासकमाभयारग्वधोशीरपा-
ठाधान्याब्दरोहिणी ॥ कषायंपाययेदेतंपिप्पलीचूर्णसंगु-
तम् । तंद्राकासज्वरश्वासपिपासादाहनाशनः ॥ विण्मू-
त्रानिलविष्टंभ्रिदोषप्रभवस्यच । गुडूच्यादिगणोद्येषः
पाचनोदीपनःपरः ॥

अर्थ-गिलोय, चंदन, पोहकरमूल, सोंठ, इन्द्रजो, धमासा, हरड,
अमलतासका गुदा, नेत्रवाला, पाठ, धनियाँ, नागरमोथा, कुटकी इन-
का काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके देवे तो तन्द्रा, खांसी,
ज्वर, श्वास, प्यास, दाह, मलमूत्र, वायुका रुकना, विदोषजन्यज्वर इनको
यह गुडूच्यादिगणकाढा दूरकरे और दीपन पाचनहै ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतादशमूलीभ्यांसाधितंविधिवज्जलम् ।

संनिपातज्वरंहन्यात्रयोदशविधंनृणाम् ॥

अर्थ-गिलोय और दशमूल इनका काढा तेरहप्रकारके संनिपात-
ज्वरोंको दूरकरे ।

विश्वादिकाढा ।

विश्वशुंठीदशमूलीछिन्नापाठाचपिप्पलींद्रयवैः ।

सकिराततिकासाशमयतिहतौजसंसद्यः ॥

अर्थ-अतीस, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपर, इन्द्रजौं, कडुआ चिरायता और अडूसा इनका काढा देय तो ज्वरकरके क्षीणहुआरोगी शीघ्र अच्छाहोय ॥

त्र्यूपणादिकाढा ।

त्र्यूपणदशमूलशुंठीभांगीछिन्नोद्भवःकाथः ।

पीतःशमयतिसहसाज्वरमुग्रंसंनिपाताख्यम् ॥

अर्थ-त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय इनका काढा उग्रसंनिपातको शमन करे ॥

दशमूलादिकाढा ।

द्विपंचमूलीपद्मग्रंथाविश्वगृध्रनखीद्वयम् ।

कफवातहरःकाथोसंनिपातहरः परः ॥

अर्थ-दशमूल, पीपरामूल, सोंठ, वेर और झरियावेर इनका काढा कफवात हारक और संनिपातको दूरकरे ॥

आढरूषादिकाढा ।

सिंहास्यपर्पटारिष्टयष्टीधान्याब्दनागरम् । दाहृग्रगंधेंद्रय

वाइवदंष्ट्राग्रंथिकंतथा ॥ एपांकपायमाहृत्यसंनिपातज्व-

रीपिवेत् । श्वासातिसारकासग्रशूलारुचिहरंपरम् ॥

अर्थ-अडूसा, पित्तपापडा, नीमकी छाल, मुलहठी, धनियाँ, नागरमोथा, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्रजौं, गोखरु और पीपलामूल इनका काढा संनिपातज्वर, श्वास, अतिसार, खाँसी, शूल और अरुचिको दूरकरे ॥

कट्फलादिकाढा ।

कट्फलत्रिफलादारुचंदनंसपरूपकम् । कटुकंपद्मकोशी

रंविपचेत्कार्पिकंजले ॥ तत्संनिपातदाहग्रंपानमात्रेणपू-

जितम् । दीर्घकालप्रयुक्तानांज्वराणाममृतोपमम् ॥

अर्थ-कायफर, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फाल्गु, पटोलपत्र, पद्मास और नेत्रवाला इनका काढा संनिपात, दाह, जीर्णज्वर इनपर साक्षात् अमृतके तुल्य है ॥

किरातादिकाढा ।

चिरज्वरेवातकफोल्बणवात्रिदोषजेवादशमूलमिश्रः ।

किराततित्तादिगणःप्रयोज्यःशुद्धार्थिनेवात्रिवृताविमिश्रः ॥

किराततित्तकोमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

किरातादिगणोह्येषश्चातुर्भद्रकमित्यपि ॥

अर्थ-बहुतदिनका वात कफोल्बण ज्वर और त्रिदोष ज्वर इनपर चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह किरातादिगण और दश-मूलकी औषध इनका काढा करके देवे यदि इसको दस्तलानेके अर्थ देवेतो इसमें निसोथ मिलायलेवे ॥

अष्टादशांगकाढा ।

दशमूलीशठीजृंगीपौष्करंसदुरालभम् ।

भार्गीकुटजबीजचपटोलंकटुरोहिणी ॥

अष्टादशांगइत्येषःसंनिपातज्वरापहः ।

कासहृद्ग्रहपार्श्वतिश्वासहिक्कावर्माहरः ॥

अर्थ-दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इसको अष्टादशांग कहते हैं यह काढा संनिपात ज्वर, खँसी, हृद्ग, पार्श्वशूल, श्वास, हिचकी और चमन इनको नाशकरे ॥

पंचतित्तककाढा ।

क्षुद्रापुष्करभूनिवगुडूचीविश्वभेषजैः ।

पंचतित्तकनामार्यंक्राथोहंत्यष्टाज्वरम् ॥

अर्थ-कटेरी, पोहकरमूल, चिरायता, गिलोय और सोंठ यह पंचतित्तना-मक गणहै इसका काढा आठप्रकारके ज्वरोंको नाशकरे ॥

दाव्यंबुदादिकाढा ।

दाव्यंबुदातित्तफलत्रिकंचक्षुद्रापटोलीरजनीसनिवा ।

क्राथंविदध्याज्वरसन्निपातेनिश्चेतनेपुंसिविवोधनार्थम् ॥

अर्थ-दारुहलदी, नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, कटेरी, पटोलपत्र,

अर्थ—अतीस, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपर, इन्द्रजौं, कटुआ चिरायता और अडूसा इनका काढा देय तो ज्वरकरके क्षीणहुआरोगी शीघ्र अच्छाहोय ॥

व्यूषणादिकाढा ।

व्यूषणदशमूलशुंठीभांगीछिन्नोद्भवःकाथः ।

पीतःशमयतिसहसाज्वरमुग्रसंनिपाताख्यम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय इनका काढा उग्रसंनिपातको शमन करे ॥

दशमूलादिकाढा ।

द्विपंचमूलीपङ्ग्रथाविश्वगृध्रनखीद्वयम् ।

कफवातहरःकाथोसंनिपातहरः परः ॥

अर्थ—दशमूल, पीपरामूल, सोंठ, वेर और झरियावेर इनका काढा कफवात हारक और संनिपातको दूरकरे ॥

आढरूपादिकाढा ।

सिंहास्यपर्षटारिष्टयष्टीधान्याचन्दनागरम्।दारुग्रगंधेद्रय

वाश्वदंष्ट्राग्रंथिकंतथा ॥ एपांकपायमाहृत्यसंनिपातज्व-

रीपिवेत्।श्वासातिसारकासघ्नशूलारुचिहरंपरम् ॥

अर्थ—अडूसा, पित्तपापडा, नीमकी छाल, मुलहठी, धनियाँ, नागरमोथा, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्रजौं, गोखरू और पीपलामूल इनका काढा संनिपातज्वर, श्वास, अतिसार, खाँसी, शूल और अरुचिको दूरकरे ॥

कट्फलादिकाढा ।

कट्फलंत्रिफलादारुचंदनंसपरूपकम् । कटुकंपद्मकोशी

रंविपचेत्कार्पिकंजले ॥ तत्संनिपातदाहघ्नंपानमात्रेणपू-

जितम् । दीर्घकालप्रयुक्तानांज्वराणाममृतोपमम् ॥

अर्थ—कायफर, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, पटोलपत्र, पद्मास और नेत्रवाला इनका काढा संनिपात, दाह, जीर्णज्वर इनपर साक्षात् अमृतके तुल्य है ॥

किरातादिकाढा ।

चिरज्वरेवातकफोल्बणेवात्रिदोषजेवादशमूलमिश्रः ।

किराततिकादिगणःप्रयोज्यःशुद्धचर्थिनेवात्रिवृताविमिश्रः ॥

किराततिकाकोमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

किरातादिगणोह्येषश्चातुर्भद्रकमित्यपि ॥

अर्थ-बहुतदिनका वात कफोल्बण ज्वर और त्रिदोष ज्वर इनपर चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह किरातादिगण और दश-मूलकी औषध इनका फाटा करके देवे यदि इसको दस्तलानेके अर्थ देवेतो इसमें निसोथ मिलायलेवे ॥

अष्टादशांगकाढा ।

दशमूलीशठीशृंगीपौष्करंसदुरालभम् ।

भार्गीकुटजवीजंचपटोलंकटुरोहिणी ॥

अष्टादशांगइत्येषःसंनिपातज्वरापहः ।

कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥

अर्थ-दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इसको अष्टादशांग कहते हैं यह फाटा सन्निपात ज्वर, खाँसी, हृद्रोग, पार्श्वशूल, श्वास, हिचकी और वमन इनको नाशकरे ॥

पंचतित्तककाढा ।

क्षुद्रापुष्करभूर्निवगुडूचीविश्वभेषजैः ।

पंचतित्तकनामायंकाथोहंत्यष्टाज्वरम् ॥

अर्थ-फटेरी, पोहकरमूल, चिरायता-गिलोय और सोंठ यह पंचतित्तकना-मक गणहै इसका फाटा आठप्रकारके ज्वरोंको नाशकरे ॥

दाव्यैबुदादिकाढा ।

दाव्यैबुदातित्तफलत्रिकंचक्षुद्रापटोलीरजनीसनिवा ।

काथंविदध्याज्वरसन्निपातेनिश्चेतनेपुंसिविवोधनार्थम् ॥

अर्थ-दारुहलदी, नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, फटेरी, पटोलपत्र,

हलदी और नीमकी छाल इनका काढा संनिपातज्वरोंमें जो मृन्दा आतीहै उसे दूरकरे ॥

अंध्यादिकाढा ।

अंध्यांद्रजामरपुरकृमिशत्रुभांगीभृंगत्रिकङ्गनलकट्फलपौ-
ष्कराणाम् । रास्नाभयावृहतिकाद्वयदीप्यभूतकेशी-
किरातकवचाचविकावृकीणाम् ॥ काथोहन्यात्संनिपा-
तान्समग्रान्बुद्धिभ्रंशस्वेदशैत्यप्रलापान् । शूलाध्मानं
विद्रधिंश्लेष्मवातान्वातव्याधीन्सूतिकानांचतद्वत् ॥

अर्थ—पीपरामूल, इन्द्रजौ, देवदारु, भृंगल, वायविडंग, भारंगी,
भांगरा, त्रिकुटा, चित्रक, कायफर, पोहकरमूल, रास्ना, हरड, दोनोंकटेरी,
अजवायन, निर्गुडी, चिरायता, वच, चव्य और पाठ इनका काढा
सर्वसंनिपात, बुद्धिभ्रंश, पसीने, शीत, प्रलाप, शूल, अफरा, विद्रधि, कफ-
घात, वादीकेरोग और प्रसृतके रोग इनका नाशकरे ॥

लशुनादिकाढा ।

लशुनंतित्तकंकांडंभांगीचातिविपातथा ।

नरमूत्रेणचकाथःसन्निपातेसुदारुणे ॥

अर्थ—लहनस, चिरायता, तिरकांड, भारंगी और अतीस इनको
घोंडेके मूत्रमें काढाकरके देय तो दारुणसन्निपातज्वर नाशहोय ॥

दशमूलादिकाढा ।

दशमूलस्यनिर्गुहः कट्फलादिरजोयुतः ।

तुल्याद्रैकरसोपेतोमृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—दशमूलका निर्गुहकरके उसमें कायफलका चूर्ण और काटेके समान
अदरसका रस ढालके देय तो मृत्युके समान कठिन ज्वरका नाशकरे ॥

पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूलीकिरातादिर्गणोयोज्यस्त्रिदोषजे ।

पित्तोत्कटेतुमधुनाकणयाचकफोत्कटे ॥

अर्थ—पंचमूल और किरातादिगण इनका काढा त्रिदोषजनित ज्वरपर
तथा पित्तोत्कटपर शहदके और पीपलका चूर्ण मिलायके देवे ॥

अर्कादिकाढा ।

अर्कग्रंथिकशिग्रदारुचविकानिर्गुडिकापिप्पलिरास्त्राभृंग
पुनर्नवानलवचाभूनिवशुंठीकृतः ॥ काथःसंहरतित्रिदो
पमखिलंस्वापानिलंसूतिकानानामारुतशैत्यशांतिकृद्
पस्मारस्मरव्यंबकः ॥

अर्थ-आफकी जड़, पीपरामूल, अमलतासका गुदा, देवदारु, चव्य,
निर्गुडी, पीपल, रास्त्रा, आँगरा, साँठ, चित्रक, वच, चिरायता और
साँठ इनका काढा सर्व त्रिदोष ज्वर, निद्रा, प्रसूतके रोग, अनेकप्रकार
की वायु, शीत, अपस्मार इनका नाशकहै ॥

मृतसंजीवनीवटिका ।

विपत्रिकटुकं गंधं टंकणं मृतशुल्बकम् । धतूरस्य च बीजा
निर्हिगुलं नवमं मतम् ॥ एतानि समभागानि दिनेकं विजया
द्रवैः । मर्दयेच्चणकाकाराकर्तव्यावटिकाथसा ॥ भक्षणी
यानुपातव्योरविमूलकपायकः । मृतसंजीवनीनाम्नासं
निपातज्वरांतकृत् ॥

अर्थ-सिगियाविप, त्रिकुटा, गंधक, सुहागा, ताम्रकीभस्म, धतूरेके
बीज और हिगुल ये नौ औषध समान लेकर चूर्णकर भांगरेके रसमें
एकदिन खरलकरे फिर चनेके प्रमाण गोली बनावे एकगोली खायके
ऊपरसे आफकीजड़का काढा पीवे तो सन्निपातज्वरका नाशहो ॥

त्रिनेत्ररस ।

शुद्धसूतंसमं गंधं सूतांशं मृतताम्रकम् । त्रिभिस्तुल्यैर्गवां
क्षीरैर्मर्दयेदातपेखरे ॥ मर्दयेद्दिनमेकं तु निर्गुडीशिग्रुजद्रवैः ।
विधायगोलंतंगोलमंधमृपागतंपचेत् ॥ त्रियामान्वालुका
यंत्रततःखल्वेविचूर्णयेत् । अष्टमांशं विपंतत्रक्षिपेत्तेनापिम
र्दयेत् ॥ त्रिनेत्राख्योरसो ह्येपदेयोगुं जाद्वयोन्मितः । पंच
कोलकपायेण छागीदुग्धेन वा सह ॥ रसेनानेन भुक्तेन सं
निपातज्वरो महान् । संक्षयंत्रजतिक्षिप्रं कर्तव्यानात्रसंशयः ॥

अर्थ-पारा गंधक दोनों शुद्ध और तामेकी भस्म ये समभागले और इन औषधोंके बराबर गौका दूध डालके तीव्र धूपमें खरलकरे और एक दिन निशुंठीके रसमें एकदिन सहेंजनेके रसमें खरकर गोला बनाय अंधमूषामें रखके तीन प्रहर वालुकार्यत्रमें पचनकरावे फिर सिद्धहोनेके पश्चात् अष्टमांश शुद्धविष डालके फिर खरलकरे वह त्रिनेत्राख्यरस दोरत्ती पंचकोलके काढेसे अथवा बकरीके दूधसे देय तो निःसंशय महासंनिपातका नाशहोय ॥

भस्मेश्वररस ।

भस्मपोडशनिष्कस्यादारण्योपलसंभवम् । मरिचनिष्क
मात्रंचविषनिष्कविचूर्णयेत् ॥ रसोभस्मेश्वरोनाम्नासनि
पातज्वरांतकृत् । एकगुंजामितोभक्ष्यार्दकस्यद्रवेणहि ॥

अर्थ-आरनेडपलोंकी राख १६ तोले कालीमिरच और सिंगीयाविष ये प्रत्येक एक एक तोले ले वारीक चूर्णकरे यह भस्मेश्वर रस एकरत्ती अदरखके रससे देयतो संनिपातज्वरका नाशकरे ॥

अग्निकुमाररस ।

द्वौकपौंसूतकाद्ग्राह्यौगंधकाद्द्वौतथैवच । यत्नतस्तू-
भयंमर्द्यदिनंहंसपदीरसैः ॥ कल्कस्यवटिकांकृत्वानिक्षि-
पेत्काचभाजने । कर्पकममृतंतत्रक्षिप्त्वावक्रंनिरोधयेत् ॥
कुपिकायाः परौभागौवालुकाभिश्चपूरयेत् । सार्द्धयावद
होरात्रंतावत्तत्रपचेद्रसम् ॥ दीपमात्रेणलोदेयः स्वांगशीतं
समुद्धरेत् । तोलार्धममृतंतत्रक्षिपेत्तावत्तथोपणम् ॥ भ-
क्षितोरक्तिकामात्रोरसस्त्वग्निकुमारकः । सन्निपातज्व
रंहन्याद्वातंमंदाग्नितामपि ॥ शूलंसंग्रहणींगुल्मक्षयंपांडु
गदंतथा । श्वासकासादिकान्सर्वांगदानेपविनाशयेत् ॥

अर्थ-पारा, गंधक, दोदो कर्पलेकर, फज्जलीकरे फिर उसको हंस-
पदीके रसमें १ दीन खरलकरे फिर इस कल्ककी गोली बनाय कांचकी
शीशीमें भरे उसके ऊपर १ कर्प विषका चूर्ण डालके शीशीका मुख बंद

करे फिर इस शीशीको बड़े बर्तनमें रखके गलेपर्यंत वालूभरदेवे और १२'प्रहर दीपकानिसे पचन करावे स्वांगशीतल होनेपर उसको चूहेपरसे उतार औषधको खरलमें डाले आधातोला विप और आधा तोला कालीमिरच डालके खरलकरे, यह अभिकुमाररस एकरत्ती रोगीको देय तो संनिपातज्वर, वायु, मंदाग्नि, शूल, संग्रहणी, गोला, पांडू, श्वास और खांसी इत्यादि रोगोंका नाशकरे॥

पंचवक्ररस ।

गंधेशटकं मरिचं विपंधत्तूरजैरसैः । दिनसंमर्दितं शुष्कं
पंचवक्रोरसो भवेत् ॥ आर्द्रकस्य द्रवेणैपदात्तव्योरक्ति
कामितः । संनिपातज्वरं घोरं नाशयेन्नान्नसंशयः ॥

अर्थ-गंधक, पारा, सुहागा, कालीमिरच और सींगियाविप ये औषध धतूरेके रसमें १ दिन खरल कर सुखायले तो यह पंचवक्ररस तयार हो इसको अदरखके रससे एकरत्ती देवे तो घोरसंनिपातका नाशकरे॥

दूसरा प्रकार ।

शुद्धं सूतं विपं गंधं मरिचं टंकणकणाम् । मर्दयेद्भूर्तज
द्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत् ॥ पंचवक्रो रसो नाम द्विशुं
जः सन्निपातहा । अर्कमूलकपायंतु सत्र्यूपमनुपा
ययेत् ॥ युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत् ।
रसेनानेन शाम्यति सक्षौद्रिण कफादयः ॥ मध्वार्द्र
करसेनैनं पिबेदग्निविवृद्धये । यथेष्टं घृतमांसाशी
शक्तो भवति पावकः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, विप, गंधक, कालीमिरच, सुहागा और पीपल इन छः औषधोंको धतूरेके रससे १ दिन खरलकर २ रत्तीकी गोली बनावे इसे पंचवक्ररस कहते हैं यह आककीजठके फाटेमें त्रिकुटाफा चूर्णामिलायेक १ गोली देय और दहीभात इसके ऊपर पथ्यदेवे पीनेके वास्ते शीतल जलदेय तो यह सन्निपातज्वरको दूरकरे शहदके साथ लेनेसे कफादिरोग दूरहोता तथा अदरखके रसमें शहद मिलायेके पीवे तो

जठराग्नि की वृद्धि होय और घृत मांसादिक भारी अन्न यथेष्ट भक्षण करे तो भी पचजावे तथा मस्तक पर जल की धार देनी चाहिये ॥

उन्मत्तरस ।

रसगंधकतुल्यांशंधतूरफलजैरसैः ।

मर्दयेद्दिनमेकंचतत्तुल्यंत्रिकटुक्षिपेत् ।

उन्मत्ताख्योरसोनामनस्येस्यात्संनिपातजित् ॥

अर्थ-शुद्धपारा १ भाग, गंधक १ भाग इनको धतूरेके फलके रसमें एकदिन खरलकर फिर इसमें बराबरका त्रिकुटाका चूर्ण मिलावे इस रसकी नस्यलेनेसे संनिपात दूरहोवे ॥

कनकसुंदररस ।

कनकस्याष्टशाणाःस्युःसूतोद्वादशभिर्मतः । गंधोपिद्वा-
दशप्रोक्तस्ताम्रंशाणद्वयोन्मितम् ॥ अभ्रकस्यचतुःशाणं
माक्षिकस्यद्विशाणकम् । वंगोद्विशाणःसौवीरंत्रिशाणं
लोहमष्टकम् ॥ विषंत्रिशाणकंकुर्याल्लंगलीपलसंमिता ।
मर्दयेद्दिनमेकंचरसैरम्लफलोद्भवैः ॥ दद्यान्मृदुपुटेवह्नौ
ततःसूक्ष्मंचूर्णयेत् । मापमात्रोरसोदेयःसंनिपातेसु-
दारुणे ॥ आर्द्रकस्वरसेनैवरसोनस्वरसेनवा । किलासं
सर्वकुष्ठानिविसर्पंचभगंदरम् ॥ ज्वरंगरमजीर्णचजये
द्रोगहरोरसः ॥

अर्थ-सोना २४ मासे, पारा ३ तोले, गंधक ३ तोले तामेकी भस्म ८ मासे, अभ्रकभस्म १६ मासे, सोनामक्लीकीभस्म ८ मासे, वंगभस्म ८ मासे शुद्धसुरमा २ तोलभर, लोहभस्म २ ॥ तोले, सर्गियाविष ६ तोले भर, कलियारीकीजड ४ तोले लेय, सबको नींबूके रसमें १ दिन खरलकर मिट्टीके शराव संपुटमें रख कपड मिट्टी चढाय आरने उपलोंकी हलकी पुटेदेवे शीतलहोनेपर उसमेंसे निकाल खरलमें डाल वारीक चूर्णकरके धररक्खे, इसको कनकसुंदररस कहतेहै यह १ मासे ज्वररखेके रसमें अथवा लहसनके रसमें लेय तो घोर संनिपातको दूरकरे, तथा किलासकुष्ठ, इतरकुष्ठ, विसर्प, भगंदर, ज्वर, विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूरकरे ॥

तंद्रासां० ।

सन्निपातज्वरोत्पन्नायुत्तयातंद्राजयेद्भिषक् ।

उपद्रवः कष्टमोज्वराणांसविशेषतः ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें तन्द्रा उत्पन्नहोतीहै उसको वैद्य युक्तिसे जाते, यह ज्वरमें कष्टसाध्य उपद्रवहै ॥

तंद्रालक्षण ।

आचितामाशयकफेसंनिपातज्वरेदृढे । शान्तिववश्यंत-
स्याशुतंद्रासमुपजायते ॥ अभिद्रवरसक्षीरदिवास्वाप-
निषेवणात् । दुर्बलस्याल्पवातस्यजंतोः श्लेष्माप्रकु-
प्यति ॥ वायुमार्गिसमावृत्यधमनरिनुसृत्यसः । तंद्रासु-
घोरांजनयेत्तस्यावक्ष्यामिलक्षणम् ॥ उन्मीलितविनिर्भुंभे-
परिवर्तिततारके । भवतस्तस्यनयनेलुलितेचलप-
क्ष्मणी ॥ विवृताननदंतोष्ठमुद्गुरुत्तानशायिनम् ॥ पिच्छ-
लोच्छिन्नतंतुश्वकंठेश्लेष्मास्यगच्छति ॥ कंठमार्गावरोधश्ववै-
कृतंचोपजायते । सोर्वाक्त्रिरात्रंसाध्यः स्यादसाध्य-
स्तुततः परम् ॥

अर्थ—जिसज्वरमें आमाशयमें आम और कफ इनके संचय करके दृढसंनिपात होकर शान्तिहोनेपर उस रोगीके निश्चय तन्द्रा उत्पन्नहोती है और पतलेरस, दूध और दिनकी निद्रा इनके सेवन करनेसे दुर्बल तथा अल्पवायुवाले रोगीके कफ कुपितहोता है और वो कफवायुके मार्गको रोगकर धमनियोंमें प्रवेश करते हैं और घोर तन्द्रा उत्पन्नकरे उसके लक्षण कहताहूँ । उसरोगीके नेत्र आधे मिचेहुए किंवा टेढेसे हो, तारे फिरे तथा नेत्रोंकी घनी चंचलहो, नेत्रगिरेसे प्रतीतहो, होठ अचल-होकर मुख खुला तथा दांत बाहरसे दीखे, वारंवार चित्त लेटे, चिकना तंतुयुक्त कफको गलेमें लावे तथा कंठमार्ग रुकजावे इसप्रकार विकृति होतीहै यह तीनरात्रिके पूर्व साध्यहै और त्रिरात्रानंतर असाध्य जानना ॥

असुरादिअंजन ।

असुराह्वस्य विट्चूर्णं कस्तूरीमधुसंयुतम् ।

अर्थ-आमलोको सिजायकर पीसडाले, फिर इसमें मुनका (दाख)
सौंठ इनका चूर्ण मिलाय शहदके साथ देवे तौ खाँसी, श्वास, मूच्छा,
अरुचि ये रोग दूर हों ॥

संनिपातप्रकोपकारण ।

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैःकटुमधुरसुरातापसेवाकपायैः

कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशाताहारसौहित्यशक्तिः ।

शोकव्यायामचिंताग्रहणवनितयात्यंतसंगप्रसंगैः

प्रायः कुप्यंतिपुंसामधुसमयशरद्वर्षणेसंनिपाताः ॥

अर्थ-खट्टे, चिकने, गरम, विदाही, चरपरे, मधुर, मद्य, धूप, कपेलेपदा-
थैकि सेवनसे तथा काम, क्रोध, अतिरूक्ष, भारीपदार्थोंका कंठपर्यंत भोज-
न, मांसभक्षण, शीतपदार्थसेवन शोक, श्रम, चिंता, पिशाचबाधा, अति-
स्त्रीप्रसंग इनकारणोंसे और चैत्र, वैशाख, आश्विन, कार्तिक, श्रावण, भाद्र-
पद इनमहीनोंमें संनिपातका प्रायः प्रकोपहोताहै ॥

संनिपातोंकेनाम ।

संधिकश्चांतकश्चैवरुग्दाहश्चित्तविभ्रमः । शीताङ्गस्तं-

द्रिकःप्रोक्तःकंठकुब्जश्चकर्णकः ॥ विख्यातोभुग्नेत्र-

श्चरक्तष्ठीवीप्रलापकः । जिह्वकश्चेत्यभिन्यासस्सत्रिपाता

स्रयोदश ॥ ४ ॥

अर्थ-१ संधिक, २ अंतक, ३ रुग्दाह, ४ चित्तविभ्रम, ५ शीतांग,
६ तंद्रिक ७ कंठकुब्ज, ८ कर्णक, ९ भुग्नेत्र, १० रक्तष्ठीवी, ११ प्रलापक,
१२ जिह्वक और १३ अभिन्यास ये तेरह संनिपात कहे हैं ॥

उनकीमर्यादा ।

संधिकेवासराःसप्त चान्तकेदशवासराः । रुग्दाहेविंशति-

ज्ञेयावन्हाष्टौचित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमेकंतुशीतांगेतन्द्रि-

केपंचविंशतिः।विज्ञेयावासराश्चैककंठकुब्जेत्रयोदश ॥ ६ ॥

कर्णकेचत्रयोमासाभुग्नेत्रेदिनाष्टकम् । रक्तष्ठीवीदशा

हानिचतुर्दशप्रलापके ॥ ७ ॥ जिह्वकेषोडशाहानिकला

भिन्यासकक्षणे।परमायुरिदंप्रोक्तंभ्रियतेतत्क्षणादपि ॥ ८ ॥

अर्थ-संधिककी ७, अंतककी १०, रुग्दाहकी २०, चित्तविभ्रमकी २४,

शीतांगकी १५, तंद्रिककी २५, कंठकुब्जकी १३, कर्णककीतीन महीना (९० दिन) भुमनेत्र ८, रक्तष्ठीवीकी १०, प्रलापकी १४, जिह्वककी १६, अभिन्यासकी १६ दिनकिये, संनिपातोंकी परमायुके दिन कहें, परंतु रोगी शीघ्रही मरजाता है ॥

साध्यासाध्य ।

संधिकस्तन्द्रिकश्चैवकर्णकःकंठकुब्जकः ।

जिह्वकश्चित्तविभ्रंशःषट्साध्याःसप्तमारकाः ॥ ९ ॥

अर्थ—संधिक १, तंद्रिक २, कर्णक, ३, कण्ठकुब्ज ४, जिह्वक ५, चित्तविभ्रंश ६ ये छह साध्य हैं बाकी बचे सात सौ मारक हैं ॥

संधिकसन्निपात ।

पूर्वरूपकृतशूलसंभवंशोपवातबहुवेदनान्वितम् ।

श्लेष्मतापवलहानिजागरसन्निपातमितिसंधिकंवेदेत् ॥

अर्थ—जिसज्वरके पूर्वरूपमें शूल, शोष, वायुकी अत्यंतपीडा, कफ, संतापवलकी हानी और जागरण ये लक्षण हों उसको संधिक संनिपात जानना ॥

संधिकारीरस ।

शुद्धंसूतंसमंगंधमारितंचाभ्रकंसमम् । त्रिक्षारजीरकव्यो
पत्रिफलालवणैःसमम् ॥ चित्रकस्यकपायेणदिनैकंमर्द
येदृढम् । गुंजापंचमितंखादेत्संधिकारिरितिस्मृतः ॥पि-
प्लीमधुनाचानुपिवेदुष्णोदकंतथा ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, अभ्रकभस्म, तीनोंक्षार, जीरा, त्रिकुटा, त्रिफला, निमक ये समानभागले, चित्रकके काटेमें १ दिन खरल करे यह संधिकारी रस ५ रसी शहत पीपल इनके साथ देवे और ऊपर गरमजल पिवावे तो यह संधिकसन्निपातको दूरकरे ॥

संनिपातानलरस ।

रसभस्मसमंगंधंताम्रभस्मद्वयोःसमम् । ताम्रतुल्यंखर्प
रंचखर्परांशंचिह्निगुलम् ॥ अम्लवेतसकाभावेक्षारंचणक
संभवम् । जंवीरैर्गभितंरुध्वापुटकेभूधरेपचेत् ॥ आदायखल्ल
येच्चूर्णैर्हिगुकर्पूरत्र्युपणम् ॥ चत्वारःसूततुल्याःस्युःसत

ब्राह्म्याद्रकद्रवैः। भावयेच्चमहाराष्ट्र्यानिर्गुड्याकरवीरजैः ॥
 द्रवैरैतैः पृथग्भाव्यसप्तधासप्तधाक्रमात् । चूर्णयित्वा तु पट्ट-
 गुंजंदापयेदाद्रकद्रवैः ॥ सन्निपातानलः सोयंरसः स्यात्सं-
 निपातजित् । अतितंद्राज्वरश्वासक्लमकासात्तिसारजित् ॥

अर्थ- पारदभस्म और गंधक, दोनों एक २ भाग ताम्रभस्म, स्वप-
 रिया और हिंगुल ये प्रत्येक दो दो भाग, लेकर अमलवेतके रसमें यदि
 अमलवेत न मिले तो चनाखार और जंभीरीके रसमें खरलकर भूधर-
 यंत्रमें एकपुट देवे फिर हींग, कपूर, सोंठ, भिरच, पीपल ये एकरभागले
 उन्हांसे खरलकरे और ब्राह्मी, अदरख, जलपीपल, निर्गुंडी, कनेर इन
 प्रत्येकके रसकी सात २ भावना देय, तो यह संनिपातानल रस तया-
 रहो, इसमेंसे छःरत्तीरस अदरखके रससे देय तो संनिपात, तंद्रा, ज्वर,
 श्वास, ग्लानि, खाँसी और अतिसार इनको नाशकरे ॥

निर्गुड्यादिधूप ।

निर्गुंडीपुरसहितःसिद्धार्थकनिवपत्रसंयुक्तः ।

सर्जरसेनसमेतोधूपःसंधिकग्रहंहरति ॥

अर्थ-निर्गुंडी, गूगल, सरसो, नीमके पत्ते और राल इनकी धूनी संधि-
 क संनिपातका नाशकरे ॥

दूसरानिर्गुड्यादिधूप ।

निर्गुंडीपिचुमंदकुण्डविजयाकार्पाससिद्धार्थकैःपट्टग्रंथात-
 गरामरेंद्रतरुभिमार्तंडमूलान्वितैः। चंडापावकरुद्रमाल्य-
 सहितैर्मध्वासवैर्मोदितैर्धूपोयंग्रहसंनिपातजनितां पीडां-
 पिनापि क्षणात् ॥

अर्थ-निर्गुंडी, नीमकीपत्ती, कूठ, भौंग, विनोले, सरसो, वच, तगर,
 देवदार, आककीजड, किरमानी अजवायन, चित्रक और बेलगिरी इन-
 का चूर्णकर इसको शहद और दारुसे भिगोय धूपदेवे तो संनिपात और
 ग्रहोकी पीडा इनको क्षणमात्रमे दूरकरे ॥

देवदारुकाठा ।

सुरदारुसठीसुधालतासुवहाशुंठियुताःशृताजलेन ।

सपुराःशमयन्तिसेविताःसततंहंतिसदासदागतिम् ॥

अर्थ—देवदारु, कचूर, गिलोय, रास्ना और सोंठ इनके कोठमें गूगल डालके सेवन करे तो वायूका नाशकरे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तैरंडप्राणदावाणदारुच्छिन्नारास्नाभीरुकचूरतिकाः ।

वासाविश्वापंचमूलीयुगाढयोहन्यान्मन्यास्तंभसंधियहांतिम्

अर्थ—नागरमोथा, अंडकीजड, जलपीपल, नीलापियावासा, तेलिया देवदारु, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ और दशमूल इनका काढा मन्यास्तंभ और संधिवात इनका नाशकरे ॥

वचादिकाढा ।

वचाकवचकच्छुरासहचरामृतभंगुरासुराह्वयननागरातरुणदारुरास्नापुरा । वृपातरुणभीरुभिःसहभवन्तिसंधिग्रहव्यथोरुजडिमकुमभ्रमणपक्षघातापहाः ॥

अर्थ—वच, धमासा, गिलोय, भारंगी, पियावासा, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, विधायरा, रास्ना, गुग्गुलु, असगंध, अंडकीजड, शतावर इनका काढा संधिक संनिपात, जडता, ग्लानि, भ्रम और पक्षाघात इनका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा ।

रास्नाशुंठीगुडूचीसहचरजलदैर्भीरुपथ्यासुराह्वैस्तिकाकचूरवासानिलरिपुसहितैःपंचमूलीद्वयेन । एभिर्द्रव्यैःकपायस्त्वरितमपहरेत्पीतमात्रःप्रभातेमन्यास्तंभांत्रवृद्धिज्वरपिटिककटीसंधिसर्वांगपीडाम् ॥

अर्थ—रास्ना, सोंठ, गिलोय, पियावासा, नागरमोथा, शतावर, हरड, देवदारु, कुटकी, कचूर, अडूसा, अंडकीजड और दशमूल इनका काढा मन्यास्तंभ, अंत्रवृद्धि, ज्वर, पिडिका, कमर, तथा संधि इनका शूल और सर्षपदेहकी पीडा को दूरकरे ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतोरुवृकविश्वासुरतरुरास्नाहरीतकीकाथः ।

सकलसमीरणरोगान्प्रातःसद्योहरेत्पीतः ॥

अर्थ-गिलोप, अंडकीजड, सोठ, देवदारु, रास्ना, हरड इनका काढा प्रातःकाल पीवे तो सर्ववातके रोगोंका नाशकरे ॥

ग्रंथ्यादिकाढा ।

ग्रंथीकलितरुपथ्याकृतमालशिवाढरूपकैर्विहितः ।

एरंडतैलयुक्तःकाथो हन्यान्मरुन्मांथम् ॥

अर्थ-पीपरामूल, बहेडा, हरड, अमलतासका गूदा, आमले और अडूसा इनके काढेमें अंडीकातेल मिलायके पीवे तो वादीसेदुए मंदत्वकी नाशकरे ॥

पंचमूल्यादिकाढा ।

मूलीपंचककल्ककल्पितमिदं सन्मागधीमिश्रितम् ।

कौलत्थेनरसेनसैधवयुतंपेयंचविश्वौषधम् ॥

अर्थ-पंचमूल, पीपल, सैधानिमक, सोंठ इनके चूर्णको कुलथीके जलके साथ देवे तो वायुका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा ।

रास्नागुडूचीशठिवृद्धदारुसुराह्वविश्वात्रिफलावरीभिः ।

क्राथंपिषेह्मगुलुसंनियुक्तंसमग्रसंधिग्रहसंनिपाते ॥

अर्थ-रास्ना, गिलोप, कचूर, विधायरा, देवदारु, सोठ, त्रिफला और सतावर इनके काढेमें गुगलमिलायके पीवे तो संधिकसंनिपातको दूरकरे ॥

क्षारादिपरिमाण ।

जीरकंगुग्गुलुंक्षारंलवणंचशिलाजतु ।

हिंशुत्रिकटुकंचैवक्राथेशाणोन्मिताक्षिपेत् ॥

अर्थ-जीरा, गुगल, क्षार, नोन, शिलाजीत, हींग और त्रिकुटा इनका चूर्ण काढेआदिमें ४ मासेडाले ॥

सधिकपरलंघन ।

संधिस्थेहितमस्ति लंघनविधिःस्वेदोपनाहादिकम् ।

सूक्ष्मं कर्मसमग्रमेवविहितंकुर्याद्यवागूरसम् ॥

अर्थ-सधिकसंनिपातपर लघन, स्वेदन, पिडी आदि बाँधना इत्यादि देहहलका करनेके उपचार करना योग्यहै और यवागू आदि पथ्यहै ॥

अंतकसंनिदान ।

दाहं करोति परितापनमातनोति मोहं ददाति विदधाति शिरःप्रकंपम् । हिक्कां करोति कसनंच समाजुहोति जानीहितं विबुधवर्जितमंतकारुण्यम् ॥

अर्थ—दाह, संताप, मोह, शिरःकंप, हिचकी और खांसी ये अंतक संनिपातके लक्षण हैं इस अंतकसंनिपातको वैद्यत्यागदे ॥

अंतकेरोटीकाबंधन ।

अयं प्रयोगो यदि सन्निपाते भिषग्वराणां कथितो नुभूतः । सरागिकापि पृषलांडुतोयं विधाय सम्यक् च सरोटिकांच ॥ मृद्धीपुनःस्निग्धविभर्जिता च सोष्णा च ताल्वोपरिवंधनीया । यामद्भयं बध्यपुनश्च वध्वायावन्मनुष्यो घृतिमातनोति ॥ एवं विधिश्चांतकसंनिपाते मृत्युव्यथा गच्छति निश्चयेन ॥

मृतसंजीवनीरस ।

अर्थ—वैद्योंने बहुत अनुभव करके अंतक संनिपातपर यह प्रयोग कहा है कि, राईके चूर्णको लहसनके रसमें सानके उसकी रोटी बनाय तेल में अथवा घृतमें सैक गरमागरम मस्तकपर बाँधे, दोप्रहरके बाद फिर बाँधे तो मनुष्यके अंतक संनिपातकी ब्यथा दूरहोय परंतु हमारी समझमें उसरोटीकी अंडीके तेलमें सैके ॥

शुद्धं सूतं समं गंधं खल्वेवैकज्जलीकृतम् । तथा लोहकभस्मात्रताम्रभस्मसमं समम् ॥ विपतालककंकणं शिलाहिंगुलचित्रकैः । हस्तिमुंडीचातिविपन्डूपणं हेममाक्षिकम् ॥ भृंगीकुंभीमेघनादाः प्रतिचूर्णैरसांशकम् । त्रिदिनं मर्दयेत् खल्वेद्रवैराद्रकसंभवैः ॥ निर्गुंडीविजयाद्रवैस्त्रिदिनं मर्दयेत्पुनः । जंवीरस्य च चागैर्याद्रवैः संमर्दयेद्दिनम् ॥ काचकुप्यानिवेश्याथ बालुकायंत्रगंचेत् । द्वियामांते समुद्धृत्य मर्दयेच्चार्द्रकद्रवैः ॥ दिनैकं शोषितं चूर्णं त्रिगुंजं संनिपातजित् । मृतसंजीवनीनामरसोयं शं करो-

दितः ॥ मृतोपिसंनिपातेन जीवत्येव न संशयः । सक्षरिं
दापयेत्पथ्यं देयोवानंदभैरवः ॥

अर्थ—पारा और गंधक दोनों की फजलीकरे फिर लोहभस्म, विष, हरताल, मुरदासिंग, मनसिल, हींगु, चित्रक, हन्द्रायणका गूदा, अतीस, त्रिकुटा, सोनामक्खी, भांग, जमालगोटा और चोलाइंकीचूड़, सब समानले अदरख और भांगरेके रसमें एकदिन खरलकरे, फिर काँचकी शीशीमें भर घालुकार्यत्रमें २ प्रहर पचन करावे, फिर अदरखके रसमें एक दिन घोट्टे तो शिवप्रोक्त मृतसंजीवनीरस तयारहो इसको तीन रत्ती देय तो सन्निपातसे आसन्नमरणवालाभी रोगी बचजावे । इसके ऊपर दूध भात पथ्यदेवे अथवा यह रस नमिले तो आनंदभैरव रस देना चाहिये.

पथ्यादिकाढा ।

पथ्यावृषारग्वधदारुतिक्तारास्रागुडूचीगदजःकपायः ।
सोपद्रवाच्चांतकनामधेयाज्वरान्नरंमोचयतीतिचित्रम् ॥

अर्थ—हरड, अडूसा, अमलतासका गूदा, देवदारु, कुटकी, रास्रा, गिलोय और कुलिजन इनका काढा उपद्रवसहित मनुष्योंको अंतकज्वरसे मुक्तकरे इसमें क्या आश्चर्य है ॥

असाध्यत्वकहते हैं ।

इहापहायवृतमुष्णवारिज्वरारियूपादिगदापहारि ।
ज्वरच्छिदंजीवितदंचनित्यंमृत्युंजयंचेतसिचितयस्व ॥

अर्थ—अंतक संनिपात होनेसे गरम जल, ज्वरनाशक काढे, यूपइत्यादि को त्यागके जीवनका देनेवाला और ज्वर नाश कर्ता जो मृत्युंजय शिव उसका वितवन करे ॥

भिपग्भिरिति निर्णांतं संनिपातैतकाभिधे ।
भेषजं जाह्नवीनीरैर्वैद्यो गोविंद एवाहि ॥

अर्थ—अंतकसंनिपात होनेसे घैद्योंने ऐसा निश्चय करा है कि, उस रोगीका विष्णुभगवान् वैद्यहै और गंगाजल यही औषधी है अर्थात् भगवन्नामस्मरण और गंगाजल पीवे ॥

रुग्दाहसंनि०निदान ।

प्रलापपरितापनप्रवलमोहमांघ्रमः परिभ्रमणवेदना-
व्यथितकंठमन्याहनुः । निरंतरतृपाकरःश्वसनकासाहि-
क्काकुलःसकष्टतरसाधनोभवतिहन्तिरुग्दाहकः ॥

अर्थ-प्रलाप, संताप, अत्यंतमोह, मंदत्व, भ्रम, भ्रमण और कंठ, मन्या-
नाडी तथा टोड़ी इनमें पीडा, सर्वकाल तृपा, श्वास, खाँसी और हिचकी
इन लक्षणकरके युक्त ऐसा रुग्दाहसंनिपात कष्टसाध्य और मारक है ॥

जलधरकाढा ।

जलधरमलमजनागरसवालकोशीरपर्पटैःकथितम् ।

यःपिबतिपयः सुशीतंशाम्यतिरुग्दाहकस्तस्य ॥

अर्थ-नागरमोथा, लालचंदन, सोंठ, नेत्रवाला, खस और पित्तपापड़ा
इनका काढा शीतल होनेपर देवे तो रुग्दाह सन्निपातको शमन करे ॥
अभयादिकाढा ।

अभयापर्पटमुस्ताकटुकीशम्याकगोस्तनीकाथः ।

पीतःकरोतिनाशंरुग्दाहरुजोनसंदेहः ॥

अर्थ-हरड़, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गूदा और
मुनका(दाख) इनका काढा करके पीवे तो रुग्दाह संनिपात नाश होय ॥
ब्राह्म्यादिकाढा ।

ब्राह्मीद्राक्षाजलधरवचोशीरशम्याकतित्तापथ्याधात्रिक-

लितरुवलानिंबकोशातकीभिः।भूर्निंबाढ्याभवपिसहितः

पंचमूलीद्वयेनपीतःकाथःसकल्पवनव्याधिरुग्दाहहंता ॥

अर्थ-ब्राह्मी, दाख, नागरमोथा, वच, खस, अमलतासका गूदा, कुटकी,
त्रिफला, खरेंटी, नीमकीलाल, कडुई घीयाके बीज, चिरायता और दशमूल
इनका काढा सर्ववात व्याधियोंका और रुग्दाह संनिपातको नाश करे ॥

उशीरादिपडंगकाढा ।

उशीरचंदनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः ।

शृतंशीतंजलंदद्याद्दाहत्तृडूज्वरशांतये ॥

अर्थ-नेत्रवाला, लालचंदन, खस, दाख, आमले और पित्तपापडा इनका काठा शीतलकरके देय तो दाह, तृषा और ज्वर ये शांति होय ॥
धान्याककाठा ।

ससितोनिशिपर्युपितः प्रातर्धान्याकतंडुलकाथः ।

पीतः श्मयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंशैत्यम् ॥

अर्थ-धनियाँ और चावल इनको रात्रिमें भिगोय देवे, प्रातःकाल इसकी पेयाकर शीतल होनेपर देवे तो अंतर्दाह और पित्तज्वर इनका शमन करे ॥

अगर्वादिधूप ।

अगरुघनसारसल्लककररुहनतनरिचंदनैर्युक्तः ।

सर्जरसेनसमेतोधूपोरुग्दाहकंहंति ॥

अर्थ-कालीअगर, कपूर, सल्लकी, नख, तगर, नेत्रवाला, चंदन और रार इनकी धूनी रुग्दाहनाशक है ॥

दध्यादिलेप ।

श्मयतिदाहमचिरादधियुक्कैधुपल्लवैलेपः ।

लेपोहिमकरमलयजनिंबदलैस्तक्रपिष्टैर्वा ॥

अर्थ-वेरके पत्तोंको पीस दहीमें मिलाय अंगोंमें लेपकरे अथवा कपूर, चंदन, नीमकेपत्ते ये एकत्र छाँछमें पीसके लेपकरे तो इस्से दाह शमन होवे ॥

वदर्यादिलेप ।

वदरीपल्लवलेपःश्रीखंडारिष्टकेनसंयुक्तः ।

दातव्यःपादतलयोस्त्वरयारुग्दाहसंनिपातघ्नः ॥

अर्थ-वेरकेपत्ते, चंदन और नीम ये औषध एकत्र पीस पैरोंके तल्लपमें लेपकरे तो रुग्दाह शमन होय ॥

लाजतर्पण ।

दाहवम्यर्दितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितम् ।

शर्करामधुसंयुक्तंपाययेज्जाजतर्पणम् ॥

अर्थ-दाह और वमन इनकरके कृश अन्नचले नहीं और तृषार्त्त ऐसे रोगीको खिलोंका यूस, झूरा और शहत मिलायके देवे ॥

स्त्रीकाआलिङ्गन ।

पयोधराढ्यांकुशलांसुरूपानवयौवनाम् ।

प्रमदांस्वभुजाश्लेषैर्भजेद्गुदाहपाडितः ॥

अर्थ—रुग्दाहयुक्त मनुष्यका स्वरूपवती, पानस्तनी, विलासचतुर ऐसी स्त्रीका आलिङ्गन करनेसे रुग्दाह शमन होय ॥

पथ्यावलेह ।

पथ्यातैलघृतक्षौद्रैर्लिहेदाहज्वरापहाम् ।

कासासृक्सर्ववीसर्पश्वासान्हंतिवमरिपि ॥

अर्थ—हरडकाचूर्ण, तेल, घी अथवा शहत इनके साथ खाय तो खाँसीमें जो रुधिर गिरे वो, तथा विसर्प श्वास, वमन (वांति) इनका नाश होय ॥ भैरवीगुटी ।

शुद्धसूतद्विधागंधमर्दयेदिक्षुकद्रवैः । दिनंभाव्यंचमर्थं

चशोपयित्वातुभृंगजैः ॥ चतुर्धाभावयेद्द्रवैस्ति लप-

प्यांद्भवैश्चसः । भावितंचविशोष्याथचूर्णयेद्दस्रगालितम् ॥

चूर्णतुल्यंमृतंताम्रंताम्रादष्टांशकंविषम् । कृष्णाशीतवि-

डंगानिकृष्णाजीरासनंबला ॥ ताम्राधं प्रतिचूर्णस्यात्सर्व-

मेकत्रकारयेत् । यामैकंभृंगजद्रवैर्मर्दयेत्कल्कतांगतम् ॥

स्निग्धभांडगतंपाच्यंपिंडयामात्कृशाग्निना । चणमात्राव-

टीयोज्याचित्रकार्द्रकसैधवैः ॥ सम्यक्त्रिदोषजहंति संनिपा-

तंसुदारुणम् । भैरवीगुटिकारुयातादध्यत्रंपथ्यमाचरेत् ॥

अर्थ—शुद्धपारा और गंधक इनकी कजली कर इसके रसमें १ दिन भावना देवे, फिर भाँगेके रसकी ४ भावनादेय, फिर तिलपर्णिकि रसकी भावना देकर सुखाय फण्डलान कर लेवे पीछे इस चूर्णके समान ताम्रभस्म ताम्रका अष्टमांश सिंगियाविष और काली तथा सपेद चापविडंग, पीपर, जीरा, रास्ना, खटेरी ये प्रत्येक ताम्रसे आधी २ लेवे, सबको एकत्रकर भाँगेके रससे १ प्रहर खरल करे जब घुदते २ कल्कके समान हो जावे तब वीके चिकने बर्तनमें रखके मंदापिपर जबतक गोला होय तबतक पचन करावे फिर इसकी चनेके प्रमाण गोली करे इसको चीता, अदररा और संधानिमक इनके साथ देवे तो त्रिदोष-

जन्य संनिपातका नाश करे इसको (भैरवीगुटी) कहतेहैं इसके ऊपर दही भातकी पथ्यदेनी चाहिये ॥

चित्तभ्रमसन्निपात ।

यदिकथमपिपुंसांजायतेकायपीडाभ्रममदपरितापोमोह-
वैकल्यभावः । विकलनयनहासोद्गीतनृत्यप्रलापीह्याभिद
धतिनसाध्यंकेपिचित्तभ्रमारुह्यम् ॥

अर्थ—किसीप्रकार शरीरमें पीडा, भ्रम, उन्माद, संताप, मोह, विक-
लपना, नेत्रोंमें व्याकुलता, हँसना, गाना, नाचना और बकना ये लक्षण
होनेसे इसको चित्तविभ्रम संनिपात कहते हैं यह असाध्य है ॥

मध्वादिकाढा ।

मधुनखशाल्मलिकृष्णावनतरुपथ्यामुरागरूभिश्च ।
मलयजसहितैरैतैःकाथश्चित्तभ्रमंहन्ति ॥

अर्थ—महुआकी छाल, नख, (सुगंधद्रव्य) सेमरका मूसला, पीपर,
कोहवृक्षकी छाल, हरड, मुरा, अगर और लालचंदन इनका काढा
चित्तविभ्रमको शमन करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

मृद्धीकामरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलक्योमृतापथ्या-
रेवतरामसेनकरजारजीफलैःसंयुतः । हन्युश्चित्तरुजो-
थदुर्दलद्राक्षापटोलीपयःपथ्यापर्पटराजवृक्षकटुकाशं
बूकपुष्पशृतः ॥

अर्थ—दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोषा, आमले, गिलोय, हरड,
अमलतासका गूदा, चिरायता, पित्तपापडा और पटोलपत्र इनका
अथवा ब्राह्मी, दाख, पटोलपत्र, नेत्रवाला, हरड, पित्तपापडा, अमल-
तासका गूदा, कुटकी और शंखपुष्पी इनका काढा चित्तविभ्रमको शमनकरे ॥

ब्राह्म्यादिकाढा ।

ब्राह्मीचवाभीरुफलत्रिकेणतिकावलाग्बधतित्केन ।
निवाहकोशातकिहारहूराद्विपंचमूलीभिरसैकपायः ॥
पीतोहिचित्तभ्रमसंनिपातंनिहन्तिरुग्दाहमपिप्रभूतम् ॥

अर्थ—ब्राह्मी, बच, शतावर, त्रिफला, कुटकी, खैरटी, अमकतासका

गूदा, चिरायता, नीमकीछाल, पीयाफेबीज, दाख और दशमूल इनका काठा चित्तभ्रम संनिपातको और रुदाहको नाशकरे ॥

पथ्यादिकाठा ।

पथ्यापर्पटकटुकामृद्धीकादारुजलदभूनिवाः ।

शम्याकपटोलशिवाकाधश्चित्तभ्रमंहंति ॥

अर्थ—हरड, पित्तपापडा, कुटकी, दाख, देवदार, नागरमोथा, कहु-आचिरायता, अमलतासका गूदा, पटोलपत्र और आमले इनका काठा चित्तविभ्रम संनिपातको नाश करे ॥

हरीतक्यादिकाठा ।

हरीतकीपर्पटहारहूराशंबूकपुष्पैःकटुकीपयोदैः ।

शम्याकदेवाह्वयभारतीभिश्चित्तभ्रमंहंतिकृतःकपायः ॥

अर्थ—हरड, पित्तपापडा, दाख, शंखपुष्पी, कुटकी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, देवदार और ब्राह्मी इनका काठा चित्तभ्रम सन्निपातका नाशकरे ॥

कणाद्यंजन ।

कणोपणोग्रालवणोत्तमानिकरंजवीजक्षणदामलानि ।

पथ्याक्षसिद्धार्थकंहिगुशुंठीयुतानिवस्तांबुविमिश्रितानि ॥

पिष्ट्वागुटीयंनयनेविधेयाप्रचेतनेतिप्रथितान्वितार्था ।

चित्तभ्रमापस्मृतिभूतदोषशिरोक्षिरोगभ्रमनाशहेतुः ॥

अर्थ—पीपर, कालीमिरच, वच, सैधानिमक, कजाफेबीज, हलदी, आमले, हरड, वहेडा, सरसों, होंग और सोंठ इनका चूर्ण एकत्रकर वक्रेके मूत्रमें खरलकरके गोलीवाधि इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो चेतन्यता होय और चित्तविभ्रम, मृगी, भूतदोष, मस्तकरोग, नेत्ररोग और भ्रम इनका नाशकरे ॥

कुंभोद्भवस्य ।

कुंभोद्भवतरोरंभोगुडविश्वाकणान्विम् ।

निहितंनसिनूनंत्याश्चित्तभ्रमविनाशनम् ॥

अर्थ—अगस्तियाके पत्तोंके रसमें गुड, सोंठ और पीपलको ढालके नम्य देवे तो चित्तभ्रमको नाशकरे ॥

धूप ।

मुरामूर्धजमेघाह्वमधूकमलयोद्रवैः । मरुत्तरुमधून्मिश्रैः
पुरपाणिजपांसुभिः ॥ लोहलामज्जकैलाभिर्धूपश्चित्तभ्र
मापहः । ग्रहदोपहरःश्रीदःसौभाग्यकरउत्तमः ॥

अर्थ—मुरा (गंधद्रव्य) नेत्रवाला, महुआकी छाल, चंदन, देवदारु, शहद, नखद्रव्य, पित्तपापड़ा, अगर, पीलासुगंधवाला और इलायची इनकी धूनी चित्तभ्रम संनिपात और ग्रहदोष इनकी नाशक तथा लक्ष्मी-कारक और कांतिप्रदहै ॥

संनिपातगजांकुश ।

शुद्धंसूतंमृतंचाभ्रंशुद्धेतालकमाक्षिके । हिगुंचतुल्यतु
ल्यंस्यान्मर्दयेत्सखकेद्रवैः ॥ वंध्यापटोलनिर्गुडीसुगंधा
निंबचित्रफैः । धतूरलांगुलीपाठाभृंगाजंवीरजद्रवैः ॥ त्रि-
दिनंमर्दयेदेभिश्चूर्णाकृत्यविमिश्रयेत् । त्रिंशारसैधवंवा-
लंविषंमधुरसारकम् ॥ तुल्यंतुल्यंविचूर्ण्यथपूर्वोक्तचंद्र-
मासमम् । एकीकृत्यभवेत्सिद्धःसंनिपातगजांकुशः॥संनि-
पातंनिहंत्याशुमापमात्रःप्रयोजितः ॥

अर्थ—पारा, अभ्रकभस्म, हरताल, सुवर्णमाक्षिक ये शुद्धलेवे उसमें समानभाग हींग डालके पींकुवार, वॉक्षककौडा, परवल, सपेद और फाली निर्गुडी, नीम, चित्रक, धतूरा, कलियापी, पाद, भांग और जंभीरी इनके रसमें ३ दिन खरलकरे तथा इसमें क्षारत्रय, संधानिमफ, विष, फाकोली और जमालगोटा ये समान भागले अर्थात् ये पूर्व औषधोंकी बराबर होय इसप्रकार मिलावे तो यह संनिपातगजांकुश रसबने इसमेंसे १ मासे देनेसे संनिपातका नाशकरे ॥

प्राणेश्वररस ।

रसंगंधंसंशुद्धंसूतंमृतंचाभ्रंमृतंरसम् । दिनेकंतालमूल्याश्व-
वाराह्यारसमादितम् ॥ निरुद्धंकाचकुप्यांतुवालुकायंत्रगं
पचेत् । दिनंवाभूधरेपक्वासमादायविचूर्णयेत् ॥ त्रिंशा-
रंपंचलवणंत्रिफलाव्योपचित्रकैः । सजीरकैःसैद्रयवैर्हिगुगु-

गुलुदीप्यकैः ॥ सर्वैःसमैःपूर्वसमंचूर्णीकृत्यविमिश्रयेत् ।

मापमात्रंप्रदातव्यंकिंचिदुष्णोदकंपिबेत् ॥

सन्निपाताचलेवज्वरग्रहणीप्रणुत् ।

कुर्यात्प्राणपरित्राणमतःप्राणेश्वरोरसः ॥

अर्थ—शुद्धपारा, गंधक, ताद्यभस्म, पारदभस्म इन सबको मूसली और वाराहीकंदके रसमें खरलकर शीशिमै भरके बालुकायंत्रमें अथवा भूधरयंत्रमें पचन करावे जब शीतल होजावे तब इसमें क्षारत्रय, पाँचों निमक, त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, जीरा, इन्द्रजौ, हार्ग, गूगल और अजवायन, सब समानले इनका चूर्ण पहिली औषधोंके बराबर लेकर मिलावे, फिर इसमेंसे १ मासे लेकर ऊपरसे गरमपानी पीवे तो संनिपात, संग्रहणी और ज्वर इनको नाशकरे यह प्राणेश्वरसं प्राणोंकी रक्षा करने वालाहै ॥ मोरेश्वररस ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधदिनैकं चार्द्रकद्रवैः । मर्दयित्वा च तंगोलं

गोलार्थेताम्रसंपुटे ॥ क्षिप्तवानिरुध्यतत्संधिमृण्मूपायांनि

रुध्यच । रात्रौ गजपुटे पाच्यं प्रातरादाय चूर्णयेत् ॥ गुंजैकं

नागरसमंसघृतं सन्निपातनुत् । अनुपानं पिबेत्पश्चात्तप्तं

वारिपलद्वयम् ॥ दध्यन्नं दापयेत्पथ्यंतृपायां शीतलं जलम् ।

कृशंच कुरुते स्थूलं नरं मोरेश्वरोरसः ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग, गंधक २ भाग इनको एकदिन अदरसके रसमें खरलकर गोली बांधे उन गोलियोंका आधा तामा ले उसकी डिब्बी बनाय उसमें दो गोली भरके बंदकर मिट्टीके पात्रमें रखके मुख बंदकर संधियोंको लेपकर बंदकरदेवे फिर १ रात्रि गजपुटमें रखके आंच देवे प्रातःकाल निकालकर चूर्ण करे इसमेंसे १ रत्ती सोंठ और पीसे देवे ऊपर ८ तोले गरम जलपीवे और दहीभातका पथ्यदेके जब प्यास लगे तब शीतल जलदेवे तो यह (मोरेश्वररस) कृशपुरुषको मोटाकरे ॥

शीतांगसंनिदान ।

हिमसदृशशरीरोवेपथुःश्वासहिक्काशित्थिलितसकलांगः

खिन्ननादोयतापः । कृमधुद्वयधुकासच्छर्द्यतीसारयुक्त-

स्त्वरितमरणहेतुः शीतांगत्रःप्रभावात् ॥

अर्थ-देह अत्यंत शीतल, कंप, श्वास, हिचकी, अंगोंमें शिथिलता, शब्द धारीक, भीतरसंताप, विनाकारण श्रम, संताप, खोंसी, वमन और अती-सार इनलक्षणों करके युक्त सन्निपातको शीतगात्र (शीतांग) सन्निपात कहते हैं यह तत्काल प्राणनाश करे ॥

शीतांगकीचिकित्सा ।

मृतसंजीवनोवाथरसोगुंजाद्रयोहितःसर्वागसुंदरोवाथस्व
च्छंदोभैरवोपिवा।दातव्यःपंचवक्रोवाशीतांगनाशयेद्भुवम् ॥

अर्थ-शीतांग सन्निपातपर मृतसंजीवन रस दो रत्ती किंवा सर्वागसुंदर अथवा स्वच्छंदभैरव किंवा पंचवक्र रस ढेवे तो शीतांगसन्निपात नाश होय ॥

अर्कादिकाढा ।

भास्वन्मूलंजीरकव्योपभांर्गीव्याघ्रीशृंगीपुष्करंगोजलेन।
सिद्धंसद्यःशीतगात्रातिमोहश्वासश्लेष्माद्रेककासान्निहंति ॥

अर्थ-आककीजड, जीरा, त्रिकुटा, भारंगी, फटेरी, काफडासिंगी और पोहकरमूल इनका काढा गोमूत्रमें सिद्धकरके पीवे तो तत्काल शीत-गात्र, संनिपात, मोह, श्वास और कफवृद्धि इनका नाश हो ॥

मातुलिंगादिकाढा ।

मातुलिंगादिभूर्निवग्रंथिकंदेवदारुच ।
दशमूलाजमोदंचशुंठीशीतांगनाशनम् ॥

अर्थ-विजौरेकी केशर, चिरायता, पीपरामूल, देवदारु, दशमूल, अज-मोद और सोंठ इनका काढा शीतांग सन्निपातनाशक है ॥

ककोटिकाद्युद्धर्तन ।

ककोटिकाकंदरजःकुलित्थाकृष्णावचाकटूफलकृष्णजीरैः ।
किराततित्ताशिककट्वलांबुपथ्याभिरुद्धर्तनमत्रशस्तम् ॥

अर्थ-ककोटिका कंद, पित्तपापडा, कुलथी, पीपल, वच, कायफर, कालाजीरा, चिरायता, चित्रक, कडुई तूवी और हरड इनके चूर्णको देहमें मले तो शीतांग सन्निपातका नाश करे ॥

श्रीविष्टादिचूर्ण ।

श्रीविष्टफलसंभूतभस्मभागाष्टकंशुभम् । मरीचस्यचच-
त्वारोरसस्यैकोविपस्यच ॥ सूक्ष्मचूर्णततःकृत्वामर्दयेद-

तियत्नतः । असाध्येपि हि शीतांगे स्वेदो याति हि निश्चितम् ॥
चूर्णचणकभृष्टोत्थंभृष्टभृंगीभवं तथा । कुलित्थकोत्थ-
चूर्णेनस्वेदो याति हि निश्चितम् ॥

अर्थ-शरलवृक्षके फलोकी भस्म ८ भाग, भांग ४ भाग, कालीमिरच ४ भाग, पारा और सिंगियाविषये सब एकत्रकर इनका बारीक चूर्ण करे इसके सेवनसे असाध्य शीतांगवालेके भी पसीने आवे भुनाहुआ चनेका चूर्ण भुना हुआ भांगका चूर्ण और कुलथीका चूर्ण इनकी मालिश करनेसे पसीने दूरहो ॥

तंद्रिकसंनिदान ।

प्रभूतातंद्रार्तिज्वरकफपिपासाकुलतरोभवेच्छ्यामाजि-
ह्वापृथुलकटिनाकंटकवृता । अतीसारःश्वासःकुमथुप-
रितापःश्रुतिरुजोभृशंकंठेजाड्यंशयनमनिशंतंद्रिकगदे ॥

अर्थ- (तंद्रिक) सन्निपातमे अत्यंत तंद्रा, शूल, ज्वर, कफ, प्यास इनसे रोगी पीडित हो जीभ काली बठोर और ऊपर कांटेयुक्त हो अतीसार, श्वास, ग्लानि, संताप, कानोंमे पीडा, गलेमे जडता और निरंतर निद्राका आना ये लक्षण होते हैं ॥

तंद्रिकपरीक्षा ।

ज्वरेप्रथममुत्पन्नेचक्षुर्भ्यांनैवपश्यति ।

तंद्रिकःसन्निपातोयंकष्टसाध्योभवेत्ततः ॥

अर्थ-ज्वर उत्पन्न होतेही नेत्रोंके आगे अंधेरा आवे तो यह तंद्रिक सन्निपात कष्टसाध्य जानना ॥

भांग्यादिकाढा ।

भांगीगुडूचीधनकंटकारीहरीतकीपौष्करनागराणाम् ।

कृतःकपायस्त्रिदिननिपीतोघोरंजयेत्तंद्रिकसन्निपातम् ॥

अर्थ-भांगी, गिलोय, नागरमोथा, फटेरी, हरड, पुहपरमूल और सोठ इनका षाढा तीनदिन पीवे तो घोर तंद्रिक सन्निपात दूर होय ॥

दूसराप्रकार ।

भांगीपुष्करपथ्यानिदग्धिकानागरामृताकाथः ।

अपनत्तितंद्रिकभयंनिःसंशयंप्रगेतनेपीतः ॥

अर्थ—भारंगी, पोहकरकमूल, हरड, कटेरी, सोंठ और गिलोय इनका काढा प्रातःकाल पीवे तो निःसंदेह तंद्रिकसंनिपात शमन होय ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतापटोलवासाव्योपयुतस्तंद्रिकेकाथः ॥

अर्थ—गिलोय, पटोलपत्र, अडूसा और त्रिकुटा इनका काढा तंद्रिकपर देवे ॥
रास्नाअंजन ।

रास्नामनःशिलातैलमंजनंचैवतंद्रिके ॥

अर्थ—रास्ना, मनसिल, इनसे सिद्धकरे हुए तेलका अंजन तंद्रिक संनिपातनाशक है ॥
तुरंगलालाअंजन ।

तुरंगलालालवणोत्तमेंदुमनःशिलामागधिकामधूनि ।

नियोजितान्यक्षिणिनिश्चितंद्राक्तंद्रांसनिद्राविनिवारयंति ॥

अर्थ—सैंधानिमफ, कपूर, मनसिल और पीपल ये चार औषधोंको घोंडेकी लारमें और शहदमें घिसके अंजन करे तो तंद्रिक को दूरकरे ॥
कृष्णादिनस्य ।

कृष्णामनःशिलातालमंजनमेवंतंद्रिकेत्विएम् ।

अमृतापटोलयूपोव्योपयुतस्तंद्रिकंजयति ॥

अर्थ—पीपल, मनसिल, हरताल, इनका अंजन हितकारी है और गिलोय, पटोलपत्र इनका काढा त्रिकुटाके शूर्णसे देवे तो तंद्रिक संनिपातका नाशकरे ॥
कुष्ठादिनस्य ।

कुष्ठगवाक्षीनागरनिशाद्वयमरीचकणावचायुक्तम् ।

वस्तसलिलेनपिष्टंतंद्रिकहिंस्रंभवेन्नस्यम् ॥

अर्थ—कूठ, इंद्रायन, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, मिरच, पीपर और वच इनको चकरके सूत्रमें पीस नस्य देवे तो तंद्रिकसंनिपात को दूरकरे ॥
मरिचादिनस्य ।

मरिचकंचपचंपचावचारुकृमिहरनागरशर्वरीगवाक्ष्यः ।

छगलकजलकान्वितानितान्तिनसिनिहिताननुतंद्रिकंजयति ॥

अर्थ—मिरच, दारुहलदी, वच, कूठ, चायविडंग, सोंठ, हलदी और

इन्द्रवारुणी इनको बकरेके मूत्रमें खरलकर नस्यदेवे तो तंद्रिकको निश्चय दूरकरे ॥ क्षुद्रादिनस्य ।

क्षुद्रामृतापौष्करनागराणिशृतानिपीतानिशिवायुतानि ।

शुंठीकणागस्त्यरसोपणानिनस्येनतंद्राविजयोल्वणानि ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल, सोठ और हरड इनका काढा देकर अगस्तियाके रसमें त्रिकुटा को मिलाय नस्यकरे तो यह नस्य और ऊपर कहाहुआ काढा तंद्राके जीतने को समर्थ है ॥

कंठकुब्जनिदान ।

शिरोर्तिकंठग्रहदाहमोहकंपज्वरारक्तसमरिणार्तिः ।

हनुग्रहस्तापविलापमूर्च्छास्यात्कंठकुब्जःखलुकष्टसाध्यः ॥

अर्थ—मस्तकका दूखना, कंठका जिकडना, दाह, मोह, कंप, ज्वर, वातरक्त, रक्तकी पीडा, ठोडीका जिकडना, संताप, मलाप और मूर्च्छा इतने लक्षणयुक्त ज्वरको (कंठकुब्ज) सन्निपात कहते हैं ॥

शृंग्यादिकाढा ।

शृंगीवित्सकचेतकीधनसठीधुनिवभांगीनिशातिकापुष्कर-
चित्रकैः समरिचैर्व्याघ्रीवृषामिश्रितैः । धात्रीदारुविभी-
तकैश्चचविकाविश्वाकणाकट्फलैःपीतःकृततिकंठकुब्ज-
मचिरात्कोष्णःकपायस्त्वह ॥

अर्थ—काकडासिंगी, फूडाकी छाल, हरड, नागरमोथा, कचूर, चिरायता, भारंगी, हलदी, कुटकी, पुहकरमूल, चित्रक, फालीमिरच, कटेरी, अडूसा, आमर, देवदार, बहेडा, चव्य, सोठ, पीपल और कायफल इनका काढा किंचित् तृष्ण पीवे तो कंठकुब्ज सन्निपात को जीते ॥

त्रिकट्वाद्रिकपाय ।

त्रिकटुकलिङ्गकटुकाहरीतकीविभीतकामलकैः ।

ध्वंसयतिकंठकुब्जंवृषपरजनीद्वयसंयुतःकपायः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, हन्द्रजौ, कुटकी, हरड, बहेडा, आपले, अडूसा, हलदी और दारुहलदी इनका काढा कंठकुब्जवाले रोगीको हितकारी है ॥

फलात्रिकादिकाढा ।

फलात्रिकश्रूपणमुस्तकदीकलिङ्गसिंहाननशर्वरीभिः ।

क्वाथः कृतः कृततिकंठकुब्जकंठीरवःकुंजरमाशुयद्रत् ॥

अर्थ-त्रिफला, त्रिकुटा, मोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अडूसा और हलदी इनका काठा करके पीवे तो जैसे सिंह हाथीको जीते इसप्रकार कंठकुब्जको जीते ॥ किरातादिकाठा ।

किरातकटुकाकणाकुटजकंटकारीसटीकलिद्रुकिलिमा-
भयाकटुककटुफलांभोधरैः । विपामलकपुष्करानल-
कुलीरशृंगीवृषैर्महौपधसखैरयंजयतिकंठकुब्जगणः ॥

अर्थ-चिरायता, कुटकी, पीपर, इन्द्रजौ, फटेरी, कचूर, बहेडा, देवदारु, हरड़, कालीमिर्च, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमले, पोहकरमूल, चित्रक, काकडासिंगी, अडूसा और सांठ इनका काठा कंठकुब्ज सन्निपातको जीते

कृष्णादिनस्य ।

अपनयतिकंठकुब्जकृष्णापामार्गयुद्धनस्यम् ।

अथहंतिसलिलसहितंत्रिकटुककटुतुविनीनस्यम् ॥

अर्थ-पीपल और आंगाके रसकी नस्य अथवा त्रिकुटा कडुई घीयाके बीज इनको पानामे औटायके इसकी नस्य देवे तो कंठकुब्जको दूरकरे सिद्धवटी ।

शुद्धसूतं तथा गंधकाकडसैधवंसमम् । सद्योवालस्यविष्टांच
द्रवैर्ब्राह्मयाविमर्दयेत् ॥ गुटिकावदराकाराभक्षितारोगना-
शिनी । इयंसिद्धवटीनामसन्निपातानियच्छति ॥ पूर्वोक्ते-
नानुपानेन देयोवानंदभैरवः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, काकडासिंगी, संधानिमक तथा सद्ज वालककी विष्टा ये सब समान भाग ले ब्राह्मीके रसमें खरलकर बराबर गोली बनावे यह गोली सन्निपातरोग नाशक है अथवा पूर्वोक्तानुपानके साथ आनदभैरव रस देव बोधी सन्निपातनाशक है ॥

कर्णकसन्निपातनिदान ।

प्रलापश्रुतिह्लासकंठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ।

ज्वरंतापकर्णातयोर्गलपीडाबुधाः कर्णकं कष्टसाध्यं वदति ॥

अर्थ—गेरू, गोखरू, सोंठ, कायफल और वच इनको काँजीमें पीस गरमकर लेप करे तो कर्णमूल शांति हो ॥

शिघ्वादिलेप ।

शिघ्रराजिकयोःपिष्टं कर्णमूले प्रलेपयेत् ।

कर्णमूलभवःशोफस्तेन लेपेन शाम्यति ॥

अर्थ—सहेंजनेकी छाल और शिरस इनको महीन पीस कर्णकपर लेप करे तो कर्णमूल संबंधी सूजन शांतिहो ॥

अर्ककालेप ।

दशशतकरदुग्धं पुष्करत्वक्समेतं दहनगुडनिकुंभाकुष्ठ-
कासीसयुक्तम् । अपनयति वितीर्णलेपनं सप्तरात्राच्छ्रयथु
हरणयुक्तं कर्णकग्रंथिमेतत् ॥

अर्थ—पोहकरमूल, दालचीनी, चित्रक, गुड, कायफल, कूठ और हीरा-
कसीस इन औषधोंका चूर्णकरके आकके दूधमें घोटकर लेप करे तो
यह लेप सातही दिनमें कर्णमूलको शमन करे ॥

दंत्यादिलेप ।

दंतीचित्रकयोर्मूलं स्नुह्यर्कपयसागुडः ।

भ्रूतकास्थिकासीसलेपो भवति कर्णके ॥

अर्थ—दंती, चित्रक, दोनोंकी जड़, थूहर, आकका दूध, गुड, भिला-
व, मिर्गी और कसीस इनको जलमें पीस लेप करे तो
कर्णकसंनिपात दूर हो ॥

नागरादिलेप ।

सनागरदेवदारुरास्नाचित्रकपेपितम् ।

प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं गलशोफनिवारणम् ॥

अर्थ—सोंठ, देवदारु, रास्ना और चित्रक इनको जलसे पीस लेप
तो गलेकी सूजन दूर हो ॥

निशादिलेप ।

निशेगुदीसैधवदारुकुष्ठदार्वाविशालारविदुग्धलेपः ।

तं कर्णग्रंथिसमपाहरेद्वाजलौकयापातनमत्रशस्तम् ॥

अर्थ—हरदी, हिंगोट, सैधानिमक, देवदारु, कूठ, इन्द्रायणकीजड इनको आकके दूधसे पीस लेप करे तो कर्णकशांति हो अथवा उस गांठमें जोखलगायके रुधिरको निकाल डाले तो अच्छा होय ॥

बीजपूरादिलेप ।

बीजपूरकमूलत्वक्वह्निमंथस्तथैवच ।

शरपुंखाशिखीतुंवीसकृष्णाविपमुष्टिभिः ॥

प्रलेपोवाहिडिंवीभिःश्वयथौकर्णमूलजे ॥

अर्थ—विजोरेकी जड, दालचीनी, अरनी, सरफोंका, चित्रक, कडुई-तुंवी, पीपल, कुचलाकेबीज इनका लेप कर्णमूलकी सूजनपर करे ॥

वज्रमुष्ट्यादिलेप ।

वज्रमुष्टिभवःकंदोशोथविध्वंसनक्षमः । कर्कटस्यचमां

सेनस्वेदनंबंधनंतथा॥कर्णमूलभवंशोथनाशयत्यविलंबतः ॥

अर्थ—वज्रमुष्टीका कंद कर्णककी सूजनको नष्ट करे और केकडेके मांससे सके और वही मांस उसपर बांध देवे तो कर्णकसंबंधी सूजन शीघ्रनाश होय ॥ सिद्धार्थादिलेप ।

सिद्धार्थसैधववचाग्रहधूमविश्वैःपिष्टैर्जलेननिशयासहितं

सुसूक्ष्मम् । लेपोहितोरुधिरनिष्क्रमणेप्रभातेशोफत्रण-

स्यशमनःसरुजश्चकर्णे ॥

अर्थ—प्रथम कर्णमूलकी सूजनपर जोख लगायकर रुधिर निकल डाले और दूसरे दिन प्रातःकाल उस सूजनपर सरसों, सैधानिमक, वच, धरकाधूआं, सोठ, हलदी इनको पानीमें पीस उसका लेप करे तो सूजनशुक्त व्रणको और पीडाको शमन करे ॥

रोहीतकादिलेप ।

लेपेनरोहीतकपीलुसिंधुपुत्रांद्रवलीकटुहंजिकावा । तु-

त्थालसर्पपशिलानवसारगंधकासीसकुष्ठपटुहंसपदीकरं-

जः ॥ लेपात्पलंकपयुताश्चसयावशूकानिःसंशयंसपदि-

कर्णकवेदनशतः ॥

अर्थ—रुहीडा, अखरोटवृक्षकी छाल, मोतीकी सीप, इन्द्रायन, करेले,

नीलाथोथा, हरताल, सरसों, मनसिल, नोसादर, गंधक, हीराकसीस, कूट, निमक, हंसपदी, कंजा, गूगल, और जवाखार इनका लेप कर्णमूलपर करे तो तत्काल कर्णमूलकी पीडा दूर करे ॥

मरीचादिनस्य ।

अशिशिरजलपरिमर्दितं मरिचकणालवणजं रजस्त्वरितम् ।
नस्यविधोसेवितं किल कर्णकरुङ्गनाशनं गदितम् ॥

अर्थ—गरमजलमें मिरच, पीपल और सैधानिमक औटायकर नस्यलेप तो कर्णककी पीडा दूर हो ॥

कर्णकपरनस्य ।

अशिशिरजलयुक्तं नावनं कर्णकार्तो जनयति सुखसिद्धिं
घ्राणरंध्रप्रवेशात् । लवणपरमकृष्णाचूर्णयुक्तं प्रभाते सक-
लमुनिभिरुक्तं व्याधिविध्वंसकारि ॥

अर्थ—कर्णकरोगमें सैधानिमक और पीपल इनका चूर्ण गरमपानीमें डालके प्रातःकाल नस्य लेवे तो कर्णकपीडावालेको सुख होय ॥

सामान्यउपचार ।

तंजयेच्छोणितस्रावैः सर्पिः पानप्रलेपनैः ।

प्रदाहैः कफपित्तशैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥

अर्थ—रक्तस्राव, घृतपान, लेप, दागना, कफपित्तनाशक वमन और कवल धरना इत्यादि उपचार कर्णककी सूजनपर करे ॥

अर्थ

कांजिकादिलेप ।

यत्

कांजिकेन सुपिष्टं तु धूर्तवीजप्रलेपनम् ।

राजिकागुडामिश्रेण कर्णमूले सुखावहम् ॥

अर्थ—धतूरेके बीज, राई और गुड इनको एकत्रकर पीस कांजीमें लेप करे तो सुख होय ॥

उपचार ।

रक्तस्रावोजलौकाभिर्घृतपानं च युज्यते ।

कर्णग्रंथिविनाशार्थमायुर्वेदविदां वरेः ॥

अर्थ—कर्णमूलवालेके जोख लगाय रुधिर कटावे और घृत पिवावे तो अच्छा होय ॥

अत्र ।

जीर्णानारक्तशालीनांज्वरघ्नःकाथसाधितः । प्रसृत-
स्त्वोदनोद्विस्त्रिकायौयूपादिकोपिवा ॥ सचेजीर्यत्य-
विघ्नेनज्वरीजीवेत्तदाध्रुवम् ॥

अर्थ—पुराने लालचावलोंका ज्वरघ्न काठमें भात अथवा यूप बनायके देवे यदि यह जिस रोगीको निर्विघ्न पचजावे तो रोगी निःसंदेह बचे ॥

भुग्नेत्रसंनिपातनिदान ।

ज्वरवलापचयस्मृतिशून्यताश्वसनभुग्नाविलोचनमोहितः ।

प्रलपनभ्रमवेपथुशोथवान्त्यजतिजीवितमाशुसभुग्नेद्रु ॥

अर्थ—ज्वरकर्म बलक्षीण, स्मरण शक्तिका नाश, श्वास, टेढ़ीदृष्टी, भ्रूच्छर्मा, प्रलाप, भ्रम, कंप ये लक्षण भुग्नेत्र संनिपातमें होतेहैं यह रोगी तत्काल मरे ॥

द्राव्यादिकाढा ।

दार्वीपटोलाघनकंटकारीतित्तानिशाविंशफलत्रिकाणाम् ।

काथोनियोज्योज्वरसंनिपातेविभुग्नेत्रप्रतिबोधनाय ॥

अर्थ—दारुहलदी, पटोलपत्र, नागरमोथा, फटेरी, कुटकी, हलदी, कीछाल, हरड, बहेडा और आमला इनका फाटा ज्वर और भ्रम संनिपात इनपर बोध होनेके लिये देय ॥

श्रेष्ठादिकाढा ।

श्रेष्ठापटोलकटुकाघननिवसुराह्वधानीसाहिताः ।

ग्रंथिमृशंमोहंपित्तज्वरसंनिपातोत्थम् ॥

अर्थ—पीपल, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोथा, नीमकीछाल, देवदार फटेरी इनका फाटा मोह, पित्तज्वर तथा संनिपातज्वरका नाश यष्ट्यादिकाढा ।

यष्टीपटोलकटुकाघननिवसुराह्वधान्यः ।

अपहरंतिमोहपित्तज्वरमुग्रसंनिपातोत्थम् ॥

अर्थ—मुलहठी, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोथा, नीमकीछाल, देवदार और फटेरी इनका फाटा पित्तज्वर और उग्रसंनिपातज्वर इनका नाशक है ॥

मरिचादिनस्य ।

मरिचतुरगंगंधामागधीसिंधुजातंलशुनमधुकसारैरुग्रगंध
द्रकाभ्याम्।छगलकजलपिष्टंसंयुतंशास्त्रविद्विःसपदिभव-
तिनस्यंभुमनेत्रप्रमाथि ॥

अर्थ—कालीमिरच, असगंध, पीपल, सैंधानिमक, लहसन, मडुआका-
गोद, वच और अदरख इनको बकरेके मूत्रमें पीस नस्यदेवे तो भुम-
नेत्र सत्रिपातको दूर करे ॥

अश्वगंधादिनस्य ।

तुरंगगंधालवणोग्रगंधामधुकसारोपकमागधीभिः ।

वस्तांबुशुंठीलशुनान्विताभिर्नस्यंत्वसंभुमहशं करोति ॥

अर्थ—असगंध, सैंधानिमक, वच, मुलहटी, अनारदाना, त्रिकुटा और
लहसन इनको बकरेके मूत्रमें नस्यदेवे तो नेत्र स्वच्छ करे ॥

भूर्निवादिअवलेहअंजन व नस्य ।

भूर्निवमाक्षिकवचासहितंचकुर्याल्लेहंकणोपणरसनकरा-
जिकाभिःनित्रांजनंचलवणोत्तमपिप्पलीभ्यांनस्यंवचाम-
रिचहिंगुमधुकसारैः ॥

अर्थ—चिरायता, शहद, वच, पीपल, मिरच, लहसन और राई इनका
मूत्र देवे तथा निमक और पीपल इनका अंजनकरे और वच, मिरच,
मुलहटी और अनारदाना इनका नस्य करावे ॥

मार्तण्डभैरवरस ।

शुद्धसूतंसमंगंधंघात्पादांशटंकणमात्ताम्रपात्रेक्षिपेत्पिष्टं-

जयंत्यालोडयेद्रवैः॥शिमुमूलरसेनाथभावयेदृघातपोक

त्रयस्यवासायावद्विरुद्रजटाद्रवैः ॥ तिलपर्णीतथाजा

पिप्पलीपत्रमूलकैः ॥ द्रावेरेवतुसप्ताहंशोप्यंशो

प्यंविभावयेत् ॥ ताम्रपात्रात्समुद्धृत्यकृत्वागोलंविशो

पयेत् ॥ वस्त्रेवध्वामृदाप्यत्रभूधरैः स्वेदयत्पुटे ॥

द्वियामांतेसमुद्धृत्यचूर्णयेदोपथैः सह । विपकपूर्वजा-
त्येलारसस्यदशमांशतः ॥ भावेयेद्विजयाद्रावैर्दिनमे-

कंचमर्दयेत् । चतुर्गुणासकपूर्मधुनासन्निपातजित् ।
मार्तंडोयंरसोनामअसाध्यंसाधयेद्भुवम् ॥ दशमूलंपि-
वेच्चानुपथ्यंस्यान्मुद्गयूपकैः ॥

अर्थ-पारा १ भाग, गंधक १ भाग, सुहागा चतुर्थांश, सबको एकत्र कर तामेके पात्रमें डालके जयंतीके रसकी तथा सहेंजनेकी जडके रस की आठ २ भावना धूपमें धरके तामेके पात्रमें देय और त्रिकुटा, अट्टसा, चित्रक, ईश्वरी, तिलपर्णी, जावित्री, पीपलके पत्ते और जड इन प्रत्येक के रसकी सात २ भावना देवे फिर सुखावे फिर तामेके पात्रमेंसे निकाल उसका गोला कर सुखायके ऊपर कपड़मिट्टी कर भूधरयंत्रमें दो प्रहर पचन करावे जब शीतल हो जाय तब निकाल बारीक घोंटे उसमें विप, कपूर, जावित्री और इलायची ये सब वस्तु पारिके दशांश डालके भाँगके काठमें एक दिन खरल करे तो यह (मार्तंड रस) बने इसमेंसे चार रत्ती शहद और कपूर इनसे देवे ऊपरसे दशमूलका काटा देवे तो असाध्यभी सन्निपातका नाश करे ॥

रक्तष्ठीवीसन्निपातनिदान ।

रक्तष्ठीवीज्वरवमितृषामोहशूलातिसारहिक्वाध्मानभ्रमण
वथुश्वाससंज्ञाप्रणाशः । श्यामारक्ताधिकतररसनामण-
लोत्थानरूपारक्तष्ठीवीनिगदितग्रहप्राणहंताप्रसिद्धः ॥

अर्थ-रुधिर गेरना, ज्वर, वमन, तृषा, मूर्छा, शूल, अतीसार, हिचक, पेटका फूलना और नेत्रोंमें दाह, श्वास, चित्तभ्रम, जिह्वा काली किवा लाल उसपर चकत्ते हैं ऐसे लक्षणयुक्त जो हो उसको (रक्तष्ठीवी) सन्निपात कहते हैं यह प्राणनाशक प्रसिद्ध है ॥

पर्पटादिकाटा ।

पर्पटकधन्वयासकवासाभूतृणकैःकटुकीफलन-
शर्करयासहितोपिकपायोलोहितमास्यगतंवि-

अर्थ-पित्तपापरा, धमासा, अट्टसा, रोहिस (सुंगधि तृण) खाँड मिलायके देवे और कंकोलका चूर्ण करके इसकी नस्य पसे रुधिर गिरनेको दूर करे ॥

जलदादिकाढा ।

जलदाह्वयपद्मकपर्पटकमलयोज्ज्वजातिवरीमधुकैः ।

मधुनिबजलानलचंदनकैःकथितंमुखरक्तदरंसलिलम् ॥

अर्थ-नागरमोथा, पद्मास्र, पित्तपापडा, चंदन, चमेली, सतावर, मुलहटी, शहद, नीमकीछाल, नेत्रवाला, चित्रक और लालचंदन इनका वाढा मुखसे रुधिर बहतेको बंद करे ॥

रौहिपादिकाढा ।

रौहिपधन्वयवासकवासापर्पटगंधलताकटुकाभिः ।

शर्करयासममेपकपायःक्षतजष्टीविनउदितउपायः ॥

अर्थ-सुगंधितृण, धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, गंधलता, कुटकी इनका काढा खांडके साथ देवे तो रक्तष्ठीवी सन्निपात दूर हो ॥

पद्मादिकाढा ।

पद्मकचंदनपर्पटमुस्ताजातिवरारुणचंदनवारि ।

क्रीतकनिवयुतंपरिपक्ववारिभवेदिहशोणितहारि ॥

अर्थ-पद्मास्र, चंदन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेलीके पत्ते, ला, लालचंदन, सुमंधवाला, मुलहटी और नीम इनका काढा रक्तक्षी नष्ट करे ॥

मधुकादिकाढा ।

मधुकमधूकपरूपकपायश्चंदनपल्लवदारुसनाथः ।

श्रीपर्णीफलशीतकपायःससितइहस्थादस्त्रजयाय ॥

अर्थ-महुआ, मुलहटी, फालसा, रक्तचंदन, पत्रज, देवदार, सालवन इनका काढा शीतल करके खांड मिलायके देवे तो रुधिर बंद

श्रीपर्णी

दूर्वादिनस्य ।

प्यंविभाक्ष्यंदूर्वारसैर्नस्यंरसैर्दाडिमपुष्पजैः ।

पयेत् अथवात्रिफलादूर्वाजलंरक्तहरंपरम् ॥

द्वियामांके रसकी अथवा अनारके फूलके रसकी किंवा त्रिफला त्येला रसकी नस्य देवे तो रक्तष्ठीवी सन्निपात नष्ट होय ॥

आम्नादिनस्य ।

आम्नास्थिचपलांडुर्वानासिकाच्युतरक्तजित् ॥

अर्थ—आमके गुठलीकी अथवा लहसनके रसकी नस्यदेवे तो नाकसे रुधिर गिरना बंद हो ॥

चिकित्सा ।

पंचवक्त्रोरसोप्यत्रदेयोगुंजाद्वयोहितः ।

भस्मेश्वरोरसोवाथमापैकंसन्निपातजित् ॥

अर्थ—पंचवक्त्ररस दो रत्ती अथवा भस्मेश्वर १ मासे देय तो रक्तघ्नी-
वीको नाश करे ॥

रक्तघ्नीवीचिकित्सा ।

रक्तेमोरेश्वरोदेयोरसोगुंजाद्वयंघृतैः । सनागरोनिहं-
त्याशुसन्निपातंसुदारुणम् ॥ अनुपानविशेषाच्चतसंवा
रिपलद्वयम् । दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंतृपार्तशीतलंजलम् ॥

अर्थ—रक्तघ्नीवीमें मोरेश्वररस घृतके और सोंठके चूर्णसे दो रत्ती देय
अनुपान विशेषमें गरम जल ८ तोले देय और पथ्यमें दहीभात देय
और अतितृपामें शीतल जल देवे ॥

सोमपाणीरस ।

सूतनिष्कंगंधनिष्कमर्दयेच्चित्रकद्रवैः । मापैकंमृतर्त
क्षणस्यान्मृतंशुत्वंचमाक्षिकम् ॥ मापैकैकंचसंमिश्रयू
र्वंसूतेथमर्दयेत् । धत्तूरत्रिफलाकन्यावृद्धादाव्वार्द्र-
कद्रवैः ॥ कोशाप्रकस्यमण्डूक्यानिर्गुब्ध्याभृंगिचित्रकैः ।
वयस्थापिचदातारिशक्रासनद्रवैरपि ॥ प्रतिद्रावंपलै-
कैकंदत्वास्वल्पविमर्दयेत् । रसांसंघ्नूपणंक्षिप्त्वा
मात्रावटीकृता ॥ तामिश्रसन्निपातातंदापयेत्
वैः । कपायःपंचमूलानामनुपानंप्रशस्यते ॥
न्नंदापयेत्पथ्यंतृपार्तशीतलंजलम् । सन्निपातंनि-
शुसोमपाणीरसोवरः ॥

अर्थ—पारा और गंधक चारचार भासे लेकर उनकी चित्तके रसमें खरल करे फिर १ मासा तीक्ष्ण लोहकी भस्म १ मासा ताम्रभस्म और एक मासा शुद्ध माक्षिक ये एकत्र कर उक्तपारे गंधकमें मिलाय धतूरा, त्रिफला, घीकुवार, विधायरा, अदरक, लाल आम, ब्राह्मी, निर्गुडी, भांगरा, चीता, आमले, अंडकी जड़ और भांग इनके एक एक पल काटेमें अथवा रसमें घोंटे फिर पारेके समान भाग त्रिकुटेका चूर्ण डालके चनेकी बराबर गोली बनावे ये रक्तष्टीवी सन्निपातपर जीरेके काटेसे देवे और पीछे पंचमूलका काठा देय तथा दहीभातका पथ्य देय जब प्यास लगे तब शीतल जल देवे तो यह (सोमपाणिरस) सन्निपातको दूर करे ॥

प्रलापकसन्निपातनिदान ।

कंपप्रलापपरितापनशीर्षपीडाप्रौढप्रभावपवमानपरोन्य-
चिंता । प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादःक्षिप्रंप्रयातिपि-
तृपालपदंप्रलापी ॥

अर्थ—कंप, प्रलाप, संताप, मस्तकपीडा, अत्यंत प्रभाव, स्वच्छता, विषय, इच्छा, अल्पपुरुषकी चिंता, बुद्धिका नाश, विकलता, अत्यंतवक-
गद करना अथवा वाटकरना इन लक्षणों करके (प्रलापक) संनिपात
ना यह रोगीको तत्काल यमलोकको पहुँचावे ॥

मुस्तादिकाठा ।

मुस्तवारिदशमूलनागरंपर्पटोमलयजंधवत्वचः ।

वासकःकृतसमानविभागःकाथएवहरतिप्रलापकम् ॥

४—नागरमोथा, नेत्रवाला, दशमूल, सोंठ, पित्तपापडा, लालचंदन,
ही छाल और अहूसा ये समान भाग ले काठाकर पीवे तो प्रला-
सन्निपात दूर होय ।

तगरादिकाठा ।

तुरगगंधापर्पटीशंखपुष्पीत्रिदशविटपित्तकाभा-
केशी । जलधरकृतमालश्वेतकीगोस्तनीभ्यां
कपायोमंशुपानात्प्रलापम् ॥

असगंध, पापरी, शंखाहली, देवदार, कुटकी, ब्राह्मी,
नागरमोथा, अमलतासका गूदा, हरद और दास्य इनका
त्येलापक संनिपातको तत्काल शमन करे ॥